दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक
डॉ. अश्विनी महाजन
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक
प्रो. प्रसून दत्त सिंह
महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
डॉ. फूल चन्द
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सी.के.एन.के.एच
(चलो कुछ न्यारा करते हैं फाउंडेशन)

An ISO 9001-2015 Certified

हिंदी साहित्य समिति द्वारा आयोजित
द्विदिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी एवं शोध-पत्र वाचन
दिनांक 27, 28 फरवरी 2024

डॉ० नम्रता जैन
संयोजक
अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

विशेषांक

भारत गद्य साहित्य के साहित्यकारों एवं समाज सुधारकों का हिंदी साहित्य में अवदान

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 16 अंक : 2 ❑ मार्च–अप्रैल, 2024

दृष्टिकोण

संपादक

डॉ० नम्रता जैन

प्रेसीडेंट, हिंदी साहित्य समिति, सी.के.एन.के.एच. फाउन्डेशन

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–I, दिल्ली–110091

फोन : 011–22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610

e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com

Website : www.ugc-care-drishtikon.com

©Editorial India

Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

सी.के.एन.के.एच फाउंडेशन हिंदी साहित्य सेवा समिति के तत्वावधान में "भारतीय गद्यकारो के साहित्यकारों एवं समाज सुधारको का हिंदी साहित्य में अवदान " विषय पर द्विदिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन 27-28 फरवरी को किया गया । इस अवसर पर हिंदी साहित्य सेवा समिति की प्रेसीडेंट एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी की संयोजक डॉ नम्रता जैन ने बताया कि यह आयोजन हिंदी साहित्य से संबंधित विद्वानों एवं शोध छात्र छात्राओं के लिए ज्ञानवर्धक होगा। हिंदी साहित्य पर यह संगोष्ठी लोक कल्याण की ऐसी संजीवनी है, जिसमें हिंदी साहित्य से संबंधित सभी समस्याओं और संकटों के समाधान और उनके निवारण करने की क्षमता है, बशर्ते कि उसका सही प्रकार से चिंतन, मनन और अनुशीलन किया जाए।

साहित्य किसी संस्कृति का ज्ञान कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए भक्तिकाल के सहित्य से हमें हिन्दुओ के धार्मिक परंपराओं की जानकारी मिलती है। किसी भी काल का अध्ययन से हम तत्कालीन मानव जीवन के रहन-सहन व अन्य गतिविधियों को आसानी से जान सकते हैं। साहित्य से हम अपने विरासत के बारें में सीख सकते हैं।

साहित्य में समाज की विविधता, जीवन-दृष्टि और लोककलाओं का संरक्षण होता है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामजिक संस्कारो का परिष्कार होता है! रचनाएँ समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती हैं। साहित्य का आविर्भाव भी इसी समाज से होता है जिसे रचनाकार अपने भावों के साथ मिलाकर उसे एक आकार देता है। यही रचना समाज के नवनिर्माण में पथप्रदर्शक की भूमिका निभाने लगती है। अज्ञेय मानते हैं कि साहित्यकार होने के नाते अपने समाज के साथ उनका एक विशेष प्रकार का संबंध है।

साहित्य की किसी भी विधा के उद्‌भव और विकास का संबंध उसकी भाषा के उद्‌भव और विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसलिए आधुनिक हिंदी गद्य के उद्‌भव की पृष्ठभूमि भी हिंदी भाषा के क्रमिक विकास से जुड़ी हुई है। आधुनिक हिंदी गद्य के अस्तित्व में आने से पूर्व अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषाओं में गद्य साहित्य की झलक मिलती है हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भारत के इतिहास के बदलते हुए स्वरूप से प्रभावित था। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव साहित्य में भी आया। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अंग्रेजी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आने लगा। ईश्वर के साथ साथ मानव को समान महत्व दिया गया। भावना के साथ साथ विचारों को पर्याप्त प्रधानता मिली। पद्य के साथ साथ गद्य का भी विकास हुआ और छापेखाने के आते ही साहित्य के संसार में एक नयी क्रांति हुई।

आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास केवल हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहा। पूरे देश में और हर प्रदेश में हिन्दी की लोकप्रियता फैली और अनेक अन्य भाषी लेखकों ने हिन्दी में साहित्य रचना करके इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। हिन्दी गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है। आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास केवल हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहा। पूरे भारत में और हर प्रदेश में हिन्दी की लोकप्रियता

फैली और अनेक अन्य भाषी लेखकों ने हिन्दी में साहित्य रचना करके इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । आधुनिक काल हिंदी गद्य का सर्वांगीण उन्नति का काल है। इस युग में न केवल नवीन गद्य विधाओं का उद्‌भव हुआ बल्कि सभी विधाओं का यचेष्ट विकास हुआ भी हुआ। इस युग में आधुनिक जीवन की यथार्थ परक चित्रण विविधता के साथ हुआ है। यही कारण है की उत्तरोत्तर हिंदी गद्य का विकास होता रहा। जिसका परिणाम यह हुआ की आज हिंदी भाषा विश्व की प्रमुख भाषाओं में गिनी जाती है।

– डॉ नम्रता जैन

प्रेसीडेंट, हिंदी साहित्य सेवा समिति सी.के.एन.के.एच फाउन्डेशन

संयोजक

अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

इस अंक में

गिजुभाई का साहित्यिक अवदान–विजय सिंह माली 1
उत्तराखंड के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान–श्रीमती रंजीता 4
साहित्यकारों का अवदान–डॉ० स्मृति कुमारी सिंह 6
मध्य प्रदेश के समाज सुधारकों एवं साहित्यकारों की समाज जागरण में भूमिका–डॉ० पवन कुमार; कुमारी मीरा विश्वकर्मा 8
डॉ० नगेंद्र का हिंदी साहित्य में योगदान–ऋचा राघव 11
उत्तराखण्ड के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में योगदान–डॉ० विजय लक्ष्मी 13
नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना–डॉ० नाजमा हाशमी 15
प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री जीवन–अमिता 18
राजस्थान झालावाड़ के मूर्धन्य साहित्यकार राम निवास शर्मा "सौरभ"–श्रवण कुमार 21
कोदूराम दलित के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना–डॉ० बी० नंदा जागृत 25
हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में बिहार के लेखकों का योगदान–डॉ० निवेदिता कुमारी 28
संत रैदास: मिथक किंवदंती और प्रक्षेप–सिद्धार्थ कुमार 30
उत्तराखण्ड के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान–डॉ० दीपा पंत 33
कांगड़ा शैली में साहित्यिक ग्रन्थों पर चित्रांकन–डॉक्टर पूर्णिमा वशिष्ठ 36
भक्तामर स्तोत्र एवं रेकी चिकित्सा एक परिचय एवं मानव जीवन के विभिन्न स्तर पर इनका प्रभाव–चारू जैन 39
नागार्जुन कि तीखी व्यंग्य भावना के दृष्टांत–डॉ० सरोज एस घोड़ेश्वर 41
नागार्जुन के काव्य में जनवादी चेतना–डॉ० प्रमोद नाग 44
मौर्य एवं शुंग काल में वास्तुकला और मूर्तिकला का योगदान–वास्तुविद वर्षा जैन; डॉ० रत्नेश कुमार जैन 47
भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० गरिमा तिवारी 51
अनामिका के काव्य में स्त्री अस्मिता का संघर्ष–डॉ० आशा मीणा 53
छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान–धर्मेन्द्र कुमार पाटनवार 56
मध्य प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० श्रद्धा सिंह 59
हिन्दी गद्य के विकास में मैथिल क्षेत्र का योगदान: नागार्जुन एवं राजकमल चौधरी के संदर्भ में–डॉ० कुमारी कोमल 64
हिन्दी कहानी और ओमप्रकाश वाल्मीकि–डॉ० दिनेश राम 67
चंद्रकान्ता की कहानियों में कश्मीरी समाज और संस्कृति–वन्दना कुमारी 70
कुमाऊंनी कथाकारों का हिंदी कथा साहित्य में अवदान–डॉ० मंगला 74
उत्तराखंडी मनोहरश्याम जोशी का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० दीपिका आत्रेय 76
रामधारी सिंह दिनकर की काव्यगत विशेषताएँ–डॉ० प्रिती जयसुखभाई राठोड 78
"जयशंकर प्रसाद का हिंदी साहित्य में अवदान"–डॉ० जनक नंदिनी त्रिपाठी 81
राजस्थान के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० रेखा. जी 84
साहित्यकार डॉ० दामोदर खड़से का हिंदी साहित्य संसार–प्रा० बापू नानासाहेब शेळके 88
निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में अभिव्यक्त अन्तर्द्वन्द्व–डॉ० कुसुम लता 92
हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित थर्ड जेंडर–कनकलता कुमारी 94
हिन्दी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन–रीना चन्दौला 98
डॉ. सूरज सिंह नेगी का वृद्ध विमर्श में योगदान–डॉ० प्रविण देशमुख; कु. राजकन्या राघोजी भगत 100
"वेश्या समाज के बदलते स्वरुप को दर्शाता हबीब कैफी का उपन्यास: 'सफिया"–सलमा अश्फा 102
'भूमंडलीकरण के परिदृश्य में मंगलेश डबराल और वीरेनडंगवाल की कविता'–मनोज मोदनवाल 105

"तारसप्तक में संकलित रामविलास शर्मा की कविताओं में प्रगतिशील चेतना"–सना फातिमा 109
उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० रमेश यादव; अमित कुमार 112
काशीनाथ सिंह की कहानी 'सुख' न समझ पाने की पीड़ा"–सनोवर 115
"साए में धूप: मुक्ति की आकाँक्षा"–फिरदौस 118
दक्षिण के तेलुगु भाषी साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान–डॉ० अपर्णा चतुर्वेदी 125
उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में योगदान–डॉ० अरुणा दुबलिश; रवि कुमार 127
कर्नाटक के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० रश्मि बी व्हि 130
स्वाधीनता आंदोलन मे हिंदी साहित्यकारों का योगदान–डॉ० मीना अग्रवाल 133
छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–गीतेश कुमार अमरोहित; डॉ० बृजेन्द्र पांडेय 137
हरियाणा के समाज सुधारकों, साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–योगेश्वर कुमार; डॉ० बृजेन्द्र पांडेय 140
उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान–डॉ० बृजेन्द्र पांडेय 143
महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन के प्रतिष्ठित संत: संत नामदेव–डॉ० संगीता ठाकुर 146
हिन्दी कथा साहित्य के विकास में डॉ० सूर्यबाला का योगदान–कविता कुमारी; डॉ० निवेदिता कुमारी 149
चंद्रकिशोर जायसवाल का उपन्यास 'जीबछ का बेटा बुद्ध'–पवन कुमार ठाकुर; डॉ० निवेदिता कुमारी 152
हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि दिनकर का योगदान–डॉ० संजू कुमारी 155
उत्तराखंड के साहित्यकारों का पत्रकारिता में योगदान–डॉ० आशा बाला 158
बिहार के प्रसिद्ध कथाकार मिथिलेश्वर–मधु त्रिवेदी 160
"अमरकांत के कथा-साहित्य में निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय संवेदना"–अमर कुमार चौधरी 162
भाषा, पत्रकारिता एवं मध्यप्रदेश–श्रीमति वंदना जैन 165
'तीसरी ताली' उपन्यास में समानांतर दुनिया की व्यथा–पद्मिनी मल्ल 167
हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यप्रदेश के साहित्यकारों का योगदान–श्रीमती ज्योत्स्ना झारिया 169
उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में योगदान: गोपालदास नीरज के गीतों में मानव-मूल्य–ऋतु चौहान 171
उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान–डॉ० संज्ञा सिंह 174
कोसी क्षेत्र के हिन्दी गद्य लेखकों का साहित्यिक अवदान–आर्या शिवानी 179
शिक्षा और हिंदी साहित्य–राशिदी रुकैया 181
छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान–धर्मेन्द्र कुमार पाटनवार 184
झारखंड के उपन्यासकारों का हिंदी साहित्य में योगदान–डॉ० राहुल कुमार 186
जंसिताकेरकेट्टा के लेखन में राष्ट्रवादी चेतना के स्वर–प्रो० शैलेन्द्र सिंह 189
मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का हिन्दी साहित्य में योगदान–डॉ० ज्योति गौतम 192
हिन्दी गद्य साहित्य में बच्चन का योगदान–कांता देवी 194
पंजाब के गद्य साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान–डॉ० रिचा नांगला 196
महादेवीवर्मा के गद्य लेखन में स्त्री प्रश्न: श्रृंखला की कड़ियाँ के सन्दर्भ में–सुश्रीजगवती 199
शिक्षक शिक्षा के संदर्भ में हिंदी साहित्य का महत्व–डॉ० मो० वकार रजा 201
सारा आकाश उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण–मो० जहाँगीर 203

गिजुभाई का साहित्यिक अवदान

विजय सिंह माली

प्रधानाचार्य, श्रीधनराज बदामिया राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय सादड़ी, (जिला-पाली), राजस्थान

भारत में परंपरागत शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन लाने के लिए साहित्य सर्जन और नूतन शिक्षा प्रणाली द्वारा क्रांति करने वाले गिजुभाई का शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट अवदान रहा है। काका कालेलकर ने तो उन्हें 'बाल साहित्य का ब्रह्म' कहा है।

गिजुभाई का वास्तविक नाम गिरिजा शंकर बधेका था। उनका जन्म 15 नवंबर 1885 को गुजरात के चितल गांव में हुआ। माता का नाम काशी बा तथा पिता का नाम भगवान जी था। इनकी प्रारंभिक व माध्यमिक शिक्षा भावनगर में हुई। 1905 में मेट्रिक करने के बाद अफ्रीका गए। वहां से लौटकर मुंबई के एक स्कूल में शिक्षक की नौकरी की तथा साथ साथ वकालत की पढ़ाई भी शुरू की। वकालत की पढ़ाई पूर्ण करने के बाद वकालत शुरू की। 27 फरवरी 1913 को उनके घर एक पुत्र का जन्म हुआ। उन्होंने अपने पुत्र नरेंद्र को परपंरागत शिक्षा पद्धति से मुक्त रखने का निर्णय लिया। उनको प्रचलित शिक्षा पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता दिखाई दी। उन्होंने मारिया मोंटेसरी की पुस्तकें पढ़ी। इससे गिजुभाई को बाल शिक्षा की सच्ची समझ प्राप्त हुई। 13 नवंबर 1916को वे दक्षिणामूर्ति संस्था से जुड़े और 1918 में 'कुमार मंदिर' के प्रधानाचार्य बने। इस दौरान उनमें छिपा हुआ सच्चा शिक्षक और बच्चों का प्यारा साथी जागृत हुआ। उन्होंने गुजरात के शिक्षा क्षेत्र को नई दिशा देकर उसकी दशा बदलने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने मोंटेसरी पद्धति द्वारा बालमंदिर की शिक्षा का प्रारंभ किया।

छोटा बच्चा कल्पनाशील होता है, उसको कल्पना के जगत में ले जाकर वास्तविक बोध देने का कार्य शिक्षक बनकर साहित्य सर्जन के माध्यम से किया। बालक को शारीरिक पोषण की जितनी जरूरत होती है उतनी ही जरुरत मानसिक पोषण की होती है। गिजुभाई ने बाल-साहित्य और शैक्षणिक उपकरणों के माध्यम से शिक्षा को नई ऊंचाई देने का प्रयत्न किया, बच्चों को रस पैदा हो ऐसे गीत, कहानियां और नाटक द्वारा आनंददायी शिक्षण की अद्‌भुत तकनीक उन्हें हस्तगत रही।

गिजुभाई के साहित्य का प्रत्येक शब्द शिक्षानुभव की स्याही में डूबा हुआ है। गिजुभाई का साहित्य सर्जन बालक को श्रेष्ठ मानव बनाने के ध्येय से लिखा गया। बालक के मन को आनंदित और संस्कारित करने के लिए उनकी कहानियों के केंद्र में बालक और बालिकाओं की रुचि मुख्य हैं। बालक का मानस गढ़ना, लालन-पालन और शिक्षा को साहित्य के साथ जोड़ कर उन्होंने विपुल सर्जन द्वारा विद्योपासना की है। उन्होंने बाल साहित्य की मजबूत नींव रखकर बाल-साहित्य को समाज में प्रचलित और लोक प्रिय बनाया।

बच्चा जब पालने में होता है तब से उसको कर्णप्रिय और लयबद्ध गीत पसंद आते हैं, ऐसे गीत बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। बालकों को तुरंत कंठस्थ हो जाए और गुनगुनाते रहे ऐसी छोटी छोटी काव्य पंक्तियों का समावेश गिजुभाई ने अपनी कहानियों में किया है। छोटे छोटे वाक्य और लयबद्ध शब्द प्रयोग उनकी कहानियों में दिखाई देता है। उनकी कहानियों में शब्द का माधुर्य और कोमलता का एक अजीब मिश्रण भाव निहित है। बालकों को अतिप्रिय ऐसे पशु पक्षियों की कहानी द्वारा बालमन को प्रफुल्लित करने का अंतिम लक्ष्य सिद्ध कर सके ऐसी क्षमता उनकी कहानियों में है। गिजुभाई ने बालकों की उम्र व कक्षा के अनुरूप कहानियों की लंबाई व कथा वस्तु तय करके कहानियों का सर्जन किया है। बालकों में भाव, आश्चर्य, हिम्मत, साहस, संस्कार और जिज्ञासा का प्रकटीकरण हो ऐसी गिजुभाई कहानियां लोकप्रिय आज भी लोकप्रिय है। गिजुभाई की कहानियों की प्रस्तुति ऐसी आकर्षक है कि पढ़ते पढ़ते पात्र के साथ तादात्म्य का अनुभव होता है। उनकी कहानियों को कहते समय आंगिक, वाचिक के साथ साथ शाब्दिक चेष्टा सहज बन जाती है। उनकी कहानियों का नाट्यीकरण भी आसानी से किया जा सकता है।

गिजुभाई के समग्र साहित्य को बाल-साहित्य, किशोर साहित्य, चिंतन साहित्य और शिक्षा साहित्य में बांटा जा सकता है। बाल साहित्य में बाल-साहित्य वाटिका भाग 1में 28व भाग 2में 111पुस्तकें है। बाल साहित्य गुच्छ में 25पुस्तकें है।ईसप कथा, अफ्रीका का सफर, अवलोकन ग्रंथ माला, ज्ञान वर्धन ग्रंथमाला, रम्य कथा ग्रंथमाला, कथा नाट्य ग्रंथमाला, जीवन परिचय ग्रंथ माला, पशु पक्षी ग्रंथमाला जैसी अनेक पुस्तकों का सर्जन किया। किशोर साहित्य में रखडु रोती भाग 1,2, महात्माओं के चरित्र, किशोर कथाएं भाग 1 व 2 समाविष्ट है। प्रासंगिक मनन, शांतपल जैसी पुस्तकें चिंतन साहित्य का परिचायक है। मोंटेसरी पद्धति भाग 1, 2, बाल शिक्षण जैसा मैं समझ पाया, प्राथमिक शिक्षा में शाला पद्धतियां, प्राथमिक शिक्षा में भाषा शिक्षण, प्राथमिक शिक्षा में चिट्ठी वाचन, प्राथमिक शिक्षा में कला कारीगरी की शिक्षा 1,2,शिक्षक हो तो, चलते फिरते, कथा कहानी का शास्त्र 1,2 माता पिता से, मां बाप बनना कठिन है, माता पिता से प्रश्न, दिवास्वप्न जैसी पुस्तकें शिक्षा शास्त्र से संबंधित है। इनमें से मोंटेसरी पद्धति, दिवास्वप्न, कथा कहानी का शास्त्र अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा जगत के लिए गिजुभाई की अनमोल देन बनी है। इनमे गिजुभाई ने बहुत ही गहराई में जाकर अपनी आत्मा को उंडेला है। ये पुस्तकें बालजीवन और बालशिक्षण के कार्य को समझने में मदद करती है।

गुजराती में बाल साहित्य के जनक माने जाने वाले गिजुभाई ने लोक साहित्य से चयनित तुकबंदी का संग्रह किया। उन्होंने कथा नाट्य ग्रंथमाला लिखी जिसमें शिवाजी महाराज, बुद्ध चरित्र, हरिश्चन्द्र व गोपीचंद की जीवनियां सम्मिलित थी। उनकी सबसे लोकप्रिय कृति दिवास्वप्न बालशिक्षा के मुक्त और

मौलिक स्वरूप का चित्रण करने वाली एक अनूठी कृति है। 12मार्च 1931के दिन इनका गुजराती संस्करण प्रकाशित हुआ। दिसंबर 1934 में काशी नाथ त्रिवेदी ने इसका हिंदी अनुवाद किया। शिक्षा विद् हरी भाई त्रिवेदी ने दिवा स्वप्न के लिए लिखा- "दिवास्वप्न क्या है, कल की प्राथमिक शिक्षा की एक स्वल्प सी समालोचना है और भविष्य की नवीन प्राथमिक पाठशाला के मनोहर और स्पष्ट रुप की एक सुंदर झांकी है।" रमेश दवे के अनुसार "दिवास्वप्न गिजुभाई की गीता है।" पलाश पत्रिका ने अपने संपादकीय में ठीक ही लिखा- "पंच तंत्र के विष्णु शर्मा ने जिस विधा को अपनाकर बिगड़ैल राजकुमार का चरित्र बदल दिया, उसी तरह अध्यापक लक्ष्मी शंकर के रुप में दूसरा विष्णु शर्मा रच कर शिक्षा के जरिए आने वाली पीढ़ियों को बदलने का नया आनंदमय और गतिमय अभियान गिजुभाई ने दिया। गिजुभाई का दिवास्वप्न आज के हर अध्यापक की बाइबिल हो, ट्रेनिंग संस्थाओं में तो वह एक पाठ्य-पुस्तक की जगह ले और जब एक शिक्षक उसे आत्मसात करेगा तो उसे पूरा विश्वास है कि शैक्षिक जड़ता का कवच टूटेगा, शिक्षा में नवगति, नवताल, छंद नव का मधुर संगीत सार्थक बनकर गूंजेगा।"

गिजुभाई की प्राथमिक विद्यालयों में कला कारीगरी की शिक्षा की प्रस्तावना में स्वयं गिजुभाई ने लिखा- "संगीत व चित्रकला का ज्ञान प्राप्त करने वाले बालक स्पर्धा, द्वेष, क्लेष-तकरार या मारपीट नहीं करेंगे, अपितु वे सौंदर्य के सात्विक उपासक बनेंगे। सौंदर्य की सात्विक उपासना ने दुनिया में किसी का अहित नहीं किया।" इस पुस्तक में उन्होंने प्राथमिक शाला में संगीत एवं चित्रकला विषयों की उपयोगिता व संचालन करने की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला। रमेश थानवी ने ठीक ही लिखा- "यह पुस्तक गिजुभाई की अनमोल कृति है। हर शिक्षक व माता पिता के लिए अनूठी भेंट।हर घर विद्यालय के लिए एक अनिवार्य एवं अनुपम कृति।"

गिजुभाई की कृति "प्राथमिक विद्यालय भाषा-शिक्षण और चिट्ठी-वाचन" के बारे में मधुरी देसाई का कथन ठीक ही है- "प्राथमिक विद्यालय भाषा शिक्षण और चिट्ठी वाचन पुस्तक का भाषा शिक्षण में हम आज भी उपयोग कर सकते हैं क्योंकि इसमें चित्र वाचन, शब्द वाचन, वाक्यवाचन, क्रियात्मक वाक्यों का वाचन आदि पर अत्यंत स्पष्टता से प्रकाश डाला गया है। यह पद्धति अपने में काफी हद तक वैज्ञानिक हैं।"

गिजुभाई की अन्य कृति 'प्राथमिक विद्यालय शिक्षक और शिक्षण पद्धतियां'' भाषा और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षकों के लिए आलोच्य विषय पर लिखी गई सर्वोत्कृष्ट पुस्तकों में गिनी जाने योग्य है।

गिजुभाई की 'मोंटेसरी पद्धति' पुस्तक नए शिक्षकों के लिए ज्योति की जाज्वल्यमय मशाल है। नए प्रयोगों के प्रति निष्ठावान शिक्षक इसके माध्यम से शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा सिद्धांत, शिक्षण प्रविधि तथा नूतन ऊर्जा से समन्वित होकर स्वयं को सुसज्जित कर सकते हैं। नाना भाई भट्ट ने इस पुस्तक के बारे में ठीक ही कहा- "आज जबकि संपूर्ण विश्व मानव जीवन के घोर विग्रह के कारण थक गया है और मनुष्य की आत्मा शांति के नूतन मार्ग की खोज में बेचौन है ऐसे समय में इस पुस्तक में अंत निहित स्वतंत्रता एवं स्वयं स्फूर्ति का महामंत्र हमारे जीवन में फिर से उल्लास पैदा करेगा तथा आने वाले कल के निमित्त अधिक सच्चा इंसान करेगा ऐसी कामना की जा सकती है।"

गिजुभाई की कृति 'कथा-कहानी का शास्त्र' कोई कहानी नहीं बल्कि कथा कहानी का शास्त्र है लेकिन इसे पढ़ना कहानी पढ़ने की तरह रोचक है। पुस्तक पढ़ते समय प्रत्येक पाठक को लगता है जैसे गिजुभाई सीधे उसी को संबोधित कर रहे हैं और कहानी कहने का कोई शास्त्र नहीं बता रहे बल्कि अपने अनुभवों का किसी आत्मीय से सीधा साझा कर रहे हैं।

गिजुभाई द्वारा रचित कृति 'कठिन है माता पिता बनना' में गिजुभाई ने माता-पिता के बच्चों के प्रति दायित्व के बारे में जीवन के उपाख्यानों के आधार पर कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं। वे अपने स्वयं के अनुभव में घटित घटनाओं का वर्णन करते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं तथा उनका विश्लेषण करते हैं और अपने विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं कि क्या नहीं होना चाहिए था और क्या होना चाहिए था।

गिजुभाई ने शिक्षा संबंधी अपने विचारों का प्रचार उन्होंने अनेक उपायों से किया। इस काम को करते करते एक बात स्पष्ट रुप से उनके ध्यान में आई कि बालशिक्षा की गाड़ी शिक्षा शास्त्र के एक पहिए पर चल न सकेगी। दूसरा पहिया मां बाप का है। जब तक यह बात मां बापों तक पहुंचाई नहीं जाएगी और जब तक इस काम में उनका पूरा पूरा सहयोग नहीं मिलेगा, तब तक यह कार्य सफल नहीं हो सकेगा। इस बात की प्रतीति हो जाने पर उन्होंने शिक्षण पत्रिका में इस विषय पर लेख लिखने शुरू किए। 'माता पिता अपेक्षाएं और प्रश्न' पुस्तक में उन्हीं लेखों का संग्रह किया गया है।

गिजुभाई अपनी किताब 'माता पिताओं की माथापच्ची' में अपने असाधारण पर्यवेक्षण सामर्थ्य से बालसंसार की ऐसी दृश्यावली रचते जाते हैं कि किसी सिखावन बुझावन की दरकार ही नहीं रहती। अभिभावक बालक की दूनियां को कहां से देखें कि उसे एक स्वतंत्र, स्वनिर्णयी और स्वावलंबी मनुष्य बनने में मदद कर सके, यह रहस्य कथा दर कथा स्वत:खुलता चला जाता है।

'बाल शिक्षण जैसा मैं समझ पाया' में एक अच्छे शिक्षक के लिए आवश्यक तीनों बातों बाल प्रेम, विधि का ज्ञान और सिद्धांत की समझ का उत्तम समन्वय मिलता है। यह पुस्तक शिक्षा दर्शन के साथ साथ जीवन दर्शन के लिए भी उपयोगी है। 'शिक्षक हो तो' पुस्तक में गिजुभाई ने ऐसे व्यवहारिक उदाहरण दिए हैं जो हमें यह प्रेरणा देते हैं कि एक अकेला शिक्षक ही बहुत कुछ कर सकता है।

गिजुभाई ने अपनी पुस्तक 'चलते फिरते' में अनेक प्राणवान क्षणों का वर्णन किया है, बालमन की गहराई में उतर कर उन्हें समझने का प्रयास किया है, गहन शैक्षिक सिद्धांतों का विवेचन किया है तथा अभिनव प्रयोगों, अपनी त्रुटियों एवं सफलताओं को ईमानदारी से प्रस्तुत किया है।

गिजुभाई ने गुजराती में लोक कथाएं व कहानियां लिखी। उनकी लिखी 'डिंग शास्त्र' जय पराजय की कहानी है जो बुद्धि के प्रयोग की बात करता है। 'मनमौजी कौआ' आजादी का संदेश देता हुआ इसकी महत्ता को रेखांकित करता है। 'फूफू बाबा' बाप बेटे के मुसीबत से बचने के अनोखे तरीके को हल्के फुल्के रुप से प्रस्तुत करता है। 'शेर के भांजे' कहानी में एकता में शक्ति को समझाने की कोशिश की गई है। 'लाल बुझक्कड' कहानी अनपढ़ गांव के एक थोड़े से होशियार आदमी की कहानी है। 'सिरफिरा सियार' किसी के मूर्खता के चरम पर पहुंच कर खुद का नुकसान कर लेने की कहानी है। 'लड्डू का स्वाद' दूसरे की नकल न करने की सलाह देता है। 'पोंगा पंडित' कहानी सीधे से शब्दों में समझाती है कि अपने ज्ञान का समय और परिस्थिति के अनुसार

कैसे उपयोग लिया जाना चाहिए। 'भोला भाला आदमी' कहानी की सीख है कि धूर्त लोगों पर कभी विश्वास नहीं करें। 'चूहा बन गया शेर' कहानी में चूहे की निर्भीकता को बड़े ही चुटीले अंदाज में कहानी की शक्ल में पिरोया गया है। पोंगा पंडित, चांद भाई की चांदनी, राजाराम भाट, दौलत राम तिब्बेजी, खरगोश प्रसाद चौहान, नाई और पूछ कटा, पिताजी कौवा!, चकवा और चकई, मां मुझे मतोले ने ताटा है, आगे आगे विप्र, तीसरा रखवाला, मां के जाये, सयाना ब्राह्मण, कबूतर और कबूतरी, बोले तो दो खाएं, सोन बाई और रूपबाई, मुर्ख राज, भूत का भाई, ब्राह्मण और ब्राह्मणी, एक और मूर्ख की कहानी, अकल का एक और दुश्मन, लैला मजनू की कहानी, बिल्ली की यात्रा, बकरी की कहानी, सूप में कान वाला राजा, हंस और कौवा, कौवा और मैना, राजा रे में हूं पनौती, मगरमच्छ और चरवाहा, नानी के घर जाने दे, आमना सामना, सोनबाई और बगुला, सौ के साठ, कुत्ता और चीता, तोता और कौवे की कहानी, सात पूंछ वाला चूहा, घास की पूली खा जा, दो बाघ और दो बाघनियां, जो लिखा है वही करो ना, जोगी देखे राह, जूता चोर, अजी सुनते हो दल भंजन जी, खलिहान में पांच चूहे, टशुक बाई की कहानी, खीर की कहानी, सयाने लो, ग सुनहरे बालों वाली लड़की, कौवा और अनाज का कीड़ा, ऊंट का पैर सडे, मुर्गी और सियार की कहानी, कहानी गोरैया की, जू बाई की कहानी, बुढ़िया और बंदरिया, चील की कहानी, कानी गोरैया, कौवा और गेहूं का दाना, मेंढक की शादी, मूरखब्राह्मण, साहब जी लड़के को रखना पड़ा, बुढ़िया और उसके ढेर सारे बच्चे, भगवान रे भगवान, मगर और गीदड़, ठीकरा ज्योतिषी, हे आम भाई हेनींबू भाई, मां मुझे छम वड़ा चाहिए, ठंड टपकने की कहानी, सियार भाई बेर पक गए हैं, मैं अदालत जाऊंगा, जिसका काम उसी को साजे, किस्सा तोता मैना का, गौरैया और कौआ, घी चुराइएं घी चुराइएं स्वाहा, मेंढकी रानी, बनिया और कौवा, बनिया और चोर, नकलची कौवा, सयाने बनिए, एक पहाड़ की चोटी, एक बात की बात, मोर और मोरनी जैसी कहानियां उल्लेखनीय है।

गिजुभाई द्वारा लिखित कृति 'धर्मात्माओं के चरित्र' में गिजुभाई ने बालकों को संस्कृति और संस्कार का पीयूष पान कराने का प्रयत्न किया है। गुरु नानक, कबीर, रामकृष्ण परमहंस जैसे महात्माओं के चरित्र का आलेखन अपनी सहज शैली से किया गया। यह मात्र महापुरुषों के चरित्र का आलेखन नहीं है परंतु कल के नागरिकों को प्रेरणा और जीवन देने का बल प्राप्त करने की कथा भी है।

गिजुभाई की 'शांत पलों में' कृति जीवन में आए उतार चढ़ाव के अनुभव के बाद व्यक्ति जब अपनी ओर मुड़कर झांकता है। तब ऐसी शांत पले जीवन की थकान दूर करती है। भौतिक दूनियां में रत सभी के लिए यह पुस्तक पठनीय है। धीर गंभीर जल प्रवाह की तरह उनकी कलम और उनके आध्यात्मिक विचार प्रवाहित होकर सबके मन को स्पर्श करते हैं। भक्ति, करुणा, श्रद्धा और ईश्वर प्राप्ति की इच्छा विरह और प्रकृति सौंदर्य का आलेखन कभी कभी रविन्द्र नाथ टैगोर की याद दिलाता है। विभिन्न विषयों पर छोटे छोटे वाक्यों में विचारों का नवनीत प्रस्तुत किया गया है। जीवन और अध्यात्म के विचारों से यह पुस्तक अभिभावकों के लिए लाभदायी है।

सचमुच महान शिक्षाशास्त्री गिजुभाई बधेका का साहित्यिक अवदान साहित्य जगत की अनमोल थाती है। उनके साहित्यिक अवदान की प्रासंगिकता गुजरात विदयापीठ शिक्षण महाविद्यालय के प्राचार्य पुरुषोत्तम भाई पटेल के इस कथन से रेखांकित होती है- "गिजुभाई ने कुछ और न किया होता, मात्र दिवास्वप्न पुस्तक ही लिखी होती तब भी वे अमर हो जाते।"

हमें गिजुभाई के साहित्यिक अवदान पर गर्व है।

उत्तराखंड के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान

श्रीमती रंजीता

हिन्दी अध्यापिका, दिल्ली पब्लिक स्कूल, रुड़की, जिला-हरिद्वार, उत्तराखंड

हिमालय की हिमाच्छादित पर्वतमालाओं से घिरा उत्तराखंड, देवी-देवताओं की वो पवित्र-पावन भूमि, जहाँ पौराणिक काल में विभिन्न देवी-देवताओं द्वारा अवतार लिए गए, वो पवित्र भूमि जिसके त्रियुगी नारायण नामक स्थान पर महादेव ने सती-पार्वती से विवाह किया था, जो महान साधु-संतों की तपस्या की साक्षी हैं, वो भूमि जहाँ शास्त्रों और वेदों की रचना हुई, वो धरा जिस पर 'महाकाव्य महाभारत' की रचना 'वेदव्यास जी' द्वारा की गई, कई हिन्दू मंदिरों एवं तीर्थों से सुसज्जित उस वसुधा को कोटि-कोटि नमन।

सुंदर और समृद्ध पहाड़ी संस्कृति से सम्पन्न यह राज्य जिसके कई महान रचनाकारों ने अद्भुत रचनाओं की रचना कर हिन्दी साहित्य को अति समृद्धशाली बनाया है, इन्हीं सुप्रसिद्ध साहित्यकारों में सम्मिलित हैं- साहित्य में अपने अभूतपूर्व योगदान के लिए 'पद्मभूषण' व 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित रचनाकार सुमित्रानंदन पंत और प्रतिष्ठित 'साहित्य अकादमी सम्मान' से सम्मानित जाने-माने कवि व लेखक मंगलेश डबराल। ये उत्तराखंड के वे महान साहित्यकार हैं जिन्होंने न केवल अपनी रचनाओं से लोगों को जागरुक किया अपितु साहित्य प्रेमियों के हृदयों में अपने स्मृति चिह्नों की अमिट छाप भी छोड़ गए।

प्रकृति के कृतिकार-सुमित्रानंदन पंत

हिंदी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई, 1900 को उत्तराखंड राज्य के अल्मोड़ा जिले के कौसानी गाँव में हुआ था. उनका नाम गोसाई दत्त था. वह गंगादत्त पंत की आठवीं संतान थे। उन्होंने अपना नाम बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया था, इसका खुलासा उन्होंने आकाशवाणी में हुए अपने एक साक्षात्कार में किया था। प्रकृति प्रेमी पंत ने अपनी कविताओं में एक ओर विशालकाय हिम से ढके पर्वतों, कल-कल करती नदियों, लालिमा युक्त उषा-किरणों, शीतल पवनों, विशाल गगन, तारों से सजी सुनहरी निशा का वर्णन तो किया ही, साथ ही साथ गीत विहग बनकर दिव्य चेतना का संदेश सुनाने की कामना करते हुए मानव जीवन को गरिमापूर्ण, प्रकाशवान, मधुर एवं स्फूर्तिवान बनाने की कामना भी अपनी लेखनी से की है।

इसके अतिरिक्त परिवर्तन को जीवन का शाश्वत सत्य व संसार को मिथ्या मानकर जीवन की वास्तविकता को समझाने वाली उच्चकोटि की शिक्षाप्रद, दार्शनिक कविता की रचना में कलात्मकता का पूर्ण समावेश भी दृष्टिगोचर होता है। संस्कृतयुक्त भाषा का शुद्ध प्रयोग इनके काव्य को विलक्षणता प्रदान करता है। कविता पूर्णतया अपना भाव प्रकट करने में समर्थ प्रतीत होती है। शब्दों की मुखरता इनके काव्य में स्पष्ट परिलक्षित है-

अहे निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव नर्तन,
विश्व का करुण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन!
अहे वासुकि सहस्र फन!
लक्ष्य अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर!
शत-शत फेनोच्छवासित, स्फीत फुतकार भयंकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर!
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व की विवर
वक्र कुंडल
दिग्मंडल!
(कविता-परिवर्तन, रचनाकाल-1924)

पंत जी की गतिशील रचनाओं के कारण सन् 1918 के आसपास वह हिंदी की नवीन धारा के प्रवर्तक के रूप में पहचाने जाने लगे। 'वीणा' और 'पल्लव' में संकलित उनके छोटे गीत उनके अनूठे सौंदर्यबोध की मिसाल हैं। उनके जीवनकाल में उनकी 28 पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिनमें कविताएँ, नाटक और निबंध शामिल हैं. उनकी सबसे कलात्मक कविताएँ पल्लव में ही संकलित है, जो 1918 से 1925 तक लिखी गई 32 कविताओं का संग्रह है। 'प्रकृति के चितेरे कवि' के नाम से प्रसिद्ध पंत के काव्य में आत्माभिव्यंजना, सौंदर्य-चित्रण, नारी-भावना, रहस्य-भावना, दुख-वेदना की विवृत्ति तथा प्रतीकात्मक शैली की विशिष्टता ने उत्तराखंड के इस साहित्य प्रेमी को युगप्रवर्तक कवि के रूप में स्थापित कर दिया है।

वैचारिकता एवं सौन्दर्यता का संगम-मंगलेश डबराल

समकालीन हिन्दी कवियों में बहुचर्चित नाम मंगलेश डबराल का जन्म 16 मई 1948 को उत्तराखण्ड के टिहरी गढवाल के काफलपानी गाँव में हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा देहरादून में हुई। मंगलेश डबराल की कविताएँ समय, स्थान और स्मृति से स्वरूप पाती हैं। इनमें जीवन की मार्मिक अनुभूतियों से रचे गए चित्र कुछ नरमी और हल्की दबी हुई सरसराहट के साथ खुलते हैं. इनमें दु:ख की घनीभूत परिस्थितियों में जीवन की रुचिकर छवियाँ शेष हैं। इन कविताओं में स्मृतियाँ एक अमूर्त सौन्दर्य की ओर ले जाती हैं। स्मृति तथा मानवीय चेतना के गहन संवेगात्मक संबंधों की रहस्यमयता को पर्वतीय छवि के साथ प्रस्तुत करने वाली डबराल जी की कविताओं ने उन्हें बेजोड़ कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

मंगलेश डबराल के 5 काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'आवाज भी एक जगह है' और 'नये युग में शत्रु'। इसके अतिरिक्त इनके दो गद्य संग्रह 'लेखक की रोटी' और 'कवि का अकेलापन' के साथ ही एक यात्रावृत्त 'एक बार आयोवा' भी प्रकाशित हो चुके हैं।

मंगलेश डबराल लेखन कार्य में काफी सक्रिय रहे। वह अंत समय तक अपने लेखन को जारी रखे हुए थे। उनके कलम हर विषय पर चले, चाहे वह राजनीति हो, समाज हो, साहित्य हो या भाषा हो। साहित्य में काव्य लेखन में उनकी लेखनी का जोड़ नहीं था। उन्होंने नाट्य समीक्षा भी की। उनके चाहने वाले उनके यात्रा वृतांत को पढ़ने के लिए हमेशा ही लालायित रहते थे। उसे पढ़कर ऐसा लगता था कि मानो सब कुछ आँखों के सामने घटित हो रहा हो। इनकी कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं जो दिलो-दिमाग को संवेदित करती हैं। ये साधारण मनुष्य को सुख-दु:ख और संघर्ष से जुड़कर मानव हृदय में साहस का प्रसार करती हैं, जीवन से जूझने व समस्याओं से उबरने की प्रेरणा देने वाला इनका यह काव्य सदैव मददगार प्रतीत होता है। उनका सौंदर्यबोध सूक्ष्म और भाषा पारदर्शी है।

मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कुराया
वहाँ कोई कैसे रह सकता है
यह जानने में गया
और वापस न आया
(कविता-संग्रह-'पहाड़ पर लालटेन' में संकलित)

डबराल जी की कविताओं में पहाड़ों के प्रति उनकी चाहत, घर-विस्थापन के प्रति उनके विचार उनके संवेदनशील व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। उनकी कविताओं में एक झीनी-झीनी सी उदासी दूर तक पसरी हुई दिखाई देती है। कभी-कभी वह पहाड़ियों की ढलान से लुढ़कती हुई आती है, गोल-बेडौल पत्थरों के समान नहीं, नर्म रुई के फाहों की भाँति, यहाँ उसकी गति तेज नहीं है, वह उतरती हुई-सी है और जब यह उदासी पहाड़ों पर चढ़ती है तो गहरा जाती है, कहीं खोई-खोई नीली धुन्ध की तरह।

एक गहन आत्मविश्वास से भरकर
सुबह निकल पड़ता हूँ घर से
ताकि सारा दिन आश्वस्त रह सकूँ
एक आदमी से मिलते हुए मुस्कुराता हूँ
वह एकाएक देख लेता है मेरी उदासी
एक से तपाक से हाथ मिलाता हूँ
वह जान जाता है मैं भीतर से हूँ अशांत
वह कहता है तुम दुबले बीमार क्यों दिखते हो
जिन्होंने मुझे कभी घर में नहीं देखा
वे कहते हैं, अरे! आप टी० वी० पर दिखे थे एक दिन।
(कविता-अभिनय)

कवि की सम्पूर्ण स्मृतियाँ, सारा द्वंद्व, समय-समाज, आत्मसंघर्ष, पूरी वेदना, व्यक्त और अव्यक्त पीड़ा, निर्वासन और अलगाव का दु:ख, यंत्रणाएँ, प्रेम की अपूर्ण इच्छाएँ सब कुछ कविता की बारीक बुनावट में दर्ज है। लंबा समय, उससे उपजे जीवन के अनुभव, जहाँ प्यार भी थका हुआ और निरर्थक लगने लगता है। अचानक कहीं से आस के पंख लगाकर कुछ उम्मीदें फिर से निराशा को आशा की जुबां दे देती हैं। मंगलेश डबराल की कविताएँ देश और विदेश की सभी प्रमुख भाषाओं में अनूदित हुई हैं। उन्होंने देश-विदेश में कई राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कविता समारोहों में कविता-पाठ किया है। आठवें दशक के प्रमुख कवि डबराल जी ने सिनेमा, संचार माध्यमों और संस्कृति विषयों पर भी लेखन किया। उनकी कविताओं में सामंती बोध एवं पूँजीवादी छल-छद्म दोनों का प्रतिकार है। उनका प्रतिकार का ढंग शोर नहीं था अपितु वह सहजता के साथ अपनी बात को प्रकट कर देते हैं। इनकी रचनाओं की जीवंतता इन्हें विलक्षण एवं विशिष्ट बनाती है।

दोनों ही साहित्यकारों द्वारा उत्तराखंड की लोक-संस्कृति और स्थानीय लोगों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समायोजनों का निरन्तर अपनी रचनाओं में चित्रण किया गया है। भाषा की उन्नति, समृद्धि, प्रचार व प्रसार के लिए उत्तराखंडी मूल के इन दोनों साहित्यकारों का योगदान साहित्य-प्रेमियों की स्मृतियों में सदैव अमर रहेगा।

साहित्यकारों का अवदान

डॉ० स्मृति कुमारी सिंह

Assistant professor, Sophia college mumbai

गद्य के अंतर्गत अनेक विधा आती है जैसे कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, यात्रा-वृतांतआदि। हर विधा का आरंभ दुनिया के अलग-अलग कोनों में अलग-अलग समय काल में हुआ। भारतीय गद्य साहित्य का उदय भी विभिन्न समयकाल खंड में संपूर्ण भारतवर्ष के अलग-अलग राज्यों में हुआ। भारत प्राचीन काल से ही ज्ञान एवं साहित्य का उद्‌गम स्थान रहा है। विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय 'तक्षशिला' भारत में बना। बिहार की तरह भारत के अन्य सभी राज्यों ने भी साहित्य को आगे बढ़ाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, जिनमें से एक उत्तरप्रदेश भी है। उत्तरप्रदेश प्राचीनकाल से लेकर अबतक नजाने कितने ही अनमोल साहित्यकारों को जन्म दे चुका है।

'बुरा जो देखन मैं चला बुरा नमिल या कोई
जोदिल खोजा आपना मुझ से बुरा ना कोई"।[१]
पोथी पढ़ी पढ़ी जगमु आपंडित भयाना कोई ढाई
ढाई अक्षर प्रेम का पढे सो पंडित होय।[२]

ऐसे ज्ञान वर्ध कदोह`के रचयिता संतकबीर दास का जन्म उत्तरप्रदेश के लहरतारा ताला बके पाससंवत 1456 में हुआ।

"1455 साल गए चंद्रा वर एक ठाठ थे
जेठ सूती बरसात को पूर्ण मासी प्रकट भाई"।[३]

साखी, सबद, रैमनी बीजक जैसी अनमोल रचनाएं कर कबीर ने हिंदी साहित्य को वैभवशाली एवं धनी बना दिया है। कबीर के दोहे आज के समकालीन परिवेश में भी यतो संगत प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास:- सोरो, राजापुर, अयोध्या में तुलसीदास के जन्म का स्थान को लेकर मत भेद है पर इस बात में कोई मतभेद नहीं है कि विश्व प्रसिद्धग्रंथ 'रामचरितमानस' के कुछ पदों की रचना गोस्वामी तुलसीदासजी ने काशी में ही की, इतना ही नहीं उन्होंने अपनी मृत्यु भी काशी में ही ग्रहण की। गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका आदि जैसी पवित्र रचनाएं तुलसीदास जी ने हिंदी साहित्य को दी है।

सूरदास- मध्यकालीन कृष्ण भक्त जन्मांध कवि सूरदास उत्तरप्र देश की ही धरती पर प्रकट हुए। सूरदास कृष्ण के अनंत भक्तों में से एक है, जिन्होंने अपने अंधे आंखों से कृष्ण के वात्सल्य का वह अद्‌भुत वर्णन किया है जो आंख वाले कवि भीन हीं कर पाए हैं। सूरसागर, साहित्य लहरीसुर की रचनाएं साहित्य जगत में वह अनमोल धरोहर है जो हिंदी साहित्य की आनबानशान है। जिसने संपूर्ण विश्व में कृष्ण भक्ति को नया बनाया है। सुर के पद आज भी पूर्ण भक्ति से गए जात`हैं।

प्रेमचंद:- कथा सम्राट पर प्रेमचंद का जन्मस्थल उत्तरप्रदेश के लमही में हुआ जिन्होंने 300 से भी अधिक कहानियां लिखकर हिंदी कथा साहित्य को अनगिनत बेश कीमती धरोहरों से माला माल कर दिया है। मानसरोवर अपने आठ भागों में संकलित है, जिसमें एक से बढ़कर एक अनमोल कहानियां है जो न केवल शिक्षा पद है बल्कि आदर्श पर एवंय था थंपर कभी है। प्रेमचंद की रचनाओं के नाम ही काफी है हिंदी साहित्य की समृद्धि क`दर्शन कराने लिए। उनकी सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, निर्मला, गोदान, बड़े घर की बेटी, नमक का दरोगा आदि जैसी अमूल्य रचनाएं हैं।

"इतनाघीतो हमार`यहां नाई कहारिनखा जाती हैं।"[४]

जयशंकरप्रसाद:- वाराणसी निवासी सुप्रसिद्ध छायावादी साहित्यकार जयशंकरप्रसाद हिंदी साहित्य जगत का वह ध्रुवतारा है जो आज भी हिंदी साहित्य के आसमान में चमकरहा है। जयशंकरप्रसाद जी की रचनाएं ऐतिहासिक पृष्ठ पर रची गई रचनाएं होती हैं। उन्होंने पद्य और गद्य दोनों में रचनाकर अपनी एक अलग की तिंस्थापित की है। उनकी रचनाओं ने प्रसिद्धी और सफलता के नए-नए आयाम स्थापित किए हैं, जिन्हें हर साहित्यकार प्राप्त करने की हर संभव प्रयास करता है। उनकी कामना, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, पुरस्कार आदि गद्य रचनाएं सुंदर एवं स्वच्छ साहित्य का निर्माण करती है।

"ध्रुवस्वामिनी-लौटजाओ, इस तुक्ष्य नारी जीवन के लिए इतने महान उत्सर्ग की आवश्यकता नहीं चंद्रे।"[५]

महादेवीवर्मा:- छायावाद की एक मात्र महिला स्तंभ रचनाकार महादेवी वर्मा है। जिन्हें 'शक्ति' के नाम से भी पुकारा जाता है। साहित्य के लगभग सभी विधाओं पर अपनी महत्वपूर्ण लेखनी चलाकर उन्होंने हिंदी साहित्य को अमूल्य धरोहर प्रदान की है। उन्होंने अपनी नायाब रचनाओं की श्रृंखला बहुत लंबी की है। उन्होंने आज के अतीत, पथ के साथी, मेरा परिवार, श्रृंखला की कड़ियां जैसी साहित्यिकर चना एंकर के साहित्य के खजाने को अवरल रूप से समृद्ध किया है।

उषाप्रियंवदा:- कानपुर निवासिनी एवं महिला सशक्तिकरण साहित्यकार उषा प्रियंवदा किसी परिचय की मोहताजन हीं हैं। उषा जी की रचनाएं यथार्थ की धरातल पररची हुई रचनाएं हैं, जो समाज की हकीकत को दिखाता है। उन हकीकतों को अपनी विषय-वस्तु बनाकर समाज को एक नई दिशा प्रदान करने का एक सफल प्रयास किया है। उनकी जिंदगी और गुलाब के फूल, कितना बड़ा झूठ, कोई एक दूसरा, मेरी प्रिय कहानीयां, पच पन खंबेलाल दीवारें, रुको गीनही। राधिका, शेषयात्रा, अंत वर्षीय आदि जैसे रचनाएं हैं। उनकी हर एक रचना नारी सशक्तिकरण का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनकी 'वापसी' कहानी से वानिवृत्ति वृद्धो की स्थिति का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है।

"मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूंगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?
'मैं पत्नी ने सब पकाकर कहा, मैं चलूंगी तो यहां का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी फिर सयानी लड़की....." [६]

ओमप्रकाश वाल्मीकि:- दलित साहित्य के बहुत चर्चित साहित्यकार उत्तर प्रदेश की धरती से ताल्लु करखने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को आज कौन नहीं जानता है? जिन्होंन`अपनी आत्मकथा 'जूठन' के माध्यम से साहित्य जगत में तहल कामचादिया है। वाल्मीकि जी की रचनाएं दलितों के जीवन का यथार्थ और सजीव चित्रण प्रस्तुत कर उन की दशा और दिशा को उजागर करने का सफल प्रयास करती है। उनकी 'घुसपैठिए' कहानी सवर्ण और दलितों के यथार्थ जीवन को प्रस्तुत करती है।

" ....तुम लोग अपने आपको समझते क्याहो? तुम लोगों को सिर्फ बड़े-बड़े प्रमोशन चाहिए, वे भी आरक्षण के भरोसे, बच्चों को स्कूल कॉलेज में एडमिशन भी कोटे से ही चाहिए पर जब जरूरत पड़ती है तुम्हारी कॉमीनीटी को तबतुम अपना-अपना काम नहीं करते।" [७]

गीतांजलि श्री:- अंतर्राष्ट्रीय बुकर अवार्ड विजेता गीतांजलि श्री महिला सशक्तिकरण की वह मजबू तस्तंभ हैं, जिन्होंने अपनी अलगटोन के कारण महिलाओं को विश्व स्तर पर एक मजबूत पहचान दिलाई है। उनकी हमारा शहर उस बरस, अनुगूंज, वैराग्य, बेलपत्र आदि जैसी अमर रचनाएं हैं जिसने भारतीय समाज एवं स्त्रियों की वास्तविकता को संपूर्ण जगत में उजागर किया है।

"कुछ नहीं है, रिलैक्स, ओम ने झुककर देखा और दिलासादिया, गोबर है बस। फातिमा के अंदर ऐसा तेज गुस्साफूटा,' देखो, होगा गोबर तुम्हारे लिए पाक। मेरे लिए वह उतना ही घिनौना है जितना घोड़े की लीद।"[८]

निष्कर्षत:

यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य जगत में अनगिनत ऐसे अद्‌भुत और प्रति भावान साहित्यकारों का उदय हुआ है, जिन्होंने हिंदी साहित्य जगत को अद्वितीयता एवं अविस्मरणीय ताप्रदान की है। इन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी समाज में विद्यमान अनेक विषम समस्याओं पर चलाई है जो न केवल विविध विसंगतियों पर बल्कि विविधविधाओं में भी अपनी महत्वपूर्ण लेखनी चलाकर अनमोल रचनाओं से हिंदी साहित्य जगत को समृद्ध बनाया है।

सन्दर्भ:

1. https:èkèkwww.indiatv.inèkreligionèkfestivals-kabir-das-jayanti-2023-famous-and-motivational-quates-sant-kabir-ke-dohe-2023-06-04-965650
2. https:èkèkwww.indiatv.inèkreligionèkfestivals-kabir-das-jayanti-2023-famous-and-motivational-quates-sant-kabir-ke-dohe-2023-06-04-965650
३. मध्यकालीन एवं आधुनिक काव्य-हिंदी अध्ययन मंडल- मुंबई विश्विद्यालय-पृष्ठ सं-११, वाणी प्रकाशन-२०१७
४. बड़े घर की बेटी, प्रेमचंद्र, हिंदी श्रेष्ठ कहानीयां भाग-१, -पृष्ठ सं-१२, वाणी प्रकाशन-२०१७
५. ध्रुवस्वामिनी-जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं -३४, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली २०१०
६. वापसी, उषा प्रियम्वदा, हिंदी श्रेष्ठ कहानीयां भाग-१, -पृष्ठ सं-२२, वाणी प्रकाशन -२०१७
७. घुसपैठिय, ओम प्रकाश वाल्मीकि, हिंदी श्रेष्ठ कहानीयां भाग-१, -पृष्ठ सं-५७, वाणी प्रकाशन-२०१७
८. बेल पत्र, गीतांजलि श्री, प्रतिनिधि कहानियां, पृष्ठ सं -२५, राजकमलप्रकाशन-२०१०

मध्य प्रदेश के समाज सुधारकों एवं साहित्यकारों की समाज जागरण में भूमिका

डॉ० पवन कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, पी जी डी ए वी (सांध्य) महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कुमारी मीरा विश्वकर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, एम एम एच कॉलेज, गाजियाबाद

शोध सारांश

आज हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं यदि हम ऐसे में आजादी दिलाने वाले समाज सुधारकों, क्रांतिकारों और साहित्यकारों को याद न करें तो नैतिक रूप से ठीक नहीं होगा। भारत के प्रत्येक कोने से क्रांतिकारियों ने देश को आजादी दिलाने के लिए विभिन्न मार्गों का चयन किया, जिनमें हिंसक और अहिसंक मार्ग चुने गए। समाज सुधारकों में मध्य प्रदेश के कैलाश सत्यार्थी को वर्ष 2014 में "बच्चों और युवाओं के दमन के खिलाफ उनके संघर्ष और सभी बच्चों के शिक्षा के अधिकार" के लिए मलाला युसुफ जई के साथ नोबल शांति पुरुस्कार से सम्मानित किया गया। समाज सुधारकों ने इसमें अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया तो साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से सुसुप्त समाज का जागरण किया। कालिदास, भृर्तहरि, भवभूति, बाणभट्ट, केशव, पद्माकर, भूषण, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, गजानन माधव मुक्तिबोध, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, हरिशंकर परसाई इत्यादि साहित्यकारों के नाम से हम सभी परिचित हैं। 'चाह नही मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ' पुष्प की अभिलाषा कविता, बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी' झाँसी की रानी कविता, कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, विप्लव गायन, बस की यात्रा, सदाचार की ताबीज निबंध को हिंदी जगत ही नही वरन भारत के प्रत्येक व्यक्ति ने पढ़ा, सुना और समझा होगा।

उद्देश्य

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों का समाज जागरण में योगदान की भूमिका का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि

गहन अध्ययन, संबंधित साहित्य की समीक्षा एवं विश्लेषण

परिसीमन

आधुनिक काल के साहित्यकारों में से माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बाल कृष्ण शर्मा का साहित्यिक अवदान तथा समाज जागरण में भूमिका

प्रमुख शब्दः मध्य प्रदेश, साहित्यकार, माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बाल कृष्ण शर्मा, हरिशंकर परसाई

लेख का विस्तार

उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के दरबार के नौ रत्नों में से कालिदास जन्म 4वीं शताब्दी ई.पू. माना जाता है इन्हें भारत का शेक्सपियर कहा जाता है। मालविकाग्निमित्रम, मेघदूत, ऋतुसुख, रघुवंश और अभिज्ञानशाकुंतलम इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। व्याकरणिक उपनाम से विख्यात भर्तृहरि का जन्म 570 ई. पूर्व में उज्जैन में हुआ था, यह उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य के बड़े भाई और गोरखनाथ के शिष्य थे। त्रिकट-शतक, नितिशतक, श्रृंगारकष्टक और वैराग्य शतक इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। भवभूति, संस्कृत के महान कवि एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उनके नाटक, कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। 8वीं शताब्दी ई.पू. में महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित 'गोंडिया' जिले में इनका जन्म माना जाता है। यमुना नदी के किनारे 'कालपी' में नाटकों की रचना की। मालतीमाधव, महावीरचरित, उत्तर रामचरित आदि इनके प्रमुख नाटक हैं। रीतिकाल के प्रमुख कवि केशवदास का जन्म 1555 ई. में मध्यप्रदेश के 'ओरछा' में हुआ। इनकी प्रमुख रचनाएं रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, कविप्रिया, रखसिख, दंदमाला, वीरसिंहदेवचरित, विज्ञान गीता और जहांगीर चंद्रिका इत्यादि हैं। रामायण का संक्षिप्त अनुवाद 'रामचंद्रिका' में 30 खंडों में है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने केशव दास को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा है।

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बाबई गांव में माखन लाला चतुर्वेदी का जन्म हुआ। प्रभा, प्रताप ओर कर्मवीर के संपादक थे। दीप से दीप जले, साहित्य देवता, हिमतरंगिनी, युगचरण इनकी प्रमुख रचनाएँ थी। वर्ष 1955 में 'हिम तरंगिनी' के लिये उन्हें पहला साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1963 ई में उन्हें पदम भूषण से सम्मानित किया गया था। इनकी कविताओं में उदबोधन की शक्ति, राष्ट्र को ऊँचा उठाने की प्रेरणा और समाज का जागरण करने की क्षमता रखती है, माखनलालजी की राष्ट्रीय कविताओं में पुष्प अभिलाषा सिपाही, कैदी और कोकिला इत्यादि प्रमुख हैं।

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक।"[1]

माखनलाल चतुर्वेदी जी की यह कविता देशप्रेम की भावना से ओत-प्रोत है और समर्पण के भाव का उत्कृष्ट उदहारण है इसके पुष्प अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहता है कि मेरी इच्छा किसी देवबाला के आभूषणों में गूंथे जाने की नहीं है। मेरी इच्छा यह भी नहीं है कि मैं प्रेमियों को प्रसन्न करने के लिए प्रेमी द्वारा बनायी गयी माला में पिरोया जाऊँ और प्रेमिका के मन को आकर्षित करूं। हे प्रभु! न ही मेरी यह इच्छा है कि मैं बड़े-बड़े राजाओं के शवों पर चढ़कर सम्मान प्राप्त करूं। मेरी यह कामना भी हीं है कि मैं देवताओं के सिर पर चढ़कर अपने भाग्य पर अभिमान करूं। भाव यह है कि इस प्रकार के किसी भी सम्मान को पुष्प अपने लिए निरर्थक समझता है। पुष्प उपवन के माली से निवेदन करता है कि हे माली! तुम मुझे तोड़कर उस मार्ग में डाल देना, जिस मार्ग से होकर अनेक राष्ट्र-भक्त वीर, मातृभूमि पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए जा रहे हों। फूल उन वीरों की चरण- का स्पर्श पाकर भी अपने को धन्य मानेगा; क्योंकि उनके चरणों पर चढ़ना ही देश के बलिदानी वीरों के लिए उसकी सच्ची श्रद्धांजलि है।

"क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों? ये ब्रिटिश राज का गहना।
कोल्हू का चर्रक चूं जीवन की तान।
गिट्टी पर अंगुलियों ने लिखे गान!
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूआ
दिन में करुणा क्यों जगे, रुलानेवाली
इसलिए रात में गजब ढ़ा रही आली?"[2]

क्रांति का बिगुल बजाने वाले साहित्यकारों में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात कवि को अपनी रचनाओं के कारण जेल की अनेक यात्रायें करनी पड़ी, जेल में कैदी के जीवन पर जेल के असर का चित्रण करते हुए वे 'कैदी और कोकिला' नामक कविता में उसकी पीड़ा का उल्लेख करते है कि बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ ही कैदी का गहना बन जाती हैं। कोल्हू चलने से जो चर्र चूँ की आवाज आती है वही कैदी का जीवन गान बन जाती है। कोल्हू के डंडे पर कैदियों की अंगुलियों के निशान इस तरह पड़ गये हैं जैसे उस पर गाने उकेर दिये गये हों। कवि को लगता है कि जुआ खींच कर वह अंग्रेजों की अकड़ का कुआँ साफ कर रहा है। दिन में शायद करुणा को जागने का समय नहीं मिल पाया होगा, इसलिए रात में वह कोयल के रूप में कैदियों का ढ़ाढ़स बंधाने आई है।

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म प्रयागराज, उत्तरप्रदेश में हुआ तथा विवाह होने के पश्चात यह जबलपुर, मध्य प्रदेश आ गयी थीं अत: हम मध्य प्रदेश के साहित्यकारों में इनकी गणना कर सकते हैं। वीरों का कैसा हो बसंत, राखी की चुनौती और विदा, झांसी की रानी, इनकी प्रमुख कवितायें हैं जो देशप्रेम से प्रेरित है। भारतीय युवाओं ने इनकी रचनाओं को पढ़कर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया।

"कानपुर के नाना की मुँहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,
वीर शिवाजी की गाथाएँ
उसको याद जबानी थीं।
बुंदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।"[3]

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवंबर 1917 को मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले में हुआ था। बालकृष्ण शर्मा नवीन का जन्म 8 दिसंबर 1897 को मध्यप्रदेश के शाजापुर जिले में हुआ था। हरिशंकर परसाई का जन्म 22 अगस्त 1924 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद में हुआ। दो नाक वाले लोग, एक पागलों का मिशन, क्रांतिकारी की कथा, पवित्रता का दौरा, पुलिस-मंत्री का पुतला, नया साल, घायल बंसत, भोलाराम की जीव और संस्कृति आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। शरद जोशी का जन्म 21 मई 1931 को मध्यप्रदेश के उज्जैन में हुआ। अथा श्री गणेशय नमः, बिल्लियों का अर्थशास्त्र, बुद्धिजीवी, साहित्य का महावली, अध्यक्ष महोदय इनके प्रमुख निबंध तथा एक था गधा एवं अंधों का हाथी प्रसिद्ध नाटक हैं। बालकृष्ण शर्मा नवीन की कविता विप्लव गायन क्रांति के लिए प्रेरित करने वाला है-

"कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए!
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाए;
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जाएँ;
पाप पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दाएँ-बाएँ,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाएँ;
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए!"[4]

उपसंहार

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य समाज को दिशा प्रदान करता है, प्रेरित करता है और पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। साहित्यकारों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दिया। जनमानस में चेतना उत्पन्न करने का काम किया और वास्तविक स्थितियों में अवगत कराया। क्रांति के बीज बोने का कार्य साहित्यकारों ने किया। भयभीत अंग्रेजी सरकार ने महान कथाकार प्रेमचंद की रचना 'सोजे वतन' एवं वीर सावरकर की पुस्तक 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' इत्यादि पुस्तकों को जब्त करके जला दिया गया, परन्तु देशप्रेम की ज्वाला नहीं बुझी और इनका पुनः मुद्रण किया गया तथा मशाल जलती रही। प्रेमचंद के उपन्यास 'वरदान' में जो कि सन 1912 में प्रकाशित हुआ था उसकी प्रमुख पात्र सुवामा पूजा करते हुए देवी से एक ऐसा सपूत बेटा माँगती है, जो देश का उद्धार करे। प्रेमचंद के एक उपन्यास 'सेवासदन' में राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े एक प्रमुख पक्ष अंग्रेजी भाषा के दासत्व का उल्लेख मिलता है-

"यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान हो, कितने ही बुद्धिमान हो, कितने ही विचारशील हों, पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कोई मूल्य नहीं। हमसे अधम और कौन होगा, जो इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं।"[5]

प्रेमचंद का देशप्रेम नाम से एक लेख डॉ. कमल किशोर गोयनका जी ने लिखा कि-

"अब हिंदुस्तान के कौमी विचार ने बुद्धिमता की सीढ़ी पर एक कदम और बढाया है और देशप्रेम की भावनाएँ लोगो के दिलों में उभरने लगी हैं।....हमारे देश को ऐसी किताबों की सख्त जरुरत है, जो नई नस्ल के जिगर पर देश प्रेम की महिमा का नशा जमाये।"[6]

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों एवं समाज सुधारकों में भारत रत्न अटल बिहारी बाजपेयी के नाम को विस्मृत नहीं किया जा सकता, वह हमारे देश दसवें प्रधानमंत्री होने के साथ एक राष्ट्रीय विचारक एवं साहित्यकार थे। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, हरिशंकर परसाई, गजानन माधव मुक्तिबोध, शरद जोशी, भवानी प्रसाद मिश्र, शिवमंगल सुमन इत्यादि की रचनायें राष्ट्रप्रेम की भावना जगाने वाली तथा उदात्त जीवन मूल्यों को संरक्षित रखने वाली हैं। गद्य और पद्य की विधाओं में माध्यम से देश प्रेम से ओत-प्रोत रचनओं का सृजन हुआ। साहित्यकारों ने लेखनी के माध्यम से समाज जागरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

संदर्भ ग्रंथ

1. नई हिंदी भारती, आठवीं कक्षा, पुष्प की अभिलाषा- माखन लाल चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या 3, शिक्षक शिक्षा निदेशालय तथा राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, ओडिशा, भुवनेश्वर, प्रथम संस्करण 2019
2. क्षितिज, भाग-1, नौवीं कक्षा, कैदी और कोकिला-माखन लाल चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या 108, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, संस्करण 2019
3. बसंत, भाग 3, सातवीं कक्षा, झाँसी की रानी-सुभद्रा कुमार चौहान, पृष्ठ संख्या 55, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, संस्करण 2023
4. बसंत, भाग 1, छठी कक्षा, विप्लव गायन- बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृष्ठ संख्या 141, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, संस्करण 2022
5. गोयनका, कमल किशोर, मधुमती, प्रेमचंद का देशप्रेम, राजस्थान साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या 8, उदयपुर, 2006
6. गोयनका, डॉ. कमल किशोर, मधुमती, प्रेमचंद का देशप्रेम, राजस्थान साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या 7-8, उदयपुर, 2006

डॉ० नगेंद्र का हिंदी साहित्य में योगदान

ऋचा राघव

शोधार्थी, हिंदी विभाग, एम.एल.एण्ड जे.एन.के.कन्या, महाविद्यालय, सहारनपुर

शोध सारांश

डॉक्टर नगेंद्र हिंदी साहित्य के एक प्रसिद्ध प्रतिभाशाली व्यक्तित्व है। डॉ नगेंद्र हमारे समक्ष एक बहुआयामी व्यक्तित्व वाली छवि को लेकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। डॉ०नगेंद्र ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत प्रारंभ में काव्य के माध्यम से की। इन्होंने अपने साहित्य में समाज में व्याप्त बुराइयों और विसंगतियों को सभी के समक्ष स्पष्ट रूप से उजागर किया। डॉ० नगेंद्र का साहित्यिक योगदान विविधताओं से भरा हुआ है। इन्होंने गद्य साहित्य को एक नए आयाम पर पहुँचाया। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में भी डॉ० नगेंद्र एक प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। डॉ० नगेंद्र को उनकी साहित्यिक साधना के लिए सदैव सम्मान के साथ याद रखा जाएगा।

बीज शब्द- प्रतिभाशाली, बहुआयामी व्यक्तित्व, गद्य साहित्य, विविधताओं, आयाम, साहित्यिक साधना

भारत के सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार डॉ. नगेंद्र का भारतीय हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में डॉ. नगेन्द्र ने अथक परिश्रम किया जिसके परिणामस्वरुप हिंदी साहित्य का वर्तमान स्वरूप सामने आ सका। वे काव्य शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे। उनके साहित्य में वैचारिक औदात्य के साथ-साथ उनका व्यक्तित्व भी अभिव्यक्ति पा गया है। उनके निबन्धों में एक सहृदय तथा भावुक निबन्धकार के गुण भली-भाँति लक्षित होते हैं। इसका कारण यह है कि नगेन्द्र जी का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण एक कवि के रूप में हुआ था। उनकी प्रतिभा का विकास मूलत: आलोचनात्मक निबन्धकार के रूप में ही हुआ। हिन्दी के प्रमुख आलोचक के रूप में नगेन्द्र सदैव यशस्वी रहे हैं।

नगेन्द्र जी ने अपनी लेखनी के द्वारा हिन्दी निबन्ध साहित्य की गरिमा को अद्वितीय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित की। उनके द्वारा रचित 'मेरा व्यवसाय' और 'साहित्य सृजन' नामक निबन्ध लेखक की आत्मपरक शैली का प्रतीक है। डॉ. नगेन्द्र के निबन्धों की भाषा शुद्ध, परिष्कृत, परिमार्जित, व्याकरण सम्मत तथा साहित्यिक खड़ी बोली है। गद्य भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि वह विषयानुरूप व्यवहार करती चलती है।

डॉ. नगेन्द्र की निबन्ध लेखन की शैली में भावों एवं विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता लक्षित होती है। नगेन्द्र जी सामान्यत: गम्भीर तथा चिन्तन-प्रधान निबन्धकार के रूप में जाने जाते हैं। साहित्यिक आलोचनात्मक निबन्ध लेखन के आधार पर उन्होंने साहित्य की प्रचुर सेवाएँ की हैं। उनके निबन्धों में विचारों की गंभीरता, चिन्तन की मौलिकता तथा शैली की रोचकता को सहज रूप में प्रदर्शित किया गया है। वे एक ओर अपने लेखन में चिंतन प्रधान व्यवहार करते हैं तो वहीं दूसरी ओर भावों को भी सरलता से प्रदर्शित करते हुए आगे बढ़ते हैं। उनके साहित्य में विचारों और भावों की तारतम्यता साथ-साथ चलती है जिससे भाषा सहज एवं प्रभावशील बनी रहती है। भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों ने काव्य-बोध के संबंध में अलग-अलग पद्धतियाँ अपनाई हैं। भारतीय आचार्यों ने काव्य-चर्चा करते समय सहृदय को विवेचन का केंद्रीय विषय माना है तो पाश्चात्य आचार्यों ने कवि को केंद्रीय विषय मानकर सृजन-प्रक्रिया की व्याख्या की है। ये दोनों दृष्टियाँ एक दूसरे की पूरक हैं, अपने आप में प्रत्येक एकांगी ही रह जाती हैं। नगेंद्र ने इन दोनों पद्धतियों के समन्वय का प्रयास किया है।[1]

डॉ. नगेन्द्र की लेखन की शैली में भावों एवं विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता लक्षित होती है। उनकी लेखन शैली पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके पीछे प्रमुख कारण यह है कि उनका रुझान अंग्रेजी साहित्य की ओर प्रारंभ से रहा और उसी से प्रेरित होकर हिन्दी साहित्य की साधना के मार्ग पर चले। हिंदी की ओर उनका रुझान होने के पीछे प्रोफेसर प्रकाश चंद्रगुप्त और बाबू गुलाब राय उनके प्रेरणा स्रोत रहे इन दोनों विद्वानों में पाश्चात्य साहित्य की भी मान्यताएँ परिलक्षित होती हैं। डॉ० नगेंद्र का साहित्यिक सौंदर्य जो अंग्रेजी साहित्य आचार्यों के छत्रछाया में पल्लवित हो रहा था, वह हिंदी साहित्य के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। भारतीय साहित्य चिंतकों की ओर इनका ध्यान कुछ समय पश्चात ही गया। इनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव आचार्य रामचंद्र शुक्ल का रहा इसके संबंध में वे स्वयं लिखते हैं "आरंभ में ही आचार्य शुक्ल के प्रभाववश मेरे मन में भारतीय रस सिद्धांत के प्रति गहरी आस्था हो गई थी। शुक्ल जी का मेरे मन पर विचित्र आतंक और प्रभाव रहा। मेरे अपने संस्कार शुक्ल जी के संस्कारों से सर्वथा भिन्न थे। मेरा साहित्यिक संस्कार छायावादी युग में हुआ था। शुक्ल जी सुधार युग की विभूति थे।"[2]

उनके 'निबन्ध साहित्य' ने हिंदी साहित्य को अनेक शैलियों का स्वरूप पुरस्कार के रूप में दिया। डॉक्टर नगेंद्र की भाषा मूलत: एक शास्त्रबद्ध आलोचक की भाषा है, उनकी भाषा विषय अनुकूल अपना स्वरूप बदलती रहती है। डॉ नगेंद्र ने अनेक भाषाओं जैसे संस्कृति और अंग्रेजी की शब्दावलियों को बहुतायत से ग्रहण किया है किंतु उन्होंने यथासंभव उसे हिंदी की प्रकृति के अनुकूल परिवर्तित भी कर लिया है। डॉ०नगेंद्र की भाषा के मुख्यत: तीन रूप प्रदर्शित होते हैं एक तो उनके विचार विश्लेषण और व्याख्या की भाषा, यह संयत, नपी-तुली संस्कृतवद्ध और एक सीमा तक परिमार्जित होती है। दूसरी उनकी रचनात्मक कृतियों की भाषा है। यह कहीं अधिक सहज रागनिष्ठ, चित्रमयी, प्रभावपूर्ण और वर्ण सापेक्ष होती है। अंतिम और तीसरी वह भाषा है जो नाटकीय संदर्भ में

अन्य पात्रों के साथ मानसिक तादात्म्य स्थापित करने के चरणों में विविध पात्रों के व्यक्तित्व का बोध कराने के लिए प्रयुक्त हुई है। डॉ० नगेंद्र अपनी भाषा को पात्रों के अनुकूल बनाते हुए प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा में विचारों की गंभीरता और भावों की सहजता परिलक्षित होती है। आधुनिक हिंदी साहित्य के मूल्यांकन के लिए जो विस्तृत व्यापक और सौम्य दृष्टि की आवश्यकता थी। डॉ० नगेंद्र ने उसका विकास अपने विभिन्न प्रेरणा सूत्रों के संगठन और व्यापक अध्ययन से उपलब्ध मूल्य निर्धारक उपादानों के संयोजन के माध्यम से किया। डॉ नगेंद्र की यह विशेषता रही कि वह जिसका भी प्रभाव ग्रहण करते हैं, उसकी विचारों को भी जैसे का तैसा स्वीकार नहीं करते अपितु अपने विवेक की कसौटी पर परख कर उपयुक्त एवं ग्रहणशील तत्वों को आत्मसात कर लेते हैं और असंगत, अमान्य और अनुचित तथ्यों का तर्कपूर्ण विरोध करते हैं।

डॉ नगेंद्र ने हिंदी साहित्य हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक साहित्य को एक नए शिखर पर स्थापित किया। जयचंद राय लिखते हैं "हिंदी आलोचना और मानव मूल्य की रूपरेखा लक्षण ग्रन्थों में निहित जीवन मूल्यों और अंतर दृष्टि से अनुशासित रहती आई है और श्रेष्ठ साहित्यकारों के काव्यदर्शन को आलोचकों ने कसौटी के रूप में ग्रहण करने का बराबर उद्योग किया है।"[3] हिंदी आलोचना में न केवल साहित्यकारों ने अपने विचारों को स्पष्ट ही नहीं किया वरन् समग्र मूल्यांकन की दृष्टि से भी चिंतन करते हुए अपने विचार प्रस्तुत किए जिससे आलोचना का स्वरूप बोझिल हुआ नहीं दिखाई देता है। वह एक सुचारू रूप से चलता हुआ दिखाई देता है। डॉ० नगेंद्र ने भी अपनी आलोचनात्मक दृष्टि को कई बिंदुओं पर आश्रित करते हुए प्रस्तुत किया। डॉ० नगेंद्र की आलोचना पद्धति में एक कला मर्मज्ञ अध्यापक की स्पष्टता के साथ ही एक सहृदय संवेदनशील रसग्राही पाठक का रागात्मक संस्कार भी लक्षित होता है।[4]

डॉ० नगेंद्र का मानना है की आत्म अभिव्यक्ति के बिना कोई भी व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य नहीं बन सकती। विचार और चिंतन करने के बाद ही संसार में दो तत्वों का अस्तित्व दिखाई पड़ता है। वे तत्व है- आत्म और अनात्म डॉ० नगेंद्र ने इन्हीं दोनों तत्वों का समावेश अपनी चिंतन के द्वारा प्रस्तुत किया। डॉ नगेंद्र के शब्दों में- आत्माभिव्यक्ति ही वह मूल तत्व है, जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य बन पाती है।[5]

डॉ नगेंद्र ने हिंदी साहित्य में अपनी इतिहास दृष्टि को भी एक अलग ढंग से प्रस्तुत किया। उनकी मान्यता थी कि साहित्य की अपनी स्वतंत्रता है।साहित्य का इतिहास सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास का केवल अंग ही नहीं होता है क्योंकि साहित्य की मूलभूत सौंदर्य चेतना सामाजिक सांस्कृतिक चेतना का अंग न होकर उसका नवनीत या सुगंध होती है, जिसका विकास युगीन परिस्थितियों के परिवेश में होने पर भी अपने आंतरिक नियमों से अनुशासित रहता है।[6]

भूमंडलीकरण के इस विशाल दौर में व्यक्ति निरंतर प्रगति के नए अध्याय लिखता चला जा रहा है किंतु इस प्रगति में उससे पीछे छूट रहा है, उसका वह संसार जो उसे अपनी भूमि के जड़ों के साथ जोड़ता था। डॉ०नगेंद्र ने अपनी आलोचना के माध्यम से समाज को इन्हीं संदर्भों के आधार पर आइना दिखाने का प्रयास किया है। डॉक्टर नगेंद्र साहित्य को अपने मूल रूप में सामाजिक या सामूहिक चेतना नहीं मानते वह तो उसे व्यक्ति चेतना ही कहते है।मनुष्य को इन्होंने पहले व्यक्ति माना है, पीछे समाज की इकाई और उसका पहला रूप ही मौलिक है। सबसे बड़ी आपत्ति प्रगतिवाद के मूल्य से ही है। वह साहित्य और प्रगतिवाद का सीधा संबंध स्थापित करते हुए उसे रोटी-पानी या जीवन के लिए सामाजिक प्रश्नों को हल्का सीधा साधन मानकर बहुत ही सस्ता बना देता है।एक और आक्षेप जो प्रकृतिवाद के मूल सिद्धांत पर किया जा सकता है, यह है कि इसका स्वरूप मूलतः वैज्ञानिक होने के कारण बौद्धिक एवं आलोचनात्मक है। अतएव स्वभाव से ही उसमें वह तन्मयता या आत्मविसर्जन नहीं है, जो काव्य के लिए अनिवार्य है। अंत में कहा जा सकता है कि डॉ० नगेंद्र का साहित्यिक योगदान अविस्मरणीय रहा है। डॉ० नगेंद्र ने अपनी साहित्यिक साधन के द्वारा हिंदी साहित्य को नए आयाम प्रदान किए हैं, जिसके लिए उन्हें हमेशा सम्मान के साथ याद किया जाता रहेगा।

संदर्भ सूची

1- धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश भाग-२., भारत: ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, उ.प्र. पृ.सं. 282-283

2- डॉ० नगेंद्र: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ० रणवीर रांगा पृ.सं.21

3- डॉ०जयचंद राय 'हिंदी आलोचना के आधार स्तंभ', लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ.सं.78

4- डॉ० रामचन्द्र तिवारी 'हिंदी का गद्य साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृ.सं.1040

5- डॉ० नगेंद्र 'भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा' ,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1953,पृ.सं.512

6- धर्मयुग, 7जनवरी 1968, पृ.सं.18

उत्तराखण्ड के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में योगदान

डॉ० विजय लक्ष्मी

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, श्रीराम सिंह धौनी राजकीय महाविद्यालय, जैंती (अल्मोडा)

उत्तराखंड भारत का एक उत्तरी राज्य है, जिसे 'देवताओं की भूमि' अथवा 'देवभूमि' भी कहा जाता है जो कि अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए जाना जाता है। ऊंची ऊंची पहाड़ियों, हरित वनों और धार्मिक स्थलों तथा प्राचीन नदियों सहित इसकी भौगोलिक विशेषताओं ने सदियों से जन-जन को आकर्षित किया है। उत्तराखंड का योगदान भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के लिए महत्वपूर्ण है। इसी देवभूमि में अनेक महान हिंदी साहित्यकार हुए जिन्होंने अपनी कलम से उत्तराखंड की छवि को अनोखे अथवा अलग रूप में प्रस्तुत किया तथा हिंदी भाषा व हिंदी साहित्य के स्वरूप को समृद्धशाली बनाने का कार्य किया जिनमें लोकरत्न पंत 'गुमानी', मंगलेश डबराल, चन्द्रकुँवर बर्तवाल, लीलाधर जगूड़ी, वीरेन डंगवाल, हरीशचन्द्र पाण्डेय, शैलेश मटियानी आदि साहित्यकारों ने अपने लेखन के माध्यम से हिंदी साहित्य में अलग पहचान बनाते हुए हिंदी साहित्य की महती सेवा की तथा हिंदी साहित्य की अविरल धारा को गति प्रदान करते हुए निरंतर साहित्य साधना में लीन रहे।

कवि 'गुमानी' का जन्म का जन्म 27 घंटे चौत्र मास विक्रम संवत 1847 (1791 ई) में कुमाऊं की तराई के काशीपुर नामक स्थान पर हुआ। 24 वर्ष की अवस्था तक कवि गुमानी ने विद्या अध्ययन तथा उसके बाद 12 वर्ष तक देशाटन करने के पश्चात ग्रस्त आश्रम में प्रवेश किया। इनके द्वारा सर्वाधिक ग्रंथों की रचना की गई जिनमें सबसे अधिक रचनाएं संस्कृत भाषा में है। इस विषय में पंडित देवीदत्त पांडे ने लिखा है कि[1] "यदि उनके लिखे हुए सर्वखर्रे मिल सकते, तो उनकी समस्त कविता एक लक्ष्य पद से कम ना होती।"

कवि 'गुमानी' के जीवन काल में उत्तराखंड में तीन अलग-अलग राज्य व्यवस्थाओं का शासन रहा। उनके जन्म के समय 1790 ईस्वी में यहां चंदराजाओं का शासन था। उसी कालावधि में चंदों को पराजित करके गोरखा राजाओं ने सत्ता सँभाली। 1815 ईस्वी में ईस्ट इंडिया कंपनी का राज शुरू हुआ।[2] "कवि 'गुमानी' ने लोकभाषा, विशेषताएं कुमाऊनी काव्य में, गोरखा शासको के अत्याचारों पर प्रहार किए हैं। वे अपनी रचनाओं में कहते हैं कि विदेशी अंग्रेज भारतवर्ष पर राज कर रहे हैं शिक्षा की रीति और उद्देश्य बदल गए हैं पैसे का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है जिससे रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार तेजी से बढ़ रहे हैं तथा प्राचीन परंपराएं टूट रही है।"[2]

उत्तराखंड के ही प्रसिद्ध कवि लीलाधरजगूड़ी का जन्म 1 जुलाई 1944 कोटिहरी के धंगण गांव में हुआ था। उनकी माता का नाम श्रीमती शाकंबरी तथा पिता का नाम श्री कमला प्रसाद जगूड़ी था। अपने जीवन में अनेक अभावों से गुजरते हुए जगूड़ी जी ने अपनी शिक्षा पूरी की तथा हिंदी साहित्य जगत में सन 1964 ईस्वी में 'शंखमुखी शिखरों पर' प्रथम काव्य संग्रह से अपनी पहचान बनाई। उनकी रचनाओं में मनुष्य के संघर्षों का यथार्थ, उसकी जटिलताओं एवं बारीकियों की प्रधानता है। उनकी रचना 'अनुभव के आकाश में चांद' में जगूड़ी जी ने चांद के बहाने समाज के अनेक यथार्थ अनुभवों को प्रकट किया है।

उत्तराखंड राज्य के जनपद बागेश्वर में 1950 मीटर की ऊंचाई पर कौसानी अपनी प्राकृतिक सौंदर्य के कारण पर्यटक पर्यटकों का प्रिय स्थल रहा है। इसके अद्भुत सौंदर्य के कारण ही प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में पर्यटक यहां घूमने आते हैं औरतों और सूर्य उदय के होने पर स्वर्णिम छठासे सराबोर होने वाली हिमालय श्रृंखला का मनोहारी दृश्य देखते हैं

प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाने वालेछायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार हैं जिनका जन्म उत्तराखंड के बागेश्वर जिले के कौसानी गांव में 20 मई 1900 को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गंगा दत्त एवं माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। जन्म के कुछ घंटे पश्चात ही उनकी माता का देहांत हो गया। इसके बाद उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। बचपन में उनका नाम गोसाई दत्त था। वह अपने सभी भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा कौसानी के एक स्कूल में हुई थी। जब वह स्नातक कर रहे थे, उस समय वर्ष 1921 में महात्मा गांधी के द्वारा शुरू किए गए असहयोग आंदोलन में हजारों लोगों ने सरकारी स्कूलों, विश्वविद्यालयों, कार्यालयों में विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार किया। सुमित्रानंदन पंत ने भी इस आंदोलन में सक्रिय रहने के लिए अपना कॉलेज छोड़ दिया तथा बाद में वह हिंदी, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी भाषा साहित्य का अध्ययन घर पर करने लगे। पंत जी ने नियमित रूप से कविताएं लिखने का कार्य अपनी किशोरावस्था से ही प्रारंभ कर दिया था। उनकी कविताएं उस समय के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्रता शिक्षा और समाज में उनकी भूमिका को दर्शाने वाली हैं। हिंदी साहित्य में उनका महान एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से वे प्रकृति प्रेम और भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास करते हैं। उनका रचनाकाल 1916 से 1977 तक रहा। अनेकों सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों में पंत जी बढ़-चढ़कर कर हिस्सा लेते। पंत जी ने अपने जीवन में हिंदी साहित्य के लिए लगभग 60 वर्षों तक की निरंतर सेवा की। पंत जी का जीवन काफी संघर्षों से गुजरा। इस दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका को सुनिश्चित करने का प्रयास किया। उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है तो वह काव्य साधना ही है। इस बात को उन्होंने बहुत अच्छे से समझ लिया था।

3-प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत की काव्य प्रेरणा का स्रोत भी प्रकृति ही रही है स्वयं कवि के शब्दों में-"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था तो वह दृश्यपट मेरी आँखों के सामने घूमा करता था.....और यह शायद पर्वत प्रांत के वातावरण का ही प्रभाव है कि मेरे विश्व और जीवन के प्रति गम्भीर आश्चर्य की भावना, पर्वत की तरह निश्चल रूप में अवस्थित है।"[3]

उत्तराखंड राज्य के कौसानी में महाकवि पंत की जन्मस्थली को सरकारी तौर पर अधिग्रहित कर उनके नाम पर एक राजकीय संग्रहालय बनाया गया है। संग्रहालय में महाकाव्य द्वारा उपयोग में लाई गई दैनिक वस्तुओं में यथा- शॉल, दीपक, पुस्तकों की अलमारी तथा महाकवि को समर्पित कुछ सम्मान पत्र, पुस्तकें तथा हस्तलिपि सुरक्षित हैं। जिसकी देखरेख एक स्थानीय व्यक्ति करता है। इस स्थल के प्रवेश द्वार से लगे भवन की छत पर महाकवि की मूर्ति स्थापित है। वर्ष 1990 में स्थापित इस मूर्ति का अनावरण साहित्यकार तथा इतिहासकार पंडित नित्यानंद मिश्रा द्वारा उनके जन्मदिवस 20 मई को किया गया था। महाकवि सुमित्रानंदन पंत का पैतृक ग्राम यहां से कुछ ही दूरी पर है।

4-पंत की काव्य चेतना का प्रकाशन सर्वप्रथम वीणा के सरस, मृदुल, कोमल स्वरों में हुआ है। इसके अधिकांश गीतों में प्रकृति-रानी के ही वैभव का गुणगान हुआ है। कई स्थानों पर उसने प्रकृति को अपनी अध्यापिका मानकर उससे विभिन्न समस्याओं का समाधान माँगा है। प्रकृति के रूप-वैभव और ज्ञान-वैभव की तरंगों में कवि की आत्मा डूब कर लीन हो जाना चाहती है, जिससे कि वह भी प्रकृति-जैसा दिव्य स्वरूप प्राप्त कर सके। 'मानव' जी के शब्दों में- "छाया से वह प्रार्थना करता है कि वह उसका मन्सताप हरे, अंधकार से कहता है कि वह उसे रंग-सहित होकर जीवन व्यतीत करना सिखलावे, सरिता से चाहता है कि वह भी उसी के समान गीत गा सके, निर्झर को देखकर उसकी कामना होती है कि वह भी उसी के जैसा आँसुओं का दान दे सके। "वस्तुत वीणा में कवि की प्रकृति के प्रति जिज्ञासा आश्चर्य-भावना और लालसा व्यक्त हुई है।[4]

हिंदी साहित्य में कवि सुमित्रानंदन पंत ने सभी दार्शनिक विचारों को अपनी कोमल कल्पना एवं सुकुमार अभिव्यंजना पद्धति के द्वारा इस प्रकार प्रकट किया है कि हिंदी साहित्य पंत जैसा कवि शिल्पी पाकर धन्य हो गया है। इसी कारण कविवरपंत इस युग के एक प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

डॉ० मंगलेश डबराल ने संवेदन शून्य होते जा रहे समाज तथा निरर्थक होती जा रही भाषा दोनों में संवेदना का संचार किया है। उनकी कविताओं में समकालीन समाज के कटु अनुभवों को सहती हुई मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविताएं आज की मनुष्य विरोधी और प्रकृति विरोधी व्यावसायिक प्रवृत्ति तथा नैतिकता रहित राजनीति के कुछ चक्र में विलुप्त होती जा रही है। उनकी कविताएं क्रूर और संवेदनहीन व्यवस्थाओं के बीच कहीं खोती सी जा रही मनुष्यता की बात करती हैं तथा वर्तमान के भाव और भाव के कर्म का सीधा विश्लेषण करती हुई इस संपूर्ण विसंगत तंत्र के विरोध का विमर्श प्रस्तुत करती हैं।

उत्तराखंड के प्रमुख कहानीकार व उपन्यासकार शैलेश मटियानी ने आंचलिक कथा साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। मात्र 21 वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने कविताएं व कहानी लिखना शुरू कर दिया था।

हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार व उपन्यासकार हिमांशु जोशी का जन्म चंपावत जिले में 4 मई 1935 को हुआ था। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक ऊँच-नीच, जाति-पाति पर गहरा प्रहार किया तथा अपनी साहित्यिक रचनाओं से समाज को संबल प्रदान किया। कल्पना और यथार्थ का चित्रण उनकी रचनाओं में झलकता है। हिमांशु जोशी ने अपने साहित्य में सामाजिक समस्याओं को उठाने के साथ-साथ उनके निराकरण पर भी बल दिया

हिमालय और प्रकृति को लेकर सुमित्रानंदन पंत और निराला ने भी कविताएं लिखी है, लेकिन चंद्र कुंवर बर्तवाल ने हिमालय को जिया है। वह हिमालय में ही जन्मे और पालन पोषण भी हुआ। इसलिए उनकी कविताओं में हिमालय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। स्वयं कवि के शब्दों में-[5] "मेरे काव्य का नायक हिमालय है। हिमालय के नायक कालिदास थे इसलिए मैं कालिदास को अपना आराध्या मानता हूं।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उत्तराखंड के साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। अपनी लेखनी के माध्यम से इन साहित्यकारों ने समाज के हर एक पहलू का यथार्थ चित्रण करके व्यक्ति विशेष को सच्चाई से अवगत कराया तथा हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अपना विशेष योगदान भी दिया। कठिन पहाड़ी जीवन तथा दुर्गम रास्ते, आपदाओ-जटिलताओं के कारण बहुत सी सुविधाओं और अवसरों से दूर रह जाने पर भी निरंतर अपनी लेखनी को चलाए रखना, इनकी लगन और मेहनत का ही परिणाम है, जिससे आज साहित्य जगत को नई पहचान मिल पाई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची--

1- उत्तराखण्ड के हिंदी कवि संपादक- डॉ०दिवा भट्ट, भूमिका, पृष्ठ सं०-09

2- वही पृष्ठ सं०-09

3- साहित्यिक निबन्ध- डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त,पन्त का प्रकृति-चित्रण पृष्ठसं०-740-741

4- वही, पृष्ठसं०740-741

5- चन्द्रकुँवरबर्तबाल-From hindi-news18-com

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

डॉ० नाजमा हाशमी

समकालीन महिला उपन्यासकारों में प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में नासिरा शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नासिरा शर्मा को मुस्लिम- हिंदू संस्कृतियों का अच्छा अनुभव है, साथ ही दोनों धर्म की स्त्रियों की संवेदनाओं की गहरी अनुभूत भी है। नासिरा शर्मा अपने समाज में व्याप्त महिला जीवन की तमाम समस्याओं को अपने उपन्यासों में उठती हुई स्त्री पुरुष संबंधों की गहराई से पड़ताल भी करती हैं। जहां आधुनिकतावादी दौर में तमाम बदलाव हो रहे हैं वहीं नारी की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक स्थिति में कोई संतोषजनक बदलाव नहीं हुआ है। उनके उपन्यास मध्यम वर्ग के उस नारी के हैं जो नारी त्रासदी एवं विकृत मनोवृतियों व मानसिकताओं के बीच जीती है। उनके उपन्यास में संवेदना का इतना मार्मिक चित्रण है कि पाठक वर्ग उपन्यासों के पत्रों में स्वयं की झलक देखने लगते हैं।

नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों में केवल स्त्री समस्याओं का उल्लेख ही नहीं करती अपितु उसका समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। उनके उपन्यासों का फलक बहुत व्यापक है जिसमें नए पुराने रिश्तों की दास्तां भी है और विलुप्त होती मानवीय संवेदनाओं को भी उकेरा गया है। उनके उपन्यासों में भारतीय पृष्ठभूमि तो है ही साथ ही वैश्विक पृष्ठभूमि के संवेदनाओं को व्यक्त किया गया है।

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय 'सात नदियां एक समंदर' ईरान की क्रांति पर लिखा गया उपन्यास है जिसमें नासिरा शर्मा ने ईरान की क्रांति के दौरान होने वाले नरसंहार की गाथा को बड़ी संजीदगी से व्यक्त किया है। ईरानी क्रांति से जुड़े कड़वे यथार्थ को नासिरा शर्मा ने बारीकी से उकेरा है। 'शाल्मती' इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने दाम्पत्य जीवन में समस्या उत्पन्न कर रहे पुरुषों की रूढ़िवादी मानसिकता का चित्रण किया है। साथ ही परंपरा और आधुनिकता के बीच तालमेल बिठाती आधुनिक नारी का चित्रण किया है। ठीकरे की मंगनी इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने महरूख के माध्यम से मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति और परंपरावादी रूढ़िग्रस्त माहौल से आजाद होने के संघर्षों को चित्रित किया है। जिंदा मुहावरे नासिरा शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में भारत के विभाजन की त्रासदी को आधार बनाया गया है। धर्म के नाम पर हो रही हत्याओं और मूर्छित मानवीय संवेदनाओं का वीभत्स चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। अक्षय वट इस उपन्यास में नासिरा शर्मा की इलाहाबाद से जुड़ी स्मृतियों का वर्णन है। इलाहाबाद की अबो हवा से लेखिका बहुत प्रभावित है। 20 वर्षों में इलाहाबाद में जो बदलाव आए हैं उनको लेखिका ने बारीकी से चित्रित किया है। कुंइयांजान इस उपन्यास में पानी की ज्वलंत समस्या को व्यक्त किया गया है। मानवीय संवेदनाओं और धरती से सूखते जा रहे जल की ज्वलन्त कहानी को नासिरा शर्मा ने अपने सशक्त कथानक में इस तरह से डाला है कि पाठक पूरी तरह सराबोर हो जाता है। जीरो रोड इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने पुरुष शोषण की कथा को बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यास में एक साथ अनेक समस्याओं को उठाया गया है। महानगरों का अकेलापन, प्रवासी मानसिकता, सांप्रदायिक झगड़े, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय राजनीति आदि विषयों को उठाया गया है। पारिजात इस उपन्यास में संस्कृति और परंपरा की बाडे बंदियों के आर पार जाकर संबंधों के नए सूत्र खोजने की कोशिश का चित्रण किया गया है। अजनबी जजीरा इस उपन्यास में इराक की बदहाली को समीरा और उसकी पांच बेटियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। उपन्यास में गरीबों को उजागर किया गया है। किस तरह लोग छोटी-छोटी चीजों के लिए तरसते रहते हैं और जीवन जीने के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगाने को तैयार अपनी विरासत को बेचने के लिए मजबूर हैं। कागज की नाव यह नासिरा शर्मा की एक विशिष्ट रचना है। इस उपन्यास में उन परिवारों का वर्णन है जो अपने भरे पूरे परिवार को छोड़कर खाड़ी देशों में नौकरी करने गए हुए होते हैं। उपन्यास में महजबी और अमजद की बेटी महलका के पारिवारिक समस्याओं को केंद्र में रखा गया है। शब्द पखेरू इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव को चित्रित किया है। मध्यवर्गी परिवार की घुटन, संवादहीनता और सपनों को पूरा करने की जद्दोजहद को बारीकी से उकेरा गया है। दो पीढ़ियों के सोच, रहन-सहन को भी इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास की नायिका शैलजा के माध्यम से सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव से साइबर क्राइम में लिप्त होती नई पीढ़ियों को दिखाया गया है। दूसरी जन्नत इस उपन्यास में रिश्तों में अपनेपन का जीवंत एहसास है। साथ ही रिश्तो में मतभेदों और टकरावों को भी दिखाया गया है। उपन्यास में आधुनिकतावादी दौड़ में मुस्लिम समाज में हो रहे परिवर्तन को दिखाया गया है।

नासिरा शर्मा की सामाजिक चेतना

नासिरा शर्मा ने समकालीन समाज को अपने साहित्य में मुखरता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में हिंदू मुस्लिम दोनों समाज के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके उपन्यासों को पढ़ते समय पाठक यह सोचने को मजबूर हो जाता है कि हम समाज में जो देखते हैं या सुनते हैं सच उससे अलग भी हो सकता है। नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में सामाजिक चेतना के सभी पक्षों को चित्रित किया है। रिश्ते- नाते, घर परिवार, आर्थिक स्थिति, बेरोजगारी, गरीबी, प्रवासी जीवन की समस्याएं, रीति रिवाज अथवा मान्यताएं, महिलाओं की संवेदनाएं, पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के आचार विचार में परिवर्तन, पहनावा खान पान उठने बैठने के ढंग आदि सभी सामाजिक समस्याओं को उठाया है।

समकालीन समाज में नई पीढ़ी अधिकतर भटकाव का शिकार हो रही है पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से वह अपने संस्कारों से दूर होती जा रही है। उनके खान पान उनके विचारों उनके पहनावे आदि में दिखावापन अधिक होता चला जा रहा है। अब त्योहारों को मनाने के तौर तरीके बदल गए हैं। नासिरा शर्मा अपने उपन्यास अक्षय वट में नव वर्ष के आगमन पर युवा पीढ़ी के बारे में लिखती हैं- "इन सारी रंगीनियों को देखने जहीर और मित्र मंडली भी पहुंची हुई थी। वे सब जवान थे, मगर इन नौजवानों को देखकर जो 15 से 20 तक की उम्र के थे वे अपने को बुजुर्ग महसूस कर रहे थे। इस बीच समय किस तेजी से बदला है, इसका अंदाजा उन्हें आज हो रहा था कि हर लड़की लड़के का कोई ना कोई ब्वॉयफ्रेंड और गर्लफ्रेंड था जिसके साथ वह नए आने वाले वर्ष का सपना देख रहे थे। इनमें से जाने कितने जोड़े विवाह मंडप तक पहुंचे और कितनों की मित्रता साल के मध्य तक जाते-जाते टूट गई। संबंधों का इतना जल्दी खिलना और उतनी ही शीघ्रता से कुम्हला जाना शायद ही आज का यथार्थ है? .. वहां आए सभी लड़के लड़कियों ने अच्छे कपड़े पहन रखे थे। कुछ जवान लड़कियों ने ऐसी पोशाकें पहन रखी थी जिसको देखकर यह गुमान हो रहा था कि यह दिसंबर माह की सर्द रात नहीं बल्कि जून माह की गर्म दोपहर है।"[1]

पीढ़ियों के इस अंतराल का चित्रण नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास शब्द पखेरू में बहुत बारीकी से किया है। सूर्यकांत और उनकी दोनों बेटियां शैलजा और मनीषा की सोच में पीढ़ी का फासला है। इस फासले को मिटाने के लिए सूर्यकांत पूरी कोशिश करते हैं, ताकि वो अपनी बेटियों के विचार के अनुकूल रह सकें। इसीलिए सूर्यकांत अपनी आदतों में काफी बदलाव लाते हैं। आधुनिक खाने पीने की तरफ भी अग्रसर होते है। उनमें आए बदलाव से खुश बेटियों को देखकर सूर्यकांत सोचते हैं- "पिछले दो वर्षों में आज की दोपहर यादगार बनकर रह गई या फिर एक नए जीवन की शुरुआत जिसे हम बदलाव का नाम भी दे सकते हैं या फिर भविष्य की तरफ बढ़ने का संकेत। जीवन समय के फिसलने का नाम है शायद।"[2]

नासिरा शर्मा ने यह भी समझाया है कि यदि मां-बाप चाहे तो अपने बच्चों को अच्छे संस्कार देकर इस नई पीढ़ी को भटकाव का शिकार होने से बचा सकते हैं। इसके लिए उन्हें नई पीढ़ी के सामने आदर्श बनकर सामने आना पड़ेगा। 'कागज की नाव' उपन्यास में महजबी अपनी बेटी महलका को समझती हुई कहती है- "मैंने तुम्हें कई बातों में गलत मशविरे दिए, वह मेरी ममता की खुदगर्जी थी। अब मेरी आंखें खुल चुकी है, जैसे मैंने अपनी गलती मान ली है, अब तुम भी मान लो और तौबा करो। तौबा का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। उसे नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी खिदमत कर अपना कफफारा अदा करो। वरना मैं तुम्हें दूध बख्शने वाली नहीं हूं। यह मेरा आखिरी फैसला है।"[3]

नासिरा शर्मा सोशल मीडिया के समाज पर पढ़ रहे दुष्प्रभाव का भी चित्रण किया है। शब्द पखे: में उन्होंने दिखाया है की किस तरह नई पीढ़ी ने इंटरनेट और सोशल मीडिया को ही अपने ज्ञान और मनोरंजन का आधार बना लिया है- "मनीषा, शैलजा में बढ़ता विश्वास देख रही थी जो कभी-कभी उसे बड़ा आक्रामक लगता। हरदम लैपटॉप की स्क्रीन पर आंखें गाड़े रहती। एक दिन उसने ईर्ष्यवस उसका नाम 'इंटरनेट बेबी' रख दिया था। मगर उस पर कोई फर्क नहीं पड़ा। फेसबुक पर हर फ्रेंड रिक्वेस्ट को कंफर्म करना जैसे उसके लिए जरूरी था। किताब या नोटबुक खुली है, सामने मैटर ढूंढने के बहाने चौट चल रही है। दिखावा ऐसा करती है जैसे बेचारी पढ़ाई को लेकर हलकान हो रही है।.. इंटरनेट के विस्तृत आकाश पर देखने पढ़ने और खोजने के लिए बहुत कुछ था। उसने गूगल को ग्रैंडपा का नाम दे रखा था।"[4]

नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों में समाज का एक अभिन्न अंग धर्म पर भी कलम चलती हैं। उनका मानना है कि धर्म व्यक्ति के लिए है ना कि व्यक्ति धर्म के लिए। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से सांप्रदायिक सौहार्द और परस्पर मिलजुलकर रहने के लिए लोगों को प्रेरित किया है। धार्मिक पर्व जैसे दशहरा, कुंभ मेला, नवरात्र, दुर्गा पूजा, जन्माष्टमी, ईद, बकरीद, मोहर्रम, जुमा- जुमेरात, मजार, उर्स, ताजिया की रौनाकें आदि से भी पाठकों को रूबरू कराया है। जीरो रोड उपन्यास में नासिरा शर्मा ने धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिकता के नाम पर मानवीय संवेदनाओं को नष्ट करने वाले दृष्टांतों के माध्यम से पाठकों को सही और गलत का निर्णय करने पर विवस कर दिया है। उपन्यास का नायक संप्रदायवादी विचारों में आकर अपने मोहल्ले के एक मुस्लिम युवक को मारने वाले झुंड में शामिल हो जाता है। परंतु उसे कुछ समय पश्चात पश्चाताप होता है, तब वह कहता है- "वह एक मनहूस घड़ी थी जब मैं धर्म के उन्माद में या फिर दिशाहीन छटपटाहट में उसे झुंड में जा मिला जो वे सारे काम करते थे, जो सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं थे। मगरङ्क्ष. रामलला का चढ़ना जुनून अयोध्या से चला इलाहाबाद पहुंच गया था। तर्क, तथ्य, मानवता, भाईचारा, अखंडता के सारे सिद्धांत हम जवान भूल चुके थे।"[5]

समकालीन समाज के इस भौतिक परिवेश में अर्थ साध्य होता जा रहा है। अर्थ के अभाव में जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां कदम रखा जा सकता है। आज हर व्यक्ति आर्थिक रूप से ऊंचा उठने की कोशिश में लगा हुआ है। नैतिकता मूल्यहीन होती जा रही है। अर्थोपार्जन मनुष्य का मूल उद्देश्य बनता जा रहा है। अमीरी और गरीबी का फासला बढ़ता जा रहा है। गरीबी और बेरोजगारी के चलते पढ़े लिखे शिक्षित युवा घरों से पलायन को मजबूर हैं। पैसे कमाने की अंधी दौड़ ने इंसान के आपसी अपनेपन व एहसास को सुखा दिया है। पैसे की मृगजाल में फंसकर व्यक्ति जीवन का सुख चौन खोता जा रहा है। सरकारी योजनाएं अब कागज तक ही सीमित रह गई है। महंगाई और बेरोजगारी चरम सीमा पर है, किसानों की फसले बाढ़ और सुखे के कारण बर्बाद हो रही है। इस समाज में एक तरफ गन्दी, कीचड़ और कूड़े से भरी पड़ी बस्तियां हैं, तो दूसरी तरफ ऊंची ऊंची चमचमाती हुई इमारतें। इन सब का चित्रण नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों में करती हैं। 'अक्षयवट' उपन्यास में तत्कालीन आर्थिक स्थिति पर प्रहार करती हुई नासिरा शर्मा अनेक प्रश्न करती हैं- "जवान लड़के गुंडे क्यों बनते हैं? लड़कियां आत्महत्या क्यों करती हैं? दुकानदार दांडी क्यों मारता है? ग्राहक मिलावट भरा सामान क्यों खरीदता है? जनता टैक्स क्यों देती है? नल क्यों सुखे हैं? चुनाव क्यों होता है? हम वोट क्यों देते हैं? नौकरियां क्यों नहीं मिलती? आर्थिक स्थिति बदहाल क्यों है।"[6]

इस प्रकार नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों के विभिन्न कथानकों एवं चरित्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज के यथार्थ रूप को चित्रित किया है। समाज के विविध रूपों व विविध पक्षों पर प्रकाश डालकर पाठकों को सोचने पर भी विवश किया है कि उन्हें समाज में किन-किन चीजों पर सुधार की आवश्यकता है और किन बातों को साथ लेकर चलना चाहिए? बदलते परिवेश और युगीन परिस्थितियों के अनुसार उन्हें बदलना है। संक्षेप में कहें तो नासिरा शर्मा एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1:- अक्षय वट पृष्ठ 28 29
2:- शब्द पखे: पृष्ठ 17
3:- कागज की नाव पृष्ठ 49
4:- शब्द पखे: पृष्ठ 40
5:- जीरो रोड पृष्ठ 220
6:- अक्षय वट पृष्ठ 377

प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री जीवन

अमिता

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

सारांश:

प्रेमचंद का परिवेश ग्राम कस्बों से जुड़ते हुए शहर तक जाता है। जहाँ प्रेमचंद अपनी रचना शिल्प में ग्रामीण जीवन, कस्बों, कृषक जीवन दलित वर्ग, एवं स्त्री संबंधी समस्याओं साहित्य शिल्प में चित्रित किया है। प्रेमचंद जिस समाज में रहे वहां के सामाजिक द्वेष को मिटाने के लिए हमेशा संलग्न रहे। उन्होंने कहा था "मैं गाँव-गाँव घूमता रहा, इसलिए मुझे किसानों के प्रति आत्मीयता अनुभव होती है।" सामाजिक एकता के पक्षधर मुंशी प्रेमचंद सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय में विश्वास रखते थे। मुंशी जी विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा का समर्थन किया तथा वेश्यावृत्ति को सामाजिक जीवन का कोढ़ माना। स्त्री जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं का उल्लेख करते हुए हम सहजता से यह मान सकते है कि प्रेमचंद मानवता के कथाकार है।

बीजशब्द- प्रस्तावना, परिवार में स्त्री की दशा, दहेज प्रथा का दंश, जातीय विडंबना, अनमेल विवाह, विधवा स्त्री का जीवन, निष्कर्ष

प्रस्तावना:

हमारी पुरातन संस्कृति में स्त्रियों को देवी रूप में पूजा जाता था; लेकिन व्यवस्था परिवर्तन के फलस्वरूप इनकी स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुए है। प्रेमचंद का काल संक्रांति का काल था। जहाँ एक तरफ देश गुलाम था तो दूसरी तरफ स्त्रियों की स्थिति और भी दयनीय थी। जिसका मुख्य कारण था 'स्त्री की शिक्षा एवं जागरूकता', इस स्थिति के सुधार हेतु कई आंदोलन हुए कई संस्थाओं का गठन हुआ; लेकिन इसका लाभ सभी महिलाओं तक नहीं पहुंच सका। इसी आंदोलन के पल में प्रेमचंद अपनी चुप्पी कैसे नहीं तोड़ते उन्होंने अपनी कलम के माध्यम से स्त्री चेतना, स्त्री पक्षधरता के पक्ष को लेकर साहित्य में नारी मुक्ति के कई प्रश्न खड़ा करते हुए सामाजिक विकृतियों पर कई आक्षेप लगाए हैं।

प्रेमचंद की कथा साहित्य में स्त्री की दशा एवं उनकी स्थिति का विशेष स्थान रहा है। प्रेमचंद अपनी कहानियों में स्त्री के प्रत्येक रूप मां, बेटी, बहन, पत्नी विधवा, एवं वृद्ध जीवन के सजीव चित्र उकेरे है। प्रेमचंद के कथा साहित्य में स्त्री पीड़ित तो है, लेकिन जुझारू एवं संघर्षशील भी है। वह हमेशा अपनी स्थिति गरीबी, शिक्षा, आर्थिक विपन्नता गुलामी की जकड़न को बदलने के लिए सतत संघर्ष करती है। प्रेमचंद के कथा साहित्य की स्त्री पात्र विरोधी है। वह तमाम मान्यताओं को नकारती हुई उद्घोष करती है, कि 'स्त्रियां कमजोर नहीं' और इसी बात का समर्थन शंभूनाथ जी ने भी किया है "प्राय: सभी उपन्यासों एवं कहानियों में प्रेमचंद ने सामाजिक कुप्रथाओं पर चोट की और नारी मुक्ति का आवाज उठाई वह सिर्फ सुधार में विश्वास नहीं रखते बल्कि सामाजिक क्रांति चाहते हैं।"[1] प्रेमचंद अपनी कहानियों में स्त्री को कैदी रूप में नहीं बल्कि समाज के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में सामने लाते हैं और बड़े सहजता के साथ अपने पाठक को बताते हैं, कि उनके कथा साहित्य में स्त्री श्शक्तिश का प्रतीक है। डॉ. शंकर विवेक जी इस संदर्भ में कहते है कि- "प्रेमचंद का कथा साहित्य परतंत्र भारत की स्त्री चेतना में निरंतर आ रहे बदलावों का सुंदर वृतांत है।"[2]

इन सभी प्रकरणों से गुजरते हुए प्रेमचंद के कथा साहित्य में अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, विधवा त्रासदी, शिक्षा व्यवस्था, जातिगत भेदभाव आदि समस्याओं के केंद्र में स्त्री को रेखांकित किया है।

परिवार में स्त्री की दशा- प्राचीन काल से हम स्त्रियों को यही सिखाते हैं, कि तुम स्त्री हो यह तुम नहीं कर सकती, तुम पढ़ो कम, गृहस्थ जीवन की निर्मिति को सीखो। इन्हीं सवालों के उत्तरोत्तर प्रेमचंद की कहानी 'बड़े घर की बेटी' की नायिका 'आनंदी' होती है जो लाल बिहारी के बुरे व्यवहार को सहन करती है "आनंदी ने हाथ से खड़ाऊ रोकी सर बच गया पर उंगली में बड़ी चोट आई क्रोध के मारे हवा से हिलते पत्ते की भांति कांपती हुई अपने कमरे में आकर खड़ी हो गयी। स्त्री का बल और साहस मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमंड होता है आनंदी खून का घूंट पीकर रह गयी।[3]"

प्रेमचंद स्त्री जीवन को चरितार्थ करते हुए वर्ग एवं वर्ण में विभाजित नहीं करते है,क्योंकि उच्च वर्णों में भी स्त्री की दशा वैसे ही थी जैसे निम्न वर्ण की स्त्री की, फर्क बस इतना था कि उच्च वर्ण की स्त्रियों को संघर्ष नहीं करना पड़ता था और निम्न वर्ग की स्त्रियों को बिना संघर्ष के पानी भी सम्भव न था। 'मोटे राम की डायरी' कहानी में उन्होंने पंडित घराने की स्त्री के बारे में बताते हुए लिखा है- "मैं स्त्रियों का अपमान नहीं करता उन्हें घर की देवी समझता हूं। वह घर की लक्ष्मी है। लेकिन घर गृहस्थी के सिवा उनसे किसी और बात में सलाह नहीं लेता घर की लक्ष्मी को घर तक ही रखना चाहता हूँ। राजनीति, समाज, धर्म आदि के विषय से उन्हें क्या मतलब"[4]

प्रेमचंद की सबसे प्रमुख उल्लेखनीय कहानी 'कफन' जिसमें 'बुधिया' अपने शराबी, गैर जिम्मेदार पति माधव और 'वसुर घीसू के चक्कर में प्रसव पीड़ा के कारण दम तोड़ देती है- "बेचारी जिंदगी में बड़ा दुख भोगा। कितना दुख झेलकर मरी"[5]

दहेज प्रथा- भारतीय समाज में दहेज प्रथा एक जटिल समस्या है। जिसके कारण विवाह के पूर्व तथा विवाह बाद भी इसका दंश केवल स्त्री ही झेलती है। कई बार भारतीय स्त्री इस प्रथा के खिलाफ आवाज ना उठा पाने के कारण आत्महत्या जैसे कठोर कदम उठा लेती है। प्रेमचंद इस विषय पर लिखते हैं- "जिसके घर दो-तीन कन्याएं आ जाएं तो बस समझ लीजिए उसका सर्वनाश हो गया माता-पिता के लिए अब इसके सिवाय और कोई त्राण नहीं कि वे अपना पेट काटे,तन काटे धोखाधड़ी से रुपए लावे"[6]

इस चित्तवृत्ति को प्रेषित करते हुए अपनी कहानी 'नैरा'य लीला' में कहा है कि "आदमी अपनी स्त्री से इसलिए नाराज रहते हैं कि उसके लड़कियां क्यों होती हैं लड़के क्यों नहीं होते"[7] निरुपमा को अपनी बेटियों के कारण प्रताड़ित किया जाता है। पुरुष स्त्री सुख चाहता है; लेकिन बेटी रूप में नहीं पत्नी रूप में यही वर्तमान समय की कड़वी सच्चाई है। जो सदियों से इसी रूप में निरंतर चली आ रही है। प्रेमचंद ने अपने लेखन में इसका पूर्णता विरोध किया है।

जातीय विडम्बना- प्रायः दलित स्त्रियों ने दोहरा अभिशाप झेला है। जिसके कारण घर और समाज में उनकी स्थिति और दयनीय हो गई। ऐसी सामाजिक संरचना का चित्रण प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में बखूबी किया है। 'ठाकुर का कुआं' कहानी जाति पर आधारित है जोकि उच्च कुल के पूंजीपति शोषक वर्ग पर कुठाराघात करती है। जिसमें गंगी अपने गरीबी में संघर्ष करती हुई अपने बीमार पति को साफ पानी तक नहीं दे पाती है- "हाथ पैर तुड़वा आएगी और कुछ ना होगा बैठ चुपके से ब्रह्म देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पांच लेंगे गरीबों का दर्द कौन समझता है हम तो मर भी जाते हैं तो कोई द्वार पर झांकने तक नहीं आता कंधा देने तो बड़ी दूर की बात है ऐसे लोग पानी भरने देंगे"[8]

प्रेमचंद ऐसी सामाजिक विडंबना से संवेदना व्यक्त करते हुए समाज को उसके मानसिक विकलांगता के बारे में बताने की कोशिश की है।

अनमेल विवाह- उच्च वर्ग हो या निम्न वर्ग स्त्रियों को हमेशा एक संस्था की तरह समझ गया जिनका स्थापन और विस्थापन समयानुसार या नियमानुसार ना हो तो अपराध समझा जाता था। इज्जत की प्रतीक लड़कियों ने सदैव स्वयं को इस बोझ तले दबा हुआ महसूस किया।

शादी की विडंबना इस प्रकार होती कि लड़के का सिर्फ लड़का होना ही मायने रखता है तथा अन्य विशेषण (सुंदरता, योग्यता, शिक्षा, उम्र) सब दोयम हो जाते थे। इसी प्रकार बेमेल विवाह के विभिन्न रूपों को प्रेमचंद ने अपने साहित्य में दर्शाया है।

'स्वर्ग का मार्ग' कहानी में एक धनी किंतु बूढ़े व्यक्ति के साथ एक युवती का विवाह होता है। पति हमेशा पत्नी को शक की नजर से देखता है। पत्नी भी स्वयं को एक कैदी की तरह महसूस करती है और अपने पति से कहती है "मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती।यह कारावास ही है, और मैं इतनी उदार नहीं हूं कि जिसने मुझे कैद में डाल रखा है उसकी पूजा करू।"[9]

'नया विवाह' कहानी में भी लाला डांगामल की पहली पत्नी मर जाने के बाद दूसरा विवाह 'आशा' से करता है। आशा का लाला डांगामल के साथ सब सुख होते हुए भी मन नहीं लगता था। अनमेल विवाह के संबंध में आशा कहती है कि "बूढ़े खूसट पति की अपेक्षा जहर खाकर मरना कहीं अच्छा है क्योंकि तिल- तिल कर आजीवन मरते रहने की अपेक्षा एक दिन मर जाना ज्यादा सुखद है।"[10]

विधवा स्त्री का जीवन- प्रेमचंद अपनी कहानियों में समय को सापेक्ष रखते हुए समकालीन समस्याओं को अपने लेखन में शामिल करते हैं। विधवा जीवन की त्रासदी को उल्लेखित करते हुए समाज की घिनौनी कुरीतियों का उन्होंने बखूबी चित्रण किया है। 'नैराश्य लीला' में स्त्री होने की जटिलता के साथ कम उम्र में विवाह और 13 वर्ष की आयु में विधवा होने की त्रासदी से जूझती कैलाश कुमारी जिसको विवाह का मतलब भी न पता था अब विधवा हो चुकी थी।

"लोगों का मानना था कि विधवा औरत को सिर्फ पूजा-पाठ, तीर्थ, व्रत करने चाहिए। यह मनोरंजन के साथ उनके लिए नहीं होते हैं कैलाश के माता-पिता को शर्म करना चाहिए कि इस प्रकार से अपनी बेटी को सर चढ़ा रखा है। महिलाएं बोलती, बात तो ठीक है! लेकिन मां ने बिल्कुल नहीं सोचा कि दुनिया वाले क्या कहेंगे"।[11]

'बेटों वाली विधवा', 'बूढ़ी काकी' भी लगभग एक जैसी कहानी है। जहां धन की आकांक्षा में वृद्धो की सेवा की जाती है लेकिन धन मिलने के उपरांत उनके साथ दुर्व्यवहार शुरू हो जाता है। 'प्रेम की होली' में विधवा जीवन और प्रेम की त्रासदी है। जहां गंगी को प्रेम तो हो जाता है लेकिन घर वाले इस बात को ना स्वीकार पाने के कारण खूब ताना देते हैं।

'अंतिम शांति' कहानी की विधवा 'गोपा' निडर और स्वाभिमानी स्त्री है। आर्थिक रूप से कमजोर होने के बावजूद भी वह किसी से सहायता नहीं लेती है। प्रेमचंद ने स्त्री स्वावलंबन को और सशक्त करने के लिए आर्थिक विषमता को दूर करने की बात कही है।

वेश्या जीवन की विडंबना- वेश्यावृत्ति पुरुष बहिष्कार एवं समाज द्वारा सुनियोजित व्यवस्था की तरह संचालित है। अनमेल विवाह, अशिक्षा, आर्थिक विपन्नता, विधवा जीवन सामाजिक द्वेष चारित्रिक विडम्बना बना और पारिवारिक कलह आदि के कारण इस अंजाम तक स्वयं को लाकर खड़ा करना सामाजिक एवं पारिवारिक विडंबना का ही।तक तक है। घर के बाहर स्त्री के निकल आने पर दोबारा स्त्री के पास केवल दो ही विकल्प थे- पहला 'आत्महत्या' दूसरा 'वेश्यावृत्ति'।

प्रेमचंद की कहानी दो कब्रें, नरक का मार्ग, एक्ट्रेस, निर्वासन, वेश्या, आगा- पीछा, आदि वैश्या जीवन पर आधारित कहानियां हैं।

'निर्वासन' कहानी में 'मर्यादा' मेले में भटक जाने के कारण कुछ दिनों बाद घर वापसी कर पाती है जिसके कारण उसका पति उसे स्वीकार नहीं करता है। 'आगा पीछा' कहानी में वेश्या जीवन की कठिनाइयों को चित्रित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री 'वेश्या' मजबूरी में तो कभी मजबूरन बनाई गई। समाज ने इन्हें कभी सम्मानित भाव से ना देखा और ना ही इन्हें स्वीकार किया।

निष्कर्ष- प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थवादी लेखक है। जिन्होंने अपने कथा साहित्य में (1908-1936)नारी की स्थिति एवं उसकी समस्याओं को सामाजिक रूप से सामने लाया है। जिनमें पहली समस्या के रूप में स्त्री का स्त्री होना तथा साथ में पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा विवाह एवं जातीय दंश जैसी समस्याओं को चित्रित किया गया है, लेकिन समयानुकूल इन्होंने नारी के विकासात्मक मुखर एवं जागरूक रूप का भी उल्लेख किया है। जो समय के साथ कंधे से कंधा मिलाती हुई प्रचलित रुढियों एवं आडंबर को नकारते हुए आगे बढ़ती है और शिक्षा व्यवस्था एवं आर्थिक विपन्नता के सुधार हेतु सशक्त होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सशक्तिकरण के विकासक्रम में प्रेमचंद का नाम अग्रणी एवं अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ सूची:

1. शंभूनाथ, प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1988, पृ.सं.-26
2. डॉ. शंकर विवेक, स्त्री अस्मिता के प्रश्न और प्रेमचंद, पृ.सं.-81
3. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-7, बड़े घर की बेटी
4. प्रेमचंद, कफन (कहानी संग्रह), पंडित मोटेराम की डायरी पृ.सं.-116
5. वही पृ.सं.-13
6. अमृतराय, प्रेमचंद: विविध प्रसंग-भाग दो (हंस प्रकाशन)इलाहाबाद 1962पृ.सं.-265
7. प्रेमचन्द नारी जीवन की कहानियां, प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली 1987,पृ.सं.-51
8. प्रेमचंद, प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियाँ, ठाकुर का कुआ (परिकल्पना प्रकाशन 2000) पृ.सं.-07
9. प्रेमचंद नारी जीवन की कहानियाँ, प्रेम प्रकाश मंदिर दिल्ली 1987, पृ.सं.-63
10. वही पृ.सं.-63
11. प्रेमचंद, प्रेमचंद नारी जीवन की कहानी 'नैराश्य लीला'

राजस्थान झालावाड़ के मूर्धन्य साहित्यकार राम निवास शर्मा "सौरभ"

श्रवण कुमार

उपाध्याय, अध्यापक स्कूल शिक्षा, अल्फा एडवांस विद्यालय जोधपुर, राजस्थान

प्राचीन काल से ही भारत में साहित्य के प्रति अनुराग रहा है। विश्व का सब से प्राचीन साहित्य भारत का ही है। जोकि वेद है। मानव का सबसे बड़ा कोई अविष्कार है तो वह भाषा व उसका लेखन है। राजस्थान की पुण्य धराउर्वर प्रज्ञा ओर अनन्यक वित्व से परिपूर्ण रही है। राजस्थान की धरापर अनेक लेखकों ने साहित्य की रचना की। साहित्य मे।काव्य के अतिरिक्त नाट्य, निबंध, उपन्यास, कहानियों आदि। राजस्थान के झालावाड़ के मूर्धन्य साहित्य कार रामनिवास शर्मा "सौरभ" बहुमुखी प्रति भासे सम्पन्न रचनाकार थे। रामनिवासशर्मा सौर भने हिन्दी भाषा एवं साहित्य पत्रकारिता को अनेक नवीन आयाम दिये। आप को राजस्थान के साहित्यिक पत्र कारिता का पुरोधा कहा जाय तो कोई अति श्योक्तिन हीं होगी। सौर भसंस्कृति, साहित्य, पुरातत्व, आध्यात्म, विज्ञान सहित अनेक विषयों के उद्भट विद्वान थे। अपने हिन्दी साहित्य को सबलबन ने मे।महत्वपूर्ण योगदान दिया।

रामनिवासशर्मा का जन्म पौष द्वितीय विक्रमसंवत 1940 तद्नुसार 1883 ई ( )

में कुलीन गुज़र गोड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता गणेश लाल टोंकके खरेड़ा ग्राम के निवासी थे। इन के पूर्वजों का राजा ओंसे सम्बन्ध रहें जो किराज परिवार के यहाँ वैदिक एवं कर्मकांड करते थें। आरम्भ से ही इन की रुचि शिक्षा के प्रति रही। वे प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धिव प्रत्युत्पन्न प्रज्ञा के धनी थे। आपकी शिक्षा-दी क्षापारंपरि कतरी के से गुरू कुल कां गड़ीत था बनारस विद्यापीठ में हुई। रामनिवासशर्मा ने संस्कृत, हिन्दी, अग्रेंजी, फारसी, उर्दू एवं बंग्ला भाषा का अध्ययन किया। आपकी उत्कृष्ट शैक्षणिक उपलब्धियों के कारण गुरुकुल कांगड़ी मे।शिक्षण कार्य प्रदान किया गया। जहां उन्होंने वर्षो तक स्वामी श्रद्धा नन्द के साथ अध्यापन कार्य किया।

झालावाड़ के महाराजा भवानी सिंह विद्यानुरागीव विद्वान थे। गुरूकुल छोड़ कर रामनिवासशर्मा झालावाड़ आगये। महाराजा भवानी सिंह ने इनको अपनी नवरत्न सभा में नवरत्न के रूप मे। प्रतिष्ठित किया। नवरत्न के रूप में सम्मानित होने के साथ ही रामनिवासशर्मा राजदर बार में विशिष्ट सम्मान से अंलकृत हुए। आपने पुर्ण निष्ठा के साथ दरबार हाई स्कूल में हिन्दी के शिक्षक रूप में कार्य किया। अपने अध्यापन के साथ साहित्य रचना व पत्रकारिता भी करना आरम्भ किया।

रामनिवासशर्मा ने महाराजा भवानी सिंह के संरक्षण में झालरापाटन से "सौरभ" नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। जो वर्षो तक चला। रामनिवासशर्मा ने कुशलता के साथ सौरभ पत्रिका का सम्पादन किया। हमें सौरभ पत्र के द्वारा रामनिवासशर्मा की प्रतिभा एवं पत्र कारिता के साथ उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के दर्शन होत`हैं। "सौरभ" के सम्पादक के सम्बन्ध में पत्रकारिता के अवतार माने जाने वाले सम्पादक चिन्तामणिने लिखा है कि "रामनिवासशर्मा सौरभ का विविध ओर विभिन्न विषयों पर अधिकार हीन हीं अपितुपुर्ण अधिपत्य है।" द्विवेदी युग के साहित्य मनीषी गया प्रसा दशुक्ल स्नेही ने लिखा कि "आप संस्कृत हिन्दी के मार्मिक विद्वान, विश्वसाहित्य के मर्मज्ञ, हिन्दी के प्रोढ़ लेखक एवं झालावाड़ के गौरवहै। गम्भीर गवेषणात्मक लेख लिखना आपकी विशेषता है। पौर्वात्य ओर पाश्चात्य दर्शन पर आपका समान अधिकार है। आप केलेख मौलिक ओर ज्ञान वर्ध कहै। जो कुछ लिखते हैं वह गम्भीर अध्ययन ओर विचार के पश्चात लिखते हैं। आप के के सम्पादक त्वमें "सोरभ" नामक मासिक पत्र बहुत ही ठाठ-बाटसे निकलता था। ऐसा विचार पुर्ण, गम्भीर ओर गवेषणा युक्त आज भी दुर्लभ है।" (सुकविवर्ष 16 अंक 1 नवम्बर-दिसम्बर) आप के द्वारा सम्पादित राष्ट्रीय स्तर का मासिक सौरभ पत्र स्वतंत्र चिन्त नकादस्तावेज है। आप देश कीतत्का लीन जिन पत्र-पत्रिकाओं में लिखते थे उस की सूचिज्ञाने न्द्रियोंप थिक के सग्रह से प्राप्त हुई वे यह है। माधुरी, गंगा, पैसा, सरस्वती, तपोभूमि, वीणा, वाणी, अरुण, विश्वविज्ञान, संकीर्तन, ब्राह्मण, वैश्यहितैषी, विकास, कल्याण, विक्रम, मीराँ, नवजीवन, सुधर्मप्रचारक, हिन्दूस्तान, नवज्योति, लोकसेवक, भविष्य, गौतम, ब्राह्मणसमाचार, राजपूत, ज्ञानशक्ति, जैनहितेषु, सम्मेलनपत्रिका, ज्योति, जीवाजीप्रताप, विज्ञान, अरावली, हिन्दी, भारतीयधर्म, संसार, तिलक, शिक्षा, महिलादर्पण, लक्ष्मी, प्रभा, श्रद्धा, भारती, प्रेम, सत्यधर्मप्रचारक, माधुरी, चॉद, गौतमसन्देश, कल्पतरू आदि में निरन्तर प्रकाशित होते रहते थे। इन पत्र-पत्रिकाओ।मे।रामनिवासशर्मा के मौलिकता, गवेषण, गंभीरता एवं सार पुर्ण आलेख प्रकाशि तहुए। जिसमें संस्कृति, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म, पुरातत्व, तर्क, धर्म, वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, कालीदास, भारतीयदर्शन, भौतिकविज्ञान, विद्युतविज्ञान, भूतत्वविज्ञान, शक्तिविज्ञान, भाषाविज्ञान, ज्योतिष, प्रजननविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, रसायनविज्ञान, सृष्टिविज्ञान, मनोविज्ञान, आदिविषयों पर आलेख लिखे।

विभिन्नपत्र-पत्रिकाओ। मे। प्रकाशित इनके कुछ निबंध का संग्रह करके "सौरभ-कण" शीर्षक से एक पुस्तक सन् 1943 ईमें मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर ने प्रकाशित की। यह निबंध संग्रह उनकी साहित्य सेवा का अक्षय कीर्ति ग्रंथ है। रामनिवासशर्मा एक अच्छे वक्ता थे। उनका उत्तम कोटिका वक्तृव्य कौशल था। उनके भाषणों में शुद्धव परिमार्जित प्रांजल हिन्दी का गंगा के समान निर्मल प्रवाह था। इनके भाषणों से श्रोता में आनन्द माधुर्य का संचार

होता था। झालावाड़ में साहित्य व संस्कृति के कार्यक्रमों में सौरभ की गरिमामय उपस्थिति के साथ उनका भाषण अवश्य होता था। वेलम्बे समयतक अखिल भारतवर्षीय श्री गुज़र गोङ ब्राह्मण महासभा के अध्यक्ष रहे। अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन जयपुर में स्वागतमंत्री के रूप में उनके विद्वत्तापूर्ण अभिभाषण से प्रभावित होकर सम्मेलन के अध्यक्ष महा महोपाध्याय पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने उनको "विद्यावारिधि" उपाधि से गौरवान्वित किया। साहित्य के अच्छे-अच्छे सम्मेलन में उनको बड़ी तन्मयता से सुना जाता था। रामनिवासशर्मा सेवा द्वारा उपेक्षित समाज के उत्थान में निरन्तर प्रयासर तरहे। उन्होंने महिलाओं की स्थति सुधार ने तथा सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए बहुत कार्य किये। झालावाड़ नगरपालिका का गठन 1917 ई में हुआ आप प्रथम नगरपालिका अध्यक्ष मनोनीत हुए। अपने अनेक लोककल्याणकारी कार्य किये। सरस्वती के महान आराधक रामनिवासशर्मा सौर भने अपने जीवन में अर्जित धन को लोककल्याण में दीन-दुखियों के कष्टो कें शमन के लिए स्थानीय अस्पताल को दान देदी। रामनिवासशर्मा सौर भने फाल्गुन 12 विक्रमसंवत 2021 तद्नुसार 1964 को अपना पार्थिव शरीर हमारे बीच छोड़कर तिरोहित हो गये। ऐसे साहित्य मनीषी कास्मरण, उनके जीवन का वाचन हमे।पवित्र करने के साथ हमें गौरवान्वित भी करता है।

रामनिवासशर्मा संस्कृत साहित्य के उत्कृष्ट विचारक थे। उनमे।भारतीय दर्शन, धर्म, ज्ञान-विज्ञान की गंभीर अध्येता थी। उन्होंने महर्षि वेदव्यास के अठारह पुरणो।को केवल दो शब्दों में व्यक्त किया। प्रथम परोपकार वपीड़ा (जिसको उन्होंने पाप-पुण्य भी कहा) रामनिवासशर्मा ने परोपकार को ही पुण्य, सेवा कहा। मनुष्य को हर स्थिति में दूसरों की कुछ न कुछ सेवा करते रहना चाहिए। रामनिवासशर्मा युग प्रवृत्ति के अनुरूप उत्कृष्ट निबंधकार थे। इन के निबंध साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान, भाषा, समाज, कला, राजनीति, शोषितों के उत्थान, लोककल्याण, नारी की स्थिति, पुन:जागरण की पृष्ठ भूमि पर प्रमाणिकता के साथ लिखे गये हैं। इन के निबंधो।न`साहित्य जगत को नई उर्जादी। रामनिवासशर्मा के निबंधों को चार भागो।मे।विभक्त किया जा सकता है।

(1) साहित्य सम्बन्धी निबंध

(2) विज्ञान सम्बन्धी निबंध

(3) संस्कृति एवं धर्म सम्बन्धी निबंध

(4) प्रकीर्ण निबंध।

प्रकीर्ण निबंध तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। यह निबंध सम-सामायिक विषयों पर होते थे। ये निबंध छोटे आकार के होते थे। निबंधों में विविधता के साथ विचारों में गाम्भीर्य एवं यंग्य भी विद्यामान रहता था। विज्ञान सम्बन्धी निबंधों में अनुसंधान एवं विश्लेषणात्मक भावों का समावेश होता था। इन के निबंधों में उच्चकोटि का पाण्डित्य था, भाषा कठिन थी जिसके कारण सामान्य पाठक को बुद्धि व्यायाम करना पड़ता है। वाक्य छोटे छोटे, सरल वसुबोध, शैली व्यासत था भाषा अंलकार से परिपूर्ण रही है। निबंधों में शब्दचयन के साथ वाक्यों की सुन्दरता व पदमैत्री बहुत ही सुन्दर हैं। भाषा पर पूर्ण अधिपत्य था। निबंधों में उर्दू, फारसी, के साथ लोकव्यवहार के तद् भव देश जशब्दों का बहुत ही प्रयोग किया। अग्रेंजी शब्दों से निबन्धों को प्रभावोत्पादक बनाया।

रामनिवासशर्मा ने भारतीय संस्कृति व भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव पर भी अपनी लेखनी चलाकर नवजागरण किया। इन्होंने अपने सांस्कृतिक लेखों में भारतीय संस्कृति, भारतीय संस्कृति ओर साहित्य पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, प्रभाव का उन्मूलन, भारतीय संस्कृति के तत्व, संस्कृति से जुड़े विभिन्न विषयों पर लेख लिखे। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के साथ राष्ट्र की दशा का विश्लेषण किया।

रामनिवासशर्मा का लेखन भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय मुखरित हो रहा था। इनके लेखन ने राष्ट्रीय चेतना के स्वर मुखरित किये। आन्दोलन की लहर से राष्ट्रीयता की भावना बढ़ी। रामनिवासशर्मा के साहित्य ने आन्दोलन का सुसंगठन, एकता, त्याग व बलिदान की भावना को जगाया। वे देश दुनिया में होने वाली घटनाओं और बदलावों पर लगातार चिन्तन मनन कर के उनको विभिन्न साहित्यिक लेखों के मध्यम से अभिव्यक्त करते थे। आपने एक सम्पादकीय "अन्यायसहिष्णुता" लिखा जिसके विचार इस प्रकार से है "संसार में अन्यायी पापी नही है परन्तु अन्यायी से सम्बन्ध रखने वाले ओर विशेषकर अन्याय सहन करने वाले भी अपराधी है, क्योंकि उनकी अन्याय सहिष्णुता अन्यायी को अन्याय करने का सहास जन्म लेता है। जैसे आचार संहिता मे।अन्यायन ही करना व्यक्ति का धर्म है वैसे ही मनुष्य का कर्तव्य है कि आत्म रक्षा के लिए अन्याय का प्रतिकार करें। "उन्होंने गांधी के 1942 ईके "करोयामरो" के नारे से 20 वर्ष पुर्व ही कहा था कि "मनुष्य मात्र का कर्तव्य है किया तो वह अन्यायी पर विजयपाकर जीवित रहे या उससे संघर्ष करता हु आप्राणगंवाये। जब पशु, किट, पतंगेक्षण भर के लिए अन्याय सहनन ही करते तो मनुष्य कहलाने वाले प्राणी के लिए किसी भी अवस्था में अन्याय सहन करना उचित नहीं है। उन्होंने तुलसीदास की सूक्ति को उद्धृत करते हुए भारतीयो।को अपनी दुर्बलताएं त्याग कर संघर्ष करने की प्रेरणा दी "अति संघर्ष करै जो कोई, अनल प्रकट चंदन से होई।"(सौरभ 1920,106)

रामनिवासशर्मा ने भारतीय समन्वयवादी संस्कृति एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के अनुरूप साम्प्रदायिक सद्भाव का संदेश दिया। उनका धार्मिक सद्भाव का समर्थन ऐतिहासिक व तार्किक आधार पर था। उन्होंने असहयोग आन्दोलन व खिलाफत को हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अच्छा बताया। रामनिवासशर्मा ने अपने पत्रों के द्वारा "राष्ट्रबोध" करवाया।

मै काले के शिक्षा ढाँचे पर विचार रखते हुए रामनिवासशर्मा ने लिखा कि अग्रेंजों ने जिस शिक्षा का भारत में प्रसार किया वह अपने लाभ के लिए किया। जो भारतीय पर बहुत बड़ा जुल्म था। उनके अनुसार शिक्षा व विचार जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। शिक्षा व विचारों क आधार पर सत्ता स्थापित कर ना सरल होता है। प्रबल जातियों निर्बल जातियों पर शिक्षा द्वारा अपनी सत्ता स्थापित करती है। रामनिवासशर्मा संस्कृत साहित्य में निहित विचारों को स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे। इस भाव को लेकर उन्होंने भारतीय दर्शन, धर्म, नीति, नैतिक परम्परा, आध्यात्म आदि पर कल्याण में अनेक आलेख लिखे। जिसमें से कुछ आलेखों की चर्चा हम यहाँ पर करेंगे। गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण भारत के नागरिकों के चरित्र ओर संस्कार निर्माण मे। महत्वपूर्ण योगदान दिया। कल्याण का प्रकाशन बीसवी सदी के तीसरे दशकयानि 1923 ई को आरम्भ हुआ। उस समय भारत में अग्रेंजों का अधिपत्य था ओर पाश्चात्य संस्कृति तीव्रगति से फैल रही थी, साथ ही भारतीय संस्कृति को समाप्त करने का कुचक्र चलाया जा रहा था। यहां का जन मानस दिग्भ्रांत

होने लगा। कल्याण पत्रिका ने भारती यसंस्कृति, साहित्य, संस्कार बचाने का गुरू भार ग्रहण किया। कल्याण पत्रिका के लोक उत्थान के कार्य में अनेक विद्वानों, सन्तों व साधुकों ने लेखन कार्य किया। जिसमें रामनिवासशर्मा का स्थान भी उल्लेखनीय है। रामनिवासशर्मा ने कल्याण पत्रिका सास्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक लेखगीता प्रेस के आरम्भ के साथ ही लिखना शुरू किया। उनके सास्कृतिक निबंध के अन्तर्गत "उपनिषदों का नवीन वैज्ञानिक तथ्य" में उपनिष त्प्राण श्रीमद्भागवत गीता का सत्य स्पष्ट किया।

अव्यक्ता दीनि भूतानि, व्यक्त मध्यानि भारत।

अव्यक्त निधनान्येव, तत्र का परिदेवना।।(श्रीमद्भागवतगीता अध्याय 2 श्लोक 28, साड्ख्ययोग)

यह सृष्टि नही तो बनती है ओर नही नष्ट होती है। प्रत्युत्त अव्यक्त से व्यक्त होती है ओर व्यक्त से अव्यक्त होती है। इसी बात को छान्दोग्यो पनिषद् इस प्रकार से कहता है। प्राकृति शक्तियों धुलोकस्थ अग्नि में पर माणुरूप साहित्य का हवन करती रहती है। जिससे इसनि: सीम आकाश-प्रांगण में नित्य ही आह्लाद जनक विश्व ब्रह्माण्ड ओर वस्तुओं का प्राकट्य होता रहता है। प्रत्येक वस्तु अपने अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में आती रहती है। यह यज्ञ परम शक्ति की ओर से प्रकृति प्रवाह में निरन्तर चलता रहता है। यह इन तत्वों से अव्यक्त से व्यक्त होती है।

(1) द्युलोक-अग्निकुण्ड
(2) द्युलोकस्थ शक्ति-प्रथमअग्नि
(3) आदित्य-समिधा
(4) हवनीयद्रव्य-परमाणु
(5) हवन कर्ता देवता-प्राकृतिक शक्तियों
(6) अध्वर्यु-परमात्मातत्व
(7) वसन्तऋतु -धृत-स्थानीय
(8) ग्रीष्मऋतु-समित्स्थानीय
(9) शरदऋतु-हवि
(10) यज्ञनाम-प्राकृतिक

रामनिवासशर्मा ने उपनिष द्वांग्मय से आज के विज्ञान की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि व्यष्टि ओर समष्टि विश्व न केवल तत्वत: अपितु स्वरूपत: भी नाशन ही होता है। विज्ञान कहता है कि उर्जा का नाशन ही होता के वल रूपान्तरण होता है। विश्वकल्याण का मार्ग भारतीय नैतिक संस्कृति है यह मानना था रामनिवासशर्मा का। आज समाज में अनेक समस्याओं का बोलबाला हो गया है। व्यक्ति के मन-वचन-कर्म में कोई समन्वय नहीं है। सर्वत्रहिंसा ओर उच्श्रृखलता का साम्राज्य हो गया है। पोषक वर क्षकतत्व कलह के प्रोग्राम बन गये हैं। ऐसे समय में भारतीय नैतिक आचरण से ही संसार को सुखी बनाया जा सकता है। नैतिक आचरण से विश्व में नई शक्ति उत्पन्न होगी। इससे व्यक्ति ऋषि कल्प बन जायेगा।

रामनिवासशर्मा ने कल्याण का श्रीविष्णु अंक 1973 ई में "रामकाव्यमेंविष्णु" आलेख लिखा। इस आलेख में विष्णु के विभिन्न अवतारों से सम्बन्ध बताते हुए श्रीराम के विभिन्न विशेषणों का प्रयोग किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे श्रीराम को विष्णु ही मानते थे। कल्याण के 22वें वर्ष अंक 2 माहफरवरी 1948 ई में प्रकाशित आलेख "मानस का अनिन्ध्य महिला चरित्र-चित्रण" लिखा। रामचरितमानस हिन्दूओं का अप्रतिम ओर लोकोत्तर ग्रंथ है। इस ग्रंथ को लेकर कथा-कथित विचारक कहते हैं कि रामचरितमानस में महिला जाति का अपमान किया गया है। रामनिवासशर्मा ने मानस की महिलात्मक बातों को औचित्य पुर्ण समझाने का प्रयास किया। यह आलेख बारह भागों में कल्याण के बारह पृष्ठों मे पृष्ठ 837 से 846 तक है।

(1) महिला आदर्श
(2) महिलाओं के विभिन्न रूप
(3) महिला और पुरुष
(4) महिला और ईश्वर
(5) महिला और विशेष दृष्टिकोण
(6) महिला और वास्तविकता
(8) महिला और सतित्व
(9) महिला और हिन्दु परम्परा
(10) महिला और दुर्जनतोष न्याय
(11) मानस में महिला सौन्दर्य की अपूर्वदृष्टि
(12) महिला और आलोचना।

इस आलेख में रामनिवासशर्मा ने मानस की स्त्रियों का माधुर्यत्मक आदर्श को व्याख्यित किया। इन्होंने आलेख में लिखा किस्त्री ह्रदय का जैसा सुन्दर चित्रण मानस में किया गया है वैसा अन्य शास्त्रो।में नही मिलता है।

को गुण दोष हिकरे विचारा।
की तनुप्राण कि केवल प्राणा।।

रामनिवासशर्मा के अनुसार मानस में स्त्रियों के जितने रूप का बखान किया है वेस भी उच्च आदर्श है। मातृ स्वरूप के बारें में कुछ कहना ही बेमानी है। नैतिक दृष्टि से महिला पात्र पुरूष से उच्चस्थान पर हैं। मानस में नारीयों के माधुर्यत्मक ऐश्वर्यत्मक चरित्रों के साथउ नकी पुर्णता करना तुलसी का अभिष्ट रहा है। रामनिवासशर्मा ने महिला जाति की सबसे बड़ी विशेषता उस का सतित्व कहा है। यह मनुष्यत्व और देवत्व से भी ऊपर है। रामनिवासशर्मा के अन्यकल्याण के आलेख "गौअंक" 1945, "भगवन्नाम-महिमाऔरप्रार्थना" अंक 1965, कल्याणकावर्ष 34 अंकअगस्त 1960 में "हिन्दु-नारीकासतीधर्म" संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणांक 1963, "ब्रह्मवैवर्त पुराणगत आदश ॅव्यक्तित्व मूलक व्यष्टि-समष्टिस मुद्धारकहरिनाम कीर्तन" बालक अंक 1953, "बालक के सुख:दु: खबालकके शब्दों में" कल्याणवर्ष 35 अंक सितम्बर 1961 "योग वासिष्ठ में नारी महत्व", कल्याणवर्ष 36 अंक अगस्त 1962 "हमें अशक्त से शक्त बनाने वाला हमारा साहित्य", कल्याणवर्ष 35 अंक फरवरी 1961 "योग वासिष्ठ की राज्य-मोक्षप्रदायिनी प्राणायाम साधना"।

रामनिवासशर्मा भारतीय संस्कृति के आख्याता है। इन्होंने भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य प्रभाव से बाहर निकलने के लिए अनेक आलेख लिखे। अपने सांस्कृतिक लेखों में भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान को बताया। साहित्य की सार्वभौमिकता और हमारा उत्तरदायित्व की बात करते हुए कहा ह ैकि साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, धर्म, इतिहास, पुरातत्व आदि विषयों की जानकारी देते हैं। दर्शन और विज्ञान साहित्य के विश्लेषणात्मक साधन है साध्य नही। साध्य तो के वल साहित्य है। साहित्य ईश्वर का स्वरूप वरस है। साहित्य के अध्ययन से ज्ञान कोषों का विकास होता है। जो मानव के समस्त तत्वों के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य आत्मा और मनका भोजन है।

रामनिवासशर्मा ने सौर भनाम से एक पत्र का प्रकाश न किया जो कुछ समय तक प्रकाशित होता रहा। सन् 1920 झालरा पाटन स प्रकाशित होने वाले सौर भपत्र के संरक्षक झालावाड़ नरेश भवानी सिंह थे। इस पत्र के सम्पादकीय व आलेख में स्वतंत्र लेख, प्राच्यवादी चिन्तन रहता था। इस पत्र से राष्ट्रीय चेतना जगाने का प्रयास किया गया।

विक्रमादित्य को दो हजार वर्ष होने पर विक्रम उत्सव मनाने की योजना बनी। समारोह के आयोजन का प्रचार प्रसार हो रहा था। विक्रम उत्सव का विरोध मोहम्मद अलीजिन्ना ने किया। उस समय अग्रेंजों का शासन था। जिन्ना के विरोध ने ब्रिटिश सरकार के कान खड़ें कर दिये। इस आयोजन में हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव की कोई जगह नहीं थी। उज्जैन में विक्रम समारोह हुआ। उसमें एक विक्रम स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन किया गया जो लगभग 2000 पृष्ठों का है। यह ग्रंथ आज इतिहास की धरोहर हैं। विक्रम स्मृतिग्रंथ में भारत भर के तत्कालीन उत्कृष्ट लेखकों, विचारकों और उद्भट विद्वानों के शोध पुर्ण गवेषणाओं के साथ लेख प्रकाशित किये गये। भारतीय संस्कृति के मान्य विद्वान रामनिवासशर्मा "विक्रम कालीन उन्नति" आलेख लिखा। विक्रमादित्य के समय भारत वर्ष सांस्कृतिक विकास, शौर्य और वैभव का प्रतीक था। विक्रमादित्य के समय भौतिक, दैविक और आत्मिक विकास मुख्य था। राजा विक्रमादित्य के शासन के बारे।मे।शर्मा ने लिखा कि समाज पुर्ण सम्पन्न था, गुरूकुल शिक्षा प्रणाली थी, ललित कलाओं का आदर था, देश में धन-धान्य था, व्यापार उन्नतिप रथा, यन्त्रविद्या अच्छी दशा में थी, खनिज संपदाकी व्यवस्था अच्छी थी। गृहोपयोगी शिल्प अच्छा था, गणतन्त्र का अस्तित्व था। शासन में सौन्दर्य, ज्ञानविज्ञान, सुख-शान्ति थी।

आधारग्रंथ:-

(1) हमारे पुरोधा 11, रामनिवासशर्मा "सौरभ" लेखक गदाधर भट्ट, प्रकाश कराज स्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, संस्करण प्रथम, सन 1996

(2) जूनीख्यात, आइ ॅएस एस एन 2278-4632 जुलाई-दिसम्बर 2022, बीकानेर (राजस्थान)

(3) कल्याण के अंक, गीता प्रेस गोरखपुर से

(4) अक्षरवार्ता मासिक अंतरराष्ट्रीय पियर रिव्यु डएवरेफर्ड जर्नल, दिसम्बर 2022,

(5) गौतम अन्वीक्षा आमन्त्रण अंक, सम्पादक किशौर कुमार उपाध्याय, जोधपुरवर्ष 2006

(6) विद्यावारिधि पण्डित रामनिवासशर्मा, लेखक जुगल किशोर मिश्र, कलरव, राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़, वर्ष 1962-62

(7) विक्रम स्मृतिग्रंथ, सम्पादक सूर्य नारायण व्यास, आलोजा हदर बार प्रेस, ग्वालियर तथा ओरिएंटलइन्स्टीट्यूट, विक्रमसंवत 2000

कोदूराम दलित के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ० बी० नंदा जागृत

सहायक प्राध्यापक, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनांदगांव, छत्तीसगढ़

कोदूराम दलित छत्तीसगढ़ी भाषा और हिन्दी भाषा में समान रूप से रचना करने वाले साहित्यकार हैं। ठेठ छत्तीसगढ़िया के रूप में अपने अंचल के समाज, संस्कृति को अपनी रचना में अभिव्यक्त करते हैं। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में छत्तीसगढ़ भी सक्रियता से अपनी भागीदारी निबाहता रहा है। को दूराम दलित, कुंज बिहारी चौबे जैसे तमाम रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से छत्तीसगढ़ जैसे पिछड़े अंचल के लोगों को जागृत कर रहे थे। जनता में ऐसे रचनाकारों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जागृत हो रही थी कि सबको मिलकर लड़ना और भारत माता की पराधीनता की बेड़ियो।को खोलना है। दलित, 'जेल चलो संगवारीहा' जैसी कविताएँ लिखकर लोगों का आह्वाहन करते हैं।

कोदूराम दलितः व्यक्तित्व एवं कृतित्व-कोदूराम का जन्म ग्राम टिकरी, जिला दुर्ग में 05 मार्च सन् 1910 में एक गरीब परिवार में हुआ। उनकी शिक्षा में गहरी अभिरूची थी इसलिए निर्धनता आड़े नहीं आई। उन्होंने विशारद्तक की शिक्षा प्राप्त कर शिक्षकीय जीवन को अपनाया। वेदुर्ग में शिक्षक हो गये। लिखना उनके जीवन में प्रथम स्थानपर था। अपनी जीविका के लिए शिक्षकीय कार्य करते हुए साहित्य साधना में लगे रहे। उनके बारे में कहा जाता है कि वेरचना कर्म में ऐसे रम जाते थे कि उन्हें खाने-पीने की सुधतक नहीं रहती थी। दुर्ग जिला हिन्दी साहित्य समिति, प्राथमिक शिक्षक संघ, हरिजन सेवक संघ के साथ ही सहकारी साखसमिति के मंत्रीपदों पर कार्य करते रहे।

रचनाएँ- उन्होंन`सन् 1926 स`लेखन कार्य प्रारंभ किया। तत्कालीन विभिन्नपत्र- पत्रिकाओ।में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई। इस दौरान 800 कविताओं का प्रकाशन हुआ।

उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी जिनकी भाषा छत्तीसगढ़ी एवं हिन्दी है:-

1. सियानीकेगोठ
2. हमरदेश
3. कनवासमधी
4. दू- मितान
5. प्रकृतिवर्णन
6. बात
7. अलहन
8. कथा-कहानी
9. प्रहसन
10. छत्तीसगढ़ी लोकोक्तियाँ
11. बालनिबंध
12. छत्तीसगढ़ी शब्द भंडार

उनकी अधिकां शरचनाएँ अप्रकाशित है। ध्यातव्य है कि कोदूराम अत्यंत पिछड़ी मानी जाने वाली जाति से संबंध रखते है तथापि उनकी साहित्यिक सजगता के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठा सकता। उनका जीवन डॉ. भीमराव अंबेडकर की इस प्रसिद्ध उक्ति को सार्थक करता हैं कि 'शिक्षा शेरनी का दूध है इसे जो भी पिये गावहदहाड़ेगा' यह सत्य है कि शिक्षा मनुष्य को जागृत करती है, उसे संस्कारित करती है, उसकी सोच को धार देती है, साथ ही अभिव्यक्ति को पैना करती है।

हमारे देश में जिस तरह की सामाजिक विसंगतियाँ हैं उसमें दलित जी के वर्ग के किसी व्यक्ति का साहित्य कार के रूप में मान्यता प्राप्त करना अपने आपमें अलग ही तरह ही योग्यता है। और जनता द्वारा उसे स्वीकृत करना एक उपलब्धि है परन्तु इतनी रचनाएँ लिखकर भी उनके जीवन काल में उनकी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हो पायी। यह अत्यंत दुखद है। हिन्दी जगत के अध्येताओं को यह विदित है कि मुक्तिबोध जैसे विश्व विख्याम साहित्यकार के जीवन में भी उनकी एकमात्र पुस्तक ही प्रकाशित हो पायी थी। मृत्युपरांत उनकी अन्य रचनाएँ प्रकाशित हो पायी। उनके जीते जी उन्हें वह प्रसिद्ध और सम्मान प्राप्त नहीं हो सका जिसके वे हकदार थे। मुझे गर्व है कि मुक्तिबोध जिस दिग्विजय महाविद्यालय राजनांद गांव के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य कि या मैं उसी विभाग की अध्यक्ष हूं। मुझे गौरव होता है कि मैं उस राज्य की निवासी हूं जिसमें को दूराम दलित जैसे गांधीवादी विचारधारा के कवि हुए। छत्तीसगढ़ के

प्रसिद्ध साहित्यकार हरिठाकुर लिखते हैं- "दलित जीविचारधारा से पक्के गांधीवादी तथा राष्ट्रभक्त थे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए वे सदैव चिन्तित रहते थे। हिन्दी और हिन्दी की सेवा को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। वे आदत नखादी धारण करते थे और गांधी टोपी लगाते थे। उनका रहन-सहन अत्यंत सादा और सरल था। सादगी में उनका व्यक्तित्व और भी निखर उठता था"

दलित के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप- कवि ने लेखन प्रारंभ किया सन् 1926 में तब देश परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ था। ऐसे समय मे।साहित्यकारों द्वारा अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज को जागृत करने का प्रयास किया गया। जिसका परिणाम भी दिखाई देता है। अन्यथा लोगों की मानसिकता 'कोउ नृपहोहीह में काकरनी' की होने लगीं थी। दलित लोगों में गुलामी मानसिकता को दूरकर पुरुषार्थ के लिए प्रेरित करते हैं। उनके काव्य की पंक्तियां दृष्ठव्य हैं-

"ऐसी दुखदायी पर वशता मानव को कैसे भायेगी?
औरो।की दासता किसी को राहत कैसे पहुंचायेगी?
जो 'गुलाम' हैं, उन लोगों से उनके दुख की बातें पूछो
'औ' है जो आजाद मुल्कके उनके सुख की बातें पूछों
कहा सयानों ने सच ही है आजादी से जीना अच्छा
किन्तु गुलामी मे।जिन्दा रहने से मर जाना है अच्छा"

इसी तरह के विचारों से वे जनता को सजग करते हैं। अपने सीधे-सरल- सपाट शब्दों मे वे गूढ़ बातें भी स्पष्ट कर देते हैं। हमारे देश में भाषा, धर्म, प्रांत और संप्रदाय के रूप में विभाजन करना और इसे मानना, महत्व देना अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है। यही सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक कारण रहे है।जिनके कारण भारत को बार- बार विदेशियों ने अपना गुलाम बनाया। क्योंकि जिस देश के लोग स्वयं ही एक दूसरे से लड़ते रहते हैं, उस देश पर कोई भी दुश्मन आसानी से अपनी जड़ें जमा सकता है। इसलिए दलित जनता को सजग करते हैं। व`कहते सम्मान उसी का होगा जो ऐसा हो-

"हिन्दू, मुस्लिम, सिख, क्रिस्तान। सभी पुत्र के जान।
समझे सबको बन्धुसमान। होता उसका सम्मान।
जाति, प्रान्त 'औ' भाषावाद। उन्हें समझकर निरेविवाद।
रखे 'एक- मत' हिन्दुस्तान। होता है उसका सम्मान।"

अब आजादी है, भारत स्वतंत्र है। अपनी इस स्वतंत्रता को सम्हालकर रखना है। हमारे लाखों बलिदानियों ने अपनी शहादतदी। कई तो ऐसे है जिनका नाम इतिहास में दर्जन हीं हो सका है परन्तु देश की आजादी उन की शहादत की गवाही है। दलित जी इस आजादी को सहेज कररखने के लिए स्मरण कराते है कि हमने परतंत्रता के रहते क्या खोया है-

"रहकर के गोरों की पर वशता में हम क्या - क्या न खो चुके
पर पंद्रह अगस्त सन सैंतालीस को हम आजाद हो चुके
यह सब अपने अमर शहीदों के भारी जप-तप का फल है
मिलकर रहें, देश पनपायें तब तो फिर भविष्य उज्जवल है
आजादी पर आँचन आवेलहर - लहर लहराया तिरंगा
हम संकल्प आज लेवें कि रहे न कोई भूखानंगा"

वर्तमान में दलितजी के व्यंग्य बहुत ही प्रासंगिक हैं वैसे वे मुख्यरूप से व्यंग्य के कवि हैं। आजादी के पूर्व जनता ने जो सोचा वह आजादी के बाद नहीं मिल पाया। स्वप्न भंग की स्थिति को देखकर आजाद भारत के आजाद नागरिकों का स्वप्न धरा का धरा रह गया दिखता है। उस समय हमारे नेता हमारे आदर्श हुआ करते थे। उनका आगमन कहीं हो रहा होता था तो जनता बिन बुलाये उनको देखने, सुनने खींचीं चली आती थी। एक आज का दौर है जिसमें तथा कथित रूप से कहा जाता है कि पैसा और खाना देकर गाड़ियों में भरकर भीड़ बढ़ाई जाती है। कवि आज औरत बके नेताओं की तुलना कर लिखते हैं -

"तब के नेताजन हितकारी। अबके पदवी - धारी।
तबके नेता गांधीवादी। अबके नेता निरेविवादी।
तबके नेता गिट्टीफोड़े। अब के नेता कुर्सीतोड़े।
तबके नेता बने भिखारी। अबके नेता बने शिकारी।
तबके नेता तपसी सीधे। अब के नेता व्होट खरीदे-
बहुत ही मारक व्यंग्य है आज के नेताओं पर

छत्तीसगढ़ी भाषा काव्य में राष्ट्रीय चेतना - दलितजी के न केवल हिन्दी लेखन में अपितु छत्तीसगढ़ी भाषा में भी राष्ट्रीय चेतना दिखाई पड़ती हैं। लोकसंपृक्त कवि को दूराम अपनी लोक भाषा में ही छत्तीसगढ़िया जनता को जगाने का कार्य करतें हैं। चलो जेल संगवारी उनकी ऐसी ही रचना हैं -

"अपन देश आजाद करे बर, चलो जेल संगवारी
कतको झिनमन चलदेइन, आइस अबह मरो पारी है"

अंग्रेज इस देश में व्यापारी बनकर आये थे। 'अपनी फूट डालो, शासन करो' नीति से देश में साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहे। हमें ऐसा लगता है कि 565 रियासतों में बटा यह देश, ऐसा था कि राजा अपनी-अपनी रियासतों में सिमटे एक दूसरे से कटे - कटे रहते थे, यह दृश्य अंग्रेज व्यापारियों ने देखा हो गात भी उनके जेहन में यह विचार आया होगा कि पहले ही ये लोग एकदूसरे से कटे - कटे, एक-दूसरे से लड़ते रहते हैं। उनको आपस में लड़ाना आसान है। इसतरह उनको लड़ाकर स्वयं शासक बन गये। परन्तु आज आवश्यकता है कि देशवासी समझें कि बहुत ही मुश्किलों से प्राप्त यह आजादी हमारे लिए बहुमूल्य है। इसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। आज की पीढ़ी को समझना, बताना होगा कि आजादी के लिए कितने कष्ट हमारे पूर्वजों ने सहे हैं। अपने और अपने समाज के लिए ईमानदारी से कार्य करना ही सच्ची देशभक्ति है। को दूराम कवि चाहतेहैं कि हमारा गणतंत्र अमर रहे -

"फूलय फलय स्वर्ग बनजावय हिन्द देश ये प्यारा
'गणतन्तर हो अमर' सदा हम इ हिचलगाई नारा"

गणतंत्र अमर रहे के साथ ही स्वंत्रता के लिए सदैव प्राणों की आहुति देने को तत्पर कवि का कहना है-

"हमर तिरंगा झंडा भैया फहरावै असमान
येकर शान रखे खातिर हम, देबो अपनपरान"

कवि अपनी देश भक्ति की भावना को जनजागरण की कविता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे मंचीय कवि भी थे। श्रोताओं के मध्य जब वे अपनी समाजहित की कविताओं का पाठ करते थे तो सारा जनमानस उनकी एक-एक पंक्तियों में झूम-झूम कर उनके समर्थन में दाद देता था। छत्तीसगढ़ जैसे पिछड़े क्षेत्र में स्वच्छता, जल, ग्राम सुधार के महत्व को भी बताते है -

"निरमल जल खातिर लकठामा
कुँआ गहिर कोड़वाबो
तरिया के गंदा पानी पियई
सबके छोड़वाबो
डबरा -खंचवा पाटपुटा के
मंग सास बोभगाबो
जी लेवा मलेरिया जरले
छुटकारा हम पाबो"।

को दूराम दलित एक सचेतक रचनाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनकी रचना में राष्ट्रीय चेतना के स्वरमुखरित है। ऐसे रचनाकार को यह प्रांतक भी नहीं भूलेगा। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से छत्तीसगढ़ प्रांत को अमूल्य निधि सौंपी है उसे हमे संजोकर रखना है।

संदर्भग्रंथ

1. सं. लक्ष्मण मस्तुरिया, अरुण कुमार निगम-बहुजनहिताय बहुजन सुखाय, सागर प्रिंटर्स सन् 2000, भूमिका से
2. कोदूराम दलित - बहुजन हितायबहुजन सुखाय, सागरप्रिंटर्स, सन् 2000, पृ. 10
3. -----वहीं----- पृ. 11
4. -----वहीं----- पृ. 10
5. -----वहीं----- पृ. 11
6. -----वहीं----- पृ. 46
7. कोदूराम दलित - छन्नर - छन्तरपैरीबाजय-सं. नंदकिशोर तिवारी-छत्तीसगढ़ी साहित्य परिषद बिलासपुर 2007-पृ. 51
8. -----वहीं----- पृ. 34
9. -----वहीं----- पृ. 30

हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में बिहार के लेखकों का योगदान

डॉ० निवेदिता कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जे.एम.डी.पी.एल. महिला कॉलेज, मधुबनी

हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में बिहार के साहित्यकारों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम में बिहार के सपूतों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया, यही वह समय था, जब हिन्दी साहित्य का नया रूप स्थापित हो रहा था, हिन्दी खड़ी बोली का रूप परिमार्जित हो रहा था एवं काव्य से इतर अन्य विधाओं में भी रचनाएँ होने लगी, हिन्दी गद्य का विकास हुआ उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, रेखाचित्र, यात्रावृतांत, रिपोर्ताज, पत्रकारिता, आत्मकथा आदि विधाएँ उभर कर सामने आने लगी।

बिहार की पावन धरती पर विश्व प्रसिद्ध कई धर्म गुरूओं, सिद्धों, संतों और महान विभूतियों का जन्म हुआ है, जिन्होंने अध्यात्म और जीवन से सम्बन्धित अपने उपदेश एवं विचारों से सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन किया है और उनका साहित्य भी बहुत उच्च कोटि का है, इनमें प्रमुख नाम है महावीर जैन, भगवान बुद्ध, सरहप्पा, गुरू गोविंद सिंह, महर्षि मेंही दास आदि। इतना ही नहीं देवभाषा संकृत के रचनाकारों में भी बिहार मे जन्म लेनेवाले रचनाकारों का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है, कादम्बरी, हर्षचरित, चंडीशतक के रचयिता बाणभट्ट का जन्म बिहार के छपरा जिला में हुआ था कुछ विद्वानों का मानना है कि अर्थशास्त्र के रचयिता चाणक्य का जन्म बिहार में हुआ था और कुछ विद्वानों का मानना है कि उनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ था पर अर्थशास्त्र की रचना बिहार में हुईय "कामसूत्र" के रचयिता वात्स्यायन भी बिहार से थे। सम्पूर्ण विश्व को शून्य का ज्ञान देनेवाले आर्यभट्टतंत्र के रचयिता आर्यभट्ट भी बिहार के थे इतना ही नहीं आदि शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करनेवाले मंडन मिश्र सहरसा जिला के महेषी गाँव के थे, जो बिहार का गौरव है। इस तरह हम देखते हैं कि इतिहास गवाह है कि बिहार की भागेदारी साहित्य रचना में बराबर से हुई है चाहे वह संस्कृत साहित्य हो पालि, प्राकृत साहित्य हो, अवहट्ट साहित्य हो या बंगला साहित्य हो, मनिहारी, कटिहार में जन्मे बनफूल के उपन्यासों और कहानियों की धूम बंगाल में खासी चर्चा में है, उनकी कहानियों और उपन्यासों पर फिल्में भी बन चुकी हैं।

मैथिल कोकिल विद्यापति का जन्म दरभंगा जिले के विस्फी ग्राम में हुआ था। कीर्तिलता कीर्तिपताका, विद्यापति पदावली आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, आदिकाल की प्रथम गद्य रचना मैथिली कवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर की रचना "वर्णरत्नाकर" को माना जाता है। अवहट्ट शब्द का ज्ञान इसी पुस्तक में पहली बार हुआ है। जब खड़ी बोली हिन्दी का प्रचार प्रसार बढ़ने लगा और उसमे धड़ल्ले से रचनाएँ होने लगी तो बिहार के साहित्यकारों ने भी बढ़-चढ़ कर इसमे भाग लिया और हिन्दी की दशा में भी सुधार किया और विकास के पथ पर उसे आगे बढ़ाया। जॉन गिलक्राइस्ट के निर्देशन में फोर्ट विलियम कॉलेज मे चार लेखकों के द्वारा हिन्दी गद्य की रचनाएँ की गई, जिनके नाम है मुंशी सदासुख लाल, मुंशी इंशा अल्ला खाँ, लल्लू लाल और सदल मिश्र। सदल मिश्र आरा, बिहार के रहलेवाले थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है:- ''सदल मिश्र की भाषा अधिक व्यावहारिक और सुथरी है। पण्डितजी आरा (बिहार) के निवासी थे, इसलिए स्वभावत: उनकी भाषा मे पूरबी प्रयोग मिलते हैं। फिर भी उनकी भाषा में अधिक प्रवाह है और वह परवर्ती साहित्य-भाषा का अच्छा मार्गदर्शक कही जा सकती है।"[1] पं0 सदल मिश्र की रचनाओं मे नासिकेतोपाख्यान में नचिकेता की कथा चंद्रावली, राम चरित्र आदि प्रमुख हैं, इनके अलावा उन्होने कई ग्रंथों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

हिन्दी के प्रचार प्रसार में इन लेखकों का बड़ा योगदान रहा है, उन्होंने भाषा का रूप परिमार्जित कर उसे सुव्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया है। ''हिन्दी भाषा को आधुनिक रूप देने मे ईसाई मिशनरियों का महत्वपूर्ण हाथ है।"[2] अंग्रेजों ने ईसाई मत के प्रचार के लिए ईसाई धर्म की पुस्तकों का कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराया और हिन्दी के प्रचार प्रसार पर भी जोर दिया।

भारतेंदु युग में हिन्दी के विकास पर बहुत जोर दिया गया है:- "शैली-विकास की दृष्टि मे इतना वैविध्य और इतनी सजीवता परवर्ती युग मे नही देखी गई।"[3]

देवकीनंदन खत्री का जन्म 18 जून, 1861 को समस्तीपुर बिहार मे हुआ था, उनकी रचनाओं में चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति, कुसुम कुमारी, भूतनाथ, काजर की कोठरी आदि प्रमुख है। हिन्दी में तिलस्मी ऐयारी की रचनाएँ प्रथमत: उन्होंने ही की है।

शाह अजीमाबादी का जन्म 1846 में पटना बिहार में हुआ और उन्होंने "बिहार का इतिहास" लिखा है।

यह ऐसा समय था, जब भारत की राजनैतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में कई बदलाव लाने का प्रयास जारी था। देश की रक्षा और भाषा की सुरक्षा का उत्तरदायित्व कलम के इन सिपाहियों ने अपने कंधे पर उठा लिया था और अपनी लेखनी से वस्तुस्थिति की गद्यात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा समाज मे मानवता का संचार कर उनकी खोई हुई आत्मसत्ता का विकास करने का प्रयास किया।

महान क्रांतिवीर कुँअर सिंह की धरती आरा, बक्सर जिला के सच्चे सपूत आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्म 9 अगस्त, 1893 मे हुआ। मतवाला, माधुरी से जुड़े रहे और लेखन के साथ-साथ सम्पादन का भी काम किया। गंगा जागरण, हिमालय, हिन्दी भाषा और साहित्य आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। उन्होंने "देहाती दुनिया" शीर्षक एक आंचलिक उपन्यास भी लिखा है। वैसे तो उन्होंने कई कहानियाँ लिखी है पर कहानी का प्लॉट और मुंडमाल बहुचर्चित कहानी है। कहानी का प्लॉटं की यह पंक्ति बहुत प्रसिद्ध हुई है "अमीरी की कब्र पर पनपी गरीबी की घास बड़ी जहरीली होती है।"[4] उन्हे भारत सरकार से पद्मभूषण की उपाधि 1960 ई0 में मिली।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह का जन्म 10 सितम्बर को 1890 मे शाहाबाद, बिहार में हुआ था, उनकी कहानियों में कानों में कंगना, चूड़ीहारिने आदि प्रसिद्ध है, उन्होने कई विधाओं में रचनाएँ की है, उनमें राम रहीम, पुरूषनारी, चुम्बनचाँटा आदि प्रसिद्ध उपन्यास है।

उत्तर बिहार के पूर्णियाँ जिले के रूपसपुर गाँव में 18 जून 1906 में जन्मे लक्ष्मीनारायण सुधांशु एक महान साहित्यकार और क्रांतिकारी थे, बिहार की राजनीति से जुड़े रहे और उन्होंने हिन्दी साहित्य की कई रचनाओं से समृद्ध किया है।

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितम्बर, 1908 को सिमरिया बेगूसराय बिहार में हुआ था, उन्होंने जितनी उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ की है उतनी ही उत्कृष्ट गद्य रचनाएँ भी की है, संस्कृति के चार अध्याय, भारत की सांस्कृतिक एकता, अर्द्धनारीश्वर आदि उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है, वह एक महान शिक्षाविद भी थे। हारे को हरिनाम भी ख्यातिलब्ध रचना है।

जनार्दन प्रसाद झा "द्विज" का जन्म 4 मई, 1904 में भागलपुर बिहार में हुआ था। वह पूर्णियाँ में रहते थे और विश्व वेदना उनकी प्रमुख रचना है। उन्होने गद्य में भी बहुत रचनाएँ की है। कहानियाँ भी लिखी है और आलोचना भी। वे तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते रहे, राजनीति मे सक्रिय रहे।

हिन्दी साहित्य में आंचलिक कथाकार बनकर उभरे फणीश्वर नाथ रेणु, जिनका जन्म 4 मार्च, 1927 को औराही हिंगना, अररिया में हुआ था। बिहार की राजनीति और नेपाल की राजनीति दोंनो में सक्रिय भूमिका निभाते रहे क्योंकि अररिया जिला बिहार का सीमावर्ती जिला है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के साथ क्रांति करते रहे। मैला आँचल, परती परीकथा, जुलूस, पल्टू बाबू, दीर्घतपा कथा आदि कई उपन्यास उन्होंने लिखा है। मैला आँचल पर डॉक्टर बाबू फिल्म बनी है, उनकी प्रसिद्ध कहानी मारे गए गुलफाम पर "तीसरी कसम" फिल्म बनी है। इनकी कहानी ठेस, पंचलाईट, नित्यलीला आदि प्रमुख है। इन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म 23 दिसम्बर, 1899 को मुजफ्फरपुर बिहार में हुआ था। बेनीपुरी किसान महासभा से जुड़े थे, स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय थे। उनकी रचनाओं मे उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, रेखाचित्र आदि अनेक विधाएँ देखने को मिलती है। लालतारा, पतितों के देश में, माटी की मूरत, सुभान खाँ आदि बहुचर्चित हैं। सहरसा जिला में जन्मे राजकमल चौधरी की रचनाओं मे आदिकथा, फूलपत्थर एवं आंदोलन उनका चर्चित उपन्यास है।

बाबा नागार्जुन का जन्म 30 जून, 1911 को सतलखा दरभंगा मे हुआ था, वह मैथिली और हिन्दी दोंनो भाषाओं के प्रसिद्ध लेखक और कवि हुए हैं। उनकी रचनाओं की सपाटब्यानी देखते ही बनती है, जिन्हें शासन की बंदूक का भी भय नहीं है। "बलचनामा", रतिनाम की चाची, बटेसरनाथ, हजार बाँहोंवाली, पारो आदि उनकी प्रमुख गद्य रचनाएँ है। लेखक, सम्पादक उदयराज सिंह का जन्म 5 सितम्बर, 1921 को सूर्यपूरा (शाहाबाद) बिहार में हुआ था। वह अपने छात्रजीवन में ही हाथों से लिख कर पत्रिका निकालते थे, उनकी पत्रिका का नाम "विकास" और सौरभ था बाद में उन्होंने "नईधारा" का सम्पादन किया, जो आज भी पटना से प्रकाशित होती है। उन्होने कई उपन्यास लिखे हैं, जिनमें कुहासा और आकृतियाँ, अधूरी नारी, रोहिणी, भागते किनारे, भूदानी सोनिया, ऊजाले के बीच आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों का संग्रह उदयराज सिंह की कहानियाँ भाग-I उदयराज सिंह की कहानियाँ भाग-II और संस्मरण, यात्रा, वृतांत, स्केच आदि भी है।

देश के पहले राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद भी कई रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है, उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं:- इंडिया डिवाईडेड, चम्पारण मे सत्याग्रह, बापू के कदमों में आदि। उनका जन्म 1884 मे चम्पारण में हुआ था।

डॉ0 कुमार विमल, केसरी कुमार, नलिन विलोचन शर्मा, श्याम नंदन किशोर, देवेन्द्र नाथ शर्मा, अवधेश्वर अरूण आदि प्रसिद्ध आलोचक लेखक, कवि और सम्पादक हुए हैं, इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। डॉ0 वचन देव कुमार, श्री हरि दामोदर, रामधारी सिंह दिवाकर, अनूप लाल मंडल, चंद्र किशोर जायसवाल, महेन्द्र मलंगिया, आरसी प्रसाद सिंह, पद्मश्री उषा किरण खान, शिवनारायण, मनोज कुमार झा, विभा रानी आदि ऐसे कथाकार हैं, जो बिहार के साहित्यकारों में सदैव याद किये जायेंगे। हो सकता है किसी का नाम छूट गया हो।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में बिहार के साहित्यकारों का आरम्भिक काल से आज तक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। जिनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास के पन्नों पर अंकित रहेगा।

सहायक ग्रंथः-

1. हिन्दी साहित्य उदभव और विकास हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ0 215
2. वही पृ0 216
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं0 नगेन्द्र पृ0 494
4. कहानी का प्लॉट-आचार्य शिवपूजन सहाय

संत रैदासः मिथक किंवदंती और प्रक्षेप

सिद्धार्थ कुमार

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, शिवहर्ष किसान पी जी कॉलेज, बस्ती

मध्यकालीन संत परंपरा में रैदास बड़े पहुंचे हुए एवं ज्ञानी संत थे। संत रैदास ऐतिहासिक व्यक्ति हैं लेकिन सामंतवादी व्यवस्था की विचारधारा के लोगों ने उन्हें ऐतिहासिक नहीं रहने दिया। ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने संत रैदास के जीवन को मिथकों, किंवदंतियो, प्रक्षेपों और बहुत सारे चमत्कारों से ढक दिया है। किसी भी महापुरुष के विषय में समाज में विभिन्न मिथक एवं किंवदंतियां खड़ी कर देना उसे समय की आम बात थी। सामंतवादी व्यवस्था का डटकर सामना भारतीय दलित संतों ने किया तो यह उनका तनिक भी रास नहीं आया जिसे सभी संतो के बारे में प्रक्षेप रचे गए। संत कबीर की तरह ही संत रैदास जीवन को भी प्राक्षेपित किया गया। संत रैदास के ऊपर घटनाओं की किंवदंतियां जनश्रुतियां और मिथकों का जिक्र डॉक्टर धर्मवीर ने अपनी पुस्तक में किया है:

1. रैदास पूर्व जन्म.....में रामानन्द का ब्रह्मचारी शिष्य,
2. अपराध के कारण स्थापित होकर रैदास के रूप में चर्मकार घर में जन्म, दूध न पीना, रामानंद का शिष्यत्व
3. पिछवाड़े में झोपड़ी
4. साधुवेश में केशव (कृष्ण) द्वारा पारसमणि का दिया जाना।
5. काशी में ब्राह्मणों से विवाद के समय ठाकुर सिंहासन का रैदास की गोद में आना ठाकुरों के सिंहासन के नीचे से सुवर्ण मुद्राओं की प्राप्ति।
6. प्रयाग में कुंभ पर ठाकुर सिंहासन का गंगा में तैरना
7. चित्तौड़ की झाली रानी द्वारा रैदास शिष्यत्व एवं चित्तौड़ में ब्रह्म भोज के समय रैदास का वक्षस्थल चीरकर स्वर्ण जनेऊ दिखाना और भौतिक शरीर का त्याग।[1]

इसके अलावे भी साथ संत स्वभाव से संबंधित बहुत सारी किंवदंतियां भरी पड़ी हैं डॉक्टर एन सिंह ने रामानंद शास्त्री के हवाले से लिखा कि- "जनश्रुतियों के विकास में श्रद्धा और घृणा की मानवीय प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा से प्रशंसा तथा घृणा से अप्रशंसा का उद्‌गम माना जा सकता है। किसी व्यक्ति के संबंध में चाहे वह संत हो, राजा हो, बहादुर या समाजसेवी हो उसके समर्थकों द्वारा प्रशंसा तथा विरोधियों द्वारा निंदा की बातें होना स्वाभाविक है और यह स्वाभाविक मानव प्रवृत्ति की जनश्रुतियों, किंवदंतियों, दंत कथाओं एवम लोक कथाओं के विकास की प्राथमिक दशा है।[2] यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि यदि किसी बात को किसी बड़े व्यक्ति से जोड़कर कहा जाए, तो वह ज्यादा असर करती है। संभवतः महापुरुषों के महत्व को प्रतिपादित करने वाली जनश्रुतियां इस कारण से भी जन्मी है[3] डॉ योगेंद्र सिंह ने अपनी पुस्तक में किंवदंतियों को जनश्रुतियां कहकर संबोधित किया और वे इसे तीन श्रेणियां में रखते हैं- पहले में उन्होंने उच्च वंशी ब्राह्मण दूसरे में रैदास के स्वभाव का परिचय और तीसरे में वे उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में सम्मिलित होने का वर्णन किया है।[4] योगेंद्र सिंह ने किंवदंतियों का न तो कोई तार्किक आधार दिया है, और न ही कोई ठोस प्रमाण मिलता है लेकिन आगे देखा जा सकता है कि कितनी कपोल कल्पना इनके बारे में गढ़ी गई हैं।

रैदास का पूर्व जन्म में ब्राह्मण होनाः किंवदंतीः

संत रैदास के विषय में ब्राह्मण ग्रंथों में मिथक एवं किंवदंती जोर-शोर से रची गई हैं। इस विषय में सबसे पहले भविष्य पुराण में यह कथा देखी जाती है कथा इस प्रकार है कि- एक बार शनि, राहु, केतु के अत्याचार पापाचार को दूर करने के लिए सूर्य ने अपने दो पुत्रों को पृथ्वी पर भेजो। पहला पुत्र इड़ापति कसाई के घर सधना नाम से अवतरित हुआ। दूसरा पिंगलापति मानदास चर्मकार के घर जन्म लेकर रैदास के नाम से विख्यात हुआ। रैदास ने काशी जाकर राम भक्त कबीर को वाद विवाद में पराजित किया और फिर वह शंकराचार्य के पास आया। दोनों में एक दिन और एक रात निरंतर शास्त्रार्थ होता रहा। अंत में पराजित होकर रविदास रामानंद के पास गए और उनके शिष्य बन गए।[5] इस कथा में तो रैदास को सूर्यवंशी जन्मना सिद्ध किया गया और कबीर को रैदास का विरोधी बताया गया। जबकि मध्यकाल में कबीर और रैदास का अपना समाज था। दोनों घरबारी व्यक्ति थे। दोनों में अपने समाज के प्रति प्रेम और लगाव था यहां पर ब्राह्मणी मानसिकता ने समाज को आपस में लड़ने का कार्य किया लेकिन वह इस कार्य में असफल नजर आते हैं।

'भक्तमाल' में रैदास को पूर्वजन्म का ब्राह्मण बताते हुए कथा इस प्रकार दी गई है- स्वामी रामानंद का एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी शिष्य था। वह गुरु की सेवा करता था और भिक्षा मांगकर तथा उस सामग्री से भोजन बनाकर उन्हें खिलाया करता था। कुटी के पास ही एक बनिया रहता था। उसने स्वामी रामानन्द जी से अनेक बार भिक्षा लेने के लिए कहा, किन्तु स्वामी रामानंद कभी स्वयं उनके यहां से भिक्षा नहीं ली और शिष्यों को भी उसके यहां से भिक्षा लेने के लिए मना कर दिया था। एक दिन वर्षा होने के कारण शिष्य भिक्षा लेने के लिए बाहर न जा सका और कुटी के पास रहने वाले उसी बनिये के यहां से भीख ले ली। उसी भिक्षा से तैयार हुई सामग्री से जब रामानंद जी भोग लगाने बैठे तो उनके ध्यान में भगवान की मूर्ति नहीं आयी। स्वामी जी ने ज्ञात किया तो इसका कारण स्पष्ट हुआ कि भोग का अन्न उसी बनिये के यहां से आया था, जिसके यहां से भिक्षा ग्रहण नहीं करते थे। छानबीन करने पर पता चला

कि वह बनिया एक चर्मकार के साथ व्यापार करता था। स्वामी जी को भोग के समय भगवान के ध्यान में न आने का सम्पूर्ण कारण स्पष्ट हो गया और उन्होंने उस शिष्य को शॉप दिया कि तू चमार के घर जन्म लेगा और स्वामी के उस ब्राह्मण ब्रह्मचारी शिष्य ने चमार के घर जन्म लिया। तब आकाशवाणी द्वारा स्वामी रामानन्द जी ने अपने ब्रह्मचारी शिष्य के जन्म लेने की बात जानी, उन्होंने जाकर उपदेश दिया और तब उसने स्तनपान किया। रविवार को जन्म लेने के कारण स्वामी रामानन्द जी ने बालक का नाम रैदास रखा।[6]

रैदास के विषय में यह में यह किंवदंती द्विजों द्वारा रची गई है, अपने आप को श्रेष्ठ दिखाने के लिए। जबकि सदियों से यह परम्परा द्विजों की रहीं। मांगकर खाने का कार्य तो उनका है। और वो बड़े गर्व से कहते भी हैं कि अगर ब्राह्मण को नहीं दोगे तो पाप लगेगा। यह फोबिया (डर) भर दिया गया है। यह कथा बिल्कुल प्रक्षिप्त है रैदास के ऊपर जबरजस्ती मढ़ी गई है, संत कमाकर खाने वाले लोग थे। सन्त कभी किसी पर आश्रित नहीं थे। स्वयं के परिश्रम पर भरोसा करते थे उसी से अपने जीवन का भरण पोषण करते थे।

उपर्युक्त किंवदंती से स्पष्ट समझ आ रहा कि द्विजों ने रामानन्द के किसी लंपट ब्राह्मण शिष्य की कथा को जबरन संत रैदास के सिरे मढ़ा है। हो सकता है कि कोई ब्राह्मण शिष्य रहा हो जो ये कार्य करता रहा हो लेकिन रैदास तो कदापि नहीं। किसी का पुनर्जन्म नहीं होता। कोई ब्राह्मण किसी दलित को शिष्य नहीं बना सकता यह इन्हीं के पुराणों में बहुत सारी कथाएं वर्णित हैं जिससे पता चलता है कि रामानन्द ब्राह्मण किसी दलित को क्यों शिक्षा देगा?

डॉ धर्मवीर कहते हैं कि -मूर्तियां न तो प्रसाद स्वीकार करती हैं न इनकार करती हैं। तुम जाकर किसी भी मूर्ति पर कुछ भी चढ़ा कर देख लो कोई मूर्ति न तो प्रसाद लेती है न स्वीकार करती है मूर्ति मूर्ति है, मुर्दा है।[7] रही बात बनिया की तो बनिया एक कारोबारी व्यक्ति है उसे धंधा करना है फिर वह जाति-पाति देखकर करेगा तो खाएगा क्या? डॉक्टर धर्मवीर लिखते हैं-किसी बनिए का कारोबार चमार से है! अब बनिया तो बचेगा सबको बेचेगा- चमार को भी बेचेगा, भंगी को भी बेचेगा जो भी आएगा उसे भी बचेगा। दुकानदार को तो दुकान चलाने हैं। और वह पूछता थोड़े ही फिरेगा कि कौन चमार है कौन भंगी है कौन क्या है? उसको चीज बेचनी हैं।[8]

रैदास और संत परंपरा के सारे कवियों ने पूर्व जन्म और पुनर्जन्म को खारिज किया है जबकि इस किंवदंती में उनके जन्म को पूर्वजन्म से जोड़ा गया है। मांस खाकर चमार जाति में उत्पन्न होना ही बकवास है। यदि एक बार ही मांस खाने से ब्राह्मण अगले जन्म में चमार बन जाता है तो आज के समय में कोई ब्राह्मण बचना ही नहीं चाहिए था। तमाम पुराने ग्रंथ साक्षी हैं कि सतयुग में सभी मांस खाया करते थे। इस आधार पर तो सभी ब्राह्मण चमार बन जाते हैं और मंदिरों में सारे पुरोहित चमार ही होते। अश्वमेध यज्ञ कई महीनो तक चलता था जहां ऋषिगण यज्ञ में काटे गए पशुओं के मांस के लिए झगड़ा करने लगते थे। ऋषिगण चमार नहीं हुई तो अकेले यह किंवदंती रैदास के लिए क्यों?[9]

उपर्युक्त कथा के अनुसार रैदास ने चमार के घर भिक्षा लाकर गुरु रामानंद को खिला दिया था जिससे उनका ध्यान नहीं लगा और उन्होंने शाप देकर रैदास को चमार के घर पैदा कर दिया। वास्तव में ऐसी कथाएं सिर्फ दलित जातियां को पापी सिद्ध करने के लिए मढ़ी गई है। चमार जाति भी मानव की एक जाति है फिर उसका अन्य खाकर भगवान की भक्ति क्यों नहीं कर सकता। जिस आदमी का मन चमार के घर का अन्य खाने मात्र से उचट जाता हो, वह संत कैसे हो सकता है? यदि दलित के अन्य में ही दोष है तो फिर रैदास को संत शिरोमणि की उपाधि कैसे मिल गई। रामानंद की भक्ति एक दिन दलित का भोजन करने से नष्ट हो गई जबकि रैदास तो रोज ही वहीं अन्य खाते रहें। उनकी क्यों नहीं नष्ट हुई? इसलिए सिद्ध होता है कि कोड चमार के अन्य में नहीं बल्कि रामानंद जैसे वैष्णव के दिमाग में है या ऐसे वैष्णवी आलोचकों में।[10]

गंगा द्वारा रैदास को सोने का कंगन देना: किंवदंती:

अगली किंवदंती में योगेन्द्र सिंह ने गंगा द्वारा रैदास को सुपारी लेने और सोने के कंगन देने की बात कही है। कथा इस प्रकार है- एक ब्राह्मण नित्य ही राजा की ओर से गंगा की पूजा करने जाता था।... उसको एक सुपारी देकर प्रार्थना की कि वह रैदास की ओर से वह सुपारी गंगा को चढ़ा दें।... सुपारी गंगा में फेंकने ही जा रहा था की लहरों के बीच में से स्वयं गंगा प्रकट हुई और... रैदास को देने के लिए सोने का कंगन दिया। पुरस्कार प्राप्त करने की कामना से उसने वह कंगन रानी को दे दिया।... अंत में राजा को ब्राह्मण पर क्रोध आया उसने ब्राह्मण को आदेश दिया कि जहां से वह पहला कंगन लाया है वहीं से दूसरा भी लाकर दे अन्यथा उसको मृत्युदंड दिया जाएगा।.. रैदास ने ब्राह्मण को क्षमा कर दिया और अपनी कुटी के पास ही बने कुंड के किनारे पर जाकर गंगा की स्तुति की। कहा जाता है कि कुंड में से गंगा ने प्रकट होकर बहुत सारे कंगन दिए किंतु रैदास ने उनमें से केवल एक कंगन लेकर राजा को दे दिया। दूसरा कंगन पाकर रानी का स्वास्थ्य ठीक हो गया बाद में राजा और रानी दोनों ही रैदास के शिष्य हुए।

मध्यकाल में कबीर और रैदास दोनों महान कवि वर्णाश्रमी समाज व्यवस्था के अंधविश्वासों से टक्कर लेते हुए श्रमण समाज व्यवस्था स्थापित करना चाह रहे थे और उन्हीं के लिए किंवदंती गढ़ी जा रही है कि गंगा में सुपारी चढ़ाने के लिए दिए। रैदास अपनी बानियों मैं कहीं भी गंगा नदी को पवित्र कहते हुए नहीं पाए जा रहे हैं। बल्कि अपने मन की पवित्रता को महत्व देते हुए मन चंगा त कठौती में गंगा की बात करते है। गंगा का एक हाथ से सुपारी लेना और फिर एक कंगन देना भी सोचनीय है। इतने सालों से गंगा पूजन चल रहा है किंतु रैदास के बाद आज तक गंगा किसी भी भक्त के लिए साक्षात नहीं दिखी। यदि इस कहावत के अनुसार गंगा एक स्त्री है तो गंगा में निर्दोष डूबने वाले बालकों को तो हाथ से बाहर कर ही देना चाहिए। सत्य तो यह है की गंगा हमारी मां जैसी है जो सदियों से भारत भूमि को रेगिस्तान नहीं बनने देती इस तरह भारत की सभी नदियां वहां के स्थानिकों की मां है।[11]

योगेंद्र सिंह लिखते हैं कि- चित्तौड़गढ़ की झाला रानी के आमंत्रण पर रैदास चित्तौड़गढ़ भी गए थे। वहां पर रानी ने उनके सम्मान में एक बहुत बड़ा भोज किया था।.. रानी के इस भोज में ब्राह्मणों ने भोजन करने से इनकार कर दिया क्योंकि यह भोज एक अछूत के सम्मान में दिया गया था। रानी ने रैदास की सहमत से इन सभी ब्राह्मणों के लिए अलग से सीधे की व्यवस्था कर दी।... जब यह ब्राह्मण खाने बैठे तब उनको अपने में से प्रत्येक के बीच रैदास हर एक के बगल में बैठे दिखाई दिए। अंत में वे सभी ब्राह्मण लज्जित हुए और उन्होंने रैदास के प्रभाव को समझकर उनसे क्षमा मांगी।... उसके पश्चात ब्राह्मणों की उनके प्रति लगातार उपेक्षा तथा अपमान पूर्ण व्यवहार से अत्यंत दुखी हुए थे, और अंत में उन्होंने अपने सीने को चीरकर नीचे से सोने का यज्ञोपवीत

ब्राह्मणों को दिखाकर अपने पूर्व जन्म में ब्राह्मण होने का प्रमाण दिया था।... उस समय जनेऊ तथा शरीर से इतनी तीव्र ज्योति दृष्टिगोचर हुई थी कि सभी की आंखे चौंध कर बंद हो गई रैदास उसी समय लीन हो गए थे।[12]

यह किंवदंती संत रैदास को मृत्युदंड दिए जाने का संकेत करती है। डॉ धर्मवीर ने लिखा- मीराबाई को कोई गुरु नहीं मिल रहा था। उन्हें कोई भी ब्राह्मण गुरु अपनी शिष्या नहीं बनाता था। उस युग में भी एक स्त्री को धार्मिक शिष्या बनाने का काम चमार कुल में उत्पन्न रैदास ही कर सके थे। इस बात से मीराबाई के परिवार वाले बहुत दुखी थे। उन्होंने मीराबाई को अनेक कष्ट दिए थे। ऐसा नहीं हो सकता कि मीराबाई को दुख देने वालों ने मीरा के गुरु और धार्मिक रक्षक रैदास को दुख न दिए होंगे। दूसरे, रैदास का राजस्थान के राज परिवारों में प्रभाव बढ़ता जा रहा था। मेड़ता की एक अन्य राजकुमारी ने भी रैदास से दीक्षा ली थी। रानी झाली भी उनकी शिष्या कही गई हैं।[13] इससे यह पता चलता है कि रैदास के प्रभाव को रोकने के लिए रानी झाली के विरोधियों ने इस तरह का षड्यंत्र रचा होगा। सबसे पहली बात यह है कि चाहे कोई देवता हो या संत कभी किसी के शरीर के अंदर जनेऊ नहीं पाया गया। रैदास ने तो वाह्याचारों की हमेशा निंदा ही की है। इस तरह की कथा का कुल आशा यही है कि विद्वान सिर्फ ब्राह्मणों में ही पैदा होते हैं। दलितों में हीन भावना भरने का भाव है कि उनमें कोई विद्वान और महान हो ही नहीं सकता। जबकि मध्यकालीन संतों में लगभग सभी निम्न वर्ग से ही आते थे जो इतनी तर्क पूर्ण बाते कहकर चले गए। इसी तरह की और भी बहुत सारी किंवदंतियां रैदास से संबंधित है जो इन्हें वैष्णव परंपरा से सिद्ध करने का नाकाम प्रयास है

सन्दर्भः

1. डॉ धर्मवीर, महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 481-482
2. डॉ. एन सिंह, संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली (वाणी) संस्करण 2015, पृष्ठ 65
3. वही
4. योगेंद्र सिंह, संत रैदास,लोक भारतीय प्रकाशन, पेपर बैक्स प्रयागराज, पंचम पेपर बैक संस्करण, पृष्ठ 175
5. डॉ. एन सिंह, संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली (वाणी) संस्करण 2015, पृष्ठ 66
6. वही, पृष्ठ 66-67
7. डॉ धर्मवीर, महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 486
8. वही, 486
9. डॉ.दीनानाथ, भारतीयता की परिकल्पना और दलित विमर्श, साहित्य भंडार, प्रयागराज, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ 86
10. वही
11. वही, पृष्ठ 89
12. योगेंद्र सिंह, संत रैदास,लोक भारतीय प्रकाशन, पेपर बैक्स प्रयागराज, पंचम पेपर बैक संस्करण, 180
13. डॉ. धर्मवीर, संत रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 67

उत्तराखण्ड के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान

डॉ० दीपा पंत

असिस्टेंट, प्रोफेसर, हिन्दी, रा०स्ना०महा०बेरीनाग, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

सारांश- अपनी नैसर्गिक सुंदरता के लिए जाना जाने वाला राज्य 'उत्तराखण्ड' विश्व भर में प्रसिद्ध है। यहां की नैसर्गिक सुंदरता में लेखकों ने ऐसा लिखा, जो सदियों तक जीवंत रहेगा। छोटे से पहाड़ी राज्य उत्तराखण्ड ने देश को पद्म भूषण, पद्मश्री, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कई कवि और लेखक दिए हैं। आजादी के पूर्व से ही हमारे देश के कई साहित्यकारों ने जन-जन में हिन्दीभाषा के प्रयोग और उत्थान के लिए विशेष योगदान दिया है, जिसमें उत्तराखण्ड के भी कई साहित्यकारों ने अपने साहित्यिक कार्यों की वजह से न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाई है, इन साहित्यकारों ने हिन्दी की अलख जगाते हुए हिन्दी साहित्य लेखन के जरिए भाषा की सेवाभी की है। उत्तराखण्ड के इन महान साहित्यकारों की उपलब्धियों को विश्व भर में सराहा गया है।

बीजशब्द- अन्तर्राष्ट्रीय, अलख, संस्कृति, समीक्षा

प्रस्तावना- 28 राज्यों से बने भारत देश में सभी राज्यों का अपना महत्व है, हर राज्य की अपनी संस्कृति, बोली, भाषा और साहित्य है, इन राज्यों में से एक राज्य है उत्तराखण्ड, जो अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष के अन्य राज्यों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए खड़ा है। देवभूमि, अर्थात 'देवों की भूमि' के नाम से जाने, जाने वाले राज्य उत्तराखंड के साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारत को आजादी मिलने के दो साल बाद 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा में हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया इसके पश्चात् हर वर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। आजाद भारत में ही नहीं अपितु आजादी से पूर्व भी देश के कई साहित्यकारों ने जन-जन में हिन्दी भाषा के प्रयोग और उत्थान के लिए विशेष योगदान दिया है, जिसमें उत्तराखण्ड के साहित्यकारों का योगदान भी सराहनीय रहा है।

उत्तराखण्ड के प्रमुख साहित्यकारों में हिन्दी शिरोमणि सुमित्रानंदन पंत, मंगलेश डबराल, शैलेश मटियानी, मनोहर श्यामजोशी, गौरापंत 'शिवानी', विद्यासागर नौटियाल, चन्द्रकुंवर वर्त्वाल, भजन सिंह, आचार्य भाष्करानंद लोहनी, ललिता प्रसाद नैथानी, शेखर जोशी, इलाचंद्र जोशी, लीलाधर जगूडी, गिरीश तिवारी 'गिर्दा', वीरेनडंगवाल, रमेश पोखरियाल 'निशंक', डॉ० अजय सिंह रावत, अबोध बहुगुणा, गोविन्दचातक, बलवंतमनराल, राजेन्द्र धस्माना, आदि का नाम उल्लेखनीय है, इन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में व्याप्त ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डालने के साथ-साथ लोगों को जाग्रत करने का भी प्रयास किया।

"मानव हृदय को आलोकित करना ही साहित्य के मूल में है। समाज का कल्याण करना साहित्यकार का प्रथम दायित्व है और इस दायित्वपूर्ण चुनौति को साहित्यकार भली-भांति स्वीकार करता है।"[1] उत्तराखण्ड के साहित्यकार विशिष्ट प्रतिभा के धनी रहे हैं, संवेदनशीलता से युक्त होने पर भी ये सामाजिक चेतना को विस्मृत नहीं कर पाए हैं। अपनी रचना धर्मिता से इन्होंने जीवन की व्याख्या की है।

20 मई 1900 को कौसानी में जन्मे सुमित्रानंदन पंत हिन्दी साहित्य के छायावादी कवि हैं, इन्हें प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। सुमित्रानंदन पंत उत्तराखण्ड के एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्हें हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है, साथ ही इन्हें पद्मभूषण से भीविभूषित किया गया है, हिन्दी साहित्य में इनके अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। "मात्र सातवर्ष की अवस्था में इन्होंने कविताएं लिखना प्रारंभ कर दिया था। 1916 ई0 में इनकी पहली रचना प्रकाश में आई। वर्ष 1920 में इनकी रचनाएं 'उच्छवास' तथा 'ग्रंथि' में प्रकाशित हुई। सन् 1921 में महात्मा गांधी के आह्वान पर इन्होंने कालेज छोड़ दिया और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में कूद गये। सन् 1927 में 'वीणा' तथा 1928 में 'पल्लव' नामक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। वर्ष 1939 में कालाकांकर आकर इन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा से ओतप्रोत रचनाएं लिखी। इन्हे 'कला और बूढ़ा चांद 'पर साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 'चिदंबरा' पर 1969 में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिले।"[2] महाकाव्य 'लोकायतन' के लिए इन्हे 'सोवियत नेहरू शांति' पुरस्कार मिला।

आधुनिक काल के कवियों में युग दृष्टा कवि सुमित्रानंदन पंत सर्वोपरि हैं। इनसे पूर्वकूर्मांचल के हिन्दी कवियों ने महाकाव्य की रचना नहीं की थी, 'लोकायतन' और 'सत्यकाम' जैसे महाकाव्यों की रचनाकर पंत जी ने इस कमी को पूरा कर दिया। पंतजी के काव्य में उनकी परिवर्तनशील विचारधारा के दर्शन होते हैं। आरंभ में इन्होंने छायावादी कविता का खड़ीबोली से काव्य श्रृंगार किया। इन्होंने प्रकृति के मनोहर रूपों का ऐसा हदयग्राही चित्रण किया, जिसे पढ़कर पाठक आत्मविभोर हो उठता है। उनके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "छायावाद के भीतर माने जाने वाले सभी कवियों में प्रकृति के साथ सीधा प्रेमपंतजी का ही दिखाई देता है। "हिन्दी में जितने अधिक प्राकृतिक चित्र पंतजी ने दिए हैं, उतने शायद ही किसी दूसरे कवि द्वारा प्रदत्त हुए हैं। "पंत में प्रकृति प्रेम उत्कट रूप में मिलता है। उन्होंने प्रेम के सात्विक और पवित्र अनुभूति के आधार रूप नारी और प्रकृति-सौन्दर्य को लिया। युग के साथ बदलती हुई विचारधारा के अनुसार कवि राष्ट्र प्रेम और अन्ततः मानव प्रेम का वरण कर लेता है।"[3]

13 दिसम्बर 1902 ई0 में अल्मोड़ा के प्रतिष्ठित परिवार में जन्मे हिन्दी के मनोवैज्ञानिक कथाकार इलाचन्द जोशी हिन्दी साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। जोशी जी इतने प्रति भावान थे कि इन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने से पूर्व ही रामायण, महाभारत, कुमारसंभव, रघुवंशम, अभिज्ञान शाकुंतलम जैसी महानतम् कृतियों का अध्ययन कर लिया था, बाद में इन्होंने पाश्चात्य साहित्यकारों जॉन कीटस, शैली, वड्र्सवर्थ, टॉलस्टाय की रचनाओं का भी गहन अध्ययन किया। इन्हें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, और बंग्ला भाषा का अच्छा ज्ञान था। "सन् 1929 में इन्होंने सुधा नामक पत्रिका का संपादन शुरू किया। सन् 1936 ई0 में हिन्दी की प्रतिष्ठित संस्था साहित्य सम्मेलन प्रयोग की 'संगम' पत्रिका में संपादन कार्य करने के उपरांत हिन्दी के चर्चित साप्ताहिक 'धर्मयुग' में रहने के बाद ये आकाशवाणी में चले गये।"[4] हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में इलाचंद्र जोशी का नाम अग्रणी है। इन्होंने उपनिषदों की कथाएं, ऐतिहासिक कथाएं, गोर्की के संस्मरण, महापुरूषों की प्रेम कथाएं भी लिखी हैं। घृणामयी, पर्दे की रानी, सन्यासी, निर्वासित, प्रेत और छाया, मुक्तिपथ, सुबह के भूले, ऋतुचक्र, जहाज का पंछी इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। धूपरेखा, दीवाली व होली, आहुति, रोमांटिक छाया, खण्डहर की आत्मा, डायरी के नीरस पन्ने इनके कहानी संग्रह हैं। उपन्यासव कहानी संग्रह के अतिरिक्त इन्होंने निबंध और आलोचना ग्रंथ भी लिखे हैं। 'विजनवती' इनका एकमात्र कविता संग्रह है।

16 मई 1948 को काफल पानी (जनपद-टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड) में जन्मे मंगलेश डबरालजी ने अपनी रचनाओं के कारण समकालीन कविता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाई हैं। इनकी कविता उद्देश्यहीन अनन्त में नहीं भटकती, बल्कि लक्ष्य को दृष्टिपथ में रखकर आने वाले कल के साथ पूर्वा पर सम्बन्ध को जोड़ती चलती है। उन्होंने कविताएं तो लिखी ही साथ ही कहानियां और समीक्षाएं भी लिखी हैं। साहित्य के प्रति इनकी रूचि बचपन से ही रही है। ये आधुनिक युग की नवचेतना के कवि हैं, जीवन से जुड़ी छोटी-बड़ी घटनाओं को अपना प्रतिपाद्य बनाने वाले मंगलेश विश्वपटल पर अपनी धाक बनाए हुए हैं। मंगलेश डबरालजी के अब तक चार कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- पहाड़ परलालटेन, घर का रांस्ता, हम जो देखते हैं, और आवाज भी एक जगह है। 'पहाड़ पर लालटेन' नामक कविता संग्रह पर इन्हें राधाकृष्ण प्रकाशन की ओर से 'ओमप्रकाश साहित्य सम्मान' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उत्कृष्ट रचनाओं के लिए ये 'अकादमी पुरस्कार', 'पहल सम्मान' भी प्राप्त कर चुके हैं। डबरालजी की कविताओं में सामन्ती बोध एवं पूंजीवादी छल छद्म दोनों का प्रतिकार है। डॉ0 बी0 डी0 शर्मा ने लिखा है- "गढ़वाल अंचल में आई जागृति की किरणों से प्रकाशित नक्षत्रों की श्रेणी में मंगलेश डबराल का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं"।

1931 में अल्मोड़ा के बाड़े छीना में जन्मे शैलेश मटियानी उत्तराखण्ड राज्य के आंचलिक कथा कार थे। मटियानीजी का जीवन संघर्षों से भरा था, जीवन में कई कठिनाईयां आई लेकिन उन्होंने फिर भी हारन हीं मानी और आजीवन रचना कर्म में लीन रहे। इनके द्वारा 'विकल्प' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। मटियानी जी द्वारा लिखी गई 'महाभोज' कहानी के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा इन्हें 'प्रेमचंद' पुरस्कार व 'मुठभेड' उपन्यास के लिए 'फणीश्वरनाथ रेणु' पुरस्कार से नवाजा गया। 'पहाड़' पुस्तक में मटियानी जी के विषय में लिखा गया है- "शैलेश का मतलब हिन्दी का एक सर्वाधिक अनुभव संपन्न रचनाकार। मूलत: कथाकार कहानी विधा को एक भिन्न प्रकार की ताजगी देने वाला। कुछ कालजयी कहानियों को लिखने वाला। शैलेश का मतलब अगर विकल्प तथा जनपक्ष जैसी साहित्यिक और विचार पत्रिकाओं का संपादक-प्रकाश कहै तो राष्ट्र, राष्ट्रभाषा, संविधान, राष्ट्रगान आदि पर नए सिरे से सोचने को विवश करने वाला भी शैलेश का मतलब लेखकीय स्वायत्ता के मामल का सर्वोच्च न्यायालय तक ले जाने वाले रचनाकार से है और अपनी पैरवी खुद करने वाले वकील से भी। एक सतत्रचनारत और फिर भी अपनी सर्वोच्च रचना न रच सकने वाला, एक अत्यंत अतिथि सेवी, विनम्र, लेकिन जरूरत पड़ने पर उतना ही मुहफट और न बख्श ने वाला.....जिस का रास्ता चुनने से हर कोई कतराए गाले कि नहर कोई चाहेगा कि ऐसा रास्ता चुने।"[5]

उत्तराखंड आन्दोलन के जनक विगिरीश तिवारी 'गिर्दा' के शब्द सीधे लोगों के दिलों को छू जाते थे। गिर्दा के गीतों ने उत्तराखंड राज्य आंदोलन 'नशा नहीं रोजगार दो' ने आम जनता में नया जोश भर दिया था। सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए जितने मोर्चे उपलब्ध हैं गिर्दा सभी में सक्रिय रहे हैं। उनके गीतों के संबंध में 'मनुष्य की मुक्ति का जागर' लेख में मंगलेश डबरालजी लिखते हैं- "उनके गीत इतने लोक प्रिय हुए कि आज वे अपने रचनाकार से दूर अपनी एक स्वतंत्र सत्ता बना चुके हैं और लोक संस्कृति का हिस्सा बन चुके हैं। उनके गीतों के इस कालजयी स्वरूप को देखकर अनायास रवीन्द्रनाथ ठाकुर की याद आती है, जिन्होंने एक बार कहा था कि उनका सब कुछ भले ही नष्ट हो जाये, लेकिन उनके गीत बचे रहेंगे क्योंकि वे बांग्ला मानस के भीतर गहरे प्रवेश कर चुके हैं। हम जानते हैं कि गिर्दा को रवीन्द्रनाथ की तरह करीब दो ढाई हजार गीतों की रचना करने का अवसर नहीं मिला और न अस्सी वर्ष की उम्र नसीब हुई। लेकिन उनके गीत अपनी एक मिथकीयता और अपना एक रोमांच हासिल कर चुके हैं। ऐसा इसलिए भी हुआ कि गिर्दा अपने जनसमाज के भीतर तमाम दुखों और अभावों के बीच छिपी हुई बुनियादी आशा को, उसके मर्म को पहचानते थे"।[6]

09 अगस्त 1933 को राजस्थान के एक प्रतिष्ठित कुल में जन्मे मनोहर 'याम जोशी जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ गद्यकार, उपन्यासकार, पत्रकार, जनवादी विचारक उच्चकोटि के संपादक रहे हैं, इन्होंने 'दिनमान' व 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' का संपादन किया। बुनियाद, कक्काजी कहिन, सिल्वर वैडिंग, मुंगेरीलाल के हसीन सपने, हम लोग जैसे लोकप्रिय धारावाहिकों के कारण ये भारत वर्ष में प्रिय हो गये। कुछ विद्वान इन्हें टी0 वी0 धारावाहिकों का जनक भी मानते हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में गौरापंत 'शिवानी' अपनी कृतियों में उत्तरभारत के कुमांऊ क्षेत्र के आसपास की लोक संस्कृति की झलक दिखलाने और किरदारों के बेमिशाल चरित्र चित्रण करने के लिए जानी जाती हैं। ये बीसवी सदी की सबसे लोकप्रिय हिन्दी पत्रिका की कहानी लेखिका रही हैं। हिन्दी साहित्य में उनके योगदान के लिए 1982 में पदमश्री से सम्मानित किया गया था। इनकी लिखी कहानियां और उपन्यास पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इन्होंने चालीस से अधिक उपन्यास, कई लघुकथाएं, निबंध और लेख लिखे हैं। हिन्दी साहित्य में उनका योगदान बहुत बडा़ है।

हिन्दी के ख्याति प्राप्त कहानीकार और पत्रकार हिमांशु जोशी ने अपने पेशेवर जीवन की शुरूआत पत्रकारिता से की थी। वे लम्बे समय तक हिन्दी पत्रिका 'कादम्बिनी' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के संपादन से जुड़े रहे, बाद के दिनों में उन्होंने 'वागर्थ' के संपादन का भी दायित्व संभाला। विश्व विख्यात उपन्यास 'कगार की आग' लिखकर हिमांशु जोशी जी ने साहित्य की दुनियां में अपनी पहचान कायम की। ये हिन्दी, अंग्रेजी, व उर्दूभाषा के मर्मज्ञ थे। अबतक इनके 17 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। पत्रकारिता की लम्बी साधना के दौरान इन्हें कई सम्मान भी प्राप्त हो चुके हैं।

पदम श्री प्राप्त साहित्यकार लीलाधर जगूड़ी ने कविता संग्रह, नाटक व अन्य गद्य लेखन के जरिए देश ही नहीं विदेशों में भी उत्तराखण्ड राज्य की एक अलग पहचान बनाई है।

गोविन्द बल्लभपंत, वीरेन डंगवाल, चन्द्र कुंवरवर्त्वाल, भाष्करानंद लोहनी, ललिता प्रसाद नैथानी, रमेश पोखरियाल निशंक, शेर सिंह बिष्ट, राजेन्द्र धस्माना आदि अनेक उत्तराखण्ड के ऐसे साहित्यकार है, जिन्होंने साहित्य को नई दिशा दी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उत्तराखण्ड के साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा को केवल साहित्य के लिए नहीं लिया, बल्कि एक उद्देश्य के लिए भी लिया और यह उद्देश्य था देश व समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करना।

सन्दर्भग्रंथ-

1 आम्टे, डॉ0 मनीशा, सूर्यवशीं डां0 सीमा, साहित्य और समाज, पृ० 88, संस्करण 2022, वान्या पब्लिशंस

2 पोखरिया प्रो0 देवसिंह, सिंह डॉ0 भगत, हिन्दी साहित्य को कूर्मांचल की देन, पृ० 62, संस्करण 2015, अंकित प्रकाशन

3 वही पृ० 137

4 वही पृ० 181

5 संपादक-पाठक शेखर, पहाड़,पृ० 11,2001, अमिता प्रिटर्स एण्ड पब्लिशर्स, हल्द्वानी

6 तिवाड़ी, गिरीश 'गिर्दा' पृ० 9, प्रथमसंस्करण 2011, प्रकाशक, पहाड़

कांगड़ा शैली में साहित्यिक ग्रन्थों पर चित्रांकन

डॉक्टर पूर्णिमा वशिष्ठ

सहायक आचार्य, ललित कला विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मानव जीवन का चक्र उद्देश्य क्रियाशीलता या निर्माण प्रक्रिया से संबंधित होता है। सृजन प्रक्रिया कला पुकारी जाती रही है, जिसकी तुलना देवी निर्माण से की गई है। जिसमें कलाकार की रुचि, निर्देशक का सौंदर्य व कला के प्रति रुझान की प्रवृत्ति उसकी देशकाल की कला में झलकता है। देश की प्रकृति के सानिध्य से मानव का सौंदर्य साकार होने लगता है। मानव मन सदैव प्रकृति सौंदर्य के प्रति आकर्षित रहा है। साथ ही सुंदरता का दर्शन कर उससे अभिभूत भी होता रहा है। ऐसी ही हिमालय की सुरम्य घाटियों में पनपी एक उन्नत शैली के ग्रंथ चित्रांकन की चर्चा हम अपने लेख में करेंगे। इन कृतियों में पहाड़ी आत्मा का सौंदर्य, वैभव और यौवन मुखरित हो चुका था। मुगल कलाकारों व मूल पहाड़ी चित्रों ने मिलकर एक भिन्न आयाम वाली पहाड़ी चित्र शैली को जन्म दिया। जिसे कांगड़ा शैली कहा गया। कांगड़ा शैली गुलेर शैली का ही विकसित रूप है। यथार्थ में गूलेर कलम का कुंवारा सौंदर्य कांगड़ा की ब्याहली सुंदरता में बदल गया।

लघु चित्रों की परंपरा में सबसे अधिक मनमोहक चित्र शैली 18वीं सदी के उत्तरार्ध में कांगड़ा घाटी में पनपी। कटोच राजवंश के महाराज संसार चंद के संरक्षण ने इसे यौवन के द्वार पर पहुंचा दिया। धौलाधार पर्वत की गोद में शांति से सोई हुई कांगड़ा घाटी, चित्रकला का सर्वश्रेष्ठ उत्कर्ष रहा है। इसकी खेलती हुई सरिताओं के किनारे व झूमते हुए वृक्षों की छाया में कांगड़ा कलम का उद्भव हुआ। कांगड़ा कलम का संरक्षण महाराजा संसार चंद के कर कमलो में रहा। कांगड़ा के इतिहास में 1786 से 1805 तक का समय स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है। इस समय काफी संख्या में स्वर्णकार, कर्मकार, कलाकार राजाश्रयो आदि ने हस्तशिल्प को आगे बढ़ाया। संसार चंद्र चित्रकारी के शौकीन थे। उन्होंने बहुत से कलाकारों को अपने यहां रख रखा था। उनके पास चित्रों का एक बड़ा संग्रह था, जिसमें अधिकतर साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ चित्रों का संग्रह है। जिसमें कृष्ण और बलराम की पराक्रम लीला, अर्जुन की वीरता व महाभारत से संबंधित बहुत से चित्र प्रसिद्ध है। राजा संसार चंद के दरबार में बहुत सारे कलाकार निरंतर कला सृजन करते रहते थे। उसको ग्रंथ अध्ययन व उन पर चित्रांकन कराने का बहुत शौक था। क्योंकि राजा संसारचंद वैष्णव धर्म के अनुयायी और कृष्ण भक्त थे, इसीलिए उन्होंने कृष्ण-लीला जैसे विषय को भरपूर रुचि के अनुकूल चित्रित कराया। कृष्ण से बढ़कर नायक उनकी दृष्टि में और कोई नहीं था।

पहाड़ी कलाकृतियों में कृष्ण की छाया व कृष्ण संबंधी अनेक कांगड़ा चित्र संसार भर के संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। इस समय केशव लिखित कवि प्रिया, रसिकप्रिया एवं नल-दमयंती प्रणय कथा चित्रित हुई। जयदेव का गीत गोविंद, बिहारी सतसई, भागवत पुराण, रामायण, दुर्गा-सप्तशती, शिव पार्वती की कथा, राग माला, बारहमासा, और नयिका-भेद के चित्रण में कांगड़ा के चित्रकारों ने श्रृंगार की भावपूर्ण दशा की संजीव झांकी प्रस्तुत की। इनमें नायिकाओं की आठ अवस्थाओं को दर्शाया गया। स्वाधीनपतिका, उत्कंठिता, वासकसज्जा खंडिता, अभिसारिका, पोषितपतिका, विप्रलब्धा और अभिसंधिता आदि नायिकाओं का बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णन यहां के चित्रों में कराया गया।

बिहारी सतसई और भागवत पुराण में भी कृष्ण जीवन की बहुविध लीला अत्यंत नैनाभिराम ढंग से प्रस्तुत की गई है। प्रेम का ऐसा भावमय, लयात्मक और कलात्मक चित्रण अन्य कहीं देखने को नहीं मिलता है। कांगड़ा कलम के ऐसे चित्रों से अभिभूत होकर डा०आनंद कुमार स्वामी ने लिखा था, कि जो चीनी कला में लैंडस्केप चित्रण में प्राप्त हुआ वहीं यहां प्रेम के चित्रण में एक उपलब्धि बन गई। 20 वर्षों तक पहाड़ी रियासतों पर राज्य करने के पश्चात राजा संसार चंद कांगड़ा कलम से संबंधित तीसरा सबसे महत्वपूर्ण केंद्र सुजानपुर आ गए थे। यहां पर राग-रागिनी, रागिनी बसंती, रागमाला से संबंधित अधिक चित्र बने। कांगड़ा शैली को विकसित करने में जिन कलाकारो का सहयोग रहा है वह खुशाला, मनकू ,कुशनलाल, फत्तू, बसियां लक्ष्मण दास, पदनू, दोखू

आदि कलाकार प्रसिद्ध हैं। संसार चंद के दरबार का सर्वाधिक निपुण कलाकार परखू था। इसके अलावा शिवराम, नैनसुख आदि ने भी कांगड़ा शैली के प्रमुख ग्रंथ चित्रों में सहयोग किया। इस शैली की पहचान निम्न विशेषताओं पर निर्भर है।

'कांगड़ा शैली ने प्रकृति के सुरम्य रूप को चित्रों में एक स्नेही पूर्ण स्थान दिया। कांगड़ा चित्रों में वास्तु की सजावट दर्शनीय है। पहाड़ियों पर बसे छोटे-छोटे गांव का अंकन बहुत ही सुंदर ढंग से किया गया है। इमारत के दृश्य में संगमरमर वास्तु का अंकन कांगड़ा शैली की अपनी विशेषता है। कांगड़ा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता साहित्यिक ग्रन्थों को चित्रित करना है। जिसमें रामायण, महाभारत, दुर्गा सप्तशती, गीत गोविंद, रसिकप्रिया, कवि प्रिया, श्रीमद्भागवत, शिव पुराण, आदि ग्रंथों पर आधारित चित्र बने है। इसी चित्र शैली में सस्सीपुन्नू, बारहमासा, राग माला, नायक- नायिकाओं के अनेक नैनाभिराम चित्र निसृत हुए। इसी चित्र शैली में नायिकाओं का सलौना चेहरा, उस पर चंचल चितवन, सीधी सी नाक, मीठे से होंठ, सभी उसके रूप को गढ़ते हैं। इनके छरहरे बदन पर फर्श को चूमती पायल बनी है, तथा नायक को कुल्हेदार पगड़ी व जामा पहने हुए नायिकाओं के साथ देखा जा सकता है। कांगड़ा शैली के चित्र लघु आकार में बने हैं। यह चित्र वसली बनाने के लिए कागज की अनेक तहों को चिपकाकर तैयार किया जाता था।

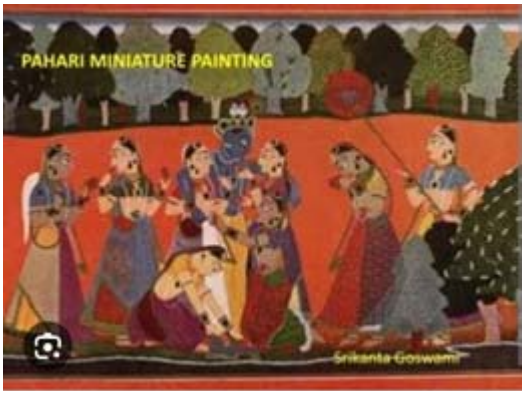

चित्रों के चारों ओर पतले हासिये बनाए गए हैं। जिसमें लाल, नारंगी रंग सपाट भरा गया है, कहीं-कहीं हासिये पर चित्तिदार सजावट भी की गई है। पशु पक्षियों को इस तरह से चित्रांकन किया है, जिस तरह से कवियों ने अपने कविताओं में, साहित्यकारों ने अपने साहित्य में वर्णित किया है। इसी तरह चित्रकारों ने भी मानव भावना के अनुकूल पशु पक्षियों का अंकन किया है। वर्षा ऋतु में बगुला, विरह में सारस व मोर, विरह रागिनी में मृग, नायिका को नायक के आगमन का संदेश सुनाते कौवे, बत्तखों के जोड़े व कृष्ण के साथ गायों का अंकन किया है। जिन्हें मुरली की तरफ गर्दन उठाकर देखते या विश्राम करते विभिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया गया है। प्रकृति ने भी चित्र मे सहचरी का कार्य किया है। जिस तरीके से कवि ने अपनी कविताओं में प्रकृति का वर्णन किया है उसी प्रकार कलाकार ने भी अपनी नायिका के साथ प्रकृति के मनोरम रूप को चित्रों में सजाया है। प्रेमी- प्रेमिका के चित्रों में वृक्ष पर लिप्त पुष्पित लताओं को सहयोगी के प्रतीक रूप में अंकित किया है। तालाबों को कमल पुष्पों, मछली से युक्त और बत्तख के जोड़ों के साथ बनाया है। कांगड़ा के चित्रों में मृदंग, वीणा, सितार, मंझीरे, ढोलक, बांसुरी आदि अनेक वाद्य यंत्र भी बनाए गए हैं। कांगड़ा शैली में प्रेम के विभिन्न भावों का छंदमय, काव्यमय और चित्रात्मक रूप अंकित है। यहां पर इंद्रधनुषी रंगों का मिश्रण चित्रों में देखने को मिलता है। कविताओं में जिस तरह से अलंकारों का प्रयोग कर कविता की शोभा को बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार चित्रकारों ने भी सोने तथा चांदी के रंगों के प्रयोग कर, चित्रों में और अधिक चार चांद लगा दिए है। इसके साथ-साथ वस्त्रो के बल बूटे, किनारी, घर की साज सज्जा का सामान जैसे हूकका, तश्तिरयां, फूलदान, थूक दान आदि का प्रयोग भी अपने चित्रों में किया है। रात्रि में चांदनी, अग्नि का प्रकाश एवं जल का प्रभाव उत्पन्न करने में चांदी के रंगों का प्रयोग इन चित्रों में देखने को मिलता है। जिस तरह यहां के चित्रों में अंकित मानव आकृतियों की अंग भंगिमां और हस्तमुद्राओ का संजीव एवं गति पूर्ण अंकन हुआ है, उसी प्रकार स्त्री मुखाकृतियों में अद्वितीय सौंदर्य, शालीनता और संयमता को प्रदर्शित किया गया है। लंबी पतली भवें, चमकीली आंखें, अंडाकार चेहरा, पतली कमर, लंबी पतली उंगलियां, लहराते केस यहां की नायिकाओं की पहचान है। नायक आकृति में भगवान कृष्ण को चित्रित किया है। जिसमें भगवान कृष्ण को कुल्हेदार पगड़ी एवं जामा पहने हुए, वीरता के भाव से सुसज्जित नायक के रूप में दर्शाया है।

अंत में यही निष्कर्ष निकलता है कि राजा संसार चंद वैष्णैव धर्म के अनुयायी व कृष्ण भक्त थे। अपने समयकाल में उन्होंने भगवान कृष्ण से संबंधित साहित्य रचनाओं, साहित्यिक ग्रन्थों एवं कविताओं पर निर्धारित कथाओं का वर्णन चित्रों के माध्यम से कराया था। जिस सौंदर्य के साथ साहित्य में साहित्यकारों ने अपने ग्रंथो को गढ़ा है उसी प्रकार कलाकारों ने भी राजाओं के संरक्षण में रहकर अपनी तूलिका और वर्ण के माध्यम से सौंदर्यमयी भाव-कुशलता के साथ चित्र में रचनाओं को गढ़ा है। कलाकार ने नायिका के रूप में राधा रानी व नायक के रूप में भगवान कृष्ण को बहुत ही सुंदरता के साथ बनाया है। मानवीय भावना के अनुकूल ही प्रकृति सौंदर्य और आकाश को भी चित्र के अनुरूप ही ढाल दिया है। पशु-पक्षी अंकन में भी नायक- नायिकाओं का पूर्ण रूप से साथ देकर चित्रकार ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। अंत में यह कह सकते हैं कि साहित्य और कला के मिलन से एक नए रचना आकृति का जन्म हुआ है। दोनों ही एक दूसरे के बिना अधूरे हैं, अगर साहित्य नहीं होता तो कला में नई संरचना नहीं होती व अगर कला नहीं होती तो साहित्य का परिचय भी अधूरा रह जाता। विभिन्न ग्रंथों पर आधारित चित्रों का संग्रह विभिन्न संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है, जो हमारी साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासत के रूप में सुसज्जित है।

संदर्भ ग्रंथः-

1. आर० ए ०अग्रवाल, भारतीय चित्रकला का विकास, मेरठ, 1979 पृष्ठ संख्या- 148.
2. जे०सी० फ्रेंच० हिमालय आर्ट, लंदन, 1932 पृष्ठ संख्या- 54
3. डब्ल्यू० जी० आर्चर, इंडियन पेंटिंग इन पंजाब हिल्स, लंदन, 1952, पृष्ठ संख्या -17
4. डब्ल्यू० जी० आर्चर, कांगड़ा पेंटिंग, लंदन 1952, पृ०सं०-4.
5. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1963 पृष्ठ संख्या -153
6. एम०एस० रंधावा, इंडियन मिनिएचर पेंटिंग, नई दिल्ली, 1981 पृष्ठ संख्या- 93
7. डॉ० रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास पृ० सं०- 156.
8. डॉ० शुकदेव श्रोत्रिय, कला बोध व सौंदर्य, पृ० संख्या -14

भक्तामर स्तोत्र एवं रेकी चिकित्सा एक परिचय एवं मानव जीवन के विभिन्न स्तर पर इनका प्रभाव

चारू जैन

शोधार्थी, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

भारत देश में ऐसे अनेक संत हुए हैं जिन्होंने हिंदी और संस्कृत साहित्य में अपना भरपूर योगदान दिया है, जैन धर्म में सातवीं शताब्दी में एक ऐसे ही संत हुए जिन्होंने अपने समय में अनेक अध्यात्मिक रचनाएं की, जिनका आज के युग में साहित्य और अध्यात्म के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है, और वे रचनाएं इतनी गूढ़ता से लिखी गई कि आज उनके उच्चारण या श्रवण मात्र से मानव जीवन के कई क्षेत्रों में चमत्कारिक रूप से लाभ भी मिल रहा है , और उन सभी रचनाओं पर शोध कार्य भी चल रहा है, तो आइए उन रचनाओं में से एक ष्श्री भक्तामर स्तोत्रष् के बारे में कुछ परिचय जानते हैं

भक्तामर-स्तोत्र क्या है?

:भक्तामर-स्तोत्र से जुड़े कुछ एतिहासिक तथ्य भक्तामर स्तोत्र एक संस्कृत स्तोत्र है। आम भाषा में कहें तो यह एक संस्कृत प्रार्थना है। भक्तामर स्तोत्र का अन्य नाम 'आदिनाथ स्तोत्र' भी है। इस स्तोत्र का प्रथम शब्द भक्तामर होने से इस स्तोत्र का नाम भक्तामर स्तोत्र पड़ गया।यहां शुद्ध शब्द है 'भक्तामर' किंतु बहुत से लोग इसे भक्तांबर बोलते हैं जो बिल्कुल अशुद्ध है।

भक्तामर का स्थूल अर्थ होता है भक्त+अमर। अर्थात् अमरतत्त्व (अर्थात् परमात्मा) का भक्त। भक्तामर शब्द के अन्य भी कई अर्थ निकलते हैं जैसे-

१. भक्त और भगवान का योग,

२. भक्त की आत्मा में बसी परमात्मा की मूरत।

३. अमर आत्मा और अमर परमात्मा की संगत पाकर बना अमर भक्त। इसके अन्य अर्थों की जानकारी के लिये यहां पढ़ें।

आचार्य मानतुंग कौन थे?

1 भक्तामर स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मानतुंग स्वामी जी हैं।

2 आचार्य श्री द्वारा इस स्तोत्र की रचना नकारात्मक परिस्थितियों में की गई।

3 आचार्य श्रीमानतुंग सूरि जी का जन्म वाराणसी में श्री 'धनदेव' श्रेष्ठि जी के परिवार में हुआ था।

4 इनका बचपन का नाम 'दिवाकर' था। दीक्षा के उपरांत इनके दीक्षांत दिगम्बर गुरू द्वारा इन्हें मानतुंग नाम दिया गया।

5 दिगम्बरत्व धारण करने से पूर्व आचार्य श्रीमानतुंग सूरि जी शैव धर्म के अनुयायी थे। कहते हैं दिगम्बर आचार्य श्री अजितसूरी जी के सम्पर्क में आने पर ये उनसे इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने उनको अपना गुरु बना लिया तथा उनसे जैनेत्तर दीक्षा धारण कर दिगम्बर साधु हो गए।

6 आचार्य श्री मानतुंग स्वामी जी व्याकरण शास्त्र, साहित्य तथा तत्त्वज्ञान के प्रकांड पंडित थे।

7 छंद शास्त्र विधा के अनुसार एक श्रेष्ठ छंद वही होता है जिसमें कम से कम किसी भी एक साहित्यिक रस में रची कोई एक कथा की अभिव्यक्ति तो अवश्य हो। आचार्य श्री द्वारा रचित इस भक्तामर स्तोत्र में तो सर्वरस प्रकट होते हैं।

8 जब हम इस स्तोत्र को पढ़ते हैं तो इसमें भक्ति भाव, प्राकृतिक सौंदर्य, विपरीत परिस्थितियों में भावनाओं का उतार चढ़ाव, समझाना-बुझाना, इतिहास की जानकारी, कथावाचन, ऐतिहासिक धर्म व्यवस्थाओं का स्वरूप, आदि बहुत कुछ तथा भावों के साथ अनेकों रूपों तथा भाषाओं में कथा को बुनना दृष्टिगोचर होता है और उससे बहुत कुछ सीखने को मिलता है।

9 उन्होंने इस कथा को विपरीत परिस्थितियों में भी व्याकरण शास्त्र की अनेकों विधाओं जैसे सूत्रों, उपमाओं और अलंकारों तथा तत्त्वज्ञान आदि से सजाया है।

10 कितनी अद्भुत है यह भक्तामर स्तोत्र की रचना की इसमें सबसे ऊपर भक्ति रस प्रकट होता है और सबसे नीचे परतों में दबा हुआ बिल्कुल विपरीत भाव अर्थात् वीर रस प्रकट होता है।

11 भक्तामर-स्तोत्र में कहीं से भी कोई वर्ण पकड़कर जब हम अगले अथवा पिछले वर्ण से मिलाएं तो हर बार एक नया शब्द, एक नया अर्थ, तथा एक नया भाव इसमें उजागर होता है जो पिछले अर्थ और भाव से एकदम भिन्न भाव प्रकट करता है।

11 भक्तामर-स्तोत्र के द्वितीय छंद में आचार्य श्री ने ये उद्घाटित किया है कि इस स्तोत्र रचना में उनके सकल वाङ्मय से जुड़े तत्त्वबोध का ज्ञान समाहित

है। अर्थात् वे अपने बोध में जितना भी बोधज्ञान रखते हैं उसको सम्पूर्ण उपयोग में लाकर ही ये रचना की जा रही है।

12 यह संस्कृत के अतिरिक्त अन्य कई भाषाएं जैसे प्राकृत,अपभ्रंश, हिंदी, मराठी, अवधी,शौरसेनी आदि भाषाओं के शब्दों तथा तत्त्वज्ञान से जुड़े विषयों को भी मिलाकर स्तोत्र रचना की गई है।

13 बड़े बड़े धार्मिक गुरु चाहे वो हिन्दू धर्म के हों या अन्य धर्म के भी हों, वो भी भक्तामर स्तोत्र की शक्ति को मानते है तथा मानते है भक्तामर स्तोत्र के जैसा कोई स्तोत्र नहीं है! अपने आप में बहुत शक्तिशाली तथा अतिशयकारी होने के कारण यह स्तोत्र बहुत ज्यादा प्रसिद्ध हुआ।

14 हालांकि कहते हैं कि आचार्य श्री की साहित्यिक रचनाओं में इतनी शक्ति समाहित होती थी कि अक्सर उनके समक्ष ऐसे अतिशय होते रहते थे।

15 आचार्य मानतुंग स्वामी जी ने इस भक्तामर स्तोत्र को 'तापकण' की संज्ञा से विभूषित किया।

16 आचार्य श्री ने 'तापकण' शब्द को एक ही समय में आदिनाथ भगवान, भक्तामर स्तोत्र, सूर्य, नकारात्मक परिस्थितियों तथा अतिशयकारी शक्ति आदि सबके लिए प्रयोग किया। सात्विक-तामसिक भावों और कर्मों को भी उन्होंने तापकण की ही संज्ञा दी।

17 भक्तामर-स्तोत्र के अतिशय को देखते हुए इस स्तोत्र का उपयोग विदेशों में भी मन्त्र थेरेपी की तरह से किया जाता है, इसके भी प्रमाण मिलते हैं।

18 यह स्तोत्र संसार का इकलौता ऐसा स्तोत्र है जिसका अब तक लगभग 130 से भी अधिक बार अनुवाद हो चुका है जो की इस स्तोत्र की प्रसिद्धि को दर्शाता है।

19 आचार्य मानतुंग मध्य प्रदेश के धारा नगरी से १०० किलो मीटर की दूरी पर जिस शिखर कि चोटी पर जाकर सदा के लिये ध्यानस्त हो गए और उनको जहां से मोक्ष की प्राप्ति हुई उस शिखर को मानतुंगगिरि या 'मांगीतुंगीगिरी' के नाम से भी जाना जाता है।

रेकी अर्थात ऊर्जा- आध्यात्मिक ईश्वरीय स्पर्श चिकित्सा पद्धति!!

By; Charu Jain

क्या आप जानते हैं आपके जीवन में आने वाली हर समस्या, चाहे वह मानसिक हो आर्थिक या फिर शारीरिक, सभी का उपचार संभव है वह भी पूर्णत: आपकी ही प्राण ऊर्जा को सकारात्मक बनाकर, आपके शरीर में विद्यमान चक्र व नकारात्मक ऊर्जा को सकारात्मक ऊर्जा में बदल कर, आपका या आपकी किसी भी समस्या का समाधान आपके भीतर या आपके आसपास की ऊर्जा में ही छुपा है उसे वर्षों पुरानी भारतीय मंत्र शक्ति व रेकी ऊर्जा चिकित्सा पद्धति द्वारा ऊर्जान्वित करके सफल उपचार या समाधान किया जा सकता है इस ऊर्जा पर वर्षों से शोध हो रहे हैं व अब तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि ब्रह्मांड में अद्भुत रहस्य छुपा है हर वस्तु चाहे वह सजीव है, या निर्जीव एक ऊर्जा पिंड से घिरी है तो इसी ऊर्जा को सकारात्मक ऊर्जा में बदलकर अपनी सभी समस्याओं का सफल समाधान प्राप्त कर सकते हैं

परमात्मा की प्रार्थना में बहुत शक्ति है. इसी शक्ति को जापान में रेकी नाम से संबोधित किया जाता है. वर्तमान समय में मनुष्य चौबीसों घंटे तनाव में गुजारता है. तनाव को दूर करने की सबसे सरल विधियों में रेकी का स्थान सर्वोपरि माना गया है. सामान्य रूप से रेकी एक ऐसी स्पर्श चिकित्सा है जिसमें शारीरिक अंगों को छूकर अथवा बगैर छुए विभिन्न रोगों का उपचार सफलतापूर्वक होता है. चिकित्सा की इस विधा में औषधि के रूप में ब्रह्माण्ड में व्याप्त संजीवनी प्राण ऊर्जा का उपयोग किया जाता है, उपचार की प्रक्रिया में ऊर्जा का प्रवाह रेकी मास्टर के हाथों में होकर रोगी के शरीर में (रोगी की ऊर्जा ग्रहण क्षमता के अनुसार) पहुँचता है एवं कुछ ही समय पश्चात् रोगी व्यक्ति पहले तो स्वस्थ और संयमितता का अनुभव करता है और अंत में उसे आनंद की सुखद अनुभूति होने लगती है. रेकी का असली उदगम स्थल भारत है. यहाँ से यह तिब्बत और चीन होती हुई जापान तक पहुँची है. जापान में इसे पुन: खोजने का काम जापान के संत डॉक्टर मिकाओ उसुई ने अपने जीवनकाल 1869-1926 में किया था.

रेकी अर्थात ऊर्जा- आध्यात्मिक ईश्वरीय स्पर्श चिकित्सा पद्धति जो व्यक्ति के सभी शुभ विचारों को साकार करके चमत्कारिक ढंग से मन को आश्चर्य तथा आनंद से सराबोर कर देती है! विश्व के सभी देशों में आज भी मान्यता है कि साधु-संतों के आशीर्वचन, उनका सान्निध्य तथा आशीष पाकर मनुष्य को बीमारियों से मुक्ति सहज ही मिल जाती है. डॉक्टर मिकाओ उसुई को भी पूरा विश्व इसीलिए जानता है कि उन्होंने बिना दवा-गोली इंजेक्शन के मात्र स्पर्श एवं संकल्प शक्ति से जटिलतम रोगों का निदान करने के लिए रेकी स्पर्श चिकित्सा से दुनिया को परिचित कराया, हमारे देश में 1980 से रेकी चिकित्सा जारी है. हालांकि इसे शासकीय मान्यता प्राप्त नहीं है फिर भी देश के शहरों एवं महानगरों में इसका अत्यधिक प्रचार-प्रसार है.

रेकी सीखने के लिए कुछ योग्यताएं आवश्यक हैं-

1- व्यक्ति के मन में यह विश्वास होना चाहिए कि किसी भी रोग अथवा समस्या के समाधान हेतु मानव के पास ईश्वरीय शक्ति सदैव मौजूद होती है!

2- रेकी सीखने वालों के विचारों में इमानदारी, सकारात्मकता एवं स्पष्टवादिता होना चाहिए!

नागार्जुन कि तीखी व्यंग्य भावना के दृष्टांत

डॉ० सरोज एस घोड़ेश्वर

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, शास.क.ने.कन्या महावि. बालाघाट म.प्र.

नागार्जुन- गांव की जीवन शैली- जीवंत शैली के सशक्त हस्ताक्षर बड़े ही सौम्य, सरल, विचारशील, मननशील, चिंतन प्रवृत्ति के साधारण कृषक परिवार से थे। इनका जीवन मानव जीवन से गहरा संबंध रखते थे। संसार के सघन, संपूर्ण और वैविध्यपूर्ण प्रसार को ही कवि ने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी। मानव जीवन अपने सारे हर्ष-अवसाद, सौंदर्य, कुरूपता, स्वप्नों तथा आकांक्षाओं के साथ उनकी कविता में रुपायित हो उठा है, इसलिए उनकी कविता जन-संवेद्य बन सकी है।जीवन के अमृत और गरल पक्षों को आत्मसात करके प्रस्फुटित होने वाली उनकी काव्यधारा के संबंध में डॉ. रामकुमार मिश्र ने लिखा है- 'नागार्जुन की कविता जीवन के विष और अमृत दोनों मे ही आकट्य सराबोर कवि की कविता है। जीवन के विष को उसने भारतेन्दु और निराला की भॉति निर्विकार पिया और पचाया है, और अमृत को उसने दोनों हाथ मनुष्यता के हित के लिये कविता के रूप में उलेचा है।'

साहित्य की लगभग हर विधा में निष्णात माने जाने वाले नागार्जुन को केवल अनेक लोगों ने अपने-अपने ढंग से लिखा है, कोई उनके परंपरा भंजक और प्रगतिशील रूप को अहमियत देता है, तो कोई उनके जन कवि को, कोई तो नव जनवादी को। उनके प्रकृति प्रेमी पर मुग्ध होने वाले भी मिलेंगे, और उनके गद्य पर जान छिड़कने वाले भी कम नहीं है, कुछ है जो उनकी घुम्मकड़ी का ही बखान करते नहीं थकते। नागार्जुन ऐसी शख्सियत थे जिसने जुड़ा कोई ना कोई किस्सा उनके शुभचिंतकों को, प्रशंसको, समकालीनों और पाठको तक के पास मिल जाएगा। इसलिए यह भी स्वाभाविक है कि कई सच्ची झूठी कहानी भी उन्हें लेकर साहित्यिक दुनिया में बनी और फैली। सार्वजनिक जीवन में भी साहित्यकार की ऐसी बहुरंगी छवि है, उसके निजी जिंदगी कैसी रही होगी? साहित्यिक रचनात्मक कर्म को सर्वोपरि मानने वाले नागार्जुन के रिश्ते अपने परिजनों के साथ किस तरह के रहे होंगे? पारिवारिक जिम्मेदारियां को निभाने में उनको कितना संघर्ष करना पड़ा होंगा? किस तरह उतार-चढ़ाव से गुजरते हुए वें साहित्य में एक नहीं लकीर खींच सकें होंगे? उनकी बहु आयामी में सृजनात्मकता की पृष्ठभूमि क्या रही होगी?

नागार्जुन लगभग 68 वर्ष तक रचनाकर्म से जुड़े रहे। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रा वृतांत, निबंध लिखें। नागार्जुन हिंदी और मैथिली के अप्रतिम कवि और लेखक थे। अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा प्रगति से विचारधारा के साहित्यकार नागार्जुन ने हिंदी के अतिरिक्त मैथिली- संस्कृत- बांगला में मौलिक रचनाएं भी की है तथा संस्कृत मैथिली और बांगला से अनुवाद कार्य भी किया। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत नागार्जुन ने मैथिली में यात्री उपनाम से लिखा तथा उनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र के साथ मिलकर एकमेक हो गया था।

नागार्जुन ने अपनी बचपन की व्यथा की कटू झांकी को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है।-

पैदा हुआ था मैं,
दिन-हीन अपठित किसी कृशककुल में,
आ रहा हूं पीता अभाव का आसव, ठेठ बचपन से,
कवि! में रूपक हूं दबी हुई दुब का,
जीवन गुजरता प्रतिफल संघर्ष में,
मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व
रूद्र है सीमित है,
आटा- दाल- नमक- लकड़ी के जुगाड़ में।

व्यक्तिगत जीवन के कटु संघर्षों के अतिरिक्त स्वामी सहजानंद की दीक्षा से प्राप्त प्रगतिशील और वैज्ञानिक विचार दर्शन ने नागार्जुन के व्यक्तित्व को निखारा है, अपने परिवार के अतिरिक्त बाहर के लोगों के भी प्रिय बाबा है और नागा बाबा की स्नेह वर्षा सब पर समान रूप से होती रहती है। कलम के बल पर ही उन्होंने अपने परिवार का बोझ संभाला है, फिर अपनी रचना को सप्राण बनाया है। नागार्जुन जनता के कवि है, जनता के सुख दुख के गायक-नायक है। केवल अपने देशवासियों के लिए ही नहीं मानव मात्र के लिए उन्होंने अपनी कविता में से ऐसे भव्य राजपथ निर्मित किये है, जो मानवता को निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ है, उनकी कविता यथार्थ की विरुपताओं का अंकन ही नहीं करता वरन् उन्नयन का पथ भी निर्दिष्ट करता है।

शोषण, हिंसा सामाजिक ,वैमनस्यता और अत्याचार के विरुद्ध अपने स्वर का उद्घोष इस प्रकार है-

कैसे लगेगा तुम्हें?
जंगली सूअर उधम मचाए,

तहस-नहस कर डाले फसले,
देखकर पद्यर्मित उत्कट सुरभि वाली दूधिया बाले,
देखकर भूल कंठित कुचली कनक मंजरिया,
टुकटुक हो यदि हृदय लोक लक्ष्मी का,
कैसा लगेगा तुम्हें?

डॉक्टर शिव कुमार मिश्रा- ने उनकी कविता को बहुरंगी भाव छवियों की कविता कहा है-

हिंदी में श्रेष्ठ व्यंग्य कि स्वस्थ परंपरा की स्थापना का श्रेय नागार्जुन को है, इस संबंध में प्रोफेसर हरि नारायण मिश्र ने लिखा है- नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तल्खी, भारतेंदु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का विलक्षण सामजंस्य है, अन्य व्यंग्यकारों से नागार्जुन की भिन्नता इस अर्थ में है कि जहां और लोग सोच विचार कर किसी रचना को व्यंग्य बहुत बनाते हैं वहां नागार्जुन ने व्यंग्य एक जन्मजात संस्कार के रूप में है या यों है कि चुभोना होना इनका स्वभाव सा है कि वह रोजमर्रा का बन गया है। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों पर उनके पैने व्यंग्य हिंदी साहित्य की अनोखी निधि है।

रानी एलिजाबेथ- के सम्मान में जब करोड़ों रुपए खर्च किए गए हो तो नागार्जुन की जनसंप्रक्त आत्मा कराह उठी, क्योंकि इस गरीब देश भारत में वहां के कर्णधारों को ऐसा नहीं करना चाहिए था तब उनका व्यंग्य कहता है-

भूखी भारत माता के
सुखे हाथों को चूम लो,
प्रेसिडेंट के लंच डिनर में,
स्वाद बदल हो झूम लों,
पद्म भूषणों, भारत रत्नो से,
उनके उदगार लों,
पार्लियामेंट में प्रतिनिधियों से,
आदर लों, सत्कार लों,
मिनिस्टरों से सेक हेंड लो,
जनता से जय-जय कार लो,

स्वदेशी शासक- नागार्जुन कि कविता में स्वदेशी नेताओं के प्रति फूट निकला है जो जनता के धन को लूट कर मालामाल बन जाते हैं और जिन्हें अपराधों की चक्की में पीस्ती जनता की तनीक भी परवाह नहीं करती है-

हमें सीख तो शांति और संयम जीवन की,
अपनी खातीर करो, जुगाड़ अपरिमित धन की,
बेच-बेच कर गांधी का नाम,
बटोर वोट,
हिलाओं शीश,
बैंक बैलेंश बढाओं,
निपोरो खीस।

इस कविता में कवि उस देश को महानायक महानरक की संज्ञा देता है, जहॉ भूखों को पेट भर भोजन नहीं मिलता, उसे यह देखकर भयकंर निराशा होती है की स्वतंत्रता का फल कुछ ही लोगों ने पाया और अधिकांश जनता अब भी विपन्नताओं और अभाव से जूझ रही है-

व्यर्थ हुई साधना,
त्याग कुछ काम न आया,
कुछ ही लोगों ने,
स्वाधीनता का फल पाया,

स्वाधीनता के अनंतर राष्ट्र की प्रगति के लिये पंचवर्षीय योजना बनती रहीं। नेता चौन से गुलछरै उढ़ाते रहें और जनता खुन के आसू रोती रही, इसी विडंबना पर नागार्जुन का तीखा व्यंग्य-

आजादी की कलिया फूटी,
पॉच साल मे होंगे फुल,

पॉच साल फल निकलेंगे,
रहें पंत जी झूला-झूल।

संत विनोबा- नाम कविता में संत विनोबा के भू दान योग्घ्य भुमी का दान नहीं करते, जंमीनदारों की चाल को समझने का संत विनोबा से अनुरोध करते हुए कहते-

सर्वोदय के संत तुम्हारे, मीठे-मीठे बोल,
सत्घ्य अहिंसा जमीनदार के दिल में देंगे घोल,
लो, वे कोसीका कच्च्छार करते हैं, तुमको दान,
यही रहों तुम,
मिल-जूलकर कर उपजावै, खैड़ी धान।

एटंबम नामक कविता- में नागार्जुन के ह्दय का आक्रोश और करूणा एक साथ व्यंग्य बनकर प्रकट हुए है। जिसमें कवि ने युध्द से होने वाली जनसामान्य की क्षति पर व्यंग्य किया है-

कहा गिरेंगे एटंबम या हाइड्रोजन बंम।
शांत निरीह नगर-ग्रामों पर
खेती-खानो-खलियानों पर।

पैसा चहक रहा है- कविता में नागार्जुन के आर्थिक-सामाजिक व्यंग्य भी अपनी मार्मिकता और पैनेपन में बजोड़ है। कवि सेठ-सेठानियों की शान शौकत और चुटकियों में लाखों की योजना बनाने की बात पर व्यंग्य करता है क्योंकि इस देश में लाखों करोड़ो नर-नारियों को पेट भर भोजन और तन ढकने को कपड़ा नहीं मिल पाता।

वे और तुम- कविता के माध्घ्यम से कवि नें श्रमजीवियों तथा आधुनिक कवियों को लेकर कहता है-

वे लोहा पीट रहे है,
तुम मन को पीट रहें हो,
वे पत्थर जोड़ रहें है,
तुम सपने जोड़ रहें हो,

प्रेम का बयान - नाम कविता मे कवि ने करूणा जनक व्यंग्य की छटा से संयुक्त है।

इसमें स्वाधीन भारत की प्रायमरी पाठशाला का शिक्षक, यमराज के समछ सारा बयान देता है पर यह नहीं कबूलता कि मैं भूख से मरा हूँ।

नागार्जुन के व्यंग्य की मार से कोई भी विसंगति बच नहीं सकी है, उनके व्यंग्य में आक्रोश, करूणा और हास्य का अनूठा मिश्रण है। व्यंग्य करते समय उन्ह्होंने राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, समाज सुधारक, कलाकार, किसी को भी नही छोड़ा। ढोंग किसी भी प्रकार को हो, कितने ही बड़े आदमी का हो, नागार्जुन ने सहन नहीं किया।

ग्रंथ

समकालिन काव्य- नागार्जुन
नागार्जुन का काव्य संग्रह
विकी पीडिया
यू-ट्यूब

नागार्जुन के काव्य में जनवादी चेतना

डॉ० प्रमोद नाग

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, आचार्या इंस्टिट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज़, बेंगलुरु, कर्नाटक

हिंदी के प्रसिद्ध कवि नागार्जुन का जन्म 30 जून 1911 ईस्वी को बिहार के दरभंगा जिले के तरौनी गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र और माता का नाम उमा देवी था। नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित नागार्जुन ने मैथिली में 'यात्री' उपनाम से लिखा। बौद्ध धर्म अपनाने के बाद इन्हें 'नागार्जुन' नाम मिला। 5 नवम्बर 1998 ईस्वी को इस महान आत्मा ने संसार से विदा ले ली।

नागार्जुन की कविता अपने समय एवं समाज को दिखाने का सबसे प्रबल माध्यम है, जिसमें उन्होंने अपने समकालीन घटित घटनाओं एवं व्यवस्था से उत्पन्न हुई समस्याओं को महत्वपूर्ण रुप से परिलक्षित किया है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से ऐसी समाज व्यवस्था को दिखलाने का प्रयास करते हैं, जो तत्कालीन परिवेश में निर्मित हो रही थी। मुंशी प्रेमचंद द्वारा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में जब लखनऊ में यह कहा गया कि 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है' इस दृष्टि का प्रयोग नागार्जुन की कविता में महत्वपूर्ण रुप से दिखाई पड़ता है। उनकी कविता अंतिम जन की कविता मानी जाती है। वह सामाजिक व्यवस्था में अंतिम पायदान पर जीवन व्यतीत कर रहे व्यक्ति के लिए अपनी कविता के माध्यम से संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में उन्होंने उस व्यक्ति के यथार्थ को रचने का प्रयास किया है, जिसमें उन्होंने बताया है कि गरीबों की दयनीय स्थिति के लिए कौन सी संस्थाएँ उत्तरदायी हैं। कवि ने अपने जीवन को समाज के प्रति पूर्ण रुप से समर्पित कर दिया है। अपनी कविता 'प्रतिबद्ध हूँ' में कवि समाज के लिए अपनी प्रतिबद्धता को दिखलाते हैं-

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ-
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त-
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ...
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ...

उपेक्षित जन समुदाय के सन्दर्भ में जो मुखरता नागार्जुन की रचना में देखी जाती है, वह बहुत कम कवियों में देखी जाती है। सैकड़ों वर्षों से गुलाम होने के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति ने व्यक्ति की आशाओं को नई चेतना प्रदान की परन्तु आजादी के कुछ वर्षों के बाद उपेक्षित समुदाय को यह प्रतीत हुआ कि उसके जीवन व्यवहार में सरकार और समाज द्वारा प्रदत्त स्थितियों में ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है। सामाजिक विषमता तत्कालीन समय में भी लगभग वैसी ही थी जैसे स्वतंत्रता पूर्व हुआ करती थी। उनकी कविताओं में सर्वहारा वर्ग का पूरा समाज बसता है।

नागार्जुन सामाजिक व्यवस्था के कारण व्याप्त स्थिति को आम जनता के प्रति उपेक्षा दृष्टि का सबसे बड़ा दोषी मानते हैं। इस कारण वे हमेशा अपनी कविताओं के माध्यम से ग्रामीण परिवेश, मजदूर, किसान, युवा एवं महिलाओं के पक्ष में खड़े होते दिखाई देते हैं। ग्रामीण परिवेश में प्राकृतिक आपदाओं के कारण ऐसी स्थिति व्याप्त हो जाती है, जिसका प्रभाव सीधे - सीधे उपेक्षित जन समुदाय पर पड़ता है तथा उसके कल्याण के लिए सामाजिक स्थिति में कोई व्यवस्था दिखाई नहीं पड़ती है। सामान्य व्यक्ति स्वयं इन आपदाओं से जूझता रहता है तथा आपदाओं की भयावहता इतनी होती है कि वह मनुष्य तो क्या मनुष्य से इतर पशु पक्षियों तक को भी प्रभावित कर जाता है। इस सन्दर्भ में उनकी कविता 'अकाल और उसके बाद' अत्यंत ही महत्वपूर्ण है।

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

नागार्जुन अपनी कविताओं के माध्यम से लगातार जनता के पक्ष में सवाल उठाते हैं। उन्होंने साधारण जनता के शोषण को दिखाने का प्रयास किया है। नौकरशाही का प्रयोग जनता के विकास के लिए न होकर उनके शोषण के लिए किया जाता है। एक ओर सरकार गरीबों पर अत्याचार कर रही है, तो दूसरी ओर सरकार की मिलीभगत से गुंडे और हत्यारे आराम से घूम रहे हैं। 'सच न बोलना' कविता में कवि दिखलाते हैं-

जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी है,
अंदर-अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।

नागार्जुन की कविताएँ कल्पना लोक में विचरण न कर ठोस धरातल पर चलती हैं। सर्वहारा वर्ग की व्यथा एवं पीड़ा को उन्होंने अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। वे अभावग्रस्त लोगों के पक्षधर बनकर आए। उन्होंने अपनी कविता में शोषकों के प्रति घृणा का भाव भी व्यक्त किया है। वे पूंजीवादी व्यवस्था

को समाप्त कर समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। अपनी कविता में एक तरफ उन्होंने पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश प्रकट किया है, तो दूसरी तरफ शोषकों के प्रति सहानुभूति भी प्रकट करते हैं। उनके मन में उस सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना है, जो जनता का शोषण करती है या शोषण को बढ़ावा देती है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, पाखंड, भाई-भतीजावाद आदि का वे विरोध करते हैं। वे कहते हैं-

देश हमारा भूखा-नंगा, घायल है बेकारी से,
मिले न रोटी-रोजी, भटके दर-दर बने भिखारी से,
स्वाभिमान सम्मान कहाँ है, होली है इंसान की,
बदला सत्य, अहिंसा बदली, लाठी, गोली, डंडे हैं,
निश्चय राज बदलना होगा, शोषक तानाशाहीका,
पद-लोलुपता दलबंदी का, भ्रष्टाचार तबाही का।

नागार्जुन के काव्य की विशेषता व्यंग्यात्मकता है। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने राजनीति पर तीखे व्यंग्य किए हैं। 'प्रेत का बयान' कविता में कवि लिखते हैं-

किट-किट करने लगा जोरों से प्रेत
-"किंतु भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसा किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज नाम नहीं लीजिएगा
हमारे सामने फिर कभी भूख का"

सामाजिक यथार्थ को रचते हुए नागार्जुन तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को भी परखने की कोशिश करते हैं। तत्कालीन सामाजिक स्थिति भेद-भाव के संघर्ष से निर्मित हो रही थी। जाति भेद चरम सीमा पर थी। तत्कालीन समाज में धनवानों और जमींदारों का वर्चस्व था। गरीबों पर तरह-तरह अत्याचार करते हुए उनको जिंदा जला देना, उनकी बहू-बेटियों पर अत्याचार करना जैसी घटनाओं को नागार्जुन ने अपने काव्य में स्थान दिया है। 'हरिजन गाथा' कविता में जमींदारों के अत्याचार को दिखलाते हुए कवि लिखते हैं-

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं-
तेरह के तेरह अभागे-
अकिंचन मनुपुत्र
जिन्दा झोंक दिए गए हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन-सम्पन्न ऊँची जातियों वाले
सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा!

आजादी के कई दशक बीत जाने के बावजूद आज भी गरीबों की स्थिति में खास सुधार नहीं हुआ है। आर्थिक विषमता समाज में बनी हुए है। निम्न वर्ग की विवशता तथा सामाजिक स्तर पर उत्पन्न हुए भेद-भाव को नागार्जुन अपनी कविता के माध्यम से बताते हैं। वे कहते हैं-

पूस मास की धूप सुहावन, फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़, बीन रही है पत्नी बेचारी
गर्भ भार से अलस शिथिल है अंग-अंग, सब कुछ है कोयला नहीं है।

कवि ने समाज में बढ़ रहे अनाज की काला बाजारी को दिखलाया है। लोगों को उचित मूल्य पर अनाज नहीं मिल रहा है। नेताओं के साथ मिलकर अनाज को जनता की पहुँच से दूर विदेश भेज कर मोटी कमाई की जा रही है। आम जनता दो वक्त के भोजन के लिए तरस रही है। 'नया तरीका' कविता के माध्यम से कवि ने अनाज की काला बाजारी को प्रस्तुत किया है।

दो हजार मन गेहूँ आया दस गाँवों के नाम
राधे चक्कर लगा काटने, सुबह हो गई शाम
सौदा पटा बड़ी मुश्किल से, पिघले नेताराम
पूजा पाकर साध गए चुप्पी हाकिम-हुक्काम

नागार्जुन हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से पाठकों को न केवल समाज की सच्चाई से अवगत कराया है, वरन देश को एक नई दिशा भी प्रदान की है। उनकी कविताएँ व्यापक जन समूह को अपने रचना के केंद्र में स्थापित करती हैं। नागार्जुन अत्यंत ही मुखर कवि माने जाते हैं। उन्होंने कविता में कही जाने वाली परंपरा को अत्यंत ही साफगोई से रखने का प्रयास किया है। वे सच्चे अर्थों में स्वाधीन भारत के प्रतिनिधिजन

कवि हैं। डॉ. रामविलास शर्मा नागार्जुन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं- "नागार्जुन कवि ही नहीं, कविता के आलम्बन भी बन गए हैं। हिंदी साहित्य की जीवंत परम्परा और भारतीय जनता के साहसी अभियान के प्रतीक हैं कवि नागार्जुन।"

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ - संपादक - नामवर सिंह, छठा संस्करण - 2002, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली - 02
2. नागार्जुन की कविता - अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली
3. नागार्जुन और उनका रचना संसार - विजय बहादुर सिंह,वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली
4. _https:èkèkyoutu.beèkLWxEAkIA7CA?si=i-30SaU8wrHpoefZ

मौर्य एवं शुंग काल में वास्तुकला और मूर्तिकला का योगदान

वास्तुविद वर्षा जैन

शोधार्थी तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

डॉ० रत्नेश कुमार जैन

मार्गदर्शक सेंटर फॉर जैन स्टडी मुरादाबाद

जैन परम्परा जैनधर्म को अनादि-अनन्त मानती है मौर्य एवं शुंग काल में जैन मूर्तिकला का विकास (ई.पू.317 से ई.पू.184) हुआ। मौर्य साम्राज्य की मूर्तियां कला के उन रूपों को प्रदर्शित करती हैं जो इस अवधि के दौरान तैयार किए गए थे। मौर्य साम्राज्य कला, संस्कृति, वास्तुकला और साहित्य में अपनी महान उपलब्धियों के लिए पहचाना जाताहै। मौर्य कला, मौर्य साम्राज्य द्वारा अपने शासनकाल के दौरान निर्मित, लकड़ी और पत्थरों के उपयोग से भारतीय कला में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती है। इसे अशोक जैसे मौर्य राजाओं द्वारा संरक्षित शाही कला के रूप में वर्णित किया गया है।

जैन साहित्य के अनुसार, मौर्य राजाओं में अशोक, कुणिक, सम्प्रति और दशरथ जैन धर्मानुयायी राजा थे। जब भद्रबाहु कर्नाटक पहुँचे उनके समक्ष चन्दगुप्त ने जिनदीक्षा ग्रहण की। आज भी वह पहाड़ी 'चन्द्रगिरि' के नाम सेजानी जाती है। प्रथमत:दक्षिण में जैनधर्म का उदभव, प्रचार, प्रसार इसी समय हुआ। सम्प्रति जो की अशोक के पौत्र थेउनको 'परम अर्हत्' कहा गया है। सम्प्रति द्वारा अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया और उज्जैन में जैन पर्वों को मनाने की परम्परा शुरू की (आवश्यकसूत्र, 435-36; परि. पर्वन् 9. 54)। इन साहित्यिक प्रमाणों के अलावा पुरातात्त्विक प्रमाण के तौरपर दिगंबर प्रतिमा (लोहानीपुर-पटना), से प्राप्त मस्तक विहीन कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न मूर्ति को मौर्य काल की माना जा सकता है।

दिगंबर प्रतिमा (लोहानीपुर-पटना), (जैना लायब्रेरी)

दीदारगंज (पटना) से प्राप्त यक्षिणी मूर्ति (जैना लायब्रेरी)

मौर्य काल में मूर्तियों का निर्माण चिपकवा विधि (अंगुलियां या चुटकियों का इस्तेमाल करके) या सांचे में ढालकर किया जाता था। पारखम (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त 7 फीट ऊँची यक्ष की मूर्ति, धौली (ओडिशा) का हाथी तथा दीदारगंज (पटना) से प्राप्त यक्षिणी मूर्ति मौर्य कला के विशिष्ट उदाहरण हैं। इस पर

स्पष्ट आलेख है जो उसे लगभग तृतीय शती ई.पू. की सिद्ध करता है। पटना संग्रहालय मेंयह में सुरक्षित है। इस मूर्ति की बनाबट और शरीर रचना का संतुलन उसे परमयोगी की मूर्ति के रूप में पहचान दिलाताहै, यहीं एक और घड़ जिन प्रतिमा का मिला है। तीर्थंकर की मूर्तियों पर इस काल में सामान्यत: चिह्न नहीं उकेरे जाते थे बल्कि पादपीठ में उट्टंकित शिलालेखों से उनकी पहचान होती थी। वक्षस्थल पर श्रीवत्स तथा हथेलियो या तलवो पर धर्मचक्र अथवा उष्णीस के चिह्न अवश्य होते थे। ऋषभदेव के सिर पर जटाजूट, सुपार्शवनाथ के सिर पर पाँच फण तथा पाशर्वनाथ की मूर्ति पर सप्तफण भी बनाए जाते थे, ये विशेषतायें शुंगकाल में अधिक विकसित हुई। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि वसुदेव हिण्डी (ल. पाँचवी शताब्दी, भाग 1, पृ.71) तथा आवश्यकचूर्णि (७वी शताब्दी, गाथा 774)में महावीर के जीवनकाल में निर्मित ''जीवन्त स्वामी'' की चन्दन काष्ठ मूर्ति का उल्लेख अवश्य आता है,। अकोटा से अवश्य गुप्तकालीन दो कांस्य मूर्तियाँ मिलि हैं।

अकोटा कांस्य प्रतीकात्मक जामा छवियां हैं। छवि: अंबिका पटे

ऐसी ही परम्परा का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में भी बाद में आया है। वहाँ कहा गया है कि प्रसेनजित ने बुद्ध की गोशीर्ष चंदन की प्रतिमा बनवाई थी जो जेतवन विहार में बहुत दिन तक रही। भगवान् महावीर द्वारा किसी जिनालय में जाने या किसी तीर्थंकर की पूजा करने का उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, यक्ष-यक्षायतनों में ठहरने का उल्लेख अवश्य मिलता है।

ऐसा लगता है, जिन मूर्तियाँ प्राचीन यक्ष-मूर्तियों के आदर्श पर निर्मित हुई और प्राचीन यक्ष-नाग सम्प्रदाय की पूजा-पद्धित को प्रभावित किया। शुंगकाल वैदिक धर्म का अतितकाल कहा जा सकता है। कलिंग नरेश खारवेल ने मगध पर आक्रमण कर ऋषभदेव की प्रतिमा को वापिस प्राप्त किया था।, चमकदार पॉलिश, मूर्तियों की सजीव भाव अभिव्यक्ति, एकाश्म पत्थर द्वारा निर्मित पाषाण स्तंभ एवं उनके कलात्मक शिखर पत्थरों पर पॉलिश करने की कला, इस काल में इस स्तर पर पहुँच गई थी।

मौर्य कला चमकदार दर्पण जैसी पॉलिश के साथ-साथ अपनी रचनाओं की विशाल विविधता के लिए उल्लेखनीय है। यह कला पत्थर के खंभों, रेलिंगों, छतरियों, राजधानियों, पशु और मानव मूर्तियों के अलावा कई अन्य रूपांकनों में भी दिखाई देती है। मौर्यकालीन स्तंभ दुनिया के अन्य स्तंभों से बहुत अलग हैं। मौर्य साम्राज्य के कई हिस्सों में पत्थर के स्तंभ बनाए गए थे। सारनाथ में पाया गया, मौर्य स्तंभ का शीर्ष जिसे व्यापक रूप से सिंह स्तंभ के रूप में जाना जाता है, मौर्य परंपरा को प्रदर्शित करने वाली मूर्तिकला का सबसे अच्छा उदाहरण है।

मूर्तिकला के साथ गुफाओं और वास्तुकला का भी संबंध जुड़ा है। अशोक द्वारा आजीविक सम्प्रदाय को भेंट किये गए प्राचीनतम तीन गुफा समूह गया, बाराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों के पास प्राप्त हुए हैं जिसकी विरासत उसे ई.पू.तृतीय शती की सिद्ध करती है। वास्तविक रूप में प्राचीनतम गुफाओं के रूप में हम उदयगिरि और खंडगिरि गुफाओं का उल्लेख कर सकते हैं। कलिंग ने अपने राज्य के तेरहवें वर्ष में इन पहाडियों पर जैन गुफायें, स्तूप, विहार और मन्दिरों का निर्माण कराया। हाथी गुफा शिलालेख में यह सब विस्तार से वर्णित है। इन गुफाओं को विहार के रूप में विकसित किया गया। ये गुफायें प्राय: दो मंजिलों की हैं। कोठरियाँ और बरामदे भी हैं। बिना स्तम्भ और बरामदें वाली गुफायें छोटी और अलंकृत हैं तथा स्तम्भयुक्त बरामदे वाली गुफायें बड़ी और अलंकृत हैं। इनमें रानी गुफा का शिल्प अधिक अलंकृत है।

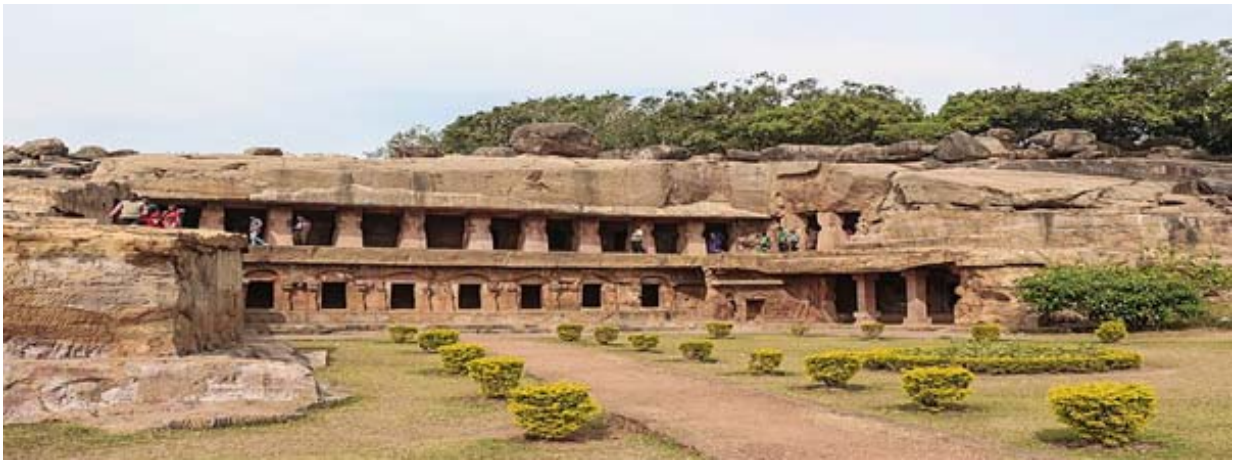

उदयगिरि रानी गुफा (जैना लायब्रेरी)

शिल्पांकित तोरण शासन देवियाँ, आयुध, वाहन और द्वारपाल भी अंकित हुए हैं। कलिंग जिन मूर्ति संभवत: इसी में स्थापित रही होगी।शासन देवियों का अनुरेखन यहाँ पहली बार हुआ हैं। यह इसकी विशेषता है। जूनागढ़ (गिरनार) में लगभग बीस शैल कला की गुफायें हैं जो बाबा प्यारा मठ की गुफायें कहलाती हैं ये तीन पंक्तियों में बनी हैं। इनमें मंगल कलश, स्वस्तिक, श्रीवत्स, भद्रासन, मीनयुगल आदि चिह्न मिलते हैं। इसका काल लगभग ई.पू.द्वितीय शती है। कालकाचार्य का सम्बन्ध भी गुजरात से इसी काल में रहा है। राजगृह के समीप सोनभण्डार नाम का एक जैन गुफा समूह है जो। इसका विशेष सम्बन्ध दिगम्बर सम्प्रदाय से है।। यहाँ प्राप्त लेख के अनुसार ये गुफायें वैरदेवमुनि ने जैन साधुओं के आवास की दृष्टि से बनवाई। इसमें तीर्थंकर मूर्तियाँ भी स्थापित की गई। विदिशा की उदयगिरि जैन गुफायें भी उल्लेखनीय हैं जिनका समय ई.पू. माना जाता है। इसी काल में दक्षिणापथ में भी तमिलनाडु में प्राकृतिक जैन गुफाओं की संख्या अधिक है। गुफाओं के भीतर शिलाओं को काटकर शय्यायें बनायी गई और तकिये भी उठा दिये। ये ई.पू.द्वितीय शताब्दी की गुफायें है। मदुरै, रामनाथनुरम, तिरुच्चरप्पल्लि, कोयम्बतूर, अर्काट आदि जिलों में गुफाओं की संख्या बहुत अधिक है। सित्तन्नवासल नामक स्थान पर प्राप्त गुफा भी उल्लेखनीय है।

मौर्य युग की बेहतरीन संरचनाएं, स्तूप एवं चौत्य बौद्ध और जैन मठ परिसर का हिस्सा, स्तूप, चौत्य और विहार हैं। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में राजस्थान के बैराट में एक स्तूप की संरचना सबसे अच्छे उदाहरणों में से एक है। सांची का महान स्तूप प्रारंभ में मौर्य युग में उपलब्ध ईंटों से बनाया गया था, और बाद में इसमें पत्थर लगाए गए, और कई नए निर्माण किए गए। देश में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता को दर्शाने वाले कई स्तूप देखे जा सकते हैं।

चौत्य की बात करें तो यह एक आयताकार प्रार्थना कक्ष था जिसके मध्य में एक स्तूप रखा हुआ था। स्तूप को केंद्र में रखने का उद्देश्य प्रार्थना करना था, और दूसरी ओर, विहार का उपयोग भिक्षुओं के निवास के रूप में किया जाता था।

सांची का महान स्तूप

निष्कर्ष

प्राचीन भारत के ऐतिहासिक विकास में मौर्य कला एवं वास्तुकला की महत्वपूर्ण भूमिका है। चूंकि साम्राज्य एक विशाल क्षेत्र तक फैला हुआ था, इसलिए मौर्य साम्राज्य की कला ने लंबी दूरी तय की और बड़ी पहचान हासिल की।

मौर्य युग की मूर्तियां भारत देश में मौजूद सबसे बेहतरीन कला मानी जाती हैं। यह शाही कला है जिसे मौर्य सम्राट अशोक ने संरक्षण दिया था। मौर्य कला में स्तंभ, स्तूप, चौत्य, रॉक-कट गुफा वास्तुकला और बहुत कुछ शामिल हैं। मौर्य साम्राज्य का शासन कला और वास्तुकला के क्षेत्र में पदोन्नति की अवधि के लिए माना जाता है

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. जैन मुर्ति शिल्प---.रिसर्च इंदिआ प्रेस नई दिल्ली
2. जैन मुर्तियो क उदभव और विकास-- डॉ ब्रजेश रावत बी.आर.पब्लिशिंग कोर्पोरेशन दिल्ली
3. https:èkèkwww.researchgate.netèkpublicationèk322639115_Development_of_Jain_Architecture_from_Caves_to_Temple_Architecture_
4. अमित कुमार. (2018), जैन मंदिर परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनकी विशषेताएँ, परिपेक्ष-इंडियन जर्नल ऑफ रिसर्च. 7(2), 49-50..
5. http:èkèkrcscollegemanjhaul.orgèkrcsèkassetsèkuploadsèkassignmentèkassignment- 1594299599-sms.pdf https:èkèkprepp.inèknewsèke-492-mauryan-sculptureArt-and-culture-notes https:èkèkprepp.inèknewsèke-492-mauryan-art-and-architecture-art-and- culture-notes

भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० गरिमा तिवारी

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

हिंदी साहित्य को रीतिकालीन श्रृंगारिकता और जड़ता से मुक्त कर नवीन चेतना, नवीन भाषा और नवीन प्रवृत्तियों से समृद्ध करने में नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र का अप्रतिम योगदान रहा है। उनके साहित्यिक योगदान के कारण एक पूरा युग 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत 'भारतेंदु युग' से होती है। भारतेंदु काल को 'गद्य काल' की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने आप में एक संपूर्ण साहित्यकार ही नहीं थे, अपितु एक समाज सुधारक, एक राष्ट्रप्रेमी, एवं क्रांतिकारी विचारक भी थे। लेकिन एक साहित्यकार के रूप में उनका महत्व निर्विवाद है। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं, कविता, नाटक, निबंध, व्यंग्य, यात्रा साहित्य एवं पत्रकारिता को अत्यंत ही समृद्ध किया। भारतेंदु जी का साहित्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक पक्षों से सम्बंधित है।

अपने साहित्य के माध्यम से आपने समाज के विविध पहलुओं पर अत्यंत बेबाकी से अपनी लेखनी चलाई है। अपने समय की आवश्यकता अनुसार आपने तत्कालीन समाज में नवीन चेतना का बीजारोपण विविध साहित्यिक विधाओं के माध्यम से किया। देशवासियों में अंग्रेजी सत्ता की लूट और खसोट की नीति को उजागर करने का प्रयास किया। भारतवासियों के आर्थिक शोषण को उजागर करने के साथ ही साथ उनमें राष्ट्र प्रेम भी जगाने का प्रयास किया। निज भाषा और अपनी जातीय एकता को सुदृढ़ बनाने पर बल दिया। भारतवासियों में स्वत्व का भाव जगाने का प्रयास किया। सामाजिक कुरीतियों जैसे भ्रूण हत्या, बाल-विवाह, सती प्रथा इन सब का मुखर विरोध आपने अपने साहित्य के माध्यम से किया। सामंती संस्कारों से युक्त रीतिकालीन कविता के स्थान पर सामान्य जन जीवन को साहित्य के केंद्र में रखा। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की आपने वकालत की। व्यंग्य प्रधान रचनाओं के माध्यम से भारतवासियों की अकर्मण्यता एवं उनके निठल्लेपन पर भी गहरा प्रहार किया। 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' जैसे राजनीतिक महत्व के लेख लिखे। भारतेन्दु जी पत्रकारिता की ताकत से वाकिफ थे, उन्हें एहसास था कि अगर वृहत्तर भारतीय जनमानस तक नवजागरण की चेतना फैलानी है, तो सबसे सफल हथियार पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं। 'कवि वचन सुधा', हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालबोधिनी जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से आपने समाज में पुनर्जागरण की चेतना प्रसारित करने का प्रयास किया। 'बालबोधिनी' पत्रिका स्त्री-जीवन केंद्रित पत्रिका थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने आप में सिर्फ एक व्यक्ति नहीं, बल्कि संस्था थे। उन्होंने अपने समानधर्मा लेखकों का एक समूह तैयार किया जिसे 'भारतेंदु मंडल' के नाम से संबोधित किया जाता है। उन रचनाकारों में प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, आदि महत्वपूर्ण रचनाकार थे। भारतेंदु मंडल, जिंदादिल अंदाज में, हास्य-व्यंग्य के माध्यम से समाज की सभी कुरीतियों से पर्दा हटा रहा था। समाज को एक स्वस्थ दिशा दिखाने का प्रयास कर रहा था। हालांकि इस साहित्यिक परिवर्तन के केंद्र बिंदु भारतेंदु हरिश्चंद्र थे, अतः उनके नाम से इस युग को 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है।

भारतेंदु युग आधुनिक चेतना संपन्न युग है। इसके निर्माण में सर्वाधिक महत्व तत्कालीन परिस्थितियों का है। अंग्रेजों ने भारतवर्ष को लंबे समय तक पराधीन बनाए रखने के लिए भारतवासियों में उनके साहित्य और संस्कृति को लेकर हीनता का भाव भर दिया। उन्होंने हमारे लघु कुटीर उद्योग धंधों को नष्ट कर हमारी रीड की हड्डी ही तोड़ दी। किसानों पर अत्यधिक लगान लगा दिया। हमारी भाषा को हीन बता अंग्रेजी भाषा को श्रेष्ठ भाषा बता प्रचारित किया। अपने आर्थिक लाभ के लिए रेल लाइनों का निर्माण किया, जिससे तकनीकी का भी विकास हुआ। प्रेस के आगमन से भारत वासियों को और भारतेंदु जैसे प्रबुद्ध साहित्यकारों को सबसे ज्यादा लाभ हुआ। प्रेस के आगमन से संप्रेषणीयता बढ़ी। भारतीय विद्वान, विचारक, समाज- सुधारक, पाश्चात्य देशों के साहित्य की नवीन चेतना से परिचित हुए और उन्होंने उस नवीन जागृति को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। नवीन चेतना को पद्य में अभिव्यक्ति की उतनी आजादी नहीं थी, अतः भारतेन्दुजी ने गद्य साहित्य के विकास पर बल दिया। ब्रजभाषा में मिठास है, जिससे वह गद्य की भाषा बनने के लिए अनुकूल नहीं थी। अतः उन्होंने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की वकालत की।

भारतेंदु युगीन रचनाकारों ने भारतवर्ष को आधुनिक बनाने के दावे में छिपे अंग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति को समझ लिया था और अपने साहित्य के माध्यम से उनके छल को प्रचारित-प्रसारित किया। साहित्य आधुनिक चेतना संपन्न होने लगा और लोगों में अंग्रेजी शासन के प्रति राजभक्ति के स्थान पर देशभक्ति उफान मारने लगी। भारतेंदु जी इस चेतना के वाहक बने। उन्होंने साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। उनकी इस युगांतरकारी भूमिका को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में अत्यंत महत्व के साथ रेखांकित किया है। 'हिंदी नवजागरण के अग्रदूतों की भूमिका हिंदी में साहित्यकारों ने ही निभाई थी। यहाँ बंगाल और मराठी नवजागरण की तरह समाज सुधार या धर्म-सुधारकों ने यह मोर्चा नहीं संभाला था। इसीलिए हिंदी-भाषी क्षेत्र में सामाजिक, राष्ट्रीय और राजनीतिक जागरूकता की जिम्मेदारी इन हिंदी के साहित्यकारों पर ही थी।'[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी आपके साहित्यिक योगदान को बखूबी पहचानते हुए कहा कि भारतेन्दुजी से पहले का साहित्य जो संतों की कुटिया से निकलकर राजाओं के दरबार में पहुँच गया था, उसे भारतेंदु जी ने पुनः भक्ति की मन्दाकिनी में स्नान करवाया और दरबारीपन से निकलकर लोक-जीवन के सामने ला खड़ा किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनका मंडल लगातार अपने साहित्य के माध्यम से समाज को जड़ता से मुक्त कर उसे प्रगतिशील बनाने में प्रयत्नशील था। भारतेंदु मंडल के साहित्यकार अपने साहित्य में भारतवर्ष की दुर्दशा के जिम्मेदार कारणों की पड़ताल कर भारतवर्ष की उन्नति के सपने देख रहे थे। वे अपनी भाषा, जातीय एकता, अपनी शिक्षा के प्रचार प्रसार, राष्ट्रीय चिताओं और समकालीन परिस्थितियों के प्रति आम जनता में यथार्थ चेतना का उदय चाहते थे।[2] भारतेंदु युग के लेखकों ने हिंदी साहित्य को रीतिकालीन नख-शिख वर्णन, नायिका भेद और चमत्कार प्रदर्शन से मुक्त किया। साहित्य को राष्ट्रीय चेतना संपन्न किया। उनके साहित्य में अपने राष्ट्र के प्रति गौरव और समर्पण का भाव है। समाज में व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों के प्रति गहरा आक्रोश है। भारतेंदु युग के साहित्यकारों की राष्ट्रीय चेतना का स्वर भारतवर्ष के आर्थिक शोषण से संबंधित है-

'अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।'

तो सामाजिक चेतना का स्वर तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त सभी कुरीतियों से है, जो समाज के स्वास्थ्य विकास में बाधक थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने साहित्य के माध्यम से बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, धार्मिक पाखंड, अशिक्षा जैसी सामाजिक कुरीतियों का जोरदार खंडन किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निज भाषा की उन्नति की वकालत की और लिखा-

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।'

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अगर किसी गद्य विधा को सर्वाधिक सशक्त बनाया और जन-जागृति के हथियार के रूप में प्रयुक्त किया तो वह थी 'नाटक' विधा। नाटक साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय और लोकतांत्रिक विधा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र को नाटक की शक्ति का एहसास था। भारतेन्दुजी न सिर्फ नाटक लिखते थे, बल्कि अभिनय भी करते थे। उन्होंने भारत-दुर्दशा, अंधेर नगरी जैसे सुप्रसिद्ध नाटक लिखे। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन अंग्रेजी शासन व्यवस्था की लूट खसोट की नीति को उजागर किया तो वहीं दूसरी तरफ भारतवर्ष की दुर्दशा के उत्तरदायी आंतरिक और बाह्य दोनों कारणों की जांच पड़ताल की। भारतवासियों को अपने दुर्गुणों से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया। भारतेंदु जी ने ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक, आख्यानात्मक, यात्रात्मक विचारात्मक कई प्रकार के निबंध भी लिखे। जिसमें 'बलिया में भारतेंदु जी', 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' और एड्रेस जैसे राजनीतिक महत्व के लेख लिखे तो 'हिंदी कविता', 'हिंदी भाषा' जैसे भाषा संबंधी लेख भी लिखे।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल की शुरुआत करने वाला भारतेंदु युग और भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी साहित्य में अपना अलग ही महत्व है, क्योंकि यह वही समय और वही युग है जिसमें साहित्य करवट लेता है। दरबारी साहित्य से आम जनता का साहित्य बनता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य को, सामंती रुचि से मुक्त कर नवीन चेतना से युक्त करते हैं, साहित्य को राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत करते हैं और साथ ही साथ इस राष्ट्रीयता के विकास में बाधक तत्वों पर भी प्रकाश डालने से परहेज नहीं करते। भारतवासियों को गाहे बगाहे उनका बल याद दिलाने का प्रयास करते हैं तो दूसरी ओर समाज को आईना भी दिखाते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक सजग साहित्यकार होने के साथ ही साथ समाज-सुधारक की भूमिका भी बखूबी निभाई। भारतेंदु जी सच्चे अर्थों में हिंदी साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत माने जा सकते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अप्रतिम योगदान से ही हिंदी साहित्य आधुनिक और वैज्ञानिक चेतना संपन्न बन सका। मात्र पैंतीस वर्षों की आयु में अपनी लेखनी से साहित्य में ऐसा आमूलचूल परिवर्तन उपस्थित कर देना, भारतेन्दुजी की अद्‌भुत मेधाशक्ति का परिचायक है। डॉक्टर रामविलास शर्मा ने उनके साहित्यिक और सामाजिक अवदान पर उचित ही लिखा है- 'भारतेंदु युग का साहित्य भारतीय समाज के पुराने ढांचे से संतुष्ट न रहकर उसमें भी सुधार चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य ना होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है। भारतेंदु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारको में भी प्रमुख थे।'

सन्दर्भ सूची

- https:èkèkepgp.inflibnet.ac.inèkHomeèkViewSubject?catid=Ou87QKvJCO+SE37bEZFbPA
- https:èkèkepgp.inflibnet.ac.inèkHomeèkViewSubject?catid=Ou87QKvJCO+SE37bEZFbPA
- भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली-6, सं.- ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010

अनामिका के काव्य में स्त्री अस्मिता का संघर्ष

डॉ० आशा मीणा

सहायक आचार्य, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

समकालीन हिंदी कविता की समूची विकास प्रक्रिया में हिंदी कवयित्रियों को स्वतंत्र रूप से रेखांकित करना बहुत ही कठिन है आज पुरुषसत्ता प्रधान भारतीय समाज में नारी का अस्तित्व चाहे वह सामाजिक जीवन के स्तर पर हो या सृजनात्मक स्तर पर हो उन्हें अपने अस्तित्व के खो जाने का डर सदैव बना रहता है।

वर्तमान समय में अनेक विमर्शों का प्रचलन चल रहा है जैसे साहित्यिक विमर्श, सामाजिक विमर्श, राजनीतिक विमर्श, दलित विमर्श, ऐतिहासिक विमर्श और स्त्री विमर्श। आज इन विमर्शों के दौर में स्त्री विमर्श सर्वाधिक चर्चित विमर्श है। स्त्री विमर्श से तात्पर्य है स्त्री जीवन और उसके जीवन से जुड़ी समस्याएं। स्त्री विश्व की जनसंख्या का आधा भाग है आज भी स्त्री दमित शोषण एवं प्रताड़ित है। स्त्री विमर्श एक ऐसी संकल्पना है जो स्त्री जीवन एवं उसके अस्तित्व, उसकी पहचान को लेकर समाज के सम्मुख कई प्रश्न खड़े करती हैं। स्त्री विमर्श का संघर्ष पुरुषों के साथ नहीं बल्कि समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था से है। इसीलिए पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मापदंडों, पितृवादी मूल्यों, लिंग-भेद की राजनीति के साथ स्त्री के उत्पीड़न के कारणों को समझने की गहरी दृष्टि स्त्री- विमर्श से प्राप्त होती है। स्त्री विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं,परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है और स्त्री को मानवीय बनाना, पुरुष के समान उसे भी इंसान समझना, स्त्री विमर्श का मुख्य उद्देश्य है।

वर्तमान समय में स्त्री विमर्श हिंदी साहित्य का केंद्रीय विषय बन चुका है महादेवी वर्मा से लेकरकृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, ममता कालिया, नासिरा शर्मा और अनामिका आदि सभी नारीवादी साहित्यकारों ने अपने-अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री विमर्श के हर पहलू को समझने और समझाने का प्रयास किया है। इन स्त्री रचनाकारों ने स्त्री को अपनी रचनाओं में केंद्रीय विषय बनाकर उनकी समस्याओं और उनके शोषण, उत्पीड़न को वाणी देने की कोशिश की है। स्त्री विमर्श की इस कड़ी में अनामिका स्त्री विमर्श की प्रबल व्याख्याता, एक बेहतरीन कवियत्री, उपन्यासकार और आलोचक के रूप में सामने आती है।

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श की एक नई परंपरा का सूत्रपात करने में अनामिका का एक विशिष्ट स्थान रहा है। उन्होंने हिंदी काव्य जगत में स्त्रियों की समस्याओं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर कुशलता से उभारने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उनकी कविताओं में किसी भी प्रकार का कोई बनावटीपन नहीं है। समय के अनुकूल विचार और भाषा उनके लेखन की विशिष्ट पहचान है उनकी कविताएं भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं लोक जीवन से पाठकों को परिचित कराती है। परंपरा एवं यथार्थ का अद्‌भुत मिश्रण उनकी कविताओं में दिखायी देता है।

अनामिका की काव्य यात्रा 1975 ई से शुरू तो होती है मगर एक स्त्रीवादी कवि के रूप में उनकी पहचान 1990 ई. में प्रकाशित 'समय के शहर में' नामक काव्य संग्रह से होती है। यह संग्रह उनका काव्य जगत का प्रमाणिक दस्तावेज माना जाता है उनकी कविताओं के बारे में केदारनाथ सिंह कहते हैं कि "'समय के शहर में' अनामिका का पहला काव्य संग्रह है जो बिना किसी दुराव-छिपाव के उनके अब तक के पूरे काव्य विकास का सच्चा और प्रामाणिक ग्राफ प्रस्तुत करता है इसके पन्नों की आरंभिक कविताओं की रूमानी गुनगुनाहट से लेकर बाद के प्रौढ़तम प्रयोगों के आरोह तथा झंकृति तक को एक साथ सुना जा सकता है। अपने निजी वैशिष्ठ्य और अपनी संपूर्णता में इस संग्रह की कविताएं एक अलग किस्म की रचनात्मक तृप्ति और गहरी आश्वस्ति प्रदान करने वाली कविताएं हैं।"[1]

अनामिका ने अपनी कविताओं में किसी एक वर्ग की स्त्रियों को स्थान नहीं दिया बल्कि उन्होने हर वर्ग, नस्ल, जाति,संप्रदाय और धर्म की स्त्रियों को अपने काव्य में एक समान स्थान दिया है साथ ही कवयित्री ने उन्हें विविध रूपों में पहचान भी दिलायी है।कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से सभी वर्गों की स्त्रियों को लैंगिक अस्मिता की भी पहचान दिलाना चाहती है वह चाहती है कि एक स्त्री होने के नाते उन्हें समाज में सभी अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए। उनके साथ किसी भी प्रकार का कोई लैंगिक असमानता का भेदभाव नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में अनामिका रहती हैं कि "अगर मेरी कोई लैंगिक अस्मिता है तो चाहते ना चाहते मेरी एक जातीय वर्गीय अस्मिता भी है जो पॉलिथीन के खोल की तरह मेरी जान को लगी है। अगर कभी आप अपने किसी अस्पताल के बर्न वॉर्ड में 20 प्रतिशत बर्न का केस देखा हो तो आप मेरी बात समझ सकेंगे।पिघली हुई नायलॉन की साड़ी जैसे चमड़ी से सट जाती है। मेरी लैंगिक पहचान मेरी जातीय या वर्गीय अस्मिता मेरी चमड़ी से ऐसे आ सटी है कि लगता है अब तो यह मेरी जान के साथ ही जाएगी।"[2] निश्चित रूप से आज स्त्रियाँ अपनी अस्मिता, अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। है।

स्त्री अस्मिता की पहचान को लेकर साहित्य में कई स्त्रीवादी लेखिकाएं हैं जो स्त्रियों को उनकी अस्मिता के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती हुई लगातार दिखाई देती हैं और अपनी लेखनी के माध्यम से संघर्ष करते हुए कहती हैं-

"औरतों के बारे में

माना जाता है
कि वे चिट्ठियाँ लिखती हैं
धारावाहिक!
इतना उनके भीतर क्या है
शताब्दियों का संचित
कि टीक राकस की पड़ जाती है
उनकी बातों में।"[3]

अनामिका अपनी कविताओं उन स्त्रियों को भी अपनी पहचान दिलाना चाहती हैं जिन्हें समाज में एक कलंक माना जाता है। अनामिका स्त्री के यौन शोषण का मुद्दाउठाती है। यौनदासियों के यौन शोषण से लेकर कॉल-गर्ल तक के यौन शोषण को अपनी कविता के परचम के नीचे लाकर समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करती है और कहती हैं कि इस तरह की स्त्रियाँ समाज में हैं तो यह स्त्रियों के लिए शर्म की बात नहीं और न ही स्त्रियों की इसमें कोई गलती है, गलत तो समाज है जो अपनी भूख मिटाने की खातिर मजबूर औरतों का शोषण करता है। आज भी स्त्रियों का यौन शोषण जारी है। कवयित्री स्त्रियों की इस पीड़ा को अपनी कविता के मध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए लिखती है कि-

"एक गुफा है
मेरी नाभि के नीचे!
अपनी ही खूंखारिता से थके
शेर-चीते-अजगर
आते हैं कुछ देर सोने यहाँ पर!
एक नये आखेट की खातिर
जाते हैं जब अगले दिन बाहर,
उनके वे टूटे नाखून, राल, केंचुल
एक अजब बहनापे से देखते है मुझे!
मकड़ी के जालों से आती हुई
सूरज की पहली किरण
पड़ती है बुझी हुई धूनी पर।"[4]

अनामिका की कविताएँ स्त्री संवदेना को खंगालती समकालीन हिन्दी कविता का एक मानदण्ड स्थापित करती हैं। स्त्री टूटती नहीं बल्कि तोड़ी जाती है। कभी समाज के द्वारा कभी खुद के द्वारा। गहरे एहसासों को अपनी कविता में व्यक्त करती अनामिका संघर्ष करती है कभी आरोपित सामाजिक मापदण्डों से तो कभी पुरूष वर्चस्ववादी के दबाव से। अनामिका के काव्य में भारतीय नारी के आँसू और विद्रोह दोनों हैं। स्त्री-विमर्श की राह में कई चुनौतियाँ है। सबसे बड़ी चुनौती है मनुष्य का स्त्रियों के प्रति सामंती सोच में बदलाव। अनामिका की कविताएँ स्त्रियों को सामंती सोच की परिधि से बाहर निकालकर एक विस्तृत फलक में समझने का आह्वान करती है। 'खुरदरी हथेलियाँ' काव्य संग्रह की पहली कविता 'स्त्रियाँ' में कवयित्री ने उनके मनोभावों को अभिव्यक्त करते हुए कहती हैं-

"पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कॉपियों का
चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने के पहले
देखा गया हमको जैसे की कुफ्त हो उनींदे
देखि जाती है कलाई छड़ी अलस्सुबह अलार्म बजने के बाद।"[5]

स्त्री विमर्श इनकी कविताओं का केंद्रीय विषय है। यद्यपि कवयित्री ने इसे विमर्श की तरह नहीं बल्कि यथार्थ के रूप में चित्रित किया है। अपनी कविताओं में इन्होने निम्न वर्ग, मध्य-वर्ग एवं उच्च-वर्ग की स्त्रियों के यथार्थ का बारीकी से चित्रण किया है। अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनिक संदर्भों में इस तरह व्यक्त किया है कि पाठक को वह अपना अनुभव प्रतीत होता है। अनामिका एक प्रगतिशील साहित्यकार है। उन्होने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सभी समस्याओं पर दृष्टिपात करते हुए संक्रमण काल में व्यक्ति एवं समाज को किस तरह आगे बढ़ना चाहिए, अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में पितृसत्ता के षड्यंत्रों के नित-नये बदलते रूप एवं समकालीन स्त्री-चरित्रों की भूमिका सहज ही देखी जा सकती हैं।

अनामिका भूमण्डलीकरण के दौर की कवयित्री हैं। उनकी कविताओं में भारतीय नारी की मुक्ति की छटपटाहट है। एक ओर परम्परा का उत्कट मोह है तो दूसरी तरफ आधुनिक होने की आकांक्षा। वैश्विक आधुनिकीकरण के इस समर में मनुष्य न तो पूरी तरह आधुनिक हो पाता है और न ही परम्परा को

त्याग पाता है। फलस्वरूप एक द्वन्द्वात्मक स्थिति में रहता है। भारतीय नारी के समक्ष परम्परा को ढोने की मजबूरी के साथ ही मुक्ति की राह तलाशने की उत्कंठा भी है। भारतीय नारी की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति अनामिका के काव्य का केन्द्रीय विषय है। जीवन के हर मोड़ पर नारी कठिनाइयों एवं विद्रूपताओं से घिरी हुई है। अनामिका ने अपने काव्य के माध्यम से स्त्री जीवन के हर पहलू को देखा समझा एवं महसूस किया है। उनका काव्य लेखन स्त्री जागरण और अस्मिता निर्माण की महत्वपूर्ण कड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. समय के शहर में (भूमिका), अनामिका, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ट सं.- 17
2. कविता में औरत, अनामिका, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ट सं.- 8
3. दूब-धान, अनामिका, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ट सं.- 80
4. दूब-धान, अनामिका, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ट सं.- 66
5. खुरदरी हथेलियाँ, अनामिका, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ट सं.- 13

छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान

धर्मेन्द्र कुमार पाटनवार

शोधकर्ता सहायक प्रध्यापक हिन्दी, शा.इन्द्रावती महाविद्यालय भोपालपटनम, जिला-बीजापुर(छ.ग.)

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना 1 नवम्बर सन 2000ई. को हुआ। इसके पहले यह मध्यप्रदेश का हिस्सा था। हिन्दी साहित्य में आजादी के काल का बड़ा महत्व है। अधिकांश साहित्यकारों ने आजादी के काल में कालजयी रचना प्रस्तुत की। इस समय छत्तीसगढ़ अस्तित्व में नही था। इसलिए मध्यप्रदेश साहित्यिक काल दृष्टि से महत्वपूर्ण जगह था। स्वाधीनता चेतना जागृत करने वाले अनेक कालजयी रचनाकारइस पवित्र भूमि में पैदा हुए, जिन्होंने अपनी रचना के माध्यम से सामाजिक चेतना जगाकर स्वाधीनता आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आजादी के बाद स्वतंत्र भारत में समाजिक तानाबाना को सुदृढ़ करने एवं विभिन्न समाजिक कुरूतियों को उजागर करने के लिए भी विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचना के माध्यम से न केवल जनजागृति लाई, अपितु अपनी रचना के माध्यम से समाज को दिशा भी प्रदान किया।

मध्यप्रदेश के समय में वर्तमान छत्तीसगढ़ के भूभाग से जन्म लेने वाले प्रमुख साहित्यकार में छायावाद के प्रेरक पं. मुकुटधरपाण्डेय, आजादी के बाद के साहित्यकारों में हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तम्भ रहे-। गजानन माधव मुक्तिबोध एवं वर्तमान समय के प्रमुख गद्यकार विनोद कुमार शुक्ल अग्रणी है।

पंडित मुकुटधर पाण्डेय का जन्म 30 सितम्बर सन् 1895ई. को वर्तमान जांजगीर चांपा जिले के बालपुर ग्राम में हुआ था। महानदी के तट पर बसा यह गांव रायगढ़-सारंगढ़ मार्ग पर चन्द्रपुर जमींदारों की पूर्व दिशा में स्थित अपने प्रकृतिक सुषमा से सम्पन्न है। सन् 1909 में 14वर्ष की उम्र में इनकी पहली कविता आगरा से प्रकाशित पत्रिका ''स्वदेश बांधव'' में प्रकाशित हुई। सन् 1919 में उनका पहला कविता संग्रह ''पूजा के फूल'' प्रकाशित हुआ। देश के सभी प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार लिखते हुए मुकुटधर पाण्डेय ने हिन्दी पद्य के साथ-साथ हिन्दी गद्य के विकास में भी अपना अहम योयदान दिया। बीसवीं शताब्दी के महान विभूतियों में से एक पद्मश्री साहित्य वाचस्पति पंडित मुकुटधर पाण्डेय जी संक्रमण काल के सर्वाधिक प्रगतिशील कवियों में अपना स्थान रखते है। द्विवेदी युग और छायावाद युग के बीच के कड़ी को समझने के लिए मुकुटधर पाण्डेय के काव्य संसाार को समझे बिना खड़ी बोली हिन्दी के विकास यात्रा को पूरी तरह से नहीं समझ सकते है। डॉ. बलदेव जी कहते है ''पाण्डेय जी ने द्विवेदी युग के शुष्क उद्यान में नूतन सूरभरा तथा नवबसंत की अगुवानी कर युग प्रवर्तन का ऐतिहासिक कार्य किया।उनकी ''कुरी के प्रति'' रचना को ''पदुमलाल पुन्नालाल बख्सी जी'' ने प्रथम छायावादी कविता के रूप में स्वीकार किया। छायावाद का नामकरण पण्डित मुकुटधर पाण्डेय जी ने किया है। ''डॉ. विनय मोहन शर्मा'' ने एक पत्र में लिखा है-''छायावाद नाम सर्वथा मेरा गढ़ा हुआ है, और मैंने परोक्ष सत्ता के प्रति अस्पष्ट रूप से ब्यक्त भावों की रचना के लिए इसे प्रयुक्त किया था।'' ''कुरी के प्रति'' रचना के बारे में उनका कहना है-''रात्रि में कुरी के करूण स्वर सुनकर बिस्तर पर पडेध्-पडेध् मैंने मन में ही ''कुरी के प्रति'' की रचना कर डाली। तब मुझे आश्चर्य हुआ,कि छायावाद लिखा नहीं जाता, अनुभूति के द्वारा अपने आपही लिखा जाता है। पण्डित मुकुटधर पाण्डेय और छायावादी काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है, कि उसने खड़ी बोली हिन्दी को आधुनिक भावबोध से युक्त रचनात्मक और समृद्धशाली काव्यभाषा बनाने की पहल की। हिन्दी में छायावाद निबंध के प्रथम निबंध ''कवि स्वतंत्र्या'' में पाण्डेय जी ने रीति ग्रंथों की परतंत्रता से मुक्त होकर काव्य में व्यक्तित्व तथा भाव, छंद, भाषा के प्रकाशन रीति में मौलिकता की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस कहानी में पाण्डेय जी ने तत्कालीन जमींदारी प्रथा एवं उनके शोषण के रूप को व्यक्त किया है। पंडित मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद की स्थापना की थी, उस समय उन्होने आनंदानंदतावादी हिन्दी कविता में भी एक विशिष्ट शैली का उन्मेष देखा था, जो अंग्रेजी और बंग्ला की मजिस्टीक डेमोक्रेसी की तरह शामील है- अज्ञातता, भावों का समापन, रहस्यात्मकता, अज्ञातसत्ता की प्रति जिज्ञासा, संकेत और आकुलता अवलोकन। पाण्डेय जी के काव्य में द्विवेदी एवं छायावादी विशेषताएं दृष्टव्य होती है, इस प्रकार हम देखत है कि उनके काव्य लेखन में स्वच्छंदतावाद और आदर्शवाद जैसे दो विरोधी प्रकृतियां देखने को मिलती है। मुकुटधर पाण्डेय ने सर्वप्रथम अपना लेखन कार्य काव्य की ओर उन्मुख हुए, बाद में वे विचारक, अनुवादक, साहित्यिक समीक्षक और गद्य साहित्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुये।

आधुनिक हिन्दी कविता एवं समीक्षा के सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 15 नवम्बर सन् 1917 को श्योरपुर, ग्वलियर, मध्यप्रदेश में हुआ था। अध्ययन कार्य समाप्त कर विभिन्न जगहों पर मास्टरी की नौकरी की। अंततः दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में प्राध्यापक नियुक्त होकर अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का उपहार हिन्दी जगत को दिया। अध्ययन-अध्यापन, लेखन व पत्रकारिता के साथ-साथ आकाशवाणी व राजनीति की व्यस्तता के बीच सतत संघर्ष व जुझाऊ व्यक्तित्व का परिचय देते हुए मुक्तिबोध ने आधुनिक हिन्दी कविता व समीक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी युग का सुत्रपात किया। मुक्तिबोध घुमक्कड़ प्रकृति के थे। उनकी कविताओं में बावड़ी, पुराने कुएं, वीरान खण्डहर, पठार, जंगल आदि अनेक शब्द बार-बार आते है। ये अपनी लम्बी कविताओं के लिए प्रसिद्ध है। उन्होने निबंध, कहानियां तथा समीक्षाएं भी लिखी। श्रीकांत वर्मा ने ''चांद का मुंह टेढ़ा है'' काव्य संग्रह के प्रथम संस्करण में लिखा है- "किसी और कवि की कविताएं उनका इतिहास न हो, मुक्तिबोध की कविताएं अवश्य उनका इतिहास है", जो इन कविताओं को समझने, उन्हें मुक्तिबोध को किसी और रूप में समझने की जरूरत नही पड़ेगी। शमशेर बहादुर सिंह का कहना था,, किसी ने मुक्तिबोध की एक बरगद से तुलना की है, जो अवश्य ही उनकी एक प्रिय इमेज है!मगर यह बरगद नही चट्टान है! शिलाओं पर शिलाएं! झरने कही बिरले ही, केवल

गहरी बावड़िया सूखे, कुंए, झाड़झंखड़, उंची-नीची अनंत पगडंडिया। गजानन माधव मुंक्तिबोध के बारे में कहा जा सकता है, कि हिंन्दी साहित्य जगत में जिसने अपने समकालीन रचनाकारों से भिन्न काव्य दृष्टिकोण अपनाते हुए सबको गहरे स्तर तक प्रभावित किया है। उनकी काव्य दृष्टि केवल कवि की अनुमिति ही नहीं, अपितु व्यापक सामाजिक सरोकार से अंतर्गुम्फित है।उनकी लगभग सभी रचनाएं उनके संघर्ष व कवि बनाम समाज के अंतर्द्वंद्व को परिलक्षित करती है। उनकी लम्बी चर्चित व विवादास्पद- कविता "अंधरे में'' सन् 1964 में "आशंका के द्वीप अंधेरे में'', शीर्षक से छपि थी। 'अंधेरे में' कविता की मूल संवेदना पर विचार करने से पहले आलोचकों द्वारा दिए गए मंतब्य जहां डा॔ नामवर सिंह- इनका मूल अस्मिता की खोज बताते हैं, वही रामशेर बहादुर सिंह- इसे इस्पाती दस्तावेज मानते है। इसके अलावा 'श्रीकांत वर्मा'-कविता का हिंदुस्तान, 'निर्मला जैन'-अंतस्तल का पूरा विपल्व और 'विश्वनाथ त्रिपाठी'- संघर्ष पुरूष की स्वपन कथा मानते है। 'अंधेरे में' एक ऐसी कविता है जो अपने अंदर विविधता को समेटे हुए है, और इसका जटिल कथ्य और शिल्पगत सौंन्दर्य ऐसा है, जो आसानी से समझ में नही आता।

विनोद कुमार शुक्ल का जन्म। जनवरी सन् 1937 को राजनदंगांव छत्तीसगढ़ में हुआ। इंदिरागांधी कृषि विश्व-विद्यालय रायपुर से कृषि विस्तार के सह प्रधान पद से सेवा निवृत होकर स्वतंत्र लेखन कार्य में संलग्न रहें। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता आदि विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। लेकिन उनकी पहचान मूलतः उपन्यासकार के रूप में रही। विनोद कुमार शुक्ल ने उपन्यास के बने बनाए ढांचे को तोड़ने की कोशिश की। शुक्ल जी ने अपने उपन्यास एक प्रतिसंसार रचते है। और यह प्रतिसंसार फिल्म की तरह है, जिसके केमरे के पीछे एक कवि दृष्टि है। शुक्लजी का सामाजिक दर्शन एक इकाई के रूप में व्यक्ति और परिवार से शुरू होता है। सामान्य लोगों की छोटी-छोटी बातों को भी पर्याप्त महत्व देते है, और इस बहाने उनके चरित्र के भीतरी परतों को बोलते है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में कुछ भी विराट और महान के भाव से ग्रस्त नही है, न जीवन, न उनके पात्र,उनकी रचना का घटनाएं इनमें संघर्ष फैशनेबल नही है। सादगी से जूझता अस्तित्व है, शुक्ल जी ने अपने उपन्यास ''नौकर की कमीज'' में नौकर के पीढीः पर फोकस करते है, मालिक के शोषणतंत्र पर नहीं। राजा पर सीधे प्रहार करने के बजाय प्रजा का दर्द अभिव्यक्त करना उनकी विशेषता है। वे प्रजा के साथ है। भारतीय समाज में स्थित निम्न मध्यम वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक जीवन का यथार्थ उनके साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। वर्तमान मानव जीवन के अंतर्गत और बहिर्गत जीवन का मार्मिक पक्ष उन्होंने खींचा हैं। मुख्यतः उनके साहित्य में कस्बाई परिवेश, युवा वर्ग की मानसिकता, आम आदमी की समस्याएं पारिवारिक जीवन और कश्मकश नव-दम्पत्तियों का जीवन उजागर हुआ है। इनकी रचनाएं साधारण जीवन का सौन्दर्य है, जो सभी को आकर्षित करता है।जीवन के प्रति अपार जिजीविषा का चित्रण इनकी रचनाओं में शामिल है। भारतीय निम्न मध्य वर्ग एंव ग्रामीण जीवन की सपाट मंथन और एकरस ध्वनियों को अपने उपन्यास में वर्णित किया है। शुक्ल जी के उपन्यास में नई सृजन परंपरा, नवीन कथ्य एंव शिल्प के साथ-साथ नए भावबोध, अनुभूतियों के प्रमाणिकता और जीवन को यर्थाथ के धरातलीय पक्षों को सफल स्तर प्रदान करने में समर्थ रहें है। इनके उपन्यास की कविता को पढ़ने में ऐसा लगता है, जैसे एक लम्बी स्वप्नमयी काव्यात्मक संसार से गुजर रहे है। शुक्ल जी ने उपन्यास के माध्यम से मानव जीवन के वैविध्यपूर्ण और जटिल आयाम को चित्रित करने का प्रयास किया है। इसलिए इनके उपन्यास में जीवन का व्यापक सच्चा और जीवन्त चित्रण मिलता है। शुक्ल जी के उपन्यास में बारीकिया दिखाई देती है, उनके सभी उपन्यासों की अंतर्वस्तु एक दूसरे के पूरक है। शिल्प वैशिष्ट्य अन्तर्वस्तु को नवीनता प्रदान करता है।

पदुमलाल पुन्ना लाल बख्सी का जन्म वर्तमान छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव जिले के खैरागढ़ में 27 मई सन् 1894 को हुआ था। अपको साहित्य व काव्य से अनुराग, आपकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुकुल ही था, चूंकि आपके पितामह उमराव बख्सी अपने समय के सुप्रसिद्ध कवि थे। आपके पिता पुन्नालाल बख्सी भी कविता करते थे। बी.ए. करने के पश्चात आप साहित्य सेवा में लग गए। आपकी रचनाएं सर्वप्रथम ''हितकारिणी'' के माध्यम से प्रकाश में आई। सन् 1916 में आपकी कहानी ''झलमला'' ''सरस्वती'' पत्रिका में प्रकाशित हुई। सरस्वती के संपादक पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी भी आपकी मौलिकता और मननशीलता से प्रभावित हुए थे। इसलिए द्विवेदी जी ने अवकाश लेने के बाद बख्सी जी को बुलाकर सरस्वती पत्रिका के संपादक का कार्यभार सौंपा था। कुछ वर्षों तक संपादन करने के बाद आप पुनः खैरागढ़ आ गए और बाद में दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगांव में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत रहे।

हबीब तनवीर का जन्म 1 सितम्बर सन् 1923 को वर्तमान छत्तीसगढ़ के रायपुर शहर में हुआ था। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1945 में वे मुंबई आ गए, यहां आल इंडिया रेडियों से जुड़कर आपने अपनी प्रतिभा को प्रखर किए। यहीं इन्होंने हिन्दुस्तानी थिएटर में रंगकर्म किया और बच्चों के लिए नाटक किए। जब आप इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन और प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े तो वे अपने समाज और वंचितों के प्रति सजग हुए। इन दोनों संस्थाओं से जुड़ने से उनकी सोच और कला दोनों में सामाजिक स्तर पर एक नई चिंगारी ने जन्म लिया। 'चरणदास चोर' नाटक की अपार लोकप्रियता ने हबीब की साहित्य जगत में एक खास जगह बनाई। ''जहरीली हवा'' नाटक उन्होंने भोपाल गैसत्रासदी पर लिखा था। उनका प्रसिद्ध शेर था-

''हम हस्ताक्षर नही किया करते'।'

बडी कारीगरी से खुद को दिलो पर टांक दिया करते है।।

8 जून सन् 2009 को यह सच्चा इंसान हमेंशा के लिए खामोस हो गया। लेकिन नाटकों में उनके विचारों और तेवरों की खुसबू कला जगत को सराबोर करती रहेगी।

इस तरह छत्तीसगढ़ में भी साहित्यकारों की एक लम्बी श्रृंखला है, जिन्होने अपनी रचना कौशल से न केवल हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया, अपितु अपनी बेबाक कथन के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों एवं उनकी आकांक्षाओं को छुने का प्रयास किया। समाज के यर्थाथ स्वरूप को अपनी रचनाओं के माध्यम से श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत कर अपनी लेखन कार्य का भी निर्वहन किया।

संदर्भ ग्रंथः-

(1) ''छायावाद और मुकुटधर पाण्डेय''- डॉ. बलदेव, वैभव प्रकाशन रायपुर 2005।
(2) ''गजानन माधव युक्तिबोध'' प्रतिनिधी कविताएं- अशोक बाजपेयी, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली-2010।
(3) ''विनोद कुमार शुक्ल''- नौकर की कमीज-वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-20049।
(4) 'अंधेरे में' का महत्व-डा. राजेन्द्र कुमार, सुमित प्रकाशन पंयागराज, संस्करण 2008।
(5) 'मुकुटधर पाण्डेय-व्यक्ति एंव रचना, संपादक-महावीर अग्रवाल, आलेख- 'डा.विनय कुमार पाठक'।
(6) 'विनोद कुमार शुक्ल'-दुर्लभ अभिव्यक्ति; विरल ब्यक्तित्व, संपादक-महावीर अग्रवाल।

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० श्रद्धा सिंह

Faculty of Law, Department of law,APS University Rewa Madhya Pradesh

सारांश

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में महान योगदान रहा है। भारत में, मध्यप्रदेश का नाम साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी राज्यों की सूची में आता है। राज्य से संबंधित कुछ प्रमुख साहित्यकार निम्न हैं- महाकवि कालिदास, भर्तृहरि, भवभूति, केशवदास, माखनलाल चर्तुवेदी, सुभद्रा कुमरी चौहान, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, अटल बिहारी वाजपेयी आदि। जैसे कई प्रसिद्ध साहित्यकार मध्य प्रदेश से जुड़े हुए हैं और हिंदी साहित्य में उनका योगदान अतुलनीय है।

कीवर्ड

जीवन, परिचय, जन्म, निवासी, योगदान, प्रमुख काव्य, पुरस्कार, साहित्य, शिक्षा और प्रारंभिक जीवन, कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध, विभिन्न क्षेत्रों में योगदान, हास्य कवि, लेखक, और नाटककार, भारतीय साहित्य, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विषयों पर गहरा विचार

शोध का तरीका

मध्य प्रदेश के विभिन्न साहित्यकारों के जीवन, कार्य, और रचनाओं के लिए इसमें उनकी पत्रिकाएं, पत्र, निबंध, कविताएं, नाटक, उपन्यास, आदि शामिल हो सकते हैं। विभिन्न ग्रंथालयों, संग्रहालयों, और शोध प्रस्तावों में उपलब्ध अनुसंधान पत्रों का अध्ययन इनमें समालोचना, अध्ययन, और विश्लेषण है जो मध्य प्रदेश के साहित्यकारों के अवदान को समझने में मदद कर सकता है। आत्मगाथाओं का अध्ययन: मध्य प्रदेश के साहित्यकारों के आत्मगाथाओं का अध्ययन करें, जिससे आप उनके व्यक्तित्व, विचार, और साहित्यिक दृष्टिकोण को अधिक समझ सकें।

अनुसंधान अध्ययन की आवश्यकता है

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन करने से हम उनकी साहित्यिक धाराओं, विचारधारा, और संस्कृति को समझ सकते हैं।उनकी रचनाओं के माध्यम से हम समाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को समझ सकते हैं जो मध्य प्रदेश के समाज में मौजूद है।साहित्य के माध्यम से हम मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और उसे संरक्षित रख सकते हैं।

परिचय

सुभद्रा कुमारी चौहान

(16 अगस्त 1904–15 मार्च 1948) एक प्रसिद्ध हिंदी कवियित्री थीं, जिन्हें उनकी काव्य-कला और साहित्यिक योगदान के लिए याद किया जाता है।

जीवन:

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म निवासी जग्गौर, में हुआ था। उनका विवाह थीक प्रदेश के लालितपुर के राजा लक्ष्मण सिंह से हुआ था।

योगदान:

सुभद्रा कुमारी चौहान को उनके लेखन के लिए प्रसिद्धता मिली जिनमें उनकी कविताएं, कवित्रियाँ, कविता संग्रह और कविता की प्रक्रिया शामिल हैं। उनका काव्य प्रभावशाली, संवेदनशील और समाजवादी दृष्टिकोण को उजागर करता है।

प्रमुख काव्य:

सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रमुख काव्य रचनाएं में 'यह कठिन यात्रा', 'नई किरण', 'खिली रहें खिली रहें', 'नई सुभद्रा', 'कामायनी', 'वीर गाथा', 'जैसलमेर', 'निर्जना', 'आदि शामिल हैं।

पुरस्कार:

सुभद्रा कुमारी चौहान को 1934 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

अंतिम दिन:

सुभद्रा कुमारी चौहान का निधन 15 मार्च 1948 को हुआ। उनका योगदान हिंदी साहित्य में अमूल्य है और उनकी कविताएं आज भी प्रेरणादायक हैं।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

भारतीय साहित्यकार थे, जिनका जन्म 9 जनवरी 1909 को हुआ था और उनका निधन 2 जनवरी 1998 को हुआ था। उन्हें 'नवीन' के नाम से भी जाना जाता है।

शिक्षा और प्रारंभिक जीवन:

नवीन जी ने अपनी शिक्षा में उच्चतम पदवी (मास्टर्स डिग्री) हास्यवाद (लिट्रेचर) से प्राप्त की। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अपनी शिक्षा प्राप्त की थी।

कार्य:

नवीन जी को हिंदी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान दिया। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध आदि लेखे। उनकी रचनाओं में समाजिक और राजनीतिक विषयों का विवेचन होता था।

प्रमुख रचनाएं:

नवीन जी की कुछ प्रमुख रचनाएं 'अखिल भारतीय कविता', 'सर्वधर्मसंग्रह', 'सती और भक्त', 'सुभद्रा', 'पारिजातक' और 'चमत्कारिक कथाएं' शामिल हैं।

पुरस्कार:

नवीन जी को 1979 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

अंतिम दिन:

नवीन जी का निधन 2 जनवरी 1998 को हुआ था, लेकिन उनकी रचनाओं का महत्व हिंदी साहित्य में अजीब है। उनकी कहानियाँ, कविताएं और नाटक आज भी पाठकों को प्रेरित करते हैं।

हरिशंकर परसाई

(9 अगस्त 1900- 8 नवंबर 1987) भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध हास्य कवि, लेखक, और नाटककार थे। उन्हें हिंदी साहित्य का महान कवि माना जाता है।

जीवन:

हरिशंकर परसाई (२२ अगस्त, १९२४ - १० अगस्त, १९९५) हिंदी के प्रसिद्ध लेखक और व्यंगकार थे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में हुआ था। वे हिंदी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परंपरागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। उनकी व्यंग्य रचनाएँ हमारे मन में गुदगुदी ही पैदा नहीं करतीं बल्कि हमें उन सामाजिक वास्तविकताओं के आमने-सामने खड़ा करती है, जिनसे किसी भी व्यक्ति का अलग रह पाना लगभग असंभव है। लगातार खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में पिसते मध्यमवर्गीय मन की सच्चाइयों को उन्होंने बहुत ही निकटता से पकड़ा है। सामाजिक पाखंड और रूढ़िवादी जीवन-मूल्यों की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने सदैव विवेक और विज्ञान-सम्मत दृष्टि को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा-शैली में खास किस्म का अपनापा है, जिससे पाठक यह महसूस करता है कि लेखक उसके सामने ही बैठा है।

कार्य:

हरिशंकर परसाई ने अपनी रचनाओं में समाज की विभिन्न समस्याओं का विवेचन किया। उनकी रचनाओं में हास्य और व्यंग्य का अद्वितीय मिश्रण है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं में 'सती', 'बजारिया', 'चार अध्याय', 'मिजाज', 'संगत का असर', 'दांपत्य', 'चौरासी कोस', 'मनोहर कथाएँ', और 'विकलंग' शामिल हैं।

प्रभाव:

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में सामाजिक सुधार, व्यावसायिकता, नैतिकता और मानवता के मुद्दों पर गहरा विचार किया गया है। उनका लेखन लोगों को हंसाने के साथ-साथ सोचने पर मजबूर करता है।

पुरस्कार:

हरिशंकर परसाई को 1966 में पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया था।

अंतिम दिन:

हरिशंकर परसाई का निधन 8 नवंबर 1987 को हुआ। उनके लेखन का महत्व हिंदी साहित्य में अजीब है और उनकी कविताएं और कहानियाँ आज भी लोगों को मनोरंजन और सोचने पर विवश करती हैं।

शरद जोशी

(9 मई 1921 - 19 जुलाई 1992) भारतीय साहित्य के प्रमुख नाटककार, कवि, और नाटककार थे। उन्हें "नटकेश्वर" के उपाधि से भी जाना जाता है।

जीवन:

शरद जोशी का जन्म 21 मई 1931 को मध्यप्रदेश के उज्जैन में हुआ। उन्होंने अपनी शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा वाराणसी और पुना में पूरा किया।

कार्य:

शरद जोशी की रचनाएं विभिन्न विषयों पर हैं, लेकिन उनके नाटकों को उनकी प्रमुख रचनाओं में माना जाता है। उनके नाटकों में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विषयों पर गहरा विचार किया गया है।

प्रमुख नाटक:

शरद जोशी के प्रसिद्ध नाटक में 'चार युग', 'अश्वमेध', 'नाट्यशास्त्र' और 'दुर्योधन' शामिल हैं।

पुरस्कार:

शरद जोशी को 1988 में पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया गया था।

अंतिम दिन:

शरद जोशी का निधन 19 जुलाई 1992 को हुआ था, लेकिन उनके नाटकों का महत्व हिंदी साहित्य में अजीब है। उनके नाटक आज भी सामाजिक, राजनीतिक और मानवता के मुद्दों पर विचार करते हैं और प्रेरणा प्रदान करते हैं।

भवभूति

एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि और नाटककार थे, जिनका जन्म महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित 'गोंडिया' जिले में हुआ था। भवभूति के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है, लेकिन उनकी रचनाएं उनकी महत्वपूर्ण धार्मिक और साहित्यिक योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं।

रचनाएं:

भवभूति की प्रमुख रचनाएं में 'मालतीमाधव', 'उत्तररामचरित', और 'मालतीमाधवसंग्रह' शामिल हैं। उनका नाटक 'मालतीमाधव' उनकी प्रसिद्धता में विशेष महत्व रखता है।

प्रभाव:

भवभूति की रचनाएं संस्कृत साहित्य के अनमोल भाग हैं। उनकी कविताएं और नाटक धार्मिक और नैतिक सन्देशों को सुनिश्चित करते हैं और वे आज भी संस्कृत साहित्य के अद्वितीय हिस्से के रूप में महत्वपूर्ण हैं।

अंतिम दिन:

भवभूति के जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी है, और उनके अंतिम दिनों के बारे में भी स्पष्टता नहीं है। लेकिन उनकी रचनाएं और उनका संदेश साहित्य के इतिहास में अमर हैं।

भर्तृहरि

एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, नाटककार, और विद्वान थे, जिनका जन्म्म 570 ई. पूर्व में उज्ज्जैन में हुआ था। उनकी कविताएं और नाटक उनके दर्शनिक और आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त करते हैं।

जीवन:

भर्तृहरि का जन्म संगीतकार राजा भर्तृहरि के पुत्र के रूप में हुआ था। उनके परिवार में कई विद्वान् और कवि दप थे। भर्तृहरि ने अपने जीवन को आध्यात्मिक और दार्शनिक अध्ययन में समर्पित किया।

कार्य:

भर्तृहरि की प्रमुख रचनाएं में "शतकत्रयम्" और "नीतिशतक" शामिल हैं। उनके कविताएं मनोविज्ञान, नैतिकता, ध्यान और मानवता के मुद्दों पर आधारित हैं।

प्रभाव:

भर्तृहरि की रचनाएं आज भी संस्कृत साहित्य के महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में मानी जाती हैं। उनके दर्शनिक और आध्यात्मिक विचार आज भी लोगों को प्रेरित करते हैं और उनके जीवन को सार्थक बनाने में मदद करते हैं।

अंतिम दिन:

भर्तृहरि के जीवन के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, और उनके अंतिम दिनों के बारे में भी स्पष्टता नहीं है। लेकिन उनके धार्मिक और दार्शनिक विचार आज भी हमें समय के साथ साझा किए जा रहे हैं।

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

भारतीय स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक, और साहित्यकार थे। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष किया और भारतीय समाज में जागरूकता को बढ़ावा दिया।

जीवन:

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जन्म इनका जन्म्म 13 नवंबर 1917 को मध्य्यप्रदेश के श्य्योपुर जिले में हुआ था। उनका शिक्षा स्तर मध्यम था, लेकिन उन्होंने अपने जीवन को समाज सेवा और स्वतंत्रता संग्राम में समर्पित किया।

कार्य:

मुक्तिबोध ने भारतीय समाज के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष किया और स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लिया। उन्होंने सामाजिक रुढ़िवाद, जातिवाद, और अन्य अन्यायों के खिलाफ उठे।

प्रमुख योगदान:

मुक्तिबोध की प्रमुख रचनाएं में 'रामराज्य', 'स्वप्न', 'मनोहर' और 'बुद्धचरित' शामिल हैं। उनकी रचनाओं में समाज के विभिन्न मुद्दों पर विचार किया गया है।

प्रभाव:

मुक्तिबोध का योगदान स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। उनकी रचनाएं आज भी हमें स्वतंत्रता और समाज के महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं।

अंतिम दिन:

मुक्तिबोध के जीवन के अंत के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन उनका योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अपने जीवन को देश के समृद्धि और स्वतंत्रता के लिए समर्पित किया।

अटल बिहारी वाजपेयी

(25 दिसम्बर 1924 – 16 अगस्त 2018) भारतीय राजनेता और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के पूर्व प्रमुख थे। वह भारतीय राजनीति के लिए एक प्रमुख आधारशिला थे और उन्हें 'अजीम प्रेमी' और 'भारतीयता के आधारशिला' के रूप में जाना जाता है।

जीवन:

अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसम्बर 1924 को मध्य प्रदेश के ग्वालियर में हुआ था। उन्होंने अपनी शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा ग्वालियर, भोपाल, और दिल्ली में पूरा किया।

कार्य:

वाजपेयी ने भारतीय राजनीति में लंबे समय तक सेवा की और कई महत्वपूर्ण पदों पर काम किया। उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में भारत की नेतृत्व की भी जिम्मेदारी संभाली।

प्रमुख योगदान:

अटल बिहारी वाजपेयी के प्रमुख कार्यों में 'पोकरण न्यूक्लियर परीक्षण', 'श्री लाल बहादुर शास्त्री के जन्मशती वर्ष', 'सार्वजनिक निवेदन', और 'आत्मनिर्भरता अभियान' शामिल हैं।

प्रभाव:

अटल बिहारी वाजपेयी के योगदान का प्रभाव भारतीय राजनीति में अत्यधिक है। उनकी नेतृत्व में भारत के विकास में बड़ा सुधार देखा गया और उनका योगदान राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण रहा।

अंतिम दिन:

अटल बिहारी वाजपेयी का निधन 16 अगस्त 2018 को हुआ था, लेकिन उनकी सेवाएं और उनके योगदान भारतीय राजनीति और समाज के लिए हमेशा याद की जाएंगी।

निष्कर्ष

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण अवदान किया है। उनका योगदान विभिन्न क्षेत्रों में देशवासियों की दृष्टि को बदल दिया है।

कविता: मध्य प्रदेश के कवियों ने उच्च काव्य साहित्य का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। कवियों ने विभिन्न विषयों पर कविताएं लिखी हैं, जैसे प्रकृति, प्रेम, समाज, और राजनीति।

कहानी: मध्य प्रदेश के कथाकारों ने रोचक कहानियों का संग्रह किया है जो समाज के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करते हैं। उनकी कहानियाँ जीवन की वास्तविकता और मानवता को दर्शाती हैं।

नाटक: नाटक लेखकों ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज की समस्याओं और उसके विकास को प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक मुद्दों पर भी अपनी रचनाओं के माध्यम से चर्चा की है।

उपन्यास: मध्य प्रदेश के उपन्यासकारों ने उपन्यासों के माध्यम से जीवन की विविधता को उजागर किया है। उन्होंने समाज के विभिन्न पहलुओं को बड़े पैमाने पर प्रस्तुत किया है।

आत्मकथा: कुछ साहित्यकारों ने अपने जीवन की गहराईयों को आत्मकथा के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी आत्मकथाएं उनके विचारों, संघर्षों, और सफलताओं को साझा करती हैं।

मध्य प्रदेश के साहित्यकारों का यह अवदान हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और उन्हें सम्मान की आवश्यकता है। उनकी रचनाएं और उनके विचार हमें समाज को समझने में मदद करते हैं और हमें समृद्ध और समर्थ समाज की दिशा में अग्रसर करते हैं।

संदर्भ

1. मनीष कुमार: सुभद्रा के चौहान: सशक्तीकरण और परिवर्तन का एक पथप्रदर्शक,
2. विष्णु त्रिपाठी: पत्रकारिता के युग निर्माता बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
3. डॉ. इतु सिंह:हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य
4. महेश कटारे:भवभूति कथा
5. विष्णुचंद्र शर्मा:मुक्तिबोध की आत्मकथा एक संघर्षपूर्ण जीवन का प्रामाणिक आख्यान
6. डॉ. रश्मि:अटल जीवनगाथा
7. https://sahityasrijan.com/sharad-joshi-biography/
8. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AD%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A5%83%E0%A4%B9%E0%A4%B0%E0%A4%BF
9. https://visionpcs.in/mp-ke-pramukh-sahityakar/

हिन्दी गद्य के विकास में मैथिल क्षेत्र का योगदानः नागार्जुन एवं राजकमल चौधरी के संदर्भ में

डॉ० कुमारी कोमल

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, एस. एम. कॉलेज, टी. एम. बी. य भागलपुर बिहार

कौशिकीनतु समारभ्य गण्डकीमधिगम्यवै।
योजनानि चतुरविंश व्यायामः परीकीर्तितः।।
गङ्गा प्रवाहमारभय यावद्धमवतंवनत।
विस्तारः षोडशप्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन।

अर्थात पूर्व में कोसी से आरंभ होकर पश्चिम में गण्डकी तक 24 योजन तथा दक्षिण में गङ्गा नदी से आरंभ होकर उत्तर में हिमालय वन (तराई प्रदेश) तक 16 योजन मिथिला का विस्तार है। कविवर चन्दा झा के शब्दों में

"गङ्गा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूब कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गण्डकी उत्तर हिमवत वन विस्तार।।''

मिथिला प्राचीन भारत का एक राज्य था। मिथिला क्षेत्र साहित्य, संस्कृति, धर्म, कला आदि सभी दृष्टियों से आरंभ से ही समृद्ध रहा है। वर्तमान में बिहार के तिरहुत, दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, सहरसा, मुंगेर, पूर्णिया, भागलपुर आदि सम्मिलित रूप से मैथिल क्षेत्र माने जाते है। यह एक भौगोलिक क्षेत्र होने से कहीं अधिक सांस्कृतिक क्षेत्र है। मैथिल क्षेत्र की समृद्धि में साहित्य, संस्कृति,धर्म, कला, दर्शन, लोककला आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस क्षेत्र की भाषा मूलतः मैथिली है। लेकिन मैथिल क्षेत्र के अनेक रचनाकारों ने मैथिली के साथ-साथ हिन्दी भाषा के विकास में अपनी महती भूमिका निभाई है। इनमें विद्यापति, आरसी प्रसाद सिंह, वैद्यनाथ मिश्र यात्री नागार्जुन, राजकमल चौधरी इत्यादि उल्लेख्यनीय नाम है। इनमे विद्यापति एवं आरसी प्रसाद सिंह पद्य को अपनी प्रतिभा के आलोक से आलोकित कर रहे थे।

जब हम हिन्दी गद्य के विकास में मैथिल क्षेत्र के रचनाकारों के अवदान पर चिंतन करते है तो दो नाम नागार्जुन एवं राजकमल चौधरी विशेष रूप से सामने आते है। वैद्यनाथ मिश्र यात्री या बाबा नागार्जुन एवं राजकमल चौधरी दोनों ने गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं के द्वारा हिन्दी भाषा के साहित्य को समृद्ध किया। इनके बहुआयामी चिंतन के क्षेत्र से हमारे विचार-विवेचन का क्षेत्र इनका गद्य है। मैथिली, हिन्दी, संस्कृत, पाली सिंहली, बांग्ला आदि कई भाषाओं के जानकार 'ठक्कन' का जन्म बिहार के दरभंगा जिले के तरौनी गाँव में 30 जून 1911 को मैथिल कर्मकांडी परिवार में हुआ। "ठक्कन से नागार्जुन'' में सोभाकांत के शब्दों में "प्रथमा के बाद से ही एक गाँव से दूसरे गाँव ओर एक जगह से दूसरे जगह चक्कर लगाते- लगाते काशी में वैद्यनाथ मिश्र कवि हुए, तो उनके नाम के साथ विद्यार्थी लगा, किन्तु कुछ दिनों के बाद एहसास हुआ कि क्यों जिंदगी भर विद्यार्थी बने रहे तो विद्यार्थी की जगह वैदेह लग गया, उन्ही दिनों रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'जण गण मन अधिनायक जय हे' की पंक्तियाँ

अभ्युदय बंधुर पंथा, युग-युग धावति यात्री
तुमि चिर सारथि, तव रथ चक्रे मुखरित पथ दिन रात्रि .....
पढ़ा तो यात्री दिलों दिमाग के भीतर बैठ गया और हो गए वैद्यनाथ मिश्र यात्री"।

सोभाकांत आगे लिखते है- 'तरौनी का कुलीन ब्राह्मण मुंडित सिर और काषाय वस्त्र के संग बौद्ध भिक्खू हो गया, पहले अपने लोग छूटे फिर अपनी भूमि और अब अपना धर्म संप्रदाय भी छूट गया। नाम भी छोड़ना पड़ा, वैद्यनाथ के मन में बौद्ध धर्म के पुनर्व्याख्या की बात थी..... फिर माध्यमिक की व्याख्या पर सोचा तो शून्यवाद के प्रवर्तक नागार्जुन का नाम सामने आया शब्दकोश देखा तो नागार्जुन नामक वृक्ष का भी पता चला, दूधिया घास का भी एक प्रकार नागार्जुनी घास कहलाता है, घास, वृक्ष और मनुष्य में एक साथ समाहित नागार्जुन नाम पसंद आया उन्हें तो हो गए भिक्खु नागार्जुन और छूट गया वैद्यनाथ मिश्र" तो यह है नागार्जुन के व्यक्तित्व का सामान्य परिचय। ठक्कन से नागार्जुन बनने की यात्रा- कथा।

नागार्जुन के गद्य क्षेत्र में जब हम प्रवेश करते है तो उसमें कहानी, उपन्यास, लेख एवं संस्मरण का वृहत संसार है।

कहानी-असमर्थ दाता, ताप हरिणी, जेठा, कायापलट, विशाखा, विषम- ज्वर्, हीरक जयंती, हर्ष चरित का पॉकेट एडिसन, मनोरंजन टैक्स, आसमान में चंद तेरे आदि।

उपन्यास- वरुण के बेटे, रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, नई पौध, कुंभीपाक आदि।

लेख एवं संस्मरण- थो-लिङ महाविहार, सिंध में सत्रह महीने, मैथिली और हिन्दी, राज्याश्रय साहित्य और जीविका, गाजीपुर किसान सम्मेलन आदि।

प्रगतिशील रचनाकार नागार्जुन ने अपनी गद्य रचनाओं के द्वारा ग्रामीण जीवन एवं संस्कृति को प्रगतिशील दृष्टिकोण से विश्लेषित किया है। दलितों की स्थिति एवं यथार्थ का चित्रण, ग्रामीण परिवेश की सहज अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में मिलती है। ग्रामीण जनजीवन, परंपरा, रीति-रिवाज, त्योहार, लोक रीति आदि उनकी रचनाओं में जीवंत हो उठे है। प्रगतिशील रचनाकार होने के बावजूद नागार्जुन कभी अपने जड़ से विलग नहीं हुए। ग्रामीण अस्मिता उनकी रचनाओं के मूल में है।गद्य साहित्य में मुंशी प्रेमचंद और रेणु की रचनाओं की अगली कड़ी के रूप में नागार्जुन की रचनाओं को परखा जा सकता है।उनकी सभी गद्य रचनाएं ग्रामीण संस्कृति एवं सामाजिक विषमता को आधार बना कर लिखी गई है। बलचनमा के शब्दों में- ''सुना है मेरा बाप दोपहर के समय बाग से दो किसुनभोग तोड़ लाया और किसी ने मालिक को चुगली कर दी फिर क्या था, मालिक आग- बबूला हो गया और बापू को पीटते-पीटते मार डाला। उसके बाद दादी और माँ की राय हुई कि मैं मालिकों की किसी पट्टी में चरवाहे का काम करूँ। दादी ने मना भी किया कि अभी खेलने खाने के दिन है इसी समय जाट देगी तो गल सूख जाएगा। इस पर माँ बोली कि अभी से पेट की फिकर् नहीं करेगा तो लापरवाह हो जाएगा।''

'रतिनाथ की चाची में 'समाज की उपेक्षित, तिरस्कृत, यतनापूर्ण जीवन जीने वाली स्त्रियों का वर्णन है। 'नई पौध' में नागार्जुन ने नई पीढ़ी के माध्यम से वर्तमान स्थिति का वर्णन किया है। 'उग्रतारा' में अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण किया गया है।

नागार्जुन समाज में व्याप्त विकृतियों, विद्रूपताओं समस्याओं को अपनी रचना में स्थान देते है। उपेक्षितों की अभिव्यक्ति बनते है। नागार्जुन ने अपनी रचनाओ द्वारा हिन्दी गद्य साहित्य को और अधिक समृद्ध बनाया है। उनकी विपुल गद्य रचनाएं हिन्दी गद्य साहित्य शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

हिन्दी गद्य के विकास में मैथिल क्षेत्र के योगदान की जब चर्चा करते है दूसरा महत्वपूर्ण हस्ताक्षर राजकमल चौधरी का है। 1929 के 13 दिसम्बर को बिहार के मुरलीगंज के रामपुर हवेली में फुलबाबू का जन्म हुआ। माता के असामयिक निधन और पिता मधुसूदन चौधरी के पुनर्विवाह (राजकमल चौधरी के हमव्यस्क) के कारण पुत्र मणींद्र नारायण चौधरी का अपने पिता से कभी संबंध मधुर नहीं रहा। शिक्षा के उपरांत जीवन की स्थिरता के लिए राजकमल चौधरी ने शिक्षा विभाग में नौकरी की। लेकिन सिर्फ नौकरी उनके जीवन का कभी उद्देश्य नहीं रहा। उनकी मान्यता थि कि ''जीवन बस ऐसा ना हो कि डिग्री पाई, नौकरी शुरू की, सेवक बने, पेंशन पाया और चल बसे। वाणिज्य में स्नातक राजकमल चौधरी का सम्पूर्ण जीवन रचनात्मक कार्यों के लिए समर्पित रहा।

राजकमल चौधरी ने अपने रचनात्मक जीवन का आरंभ मैथिली साहित्य से किया लेकिन हिन्दी साहित्य में लेखन उनकी समृद्धि एवं प्रसिद्धि का आधार बना। उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक के द्वारा उन्होंने हिन्दी गद्य साहित्य के संसार को और बृहद एवं व्यापक बनाया। उपन्यासों में 'मछली मरी हुई,' देहगाथा, नदी बहती थी, शहर था शहर नहीं था, अग्निस्नान, बीस रानियों के बाइस्कोप, एक अनार एक बीमार, ताश के पत्तों का शहर उनकी महत्वपूर्ण रचनाएं है। सामुद्रिक और अन्य कहानियाँ, मछलीजाल, प्रतिनिधि कहानियाँ आदि उनकी उल्लेख्य कहानियाँ है।

"असाधारण बनना ऐब्नॉर्मल बनना अधिक कठिन नहीं है, आदमी शराब की बोतल पीकर असाधारण बन सकता है। दौलत का थोड़ा सा नशा, यौन पिपासाओं की थोड़ी सी उच्छृंखलता, थोड़े से सामाजिक अनैतिक कार्य आदमी को ऐब्नॉर्मल बना देते है। कठिन है साधारण बनना, कठिन है अपने जीवनचर्या को सामान्यतया साधारणता में बांध के रखना। बरसात हुई जल भर आया ..... सूखी पड़ी नदी में नीली मछली मरी हुई -जी उठी ..... मछली मरी हुई''। यह पंक्ति राजकमल चौधरी के सबसे चर्चित एवं विवादात्मक उपन्यास मछली मरी हुई से उद्धृत है। यह उपन्यास समलैंगिक महिलाओं पर लिखा गया था। राजकमल अपने समय से बहुत आगे के रचनाकार थे। आज के समाज की बात वह छह दशक पूर्व लिख रहे थे। 1918 में सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिकता पर खुलकर बात की और इसकी चर्चा राजकमल छह दशक पूर्व ही कर चुके थे। उस समय ऐसे विषय पर लेखनी चलाना बड़े हिम्मत की बात थी। हिन्दी में तो ऐसी चर्चा तो एक प्रकार से वर्जित ही थी। हिन्दी साहित्य के आलोचक मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में- "राजकमल चौधरी विद्रोही व्यक्ति थे, उनका विद्रोह उनके साहित्य में भी प्रकट होता है। उन्होंने जो रचनाए रचीं वैसी सिर्फ वही रच सकते थे, अपनी कविताओं में तो उन्होंने दुर्लभ प्रयोग किए। वह अपने समय के सर्वाधिक बहुपठित लेखकों में एक थे। महिला मित्रों को सहजता से आकर्षित कर लेना उनका अद्भुत गुण था।शायद इसलिए वह महिलाओं को लेकर इतना कुछ लिख पाए।"

अकवित युग के रचनाकार राजकमल चौधरी के रचनासंसार में स्वतंत्रयोत्तर भारत के प्रारंभ के दो दशकों की आर्थिक स्थिति, नैतिक मूल्यों के ह्रास, राजनीतिक दुरावस्था, सामाजिक पाखंड, रोटी सेक्स आदि विषयों को अपनी रचनाओं में कथ्य के रूप में स्थान दिया है। राजकमल ने अपनी रचनाओं में ऐसे विषयों का चयन किया है जो उस समय के रचनाकारों के लिए त्याज्य था। भारतीय समाज में स्त्रियों की समस्या, शालीनता के आढ़ में शोषण, धर्म एवं संस्कृति के नाम पर यौन उत्पीड़न आदि विषयों पर राजकमल निर्भीकता से अपनी लेखनी चलाते है। इन विषयों पर लिखने के कारण उनपर सस्ते और विकृत साहित्य लेखन का भी आरोप लगा। राजकमल चौधरी के शब्दों में- "हमारे देश में जनाना क्लब नहीं है, और ना ही यहाँ की देशी औरतों को आधुनिक तौर तरीकों से यह सब कर सकने की जानकारी है। हमारे देश की औरतें समलेंगिक आचरणों में लिप्त रहकर भी अधिकांशत: समझ नहीं पाती कि वे क्या कर रहीं है और किस मतलब से कर रही है।.....करती है अवश्य लेकिन नींद में नशे में अनजाने कर लेती है और अपने कुसंस्कारों एवं अंधेपन में जकड़ी हुई आर्थिक, धार्मिक और अधिक संत्रास बनीं रहती है"। टूटे हुए किरदारों की कहानी राजकमल चौधरी 'ताश के पत्तों का शहर' में करते है। ना तो कोई उनका आदर्श है और ना ही कोई आदर्शवादी बनने की अपेक्षा रखते है। वे जिन चाहते है, गलती करते है, फिर उसे सुधारते है कभी कुछ अच्छा करते है तो कभी कुछ बुरा।" उदासी मेरे जीवन की एकांत अनिवार्यता बन गई है। क्योंकि मई वस्तुओं और व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में सोचता हूँ, क्योंकि मई उन्हे अपने अनुकूल बनाना चाहता हूँ बना नहीं पता और उदास रहता हूँ"।

राजकमल चौधरी की रचनाओं में मानसिक अन्तरद्वन्द्व का चित्रण हुआ है। इनकी रचनाओं में छठे दशक की सामाजिक कुरीतियों, अत्याचारों, राजनीतिक षड्यंत्रों और बहुसंख्यक साधारण जनता के साथ किए जा रहे प्रपंच को अपनी रचना के माध्यम से स्वर देते है। जो इस समय हिन्दी साहित्य में पूर्णत: अछूता था।नारी लेखन और नारी जीवन पर विश्व साहित्य में आज जितने भी विमर्श किए जा रहे है उसके बहुत सारे संकेत राजकमल चौधरी आज से पाँच दशक

पूर्व ही अपने लेखन में दे चुके थे। पुरुष मनोवृत्ति के समांतर स्त्री जीवन का सूक्ष्म विवेचन किया है। उन्होंने मानव जीवन की तीन आदिम प्रवृत्तियाँ आत्म मुमुक्षा, यौन पिपाषा एवं आत्म सुरक्षा को अपने साहित्य में जीवंत किया है। इसकी पूर्ति के लियर मनुष्य मर्यादा तोड़कर असभ्य हो जाता है। राजकमल चौधरी की रचना स्वतंत्रयोत्तर भारत में व्यक्ति और समाज में आ रहे परिवर्तनों मशीन और मशीनीकरण, पश्चिमी देशों और पश्चमी व्यवसायों, संस्कृतियों से प्रभावित संचालित आधुनिक भारतीय समाज और सभ्यता के जीवन संग्राम की अंदरूनी कथा कहती है।

हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में नागार्जुन एवं राजकमल चौधर0

1. मैथिल क्षेत्रक विस्तार- चंदा झा
2. ठक्कन से नागार्जुन- शोभाकांत
3. बलचनमा- नागार्जुन
4. रतिनाथ की चाची- नागार्जुन
5. नई पौध- नागार्जुन
6. मछली मरी हुई- राजकमल चौधरी
7. ताश के पत्तों का शहर- राजकमल चौधरी
8. मृत्युप्रसंग-राजकमल चौधरी
9. राजकमल की डायरी

हिन्दी कहानी और ओमप्रकाश वाल्मीकि

डॉ० दिनेश राम

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, स्वामी विवेकानंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लोहाघाट (चम्पावत) उत्तराखण्ड

हिन्दी कथा साहित्य को वर्तमान युग में नई पहचान दिलाने वाले साहित्यकारों में ओम प्रकाश वाल्मीकि की महती भूमिका है। हिन्दी कथा साहित्य में कथा-वस्तु के रूप में यथार्थ को प्रमुखता देने वाले साहित्याकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का सर्वप्रमुख स्थान हैं, उन्होंने साहित्य की उस परम्परा का निर्वहन किया जिसमें साहित्य में कल्पना पक्ष के स्थान पर वास्तविकता को महत्त्व देने का प्रयास किया गया। पहले-पहल ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ही साहित्यकारों का ध्यान उस वर्ग की ओर आकृष्ट किया, जो चिर उपेक्षित रहा है। उससे पूर्व के साहित्यकारों ने वास्तविक रूप में उस वर्ग की पीड़ाओं को साहित्य में न के बराबर दर्शाया गया था, यदि किसी ने कोशिश भी की तो वह भी वास्तविकता के दायरे से परे ही रहा। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के प्रवेश से कथा साहित्य को पूर्णता प्राप्त हुई है, वह सभी वर्गों का प्रतिनिधि के रूप में उभरा है। क्योंकि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने कथा साहित्य में वंचित, दमित, पीड़ित वर्ग की वास्तविक पीड़ा को दर्शाने का कार्य किया है।

हिन्दी दलित साहित्य पर अपनी लेखनी से सभी को प्रभावित करने वाले साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30जून, 1950 को उत्तरप्रदेश के बरला, जनपद मुजफ्फरपुर में एक निर्धन दलित परिवार में हुआ था। ओमप्रकाश वाल्मीकि का बाल्यकाल अभावों में एवं सम्पूर्ण जीवन, सामाजिक संघर्षों में बीता। बाल्यकाल से अभावग्रस्त जीवन जीने के कारण कदम-कदम पर सामाजिक उपेक्षाओं का सामना करना पड़ा, जिसका प्रभाव उनके जीवन एवं साहित्य में परिलक्षित होता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि बाल्यकाल से ही परिश्रमी एवं अध्ययन प्रिय थे। अपनी मेहनत एवं लगन से उन्होंने अभावग्रस्त जीवन हाने पर भी एम0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण कर ऑडिनेंस फैक्ट्री में नौकरी प्राप्त करने तक का सफर तय किया तथा अपने मेहनत के बल पर ही नौकरी में सम्मान प्राप्त किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने साहित्य में उन्हीं विषयों पर अपनी लेखनी चलाई, जो उनके जीवन में घटित हुआ या उन्होंने समाज में घटित होते देखा। उनका सम्पूर्ण साहित्य अनुभव जनित यथार्थ पर रचा गया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी चलाई, उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास एवं आत्मकथा के माध्यम से समाज को प्रभावित किया, उनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं-

काव्य संग्रह- सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका, अब और नहीं, शब्द झूठ नहीं बालते, चयनित कविताएं।

आत्मकथा- जूठन भाग1 एवं भाग 2

कहानी संग्रह- सलाम, घुसपैठिए, अम्मा एंड अदर स्टोरीज, छतरी।

इसके अतिरिक्त आलोचना ग्रन्थ, अनुवाद तथा अन्य ग्रन्थों की रचना करने के साथ ही ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 60 नाटकों।में अभिनय एवं निर्देशन भी किया।

साहित्य समाज का दर्पण है, इस बात को ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानियों में देखा जा सकता है, उन्होंने अपनी लेखनी उन विषयों पर चलाई, जो समाज को खोखला करने का कार्य कर रहे थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य एक साहित्य मात्र ही नहीं है यह एक जीवंत दस्तावेज है, जिसमें लाखों जीवन और उनकी स्थिति, अवस्था और व्यथा का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज को हमेशा उस स्थितियों से परिचित कराने का प्रयास किया है, जो पूर्व में व्यवस्थागत धूल पड़ जाने के कारण समाज में स्पष्टता के साथ नहीं उभर पाए थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में कल्पना के स्थान पर यथार्थ को अधिक महखत्त्व दिया हैं, उन्होनें अपने साहित्य में अपने जीवन में घटित घटनाओं एवं परिस्थितियों को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य किया है। वे छतरी कहानी की भूमिका अपनी कहानियों का वर्णन करते हुए लिखते हैं, दलित जीवन की दारुण स्थितियाँ समूचे भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों की आहट इन कहानियों में सुनी जा सकती है। अपनी रचनाओं पर कोई भी टिप्पणी करना मुश्किल होता है। लेकिन इन कहानियों को शब्दबद्ध करते हुए अकसर मैं स्वयं वेदना और पीड़ा से गुजरा हूँ, चाहे वह छतरी कहानी हो या शाल का पेड़ या फिर बपतिस्मा।"[1]

ओम प्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य पर सबसे बड़ा योगदान कथावस्तु के चयन का माना जा सकता है, क्योंकि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दी कहानी में उन चरित्रों को कहानी के माध्यम से उकेरने का कार्य किया जो चिर उपेक्षित रहे हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी को सभी वर्गों एवं जातियों से जोड़ने का कार्य किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है कि साहित्य केवल कहने के लिए नहीं वास्तविकता में समाज का दर्पण होना चाहिए। साहित्य का कार्य समाज में व्याप्त बुराइयों एवं कमजोरियों को पाठक वर्ग तक पहुँचाना होना चाहिए, तब समाज में व्याप्त बुराइयों को खत्म किया जा सकता है। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने उन समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई, जो चिर काल से समाज में फैली होने पर भी पाठकों तक नहीं पहुँच पा रही थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों के पात्रों के सम्बन्ध में, 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ' पुस्तक की भूमिका में लिखा है, "दलित कहानियों में जो दलित पात्रों

की जद्दोजहद है, वह सामाजिक चेतना है, वही दलित कहानियों की साहित्यिक गुणवत्ता भी है, जो साहित्य को जड़ होने की जगह उसे जीवन्त बनाती है। दलित कहानियाँ समाज में रचे-बसे जातिवाद की भयावह स्थितियों से संघर्ष करने के साथ-साथ समाज में घृणा की जगह प्रेम की पक्षधरता दिखाती हैं। जीवन में प्रेम ही समाज को विकास की ओर ले जाता है, न कि घृणा।"[2]

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं, मूलतः उनकी पहचान एक दलित साहित्यकार के रूप में की जाती है, परन्तु वह प्रसिद्ध कहानीकार, आत्मकथाकार और कवि रहे हैं, उन्होंने एक कहानीकार के रूप में ख्याति प्राप्त की साथ ही वे हिन्दी कहानी में एक नवीन युग स्रष्टा के रूप में भी माने जा सकते हैं, उन्होने कहानी को विचार या कल्पना से बाहर निकालकर सामाजिक यथार्थ की ओर ले जाने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी कहानियों में उन विषयों या पात्रों के चुना जो, जो चिर शोषित रहकर अपने अस्तित्व की लड़ाई में लगा हुआ है। साथ ही उन्होंने सामाजिक बुराइयों में निष्पक्ष एवं निडर होकर अपनी लेखनी चलाई। घुसपैठिये कहानी में वाल्मीकि जी ने शिक्षण संस्थानों में व्याप्त जातीय भेदभाव से उत्पन्न समस्याओं को चित्रित किया है। मेडिकल कॉलेज के छात्र सुभाष सोनकर ने सामाजिक यातनाओं के झेलने के पश्चात भी कैसे अपनी शिक्षा को जारी रख पाता है, इसका चित्रण इस प्रकार किया है, "कल पूरा दिन हॉस्टल के कमरे में विकास चौधरी ने सुभाष सोनकर को दरवाजा बंद करके पीटा गया। जब यह शिकायत डीन से करते हैं तो डीन कहता है कि आरक्षण से आए हो थोड़ा बहुत तो सहना ही होगा।"[3] इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जातीय भेदभाव जैसी समस्या को निडर होकर दर्शाने का कार्य किया है।

अपनी कहानियों की अन्तर्वस्तु एवं पात्रों के सम्बन्ध में ओमप्रकाश वाल्मीकि 'घुसपैठिये' कहानी संग्रह की भूमिका में लिखते हैं, "इन कहानियों की अन्तर्वस्तु मेरे अनुभव जगत् की त्रासदियों और दुखों से उपजी सामाजिक संवेदनाएँ हैं, जिन्हें शब्द-दर-शब्द अवसादों के साथ यन्त्रणा के साथ गुजरते हुए लिखा है।"[4] इस इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का रचना संसार उनकी अनुभव जनित यथार्थ पर आधारित है, जो सामाजिक सत्यता के दस्तावेज का कार्य करता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में कल्पना के स्थान पर अनुभव जनित यथार्थ का प्रयोग एक आन्दोलन के रूप में देखने को मिलता है, जिसने की हिन्दी कहानी की दिशा एवं दशा को पूर्ण रूप से बदलने का प्रयास किया एवं हिन्दी कहानी के प्रति लोगों का दृष्टिकोण को भी बदलने का कार्य किया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी कहानियों में वंचित वर्ग को स्थान देने के साथ ही स्त्री विमर्श पर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है, उन्होंने आजादी के इतने वर्ष गुजर जाने के बाद एवं भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के बावजूद समाज में नारी की वास्तविक स्थिति को दर्शाया है। विशेष रूप से दलित स्त्री की व्यावहारिक स्थिति को उन्होंने 'यह अन्त नहीं' कहानी की नायिका 'बिरमा' के माध्यम से दर्शाने का कार्य किया है, जिसमें बिरमा के साथ सवर्ण जमींदार द्वारा बलात्कार करने के इरादे से की गई छेड़खानी को दर्शाया है, जब बिरमा का भाई और उसका दोस्त शिकायत करने थाने में जाते हैं, तो वहाँ इंस्पेक्टर उन्हें धमकाते हुए कहता है, "छेड़खानी हुई है, बलात्कार तो नहीं हुआ। तुम लोग बात का बतंगड़ बना रहे हो। गाँव में राजनीति फैलाकर शान्ति भंग करना चाहते हो। मैं अपने इलाके में गुंडागर्दी नहीं होने दूंगा, चलते बनो।"[5] ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार के जातीय उत्पीड़न एवं स्त्री को भोग की वस्तु मानने वाली सोच का अपनी कहानियों के माध्यम से भांडा फोड़ने का कार्य किया है।

लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों के माध्यम से सभ्य कहे जाने वाले वर्तमान समाज की वास्तविकता या जातीय भेदभाव के वीभत्स सत्य को दर्शाने का कार्य किया, जो आदर्श समाज को दर्शाने वाले कवि लेखकों के साहित्य नहीं देखने को मिलता है। कूड़ाघर कहानी के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने इस जातीय भेदभाव को दर्शाया है। कहानी के दलित पात्र अजब सिंह और उनकी पत्नी सुमित्रा किराये के मकान में रहते हैं, जब मकान मालिक को यह बात पता चलती है कि यह दलित हैं तो वह धमकी देकर मकान खाली करने को कहता हैं, इस बात से दुखी होकर अजब सिंह अपनी पत्नी से कहता है, "हमें खुद उन्हें अपनी जात बतानी चाहिए थी कि हम चूहड़े चमार हैं। क्या आप हमें मकान किराये पर देंगे..... इनकी ऐसी की तैसी।"[6] इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में जातीय भेदभाव की सच्चाई को दर्शाया है। भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों में से प्रमुख कुरीति के रूप में जातिवाद को मानते हुए उससे उपजी समस्याओं को पाठकों तक पहुचाने का कार्य किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने जहाँ एक ओर दलित साहित्य के माध्यम से भारतीय सामाजिक व्यवस्था की सत्यता को उजागर करने का कार्य किया है तो, वहीं प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध भी दलित चेतना को उजागर करने का कार्य किया है, जिसमें उन्होंने दलितों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने हेतु प्रेरित करने का कार्य किया है। दलितों के चिन्तन में आए परिवर्तनों को दर्शाते हुए उन्होंने घुसपैठिये कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है, "दलित मानसिकता और सोच में जो गुणात्मक परिवर्तन विकसित हो रहे हैं, उनकी झलक 'कूड़ाघर', और 'मुंबई कांड' कहानियों में दिखाई देगी। 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' कहानी 'राष्ट्रीय सहारा' में छपी थी। पाठकों ने इसकी फोटो प्रतियाँ करके अनेक लोगों तक पहुँचाई थी।"[7] इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि उपरोक्त के द्वारा दलितों में अपने अधिकारों के प्रति आई जागृति को दर्शाया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने कहानियों के माध्यम से समाज में हो रहे परिवर्तन एवं दलितों द्वारा अपने अधिकारों की माँग हेतु किए गये संघर्ष पर भी अपनी लेखनी चलाई है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी आन्दोलन में उन समस्याओं एवं घटनाओं को शामिल करने की कोशिश की है, जिसे पूर्व में सामान्य घटना समझकर पाठको से दूर रखा गया। 'दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी के माध्यम से लेखक ने इसी प्रकार की घटना या समस्या को पाठकों तक पहुचाने का प्रयास किया है। कहानी का दलित पात्र दिनेश पाल लम्बे संघर्ष के बाद उप सम्पादक बन जाता है, और उखखत्तराखण्ड के उखीमठ में हुए प्राकृतिक आपदा में दलितों की लाशों के साथ हुए भेदभाव के बारे में अपने समाचार पत्र में लिखता है, "उखीमठ गढ़वाल शिवालिक पहाड़ियों में प्रकृति का जो तांडव हुआ था, उसमें गाँव के गाँव तबाह हो गए थे। भूस्खलनों और पर्वत शृंखलाओं के धँसने से अनेक गाँव चपेट में आ गए थे। सैकड़ों लोग पहाड़ की गीली मिट्टी में दब गए थे। सरकारी राहत दल के साथ-साथ गैर सरकारी संगठन भी राहत कार्यों में जुटे हुए थे। रोनलेक में कुछ ज्यादा ही तबाही हुई थी। पूरा गाँव ही खत्म हो गया था। बुरी तरह ताशें सड़ रही थीं, जिन्हें राहतकर्मियों ने हटाना तो दूर उन्हें छूने से भी इन्कार कर दिया। क्योंकि ये लाशें उस गाँव में रहने वाले दलितों की थीं। राहत कर्मियों के इस फैंसले के सामने जिला मजिस्ट्रेट भी बेबस हो गए थे।"[8] इस प्रकार लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से उन समाज में व्याप्त कुरीतियों को उजागर करने का कार्य किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में पारम्परिक कथ्य को बदल कर नवीन कथावस्तु को स्थान देकर कहानी के क्षेत्र में एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिसे उनके उत्तराधिकारियों ने पल्लवित करने का कार्य किया। उन्होंने अपने कहानियों में उन समस्याओं को स्थान देने का प्रयास किया, जो वंचित एवं उपेक्षित थे। इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों में अपना स्थान रखते हैं तथा हिन्दी कहानी में प्रमुख सुधारवादी लेखकों में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, चाहे वह कथा वस्तु के रूप में हो या पात्रों के चयन के रूप में हो। ओमप्रकाश वाल्मीकि आधुनिक युग के विकसित सोच के लेखक है, जिन्होने कहानी के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किए, जिाके लिए उन्हें सैकडों सम्मान दिए गए।

सन्दर्भ-:

1 छतरी कहानी संग्रह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन ग्रुप नई दिल्ली, 2023 भूमिका पृ0 नौ।

2 दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकिख् राधाकृष्ण पेपरबैक्स, भूमिका पृ0 08।

3 घुसपैठिये कहानी संग्रह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2009 पृ0 35।

4 वहीं भूमिका पृ0 8

5 वहीं पृ0 24

6 वहीं पृ0 57

7 वहीं भूमिका पृ0 7

8 वहीं पृ0 71।

चंद्रकान्ता की कहानियों में कश्मीरी समाज और संस्कृति

वन्दना कुमारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड

प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित वादी-ए-काश्मीर की एक सशक्त महिला लेखिका चंद्रकांता जी। उनकी रचनाओं में कश्मीरी परिवेश की झलक साफ तौर पर दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कई कहानियों में कश्मीर को अपना विषय बनाया है। कश्मीरी रहन-सहन वेशभूषा सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों उनकी कहानियों का अहम् हिस्सा रहीं हैं। चंद्रकांता जी काश्मीर के दुख, दर्द और वातावरण को पाठकों से रू-ब-रू कराने तथा साथ-ही-साथ सांस्कृतिक एवं आंचलिक रंगों को हिंदी साहित्य में दर्ज करने वाली प्रथम लेखिका है।[1]

भारत विविधताओं का देश है। यहां के प्रत्येक राज्य की अपनी संस्कृति सभ्यता है वेशभूषा रहन-सहन खान-पान तथा सामाजिक वातावरण है उसी प्रकार कश्मीर की अपनी सभ्यता संस्कृति है। वहां मूलत: दो धर्म के लोग रहते हैं जिनका पहनावा वेशभूषा भी अलग अलग होता है चंद्रकांता ने अपनी कहानी 'पोशनूल की वापसी, में इसकी चर्चा की है "हिंदू माथे पर चंदन का तिलक लगाकर गले में जनेऊ और शरीर पर फिरन-तरंगा पहनते हैं। मुसलमान की पोशाक सलवार-कमीज है"।[2]

कश्मीर की सुन्दर वादियों के मनोरम दृश्य यहाँ आने वाले पर्यटकों का मनमोह लेता है। श्वेत हिमावरण ढंका, हरे सुरमई पहाड़ों के दामन में बैठा हरियाली का एक अनोखा आलम या दूर-दूर तक फैले हुए विस्तृत हरे-भरे खेत। खलिहानों में पानी के ऊपर तैरते से जादू के घरौंदे! माचिस की डिब्बियों जैसे यहां-वहां बिखरे! कांजीगुंड के आगे 'पॉपुलर एवेन्यू' गर्म प्रदेशों से आए सैलानियों को अपनी तरासी हुई देह से बांध देता है। घुटनों तक फिरन (लंबा चाँगा) पहने चरवाहा मनचले ढोर को आपका रास्ता रोकने पर (हुदि हय) करता, डांटता फटकारता, बगल से अजनबियों को सूंघता गुजर जाता है। अवंतीपुर के भग्नावशेष इतिहास प्रेमियों को सोचने के कुछ मसाला जुटा देते हैं।[3]

चंद्रकांता की कहानियों में कश्मीरी संस्कृति के प्रत्येक चित्र तो नहीं परंतु उसकी कुछ मनोरम यादें अवश्य ही दिखलाई देती है। 'विदा गीत' एक ऐसी ही कहानी है जिसमें वर्षा ऋतु की आगमन का स्वागत बड़ी धूमधाम से किया जाता है भींगीं माटी की सोंधी महक से मन खिल उठता है। किसान केंद्र बजाते और मल्हार गाते हैं। कहानी की नायिका प्रमोदिनी लोक गीत गाती-गुनगुनाती है-

"क्रमे सजल कला अवनि देश ये
कृषि कारके होइ हरष
काले ये याहा इच्छा ये चाष
केदार मान डकारे, पुरिला गीत अशेष से"।[4]

अर्थात्, वर्षा से संपूर्ण पृथ्वी और देश सजल हो गया है किसान हर्षित हो रहे हैं वे खेतों में हल चलाते हुए मधुर गीतों के तान छेड़ रहे होंगे।

कश्मीरी संगीत की एक शैली 'सुफियाना संगीत' भी है। पृथ्वीनाथ रैना का मानना है कि "कश्मीरी सूफियों ने कश्मीरी भाषा में गीत रचना करके इसे अरबी संगीत की विभिन्न धुनों या रागों में बांध लिया"[5]।

कश्मीरी समाज में त्योहार एवं उत्सव अन्य समाजों की अपेक्षा कुछ अलग ढंग से मनाये जाते हैं। जहाँ 'शिवरात्रि' पर्व पर स्थान-स्थान पर शिव विवाह होता है, झांकियां निकाली जाती है, वहीं कश्मीर में शिवरात्रि के उत्सव पर 'रामबिल्ले की दस्तक' होती है। जो घर में सुख-समृद्धि लेकर आता है। चन्द्रकांता जी ने अपनी महाशिवरात्रि की याद को 'रामबिल्ले की दस्तक' कहानी में संजोया है। शिवरात्रि के दिन गृहलक्ष्मी घाट पर अखरोट की पूजा कर घर वापस आती है। घर के अन्य सदस्यों द्वारा घर के मुख्य द्वार को बंद किया जाता है। गृहस्वामिनी दो पीतल की कटोरी नुमा डोलची और कमर पर गगरी लेकर दरवाजे पर जाती है। जिसमें भींगे अखरोट भरे होते थे। वह अपने घर के मुख्य दरवाजे पर दस्तक देती है घर के अन्य सभी सदस्य अंदर से प्रश्न करते हैं और वह उनके उत्तर देती है "कौन है? रामबिल्लो। क्या लेकर आए हो? अन्न और धन लेकर। और क्या-क्या लाए हो?"[6] इसके उत्तर में गृहस्वामिनी हाथी-घोड़ा, गाय, सोना-चांदी और बहुत सारी सुख-समृद्धि लाने की बात करती है। कई आश्वासनों के पश्चात दरवाजा खुलता है और गिरी स्वामिनी अपने घर के अंदर प्रवेश करती है। इसमें ताश खेलने का भी रिवाज होता है। 'पृष्ठभूमि' में 'खुदुरकुनी ओसा' नामक एक कश्मीरी त्यौहार का जिक्र है। इस त्यौहार में बहने अपने भाई के लिए व्रत करती हैं तथा अपने भाई के लिए मंगलकामना करती हैं घरों को सजातीं- संवारती है, रंगोलियां बनती हैं।

चंद्रकांता ने अपनी कहानियों में कश्मीरी संस्कृति के केवल सुंदर रूपों की ही चर्चा नहीं की है अपितु उसकी विकृतियों की को भी दर्शाया है। उन्होंने कश्मीर में हो रहे नरबलि जैसी कुप्रथा की भी चर्चा की है। 'पृष्ठभूमि' कहानी का एक पात्र प्रद्युमनदास इसी प्रथा की चर्चा करते हुए कहता है "हल्दी खेत सुना है आपने? नहीं? तो सुनिए 18 वर्षों तक एक बालक को पूरे प्यार वह एहतियात से पाला-पोशा जाता है। उसकी तमाम इच्छाएं हठ-जिद पूरी कर भोग-विलास की सामग्री मुहैया करा दी जाती है और एक दिन उसे रस्सों से बांधकर पूरे गांव के सामने पेड़ से बाँध, उल्टा कर, शिरोच्छेदन किया जाता

है। उसके ताजा रक्त से सने मांस के लोथड़ों के लिए छीना-झपटी होती है ताकि एक-एक रक्त सना ताजा टुकड़ा लोग अपने-अपने खेतों में गाड़ दें, जिससे खेतों में हल्दी की बहार फूट आए और भरपूर पैदावार हो जाए"।[7]

चंद्रकांता ने रूढ़ियां, साधु-महंतों का पाखंड, शुभ-अशुभ विचार, मृत्यु-संस्कार, दान-दक्षिणा आदि जैसे नकारात्मक पक्षों को भी अपनी कहानी में स्थान दिया है।

धर्म के हृदयघाति रूढ़ बाह्यचारों पर उन्होंने 'सफर में अकेले' कहानी में आक्रोश व्यक्त किया है। कहानी का मुख्य पात्र 'अमर' है, जो की एक लेखक है। जीवन पर्यंत अभावों से जूझता रहता है। अपने परिवारजनों का पोषण तक ढंग से नहीं कर पाता है। उसके निधनोन्मुख हो जाने पर धर्म के ठेकेदार उसकी पत्नी और परिवार वालों को धार्मिक कर्मकांड पूर्ण करने की सलाह देते हैं अन्यथा उसका पति यमलोक में नरक की यातना को भोगेगा ऐसा बतलाते हैं। मृत्यु शय्या पर लेटे व्यक्ति के लिए रेशमी बिस्तर, कपड़े-लत्ते छींटदार नीला छाता, पैरों के लिए कुश के जूते, प्रकाश देने के लिए दीपक आदि वस्तुएं बनवाता है और उन्हें अपने कब्जे में करके सांत्वना देता है कि अब अमर नरक की यंत्रणाओं से मुक्त हो जाएगा और सभी वस्तुएं उन्हें परलोक में अवश्य मिलेगी। साथ ही मृतक की पत्नी को यह निर्देश देते हैं कि ष्अब इन्हें प्रणाम करो बहन जी अब यह विदा ले रहे हैं। न, न अभी कोई आंसू न बहाए। इससे उन्हें कष्ट पहुंचेगा। वे महायात्रा के प्रस्थान पर निकल रहे हैं"।[8]

ऐसे कर्मकांडों से पुरोहितों की रोजी-रोटी चलती है ये सच है, किन्तु वैसे गरीब जो इसमें सक्षम नहीं हैं उनके लिए तो ये कर्मकांड कोढ़ की तरह है। जिसका अंत होना आवश्यक है। ऐसे अंधविश्वास और पाखंड से लोगों को दूर रहने की आवश्यकता है। 'सिद्ध का कटरा' एक ऐसे ही अंधविश्वास की कहानी है। इस कहानी का पात्र 'फेलू' पाँच शादियाँ करता है, फिर भी वह निःसंतान है। वह संतान पाने की लिप्सा में एक सिद्ध बाबा की शरण में जा पहुंचता है। वह बाबा उसे नर बली करने को कहता है वह कहता है "देवी को प्रसन्न करो। देवी मांगती है गरम लहू"।[9] इस नरबली हेतु वह बाबा एक अधार्मिक स्त्री सिद्धि के बेटे का चयन करता है और उस निरीह मासूम से बच्चे को देवी माँ पर बली चढ़ा देता हैं।

अंधविश्वास कई रूपों में आज भी विकसित है। भूत-प्रेत पर विश्वास, भाग्य-अभाग्य, शकुन-अपशगुन, देवदासी प्रथा जैसी मान्यताएं आज भी विद्यमान है। चंद्रकांता की कहानी 'प्यारिया तो बौरा गया' ऐसी ही मान्यता से जुड़ी एक कहानी है। इस कहानी का पात्र प्यारिया रात में अक्सर बुरे सपने देखता है। उसकी माँ के अनुसार ये सपने अशुभ प्रभाव के कारण आते हैं। वह इससे मुक्ति का उपाय रोज विस्तता नदी में स्नान करना बताती हैं क्योंकि "विस्तता माँ ताप-शाप निवारणी है और सभी बुरे प्रभावों को अपने साथ बहाकर दूर ले जाती है"।[10]

यह सभी चीज केवल मिथ्या संकल्पनाएं हैं इसमें सत्य जैसा कुछ नहीं होता।

चंद्रकांता ने अपने कहानियों में समाज में व्याप्त गरीबी- लाचारी को भी दर्शाया है। 'आश्वासन' कहानी के शेखर की आर्थिक स्थिति बदहाल है जिस कारण उसका दिमाग संतुलित नहीं रह पाता। वह अपनी पत्नी से आग्रह करता है कि "अंजू कम से कम तुम ऐसी चीजें मत मांगना जो मैं तुम्हें देना सकूँ"। पत्नी सोचती है "सुबह से शाम तक खटने के बाद जो कुछ पाता है महीने के आरंभ में मेरे ही हाथ मैं थमा देता है। लाख प्रयत्न करने पर भी राशन सब्जी मैं ही सब कुछ होम हो जाता है कुछ भी नहीं बचता। बच्चे अधनंगे घूमते रहते है। दो जोड़ी कपड़ों को धो सुखाकर किसी तरह उन्हें चार आदमियों मैं उठने-योग्य रख पाती है"।[11] गरीबी के कारण शेखर को अपनी कितनी इच्छाओं को दबा लेना पड़ता है। वह बच्चों के लिए मिठाई खरीदना चाहता है किंतु खरीद नहीं पाता।

गरीबी की त्रासदी यही तक नहीं रुकती है। इसका शिकार कई बार बेटियों को भी होना पड़ता है। 'कोठे पर कागा' की निम्मी एक ऐसी ही बेटी है। निम्मी कहती है "दीदी के ब्याह में कर्जा लिया था बापू ने, जो निम्मो पैसा जोड़-जोड़ कर चुकाना चाहती है पर लाला लेता नहीं। पैसों के बदले निम्मी पर उसकी नजर है और बापू मुँह सीए चुप बैठे हैं"।[12]

इस तरह के कई प्रसंगों से चंद्रकांता ने अपनी कहानी संसार को सजाया है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पूँजीवादी व्यवस्था ने तोड़ कर रख दिया है। बेरोजगारी बढ़ने लगी है, कुटीर उद्योग समाप्ति की ओर बढ़ रहे हैं, गांव के लोग शहर की ओर पलायन कर रहे हैं, शराब पीना, जुआ खेलना जैसे बुरी आदतों का प्रभाव बढ़ रहा है। जिसनें निम्न से लेकर मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चों का जीवन दुरूह बना दिया है।

'गलफतों के दौर' का रतन एक ऐसा ही पात्र है। वह अपने व्यसनी पिता और बुरे हमजोलियों की संगत में रहकर बुरी आदतों का शिकार हो जाता है। एक दिन स्कूल अध्यापक पिता बेटे को स्कूल के पिछवाड़े में गुंडो के साथ सिगरेट फुंकते तथा ताश खेलते देख उसकी खूब पिटाई करते हैं। इसके बाद रतन घर से सोने के दो कड़े चुराकर नबी गुंडे के साथ भाग जाता है। पैसे के अभाव में वह फुटपाथ पर सोने को मजबूर होता है और किसी होटल में काम करता है। लोगों के बचे जूठन को खाकर अपना पेट भरता है। फिर वह एक ट्रक ड्राइवर के पास कंडक्टरी और क्लीनर का काम करता है। भ्रष्ट ड्राइवर चोरी के इल्जाम में उसे पुलिस के हवाले कर देता है। भूख और बेकारी से बदहाल रतन की मदद रसीद और बजरंग करते हैं जिससे वह चोर-डाकू बनने से बच जाता है।

इसी प्रकार 'पुनर्जन्म' का गोपाला अपनी माँ को गरीबी से बाहर निकालना चाहता है। वह अपनी माँ से बहुत प्रेम करता है। वह उसे गरीबी और फटेहाल में जीवन व्यतीत करते नहीं देख पाता है और उनके लिए एक सुखी जीवन की चाहत रखता है। इसके लिए वह जिया चाचा से घर से दो हजार रुपए की चोरी करता है। जब उसकी मां को चोरी की बात पता चलती है तो वह स्वयं उसे जिया चाचा के घर ले जाकर पैसे वापस करवाती हैं। वह जिया से अपने बेटे के इस कृत के लिए माफी मांगती है। समय बीतता है और कुछ वर्षों बाद गोपाल बड़ा आदमी बन जाता है। उसका नौकर दयाल भी गरीबीवश यही गलती करता है। वह भी पैसों की चोरी करता है, जिसे गोपाल पकड़ लेता है और छीना-झपटी में गोपाल गोली लगने से घायल हो जाता है। चोरी के आरोप में दयाला को पकड़ लिया जाता है। तब मां दयाला के पक्ष में खड़ी होती है। पुलिस से आग्रह करती है "साहब उसे जेहल भेज दोगे तो यह अभागा लौट

कर डाकू-लुटेरा बन जाएगा"।[13] गोपाल दयाल को सुधारने का अवसर प्रदान करता है और दयाल की मां का आग्रह मान उसे क्षमा कर देता है। वही 'मामला घर का' कहानी का शिब्बू समाज का उपेक्षित बालक है। जिसे सबके द्वारा दुत्कारा जाता है। जिस कारण वह धीरे-धीरे अपराध की दुनिया में उतरता चला जाता है जहां से फिर कभी वापस नहीं लौटता।

इन मानव विरोधी स्थितियों के बीच मान्यता को रेखांकित कर संसार होती इंसानियत को बचाने का प्रयास भी चंद्रकांत जी ने किया है। मानव समाज की आधी आबादी स्त्री की है। फिर भी मानव समाज पितृसत्तात्मक समाज है। जिसमें प्राय: स्त्रियां शोषित, उत्पीड़ित, कुंठा का शिकार होती रहती है। कश्मीरी समाज भी इससे अछूता नहीं है। स्त्री, पुरुष प्रधान समाज में उसकी वर्चस्व और प्रभुत्व का शिकार होती चली जा रही हैं कभी अनुशासन, कभी संस्कार और कभी समाज के नाम पर उसकी स्वतंत्रता छीन ली जाती है।

'नानी तुम...'? में लड़कियों को किस प्रकार अनुशासन के नाम पर कुंठित कर दिया जाता है इसका अच्छा निदर्शन हुआ है।

चन्द्रकांता जी की नारियाँ पितृसत्तात्मक समाज के मूल्यों को छोड़ आधुनिक मूल्यों के प्रति आकर्षित हैं। वे इन मूल्यों से प्रतिबद्ध होकर अपनी जीवन-धारा को नवीन दिशा प्रदान कर रहीं हैं। 'बस इतना ही' की मिन्नी अपने मंगेतर के प्रति समर्पित है। वह दो वर्षों तक उसके साथ परिणय सूत्र में बंधने की प्रतीक्षा भी करती है, किन्तु उसका मंगेतर विवाह से इन्कार कर देता है। मिन्नी इसके लिए शोक प्रकट नहीं करती अपितु सहजता से इसे स्वीकार करती है। अपने जीवन के प्रति सतर्क होकर गंभीर निर्णय लेती है और दूसरे लड़के से विवाह कर लेती है।[14] वहीं 'कोठे पर कागा' की निम्मो धनी विधुर से विवाह करने से इन्कार कर समाज और धन की सत्ता को ठुकरा देती है। वह कहती है "चाहे तो लोग उसका गला ही क्यों ना काटे वह किसी के लिए बलि का बकरा नहीं बनेगी उस पर जोर जबरदस्ती नहीं चलेगी"।[15] उसका यह वक्तव्य आधुनिक समाज में नारी के सशक्तिकरण की उद्घोषणा मानी जा सकती है। 'पृष्ठभूमि' की महिला पत्रकार केवल पत्रकार ना होकर महिलाओं की हितैषी भी है वह एक जागरूक स्त्री है जो नारी के अधिकारों और सामाजिक कुप्रथाओं, पाखंडों और नारी विरोधी नियमों के विरुद्ध आवाज उठाती हैं।

समकालीन समाज में मध्यवर्ग की नारियां अब आत्मनिर्भर बन रही है। फिर भी उनके सभी निर्णय पिता, भाई या पति द्वारा ही लिए जाते हैं। उनका अस्तित्व अभी भी गौण है। समाज में तो वह प्राय: प्रतिष्ठा के मुकाम पर है, किंतु अपने परिवार में वह अभी भी उपेक्षित है। वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बावजूद अपने ममत्व के कारण पारिवारिक चक्रव्यूह में फंस जाती हैं। यदि वह आत्मनिर्भर न बनाकर आर्थिक पराधीनता स्वीकारती है तो भी वह पारिवारिक शोषण का शिकार ही होती हैं। वस्तुत: दोनों स्थितियों में ही उसे शोषित और पीड़ित होना होता है। यदि बेटी नौकरी करके घर चलाती है तो पिता स्वार्थवश उसके विवाह से कतरने लगते हैं। तो वहीं यदि ससुराल जाकर नौकरी करती है तो वहां भी उसे शोषित होना पड़ता है।

'पत्थरों के राग' की सोनल नौकरी करती है वह अपने परिवार का भरण पोषण करती है। उसकी शादी की उम्र निकालने को है। परिवार बिल्कुल तटस्थ है। "उसने कई साल प्रतीक्षा भी की लेकिन बाद में घर वालों का तटस्थ रूख देखकर दूसरों की चिंता करना सीख गई। एक बड़े परिवार का दायित्व उठाने के साथ-साथ उसने सपनों को भी मन के अंधेरे तहखाना में चिनना सीख लिया"।[16] 'शेष दिन' की रत्ना एक आत्मनिर्भर स्त्री है। फिर भी वह पति के हर जुल्म को सहती है। एक दिन जब स्थिति और असहनीय हो जाती है तब वह उससे अलग होने का निर्णय लेती है। वह सोचती है "किस-किस बात से वह पति की मोहताज थी? पति से ज्यादा वेतन, पति से बेहतर पद प्रतिष्ठा। इसके बावजूद क्यों सहा बार-बार? उसे सुधारने के मौके देती रही इसलिए न कि वह उसके बच्चों की मां थी"।[17]

कश्मीर आतंकवादियों का गढ़ बन चुका है। वहां की स्त्रियों पर पारिवारिक और सामाजिक शोषण के अतिरिक्त आतंकवादियों के अत्याचार भी शामिल है। चंद्रकांता ने अपनी कहानियों में इसे भी स्थान दिया है। उनकी कहानी 'काली बर्फ' औरतों पर होने वाले ऐसे जुल्मों की दास्तां है। कहानी की मुख्य पात्र परमी एक नर्स है। वह बलात्कार से पीड़ित लड़कियों का इलाज करती है, उसे हौसला देती है। वह घायल आतंकवादियों की भी सेवा करती है किंतु इसके परिणामस्वरूप वह एक दिन स्वयं आतंकवादियों का शिकार बन जाती है।

'किस्सा गशकौल' के डॉक्टर रैना की पत्नी को आतंकवादी उसके समक्ष ही जलील करते हैं। कमली जब इनका विरोध करती है तो आतंकवादी "कमला रानी का अंग काटकर उसकी परेड निकलते हैं"।[18] ठीक उसी प्रकार 'रहमते बरान' कहानी में ऐसा ही रूह को तार-तार करने वाला करुण दृश्य आता है। "एक रात चार आदमी घर में घुस गए नंग-धड़ंग। भट्ट साहब बहू बेटी की ओट भी ना कर सके"।[19] 'नवशीन मुबारक' कहानी के पंडित समदजू के इस्लाम कबूल करने के बावजूद उनकी पुत्रवधू आतंकवादियों के हवस का शिकार बन ही जाती है।

चंद्रकांत जी की कृतियां सामयिक व्यवस्था के विद्रुपों एवं स्त्री विमर्श की जटिलताओं की तहें खोलती हैं, वहीं संबंधों के विघटन और मनुष्य के यांत्रिक होते जाने की विडंबना के बावजूद मूल्यों और विश्वासों की सार्थकता को नए आयाम देती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में मनुष्य के स्वप्नों स्मृतियों और उम्मीदों को जिंदा रखने का प्रयास किया है।[20]

शोध सार:- चंद्रकांत जी ने अपनी कहानियों में कश्मीरी समाज और संस्कृति के गहरे रूप को दर्शाया है। वह चाहे उनकी यादों से जुड़ी हो या वहां की वर्तमान में बदलते परिदृश्य। उन्होंने अपनी कहानी में कश्मीरी संस्कृति के सुंदर रूपों के साथ-साथ वहां की कुप्रथाओं का भी जिक्र किया है। 'पोशनूल की वापसी' 'विदा गीत' 'रामबिल्ले की दस्तक' आदि कहानियों में जहां कश्मीर की संस्कृति की झलक मिलती है, तो वहीं 'पृष्ठभूमि' 'किस्सा गशकौल' 'सफर में अकेले' आदि कहानियों में वहां की कुप्रथाओं की झलक मिलती है।

चंद्रकांत जी की कहानियों में कश्मीरी सामाजिक जीवन में आर्थिक कारणों से पड़ने वाले बोझ, गरीबी और विवशता की झलक मिलती है। उनकी कहानी 'आश्वासन' में जहां मध्यवर्गीय परिवार की विवशता देखने को मिलती है। वहीं 'कोठे पर कागा' कहानी में गरीबों के बोझ तले दबे एक बेटी और पिता की विवशता देखने को मिलती है। 'गलफत के दौर' का रतन और 'पुनर्जन्म' का गोपाल गरीबी से बेबस हो अच्छे दिनों की इच्छा में गलत राह चुन बैठता हैं।

समाज की आधी आबादी स्त्रियां कश्मीर में किस प्रकार पीड़ित है इसका वर्णन भी चंद्रकांत जी ने अपनी कहानियों में किया है। 'पत्थरों के राग' की सोनल नौकरी करती है फिर भी अपने पति द्वारा प्रताड़ित की जाती है और वह बच्चों के लिए इसे नियति मान सहती रहती है। 'काली बर्फ' आतंकवादियों द्वारा शोषित लड़कियों की दास्तान को बयां करता है। एक हिंदू नर्स जो आतंकवादियों की सेवा अपना धर्म समझकर करती है एक दिन स्वयं उन्हीं आतंकवादियों का शिकार बन जाती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि चंद्रकांत जी ने अपनी कहानियों में कश्मीर के समाज और संस्कृति के सभी पक्षों से भली भांति हमें परिचित कराया है।

संदर्भ सूची

1. आजाद सक्सेना, चंद्रकांता के उपन्यासों में जीवन संघर्ष, अमन प्रकाशन कानपुर, 2021 पृष्ठ सं०30
2. चंद्रकांता, पोशनूल की वापसी, कहानी संग्रह, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988 पृष्ठ सं०17
3. आजाद सक्सेना, चंद्रकांता के उपन्यासों में जीवन संघर्ष अमन प्रकाशन, कानपुर, 2021 पृष्ठ सं०39-40
4. चंद्रकांता, काली बर्फ, क०सं०, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ सं०41
5. पृथ्वीनाथ मधुप, कश्मीरियत संस्कृति के ताने बाने पृष्ठ सं०40
6. चंद्रकांता, सूरज उगने तक, क०सं०, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ सं०218
7. चंद्रकांता, काली बर्फ, क०सं०, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2013 पृष्ठ सं०107
8. चंद्रकांता, ओ सोनकिसरी, क०सं०, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ सं०105
9. चंद्रकांता, ओ सोनकिसरी, क०सं०, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ सं०40
10. चंद्रकांता, सूरज उगने तक, क०सं०, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ सं०135
11. चंद्रकांता, गलत लोगों के बीच, क०सं०, राजधानी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृष्ठ सं०125
12. चंद्रकांता, कोठे पर कागा, क०सं, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ सं०141
13. चंद्रकांता, दहलीज पर न्याय, क० सं०, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ सं०149
14. चंद्रकांता, पोशनूल की वापसी, क०सं०, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988,पृष्ठ सं०60
15. चंद्रकांता, कोठे पर कागा,क०सं०, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ सं० 138
16. चंद्रकांता, ओ सोनकिसरी, क०सं०, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ सं० 16
17. चंद्रकांता, काली बर्फ, क०सं०, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2013,पृष्ठ सं० 73
18. चंद्रकांता, कोठे पर कागा, क०सं०, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ सं० 23
19. चंद्रकांता, सूरज उगने तक, क०सं०, भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ सं० 56
20. आजाद सक्सेना, चंद्रकांता के उपन्यासों में जीवन संघर्ष, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2021 पृष्ठ सं०30

कुमाऊंनी कथाकारों का हिंदी कथा साहित्य में अवदान

डॉ० मंगला

चंद्रावती तिवारी कन्या स्नातकोत्तर, महाविद्यालय काशीपुर, उत्तराखंड

देवभूमि उत्तराखंड प्राचीन काल से ही तपस्वियों एवं साहित्य साधकों के आकर्षण का केंद्र रहा है।यहां की हिमाच्छादित पर्वतमालाएं, हरी-भरी प्रशांत वनस्थली, घाटियां और निर्मल सरिताएं तपस्वियों और साहित्य साधकों को अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं। साहित्य के इतिहास में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि व्यास, कालिदास से लेकर आधुनिक काल के साहित्य साधकों में विश्व कवि रवींद्र नाथ ठाकुर, महादेवी वर्मा, बाबा नागार्जुन समेत कई अन्य साहित्यकारों ने यहां आकर साहित्य सृजन किया था। नगाधिराज हिमालय तो भारतीय भाषाओं के साहित्य में अनेक अर्थच्छवियों के साथ अधिष्ठित है। यहां के साहित्यकारों ने प्राचीन काल से लेकर आज तक देश की मुख्य धारा से जुड़कर संस्कृत, हिंदी और जनपदीय बोलियों से संबद्ध पर्याप्त साहित्य सृजन किया है। आज भी उत्तराखंड के साहित्यकार संस्कृत हिंदी और जनपदीय भाषा और बोलियों में विविध विधाओं से संबद्ध साहित्य के सृजन के द्वारा साहित्य जगत में नए आयाम स्थापित कर रहे हैं। उत्तराखंड ने हिंदी साहित्य को पर्याप्त साहित्यकार दिए हैं आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास में यहां के हिंदी साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उत्तराखंड ने हिंदी साहित्य के प्रकृति के सुकुमार और छायावादी काव्य धारा के स्तंभ कवि के रूप में कविवर सुमित्रानंदन पंत, हिंदी साहित्य को बहुत कुछ दिया है इनका जन्म अल्मोड़ा जिले के कौसानी गांव में 20 में 1900 ई को हुआ था इनकी प्रमुख रचनाओं में उच्च पल्लव मेघनाथ वध रश्मीबंध वह बूढ़ा चांद प्रसिद्ध है हिंदी साहित्य में योगदान देने के लिए उन्हें पद्म भूषण विज्ञान पीठ पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है उनके काव्य की प्रमुख विशेषता इनका प्रकृति चित्रण है उनके काव्य में आत्मा भी व्यंजन सौंदर्य चित्रण नारी भावना रहस्य भावना दुख और वेदना की विवृत्ति तथा प्रतीकात्मक शैली भी दृष्टिगोचर होती है। हिंदी के प्रथम मनोवैज्ञानिक कथाकार के रूप में इलाज चंद्र जोशी, जिनका जन्म 1903 में हुआ इन्होंने सन्यासी पर्दे की रानी प्रेत और छाया मुक्तिपथ सुबह के भूले जहाज का पंछी आदि उपन्यास लिखें यह हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार द एलाचंद जोशी भाषा हिंदी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार कहानीकार आलोचक थे हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आरंभ जोशी जी से ही माना जाता है जोशी ने मात्र मनोवैज्ञानिक यथार्थ का निरूपण न कर अपनी रचनाओं को आदर्श परक भी बनाया इन्होंने चांद, सुधा, विश्वामित्र, संगम आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। हिंदी साहित्य जगत की अग्रणी और नारी जीवन का अत्यंत आत्मिक चित्रण करने वाली शिवानी का जन्म 17 अक्टूबर 1923 ई को हुआ था उपन्यास कर स्वर्गीय गौरा पंत शिवानी एक ऐसी लेखिका थीं जिनकी हिंदी संस्कृत गुजराती बंगाली उर्दू तथा अंग्रेजी पर अच्छी पकड़ थी और जो अपनी कृतियों में उत्तर भारत के कुमाऊं क्षेत्र के आसपास की लोक संस्कृति की झलक दिखलाने और किरदारों के बेमिसाल चरित्र चित्रण करने के लिए जानी गई मैच 12 वर्ष की उम्र में पहली कहानी प्रकाशित होने से लेकर 21 मार्च 2023 को उनके निधन तक उनका लेखन कार्य निरंतर जारी रहा। कृष्णकली, भैरवी, आमोदर शांतिनिकेतन, विषकन्या, चौदह फेरे उनकी प्रमुख कहानी हैं। 1982 में हिंदी साहित्य में योगदान देने के लिए वे पद्मश्री सम्मान से सम्मानित की गई। हिंदी के प्रथम डी.लिट्. डॉक्टर पीतांबर दत्त बड़थ्वाल और प्रथम उत्तर आधुनिक उपन्यासकार के रूप में मनोहर श्याम जोशी जैसी प्रतिभाएं दी हैं। मनोहर श्याम जोशी समकालीन हिंदी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण उपन्यासकार थे। 9 अगस्त 1933 को, अजमेर राजस्थान में जन्मे मनोहर श्याम जोशी ने विज्ञान से लेकर राजनीति तक शायद ही ऐसा कोई विषय हो, जिसमें उन्होंने अपनी लेखनी का परचम नहीं लहराया हो।भारतीय धारावाहिक के पितामह कहे जाने वाले मनोहर श्याम जोशी ने बुनियाद, नेताजी कहिंन मुंगेरीलाल के हसीन सपने, हम लोग जैसे धारावाहिकों के माध्यम से घर-घर में अपनी पैठ बनाई है। जोशी जी हर विधा में पारंगत थे। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ साहित्यकार, उपन्यासकार व्यंग्यकार पत्रकार, दूरदर्शन धारावाहिक लेखक, जनवादी विचारक, फिल्मपट कथा लेखक, एक कुशल संपादक, कुशल प्रवक्ता और एक अच्छे स्तंभ लेखक थे। वह रंग कर्म के भी अच्छे जानकार थे उन्होंने दिनमान और साप्ताहिक हिंदुस्तान का संपादन भी किया इन्होंने एक दुर्लभ व्यक्तित्व, कैसे किस्सागो, सिल्वर वेडिंग, मंदिर घाट की पौड़ियां, शक्करपारे, गुड़िया आदि कहानी कुमाऊं अंचल से लेकर छोटे बड़े नगरों से संबंध रचनाएं लिखी हैं। इन्होंने कुल 6 उपन्यास लिखे, जिनमें 'कुरु-कुरू स्वाहा', 'क्याप,' कसप, ट-टा प्रोफेसर, हमजाद, हरिया हरक्यूलीज हैं। जोशी जी के उपन्यास साहित्य का वृत्त व्यापक है क्योंकि उनके साहित्य के तथ्य के भीतर एक साथ कुमाऊं के अंचल से लेकर नगरीय, महानगरीय और हॉलीवुड की अनुगूंजे हैं। उनके साहित्य में एक साथ परंपरा और आधुनिकता का गहरा तालमेल दिखाई देता है इसलिए उनके उपन्यास जहां एक ओर आंचलिक जीवन के सामाजिक सरोकारों को अपने खिलंदड़ अंदाज में प्राकृत रूप में व्यक्त करते हैं वहीं उनके उपन्यासों में आधुनिक भारत के नगरीय और महानगरीय जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार भी अपने प्रेरित रूप में दिखाई देते हैं। इसके अलावा और कई इस अंचल के कीर्तिमान साहित्यकारों के नाम है। उत्तराखंड के हिंदी साहित्यकारों ने यद्यपि सभी विधाओं पर लिखा है, किंतु इन्होंने कविता और कथा साहित्य के लेखन के क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त की है। कई विद्वान इसी अंचल के लोकरत्न गुमानी पंत को खड़ी बोली का पहला कवि मानते हैं। यहां के प्रमुख कवियों में रतनकवि लोकरत्न पंत गुमानी, मौला राम, स्वामी शशिधर, सनातनानंद सकलानी, सत्य शरण रतूड़ी, मंगतराम जोशी, सुमित्रानंदन पंत, तारा पांडे, चंद्रकुंवर बड़थ्वाल, भजन सिंह, अनुसूया प्रसाद, मंगला प्रसाद नौटियाल, रमेश चंद्र शाह, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी, राजेंद्र धस्माना, पार्थ सारथी, गंगा प्रसाद बिस्मिल, वीरेन डंगवाल, कमल साहित्यालंकार, सुंदर चंद ठाकुर आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिंदी कथा साहित्य के विकास में यहां के कथाकारों में गोविंद बल्लभ पंत, रमा प्रसाद घिल्डियाल, कुलानंद भारतीय, इलाज चंद्र जोशी, शिवानी, शैलेश मटियानी, पानू खोलिया, मनोहर श्याम जोशी, विद्यासागर नौटियाल, हिमांशु जोशी, देवेश ठाकुर, सीतांशु भारद्वाज, गंगा प्रसाद विमल, दयानंद अनंत, बटरोही, महेश दर्पण, प्रेम सिंह नेगी, हरि सुमन बिष्ट उपाध्याय, हरिदास भट्ट, शैलेश, प्रदीप पंत, सुभाष पंत गोपाल उपाध्याय,पंकज बिष्ट, मृदुल पांडे, संजय खाती आदि के नाम प्रमुख हैं। यह बड़े ही गर्व की बात है कि इस प्रदेश ने प्रेमचंद के बाद दूसरे बड़े कथाकार के रूप में शैलेश मटियानी जी को जन्म दिया है। शैलेश मटियानी का जन्म 14 अक्टूबर 1931 को उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले के बाड़े छीना गांव में हुआ था। वह आधुनिक हिंदी साहित्य जगत में नई कहानी आंदोलन के दौर के कहानीकार एवं प्रसिद्ध गद्यकार थे। इन्होंने 'बोरीवली से बोरी बंदर' तथा 'मुठभेड़' जैसे उपन्यास, 'चील', 'अर्धांगिनी' जैसी कहानियों के साथ ही अनेक निबंध तथा प्रेरणादायक संस्मरण भी लिखे हैं। हिंदी साहित्य में योगदान देने के लिए इन्हें प्रेमचंद पुरस्कार, लोहिया सम्मान एवं राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार भी दिया जा चुका है।

संक्षेप रूप में, छोटे से पहाड़ी राज्य उत्तराखंड ने देश को पद्मभूषण, पद्मश्री, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कई लेखक दिए हैं। जिनमें सुमित्रानंदन पंत, हिमांशु जोशी, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी, शैलेश मटियानी, रमेश चंद्र शाह, गौरा पंत 'शिवानी' जैसे अनेक उत्तराखंडी साहित्यकारों ने हिंदी को समृद्ध बनाने में अहम भूमिका निभाई है। इन साहित्यकारों ने न केवल हिंदी की अलख जगाई है,अपितु अपने विशिष्ट साहित्यिक काम से राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अलग पहचान बनाई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. उत्तराखंड के रचनाकार और उनका साहित्य,अंकित प्रकाशन, चंद्रावती कॉलोनी हल्द्वानी, नैनीताल।
2. हिंदी साहित्य को कुमाऊं अंचल की देन, भगत सिंह नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास साहित्य, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, नैनीताल।
4. उत्तराखंड के हिंदी कवि, संपादक प्रो.दिवा भट्ट।
5. कसप, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

उत्तराखंडी मनोहरश्याम जोशी का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० दीपिका आत्रेय

एसो० प्रोफेसर हिन्दी विभाग, चन्द्रावती तिवारी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, काशीपुर (ऊधमसिंह नगर)

मनोहर श्याम जोशी समकालीन हिंदी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण उपन्यासकार थे। 9 अगस्त 1933 को अजमेर राजस्थान में जन्मे मनोहर श्याम जोशी ने विज्ञान से लेकर राजनीति तक शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिसमें उन्होंने अपनी लेखनी का परचम न लहराया हो।

भारतीय धारावाहिक के पितामह कहे जाने वाले मनोहर श्याम जोशी ने बुनियाद, नेताजी कहिन, मुंगेरीलाल के हसीन सपने, हम लोग जैसे धारावाहिकों के माध्यम से घर-घर में अपनी पैठ बनाई है। जोशी जी हर विधा में पारंगत थे। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ साहित्यकार, गद्यकर, उपन्यासकार, व्यंग्यकार, पत्रकार, दूरदर्शन धारावाहिक लेखक, जनवादी विचारक, फिल्म पटकथा लेखक, एक कुशल संपादक, कुशल प्रवक्ता और एक अच्छे स्तंभ लेखक थे। वह रंग कर्म के भी अच्छे जानकार थे। उन्होंने 'दिनमान' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का संपादन भी किया।

मनोहर जोशी का पहला उपन्यास 'कुरु-कुरू स्वाहा' 1980 में तब प्रकाशित हुआ जब वह 45 वर्ष के थे।अपनी अधेड़ावस्था में सृजित इस उपन्यास से जो ख्याति उनको प्राप्त हुई है वह अपने आप में अद्‌भुत है। हिंदी साहित्य में ऐसा कोई साहित्यकार नहीं दिखाई देता जो अपनी पहली रचना के द्वारा इतना प्रसिद्ध हुआ हो।साहित्य के क्षेत्र में मनोहर श्याम जोशी का प्रवेश पहले पहल एक कहानीकार के रूप में हुआ था उनकी पहली कहानी 'नीली आस्तीन'1951 में प्रकाशित हुई। उस समय इनकी उम्र कुल 18 वर्ष थी, किंतु उन्होंने अधिक कहानियां नहीं लिखी हैं। फिर भी समय-समय पर उनके द्वारा लिखित तीन कहानी संग्रह हमें प्राप्त होते हैं वह कहानी संग्रह हैं 'एक दुर्लभ व्यक्तित्व', 'कैसे किस्सागो' और 'मंदिर घाट की पौड़ियां' इसके अतिरिक्त उनकी कहानियों में 'सिल्वर वेडिंग' 'मंदिर घाट की पौड़ियां', 'एक दुर्लभ व्यक्तित्व', 'जिंदगी के चौराहे पर', 'शक्करपारे', 'उसका बिस्तर', 'प्रभु तुम कैसे किस्सागो', 'गुड़िया' आदि हैं। इनकी कहानी कुमाऊं अंचल से लेकर छोटे बड़े नगरों से संबद्ध हैं।

यदि हम उनके उपन्यासों की बात करें तो मनोहर श्याम जोशी ने कुल 6 उपन्यास लिखें जिनमें से 'कुरु-कुरू स्वाहा' उपन्यास 1980 में प्रकाशित हुआ। यह एक बहुत ही श्रेष्ठ उपन्यास है। 'कुरु-कुरू स्वाहा' को पढ़ना एक श्रम साध्य काम है जिसमें आप कथानक के साथ जुड़ते हुए भी उससे दूर रहते हैं। यह उपन्यास मुंबई की एक कहानी को बड़ी बेबाकी और बेगैरत तरीके के साथ पूरी साहित्यिकता नाटकीयता और सांस्कृतिकता के साथ कहता है।

'कसप' उपन्यास 1982 में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। आकार की दृष्टि से यह उपन्यास उनके सभी उपन्यासों की अपेक्षा बड़ा है कुछ आलोचक उपन्यासकारों ने इस उपन्यास की तुलना 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' धर्मवीर भारती के 'गुनाहों के देवता' और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की परंपरा से की है किंतु कथानक गठन से लेकर शिल्पगत नई दृष्टियों के कारण इस उपन्यास की इससे पूर्व हिंदी साहित्य में सृजित किसी भी औपन्यासिक रचना से तुलना करना उचित नहीं है क्योंकि यह उपन्यास विशिष्ट परिस्थितियों के बीच सृचित हुआ था उसको प्रस्तुत करने का तरीका वह नितांत उनकी अपनी संपत्ति है। उपन्यास को हिंदी उपन्यास परंपरा के किसी उपन्यास के साथ जोड़कर देखना अनुचित तो है ही इसके अलावा एक नई परंपरा का खंडन करना भी है इस संदर्भ में बागेश्वर शुक्ला का कथन उद्धृत है,जिसमें वह 'कसप' को बिना सांचे का उपन्यास मानते हैं। वह कहते हैं, "इस लिहाज से जोशी उन साहित्यकारों में से हैं जिनका सांचा इधर मिलना मुश्किल है।" 'कसप' उपन्यास मूलत: आंचलिक उपन्यास है। जोशी जी ने इस उपन्यास में आंचलिक जीवन संदर्भों को उकेरने का पर्याप्त सफलतम प्रयोग किया है। एक अप्रवासी होते हुए भी जिस प्रकार उत्तराखंड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों को जोशी जी ने उद्‌घाटित किया है उससे उत्तराखंड अद्वितीय प्राकृतिक रूप उद्‌घाटित होता है ,इसके अलावा आंचलिक जीवन संदर्भों के द्वारा जिस आधी अधूरी आधुनिकता के उद्‌घाटन में सफलता पाई है उससे 'कसप' उपन्यास का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। वास्तव में कसप उपन्यास आंचलिक तेवरों से युक्त होते हुए भी आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के सभी स्वरों से युक्त है इसमें धुर- लोक जीवन की आंचलिकता से लेकर दिल्ली, काशी, मुंबई और हॉलीवुड की अनुगूंजे सुनाई देती हैं। उनके 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' उपन्यास का पहला प्रकाशन 1999 में हुआ था।यह उपन्यास कुमाऊं के एक विशिष्ट अप्रवासी और महानगरीय जीवन के संबद्ध जीवन संदर्भों पर आधारित है। यह एक प्रकार से मिश्रित संस्कृति को व्यक्त करता है, जिसमें कुमाऊं अंचल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों के साथ-साथ महानगरीय जीवन से संबद्ध सरोकार भी व्यक्त हुए हैं। 'हमजाद' उपन्यास 1998 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास भाषा प्रयोग की दृष्टि से हिंदी साहित्य का अनुपम उपन्यास है क्योंकि हिंदी साहित्य में ऐसा कोई उपन्यास नहीं दिखाई देता जिसमें उर्दू को देवनागरी लिपि में लिखा गया हो वास्तव में हमजाद उपन्यास हिंदी साहित्य का पहला प्रयोग है जो उर्दू भाषा के रूप में नागरी में लिपिबद्ध है। इस दृष्टि से यह उपन्यास उन भाषा प्रेमियों के लिए एक महत्वपूर्ण उदाहरण है जो उर्दू शैली को हिंदी भाषा की एक शैली मानते हैं। इस उपन्यास के शीर्षक का चयन भी उर्दू भाषा से ही किया गया है। "हमजाद शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए स्वयं कथाकार का मानना है" हमजाद का अर्थ है, साथ ही पैदा हुआ और यह उसे पिशाच के लिए प्रयुक्त होता है जो एक विश्वास परंपरा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही उससे संबद्ध हो जाता

है और जीवन भर उसको पाप और कलुष में धकेलता रहता है।" इस उपन्यास में टी.के. नारकियानी तखतराम का हमजाद है जो अपनी काली करतूतों से तखतराम को कलुष में धकेलता है किंतु वह चाहते हुए भी अपने हमजाद टी.के.नारकियानी से अलग नहीं हो पता है और उसके पापों में सहभागी बनता है। इस उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी ने उन स्थितियों का निरूपण किया है जिनमें न चाहते हुए भी आज मनुष्य अपराध करने व सहभागी बनने हेतु विवश हो जाता है।

'ट-टा प्रोफेसर' उपन्यास का प्रथम संस्करण 1995 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास के रूप में प्रकाशित होने से पूर्व 1990 में 'हंस' के दिसंबर के अंक में ट-टा प्रोफेसर 'षष्टीबल्लभ पंत' सबसे लंबी कहानी के रूप में प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात हिंदी अकादमी दिल्ली के द्वारा प्रकाशित कहानी संग्रह 'संकल्प कथा दशक' में संगृहीत एवं प्रकाशित हुआ। इस संबंध में स्वयं उपन्यासकार की टिप्पणी है, "यह भी उत्तर आधुनिक लीला का ही नमूना है कि ट-टा प्रोफेसर एक पात्र की ही नहीं, एक कहानी की भी कहानी है ऐसी कहानी कि जो लेखक के मन में जन्मी, जवान और बूढ़ी हुई और मर गई, ट-टा प्रोफेसर कथा और कथा पात्र के ही बूढ़ा होने और मरने की कहानी नहीं है बल्कि स्वयं लेखक के रचना धर्मिता के बूढ़ा होने और मरने की कहानी भी है। "इस उपन्यास के कथानक का प्रारंभ आत्मकथात्मक शैली में हुआ है।कथानक का प्रारंभ उपन्यासकार ने किसी अधेड़ कवि की पढ़ी हुई उक्ति से किया है: "कवियों को जवानी में मर जाना चाहिए तथा कथाकार को बुढ़ापे में ही पैदा होना चाहिए।" जो भी हो यह कथन अपने आप में लाक्षणिक भी है और इसमें सांकेतिकता भी कम नहीं है क्योंकि यह कथन जहां एक और कथाकार की कथा यात्रा की याद दिलाती है, वहीं आज के दौर में साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कथा साहित्य की विधाओं (उपन्यास और कहानी) के महत्व का प्रतिपादन करती है। 'क्याप' मनोहर श्याम जोशी का अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 2001 में हुआ था। यह उपन्यास 2005 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुआ। यह उपन्यास उत्तराखंड की पृष्ठभूमि में लिखा गया है।इस उपन्यास में एक साथ कुमाऊं अंचल के आजादी से पूर्व तथा आजादी के बाद की तस्वीरें व्यक्त हुई हैं वस्तुत: यह उपन्यास भी एक प्रकार से उत्तर आधुनिक स्थितियों को व्यक्त करता है और उत्तर आधुनिक स्थितियों की तरह समाज व्यवस्था के ढांचों, सिद्धांतों, वादों, नारों की व्यर्थता को सिद्ध करता है। इस उपन्यास के कथानक का विन्यास भी अपने आप में निराला है। कथानक के अंत की घटना से कथानक का प्रारंभ किया गया है क्योंकि उपन्यास के कथानक के प्रारंभ में जिस हिमालयवर्ती जिसे बाल्मीकि नगर अथवा कस्तूरी कोर्ट के फस्कियाधार चोटी के पथ में भैरव मंदिर के पास पुलिस डी.आई.जी. मेधा तिथि जोशी और माफिया सरगना हर ध्यानु बाटलागी के लाशों की चर्चा आई है, वास्तव में चची का यह टुकड़ा इस उपन्यास की कथा के अंत से लिया गया है और इस घटनाक्रम को 1999 से जोड़कर उपन्यासकार ने इसके कथानक को उत्तर आधुनिकता का रंग प्रदान किया है मोटे रूप से इस उपन्यास के दो टुकड़े हैं। पहले टुकड़े के अंतर्गत आजादी के पूर्व के भारत की सामाजिक सांस्कृतिक स्थितियां और उसके बाद के टुकड़े में आजादी के बाद की बनती बिगड़ती सामाजिक सांस्कृतिक तस्वीर दिखाई देती हैं इन दोनों कथा टुकड़ों से पूर्व कथाकार कुमाऊं अंचल के पूर्व कथाकार कुमाऊं अंचल के फस्किया धार भैरव मंदिर के पास दो-दो व्यक्तियों की लाशों पर बहस करता है और कुमाऊं अंचल के विविध प्रकार के जीवन संदर्भों को प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त कुमाऊं अंचल के प्रशासन एवं प्रकृति की उपेक्षा से निर्मित मानवीय प्रकृति का कथन करता है इसीलिए तो वह फस्कियाधार के आम लोगों की जुगाड़ियां, और कल्पनाशीलता की प्रवृत्ति से युक्त मानता है क्योंकि उसका मानना है, इन गप्पों के सहारे हम आत्महत्या के लिए प्रेरित करती हुई अपनी विषम परिस्थितियों को अपने लिए जीवन दायिनी बना पाते थे। अगर हम अपनी देवी पर सोने के नाम से पत्थर चढ़ाते थे तो इसीलिए कि हमारी कल्पनाशीलता हमें अपने पत्थरों में ही सोना-चांदी, हीरे, जवाहरात सब कुछ दिखा देती थी।हम रुखा सूखा खाने बैठे थे तो बात इस तरह करते थे मानो सैकड़ो सरस व्यंजन हमारी थाली में हों। वास्तव में मनोहर श्याम जोशी ने उत्तराखंड के लोक जीवन में प्रचलित फसक को अत्यंत मार्मिकता के साथ उकेरा है।

मनोहर श्याम जोशी के साहित्य के समीक्षात्मक अध्ययन के उपरांत यह बात स्पष्ट हो जाती है की कथ्य की दृष्टि से उनके उपन्यास साहित्य का वृत्त व्यापक है क्योंकि उनके साहित्य के तथ्य के भीतर एक साथ कुमाऊं के अंचल से लेकर नगरीय, महानगरीय और हॉलीवुड की अनु गूंजे हैं।उनके साहित्य में एक साथ परंपरा और आधुनिकता का गहरा तालमेल दिखाई देता है इसीलिए उनके उपन्यास जहां एक ओर आंचलिक जीवन के सामाजिक सरोकारों को अपने खिलंदड़ अंदाज में प्रकृत रूप में व्यक्त करते हैं वहीं उनके उपन्यासों में आधुनिक भारत के नगरीय और महानगरीय जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार भी अपने प्रेरित रूप में दिखाई देते हैं। उनके उपन्यासों का सर्वाधिक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि वह परंपरा से लेकर आधुनिक और उत्तर आधुनिक सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों के निरूपण में गहरी और गुदगुदाने वाले व्यंग्य का आश्रय देते हैं उनके उपन्यास साहित्य में भारतीय समाज के प्राय: सभी वर्गों का निरूपण हुआ है किंतु मध्यम वर्ग उनके उपन्यासों के केंद्र में है इनका कारण यह है कि वह मध्यम वर्ग के गहरे भोक्ता और द्रष्टा रहे हैं। इनके उपन्यासों में चित्रित भारतीय समाज के विविध वर्गों से संबंध मनुष्य प्राय: विविध क्षेत्रों से संबद्ध है यही कारण है कि इनके साहित्य में विविध क्षेत्रों के सांस्कृतिक संदर्भ व्यक्त हुए हैं उनके उपन्यास साहित्य के कथ्य के समान शिल्प में भी वैविध्य है। कथानक संगठन से लेकर भाषा और शैली शिल्प में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है उनके उपन्यासों में भाषा के कई लोक हैं क्योंकि इनके उपन्यास साहित्य में अति शिक्षित, मध्य शिक्षित, अशिक्षित, ग्रामीण, शहरी सभी प्रकार के चरित्र हैं।अत: इनके अनुरूप उनके उपन्यासों में भाषा के अनेक लोक आ गए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. हिंदी साहित्य को कुमाऊं अंचल चल की देन,भगत सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. उत्तराखंड के रचनाकार और उनका साहित्य, अंकित प्रकाशन, चंद्रावती कॉलोनी, हल्द्वानी,नैनीताल।
3. मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास साहित्य, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, नैनीताल।
4. क्याप, मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. ट-टा प्रोफेसर, मनोहर श्याम जोशी, किताब घर,नई दिल्ली।
7. हमजाद, मनोहर श्याम जोशी, किताब घर, नई दिल्ली।

रामधारी सिंह दिनकर की काव्यगत विशेषताएँ

डॉ० प्रिती जयसुखभाई राठोड

असिस्टेंट प्रोफेसर, वैध्य श्री एम.एम.पटेल कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, गुलबाई टेकरा, अहमदाबाद

प्रस्तावना:

रामधारी सिंह दिनकरजी का जन्म 23 सितंबर 1908 बिहार के सिमरिया नामकगाँव में एक साधारण परिवार में हुआ था। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास राजनीति विज्ञान में बी.ए. किया। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। वे हिंदी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबंधकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित है। राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता को मूल भूमि मानते हुए इन्हे।उन्हे।'युगचारण' व 'काल के चारण' की संज्ञा दी गई है। दिन कर स्वतंत्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप मे।स्थापित हुए और स्वतंत्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गए। वे छायावादोतर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ।मे।ओज, विद्रोह, आक्रोश क्रांति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवुतियो का उत्कर्षह मे।उनकी 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' नामक कृतियों में मिलता है।

हिंदी कवि दिनकरजीने अपने काव्य के माध्यम से समाज में गहरी प्रभाव छोडा हैं और एक विचारशील कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। दिनकर जी की काव्य रचना का संरचनात्मक निर्माण और उनकी अद्वितीय भाषा और शैली ने उन्हें एक अलग पहचान दिलाई। हिंदी साहित्य में दिनकर जी का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत की परतंत्रता मुक्त करने के लिए दिनकर जी ने अधिक परिश्रम किया। उनकी रचनाओं के माध्यम से जनता में ऐसी जागृति आई जिसने देश विदेशी शासन से मुक्त हुआ। उन्होंने जनता पर होने वाली अनीति अत्याचार अहंकार का विरोध किया।दिनकर जी की रचनाओं के आधार पर उनकी काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हो सकती है।

कविता में राष्ट्रीयता का स्वर:

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता के विभिन्न पक्ष व्यक्त हुए हैं। राष्ट्रीयता के लिए अतीत के गौरव का स्मरण क्रांतिकारी भावनाओं का प्रकटन बलिदान एवं त्याग की प्रेरणा वर्तमान के प्रति उदासीनता, एकता का भाव आदि व्यक्त किये हैं। भारत की वर्तमान दशा से वह बहुत शुब्ध थे। परतंत्र भारत को देखकर उनका हृदय मसोसने ने लगता था। अत: उन्होंने क्रांति का आह्वान किया। भारत के न केवल मनुष्यों में बल्कि मिट्टी के काणमें उन्होंने शक्ति को परखा और स्वाधीनता के लिए उसे विनाशकारी शक्ति का आह्वान किया। अपनी रचना'सामधेनी'में उन्होंने लिखा है कि-

दहक रही मिट्टी स्वदेश की, खोल रहा गंगा का पानी।
प्राचीरो में गरज रही है, जंजीरों से कसी जवानी।।

कविता में क्रांति और विद्रोह का स्वर

दिनकरजी क्रांति के उपासक हैद्य दिनकरजीका हिंदी काव्य जगत में प्रवेश क्रांति और विद्रोह के तीव्र के स्वर के साथ हुआ था। उनकी कविताओं में क्रांति और विद्रोह का यह स्वर आरंभ से लेकर अंत तक है।रुढियों के प्रति विराट विद्रोह दिनकर की प्रत्येक पंक्ति में दिखाई देता है। वे सड़े-गले समाज को क्रांति के द्वारा बदलना चाहते हैं, वह कहते हैं-

क्रांतिध्रात्रि! कविते! जाग उठ आडम्बर में आग लगा दे।
पतन, पाप, पाखण्ड जले, जग में ऐसी ज्वालां सुलगा दे।।

कविता में प्रगतिशीलता

रामधारीसिंह दिनकरजी ने अपने इस समय के प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपने काव्य में उतारा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से उजड़ते खलिहानों, जर्जरकाय कृषकों को और शोषण मजदूरों का मार्मिक चित्र अंकित किया है। दिनकर के काव्य में प्रगतिशील विचारधारा देखने को मिलती है। उनके इस पद के माध्यम से प्रगतिशीलता झलकती है-

सूखी रोटी खाएगा जब कृषक खेत में धरकर हल।
तब दूंगी मैं तृप्ति उसे बनाकर लोटे का गंगाजल।।

उनकी प्रगतिशील विचारधारा पर आधारित रचनाएं है पाटलिपुत्र की गंगा, हिमालय, बोधिसत्व, तांडव,कस्मै देवाय इत्यादि।

कविता में शोषितों तथा उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति

दिनकर जी पीड़ित मानवता और दलित समाज के प्रति गहरी सहानुभूति अपने काव्य में दिखाई है। समाज में फैले शोषण का उन्होंने तीव्र स्वर में विरोध किया है। किसानो, मजदूरो और सर्वहारा दलित वर्ग के प्रति उन्होंने काफी आवाज उठाई है। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता और शोषण को देखकर उनका पौरुस दहाड़ उठता है और वे कहते हैं-

श्वानो को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकायेजाते हैं,
मलिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।
पानी महलों का अहंकार, तब देता मुझको आमंत्रण।।

कविता में मानवतावाद

मानवतावादी कवि संपूर्ण मानव का कल्याण चाहता है। दिनकरजी की विलक्षण मानवतावादी कलाकार है वे संसार में प्रेम और करुणा का साम्राज्य चाहते हैं अतीत से वर्तमान तक दिनकर जी की दृष्टि मानव तक से प्रभावित है। उनकी यह मान्यता है कि आज का शोषक वर्ग समाज के भेदभाव समाप्त करके फूट डाल देता है तथा समाज के पारस्परिक स्नेह को समाप्त कर देता है। जनता में भय और आतंक फैलाने के लिए समय-समय पर युद्ध करवा कर हजारों निरअपराध व्यक्तियों को मौत के घाट उतार देते हैं। शासन वर्ग मानवता की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। इसी संबंध में दिनकर जी ने लिखा है कि।

आकुल अंतर की मनुष्य को, इस चिंता से भरी हुई।
इस तरह रहेगी मानवता, कब तक मनुष्य से डरी।

कविता में भाग्यवाद का विरोध

दिनकर जी कर्म में विश्वास रखते थे ना कि भाग्य पर। अत: उन्हें मनुष्य के पुरुषार्थ पर विश्वास है।भाग्यवाद उनकी दृष्टि में एक छल है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के हक को दबाकर सुख भोगता है। जैसे-

भाग्यवाद आवरण पाप का और शास्त्र शोषण का
जिससे रखता दबा एक जन, भाग दूसरे जन का।
ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में, मनुज नहीं लाया है।
अपना सुख उसने भुजबल से ही पाया है।।

कविता में प्रतिस्पर्धी भावना

दिनकरजी के काव्य में प्रतिस्पर्धी भावना की विशेषता देखी जा सकती है। उनकी कविताओं में वीररस उत्कृष्टता और साहस का प्रचुर उपयोग हुआ है। उनकी कविताओं में देशभक्ति और स्वाधीनता के भाव प्रधान होते हैंऔर उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से देश की आत्मा को पुनर्जीवित किया है। उनकी कविता 'रण की ज्वाला' इस कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है जहां उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम कीअद्भुतत्ता-अनोखेपन को दर्शाया है।

कविता में विचार एवं भावना का समन्वय

दिनकर जी के काव्य में विचार और भावना का सुंदर समन्वय दिखाई पड़ता है। भावना के उच्छल प्रवाह के साथ-साथ विचारों की गहनता भी उनके काव्य में सर्वत्र मिलती है। उनकी प्रबंध रचनाओं में भावुकता और बौद्धिकता दोनों ही सुंदर ढंग से समाहित है। 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र 'तथा 'रश्मिरथी' इसके प्रपुष्ट प्रमाण है।

कविता में नारी भावना

नारी समाज का एक अंग है लेकिन युग से मनुष्य समाज का यह अंग अपेक्षित रहा है। दिनकरजी की नारी भावना पूर्ववर्ती कवियों से कुछ भिन्न है। वे नारी जीवन की प्राथमिक समस्याओं पर विचार करते हुए उसकेअतीन्द्रिय द्रोपदी के पावन दर्शन भी करते हैं। दिनकरजी ने नारी के विलास पूर्ण जीवन पर चिंता व्यक्त की।वे नारी के इस रूप के विरोधी है। आज की नारी कृत्रिमता की पुजारी है। यौवन के उन्माद में वह विलास को ही सर्वस्व समझती है।हास विलास के कारण नारी ने अपनी स्वाभाविकताखोदीद्य आज की नारी माँ बनना नहीं चाहती बल्कि गर्भ निरोध के कृत्रिम साधनों रूप सौंदर्य को अपनाकर नि:संतान ही रहना चाहती है। निरोध का प्रयोग या किसी आर्थिक या परिवार नियोजन की दृष्टि से नहीं करती बल्कि अपने सौंदर्य को सुरक्षित रखने के लिए ही ऐसा करती है।बीसवी शताब्दी की आते नवीन नारी की कवि निंदा करते हैं। उनके काव्य 'रसवन्ती' की पंक्तियाँ मैं देखे तो-

"कौतुक हास विलास रमण की रति सजीव प्रतिमाओ,
देखो निज में झोंक कभी उस प्लान मुखी नारी को।"

कविता में प्रकृति चित्रण

दिनकरजी ने काव्य में प्रकृति चित्रण का व्यापक रूप परिलक्षित किया है। उन्होंने प्रकृति का आलंबन उद्दीपन तथा मानवीकरण के रूप में चित्रण किया है। कहीं-कहीं पर प्रतीकात्मक तथा नारी के रूप में भी प्रकृति चित्रण मिलता है।

मानवीकरण की दृष्टि से दिनकर 'निझरिणी' कविता सर्वश्रेष्ठ है। कविने एक छोटी सी नदी में मानवीय भावनाओं का आरोप करके मानवीकरण का सुंदर चित्र उपस्थित किया है। प्रस्तुत कविता में नदी एक बालिका है के समान है। जिस तरह बालिका पिता के घर में पलती है सहेलियों के साथ खेलती है और युवा होने पर पतिगृह गमन करती है इस प्रकार नदी भी हिमाचल रुपी पिता के घर में पलती है पृथ्वी माता की गोद में खेलती है तथा पशु पक्षियों आदि का सहवास प्राप्त करके समुद्र रुपी पति घर में जाकर उसका अवसान होता है।कविता मेंसमाज सेवा का संदेश दिनकरजी के काव्य में समाज सेवा का संदेश निहित है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा की है और समाज सेवाकी महत्वपूर्णता को बताया है। उनकी कविता 'उधार का सुनहरा दिन' इस विशेषता का उत्कृष्ट उदाहरण है जहां उन्होंने गरीबों के खिलाफ लड़ाई को दर्शाया है और समाज के उत्थान के लिए अपना योगदान दिखाया है।

कविता में छन्दऔर अलंकार का महत्व

दिनकर जी की कविताओं में न केवल सुंदरता का सम्मिलन है बल्कि छन्द और अलंकार के उपयोग से भी उन्होंने उन्नति के पथ पर अग्रसर होते हुए दिखाई दिए हैं। दिनकरजीने पुराने छन्दों को समाप्त कर नये छंदों का प्रयोग किया। मुख्यत: दिनकर जी ने अपनी रचनाओं में दिग्पाल, सार, ताटक, सारसी, शृंगार, लावनी तथा वीर छन्दोंका प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र तथा रश्मिरथी के ललित पद छन्द राधिका, छन्द सुमेरन छन्द आदि का प्रयोग किया है।

दिनकरजी के काव्य में अलंकारों का उपयोग स्वाभाविक रूप से हुआ हैद्य उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षाअलंकारों के साथ-साथ मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग किया है। इन अलंकारों के द्वारा वे न केवल अपने विचारों और भावों को सुंदरता से अभिव्यक्त करते हैं बल्कि पाठकों के मन में एक अद्रितीय अनुभव भी जगाते हैं।

दिनकरजी की भाषा साहित्यिक खडीबोली हैद्य जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है।कहीं-कहीं उर्दू के चलते फिरते शब्दों के प्रयोग से भाषा और भी प्रवाहमयी हो गई है। इंसान, तकदीर, कब्र, आरजू, अरमान, गम, लाश आदि है। दिनकर की भाषा भाव के अनुकूल परिवर्तनशील है। उसमें मुहावरों और लोकोक्तियाँ का भी प्रयोग किया है। उनके काव्य की भाषा माधुर्ययुग की अपेक्षा प्रसाद और ओजपूर्ण से अधिक संपन्न है।दिनकर जी ने अपने काव्य में सरस, सुबोध एवं प्रवाहयुक्त शैली को अपनाया है। उनकी सरलता और गहराई और साहित्यिक सौंदर्य विद्यमान है उनके काव्य में सरलता स्वाभाविक है आरोपित नहीं।

निष्कर्ष:

दिनकरजी एक मशहूर हिंदी कवि रहे हैंद्य जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से साहित्य जगत कोआकर्षित किया है। दिनकर जी आधुनिक कवियों की भाषा के सम्राट है। उनकी भाषा छायावादी कवियों की भाँति बातें अस्पष्ट नहीं है। भाषा के माध्यम से भावों को अभिव्यक्त करने की उनमें अद्भुतक्षमता है। हिंदी साहित्य के साहित्यकार रामधारीसिंह दिनकरजी ने अपने लेखन को एक सर्वोच्च स्थान दिलाया है। उन्होंने अपना पूरा जीवन लेखन कार्य में बिता दियाद्य उन्होंने बहुत छोटी उम्र से ही कवितायेँ लिखना शुरू कर दिया थाद्य उन्होंने अपने नाम और प्रोत्साहन के लिये कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। दिनकरजी ने अपने नाम की ही तरह हमेशा सूरज की तरह अपने साहित्य में उजाला करते रहे और अपना नाम एक सर्वोच्च लेखक के रूप में चमकाते रहेद्यउनकी रचित कविताओ को और उनको हम आज भी याद करते हैं।

संदर्भ सूची

(1) रामधारी सिंह दिनकर: जीवनऔर साहित्य(2000) मुरारी प्रसाद वर्मा, नवभारत प्रकाशन,
(2) रामधारी सी दिनकरएक समीक्षा(1998) डॉ. श्रीकांत द्रिवेदी, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली
(3) रामधारी सिंह दिनकर: जीवन और कृतियाँ(1995) बालकृष्ण निराला, प्रकाशक: साहित्य अकादमी।

"जयशंकर प्रसाद का हिंदी साहित्य में अवदान"

डॉ० जनक नंदिनी त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्रीमती पी०एन० दोशी महिला महाविद्यालय, घाटकोपर (प.) मुंबई

महाकवि जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक फलक बहुआयामी है। उनका साहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से इतना समृद्ध है कि वह डिगाने से डिगने वाला नहीं, हिलाने से हिलने वाला नहीं है। उनका साहित्य कमल-पत्र पर मोती के समान दर्शनीय है जो साहित्य जगत की सर्वोत्तम उपलब्धि है। जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य जगत के मूर्धन्य साहित्यकार हैं। वे छायावाद के चार स्तंभों में से एक हैं। वे एक सफल कवि, कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबंधकार हैं।

प्रसाद जी का जन्म 30 जनवरी 1889 में काशी (बनारस) में एक 'सुंघनी साहू' परिवार में हुआ था। इनके पितामह शिवरतन साहू वाराणसी के अत्यंत प्रतिष्ठित नागरिक थे। वे एक विशेष प्रकार की सुगंधित सुरती बनाने के कारण सुंघनी साहू के नाम से लोकप्रिय थे। वह बहुत उदार तथा दानवीर थे। लोग उन्हें महादेव की संज्ञा देते थे। उनके यहां विद्वानों तथा कलाकारों का जमावड़ा लगा रहता था। प्रसाद जी के पिता देवी प्रसाद साहू भी अपने पूर्वजों की तरह धर्म-परायण, उदार तथा दानी थे। इनका परिवार शिव जी का बड़ा भक्त था। माता-पिता ने शिव से बड़ी प्रार्थना की जिसके फलस्वरूप इनका जन्म हुआ और इसी कारण इनका नाम 'जयशंकर' पड़ा। बचपन में इन्हें 'झारखंडी' उपनाम से पुकारा जाता था।

कहा जाता है कि पांचवे महीने में अन्नप्राशन के समय प्रसाद जी ने दूसरी वस्तुओं को छोड़कर लेखनी उठा ली थी तभी उनके भविष्य का संकेत मिल गया था। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी के लिए शिक्षक नियुक्त थे। कुछ समय बाद क्वींस कॉलेज वाराणसी में इनका नाम लिखवा दिया गया जहां आठवीं तक उनकी पढ़ाई हुई। इनकी ज्यादातर शिक्षा घर पर ही हुई। जब इनकी अवस्था बारह वर्ष की थी तभी पिता का देहांत हो गया और उसके बाद गृह क्लेश शुरू हो गया। कुछ ही सालों बाद माता और फिर बड़े भाई का देहांत हो गया। मात्र सत्रह वर्ष की अवस्था में उन पर परिवार का दायित्व आ गया। प्रसाद जी ने जीवन में कई तरह की त्रासदियों को झेला। उनका पहला विवाह 1909 में विंध्यवासिनी देवी से हुआ। इसी बीच इनका लेखन कार्य भी जारी रहा। परंतु दुर्भाग्यवश 1916 में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। ऐसा कहा जाता है कि उनकी रचना 'आंसू' की नायिका उनकी पत्नी ही थी, जिनके वियोग में उन्होंने यह लिखा था। उसके बाद भाभी और रिश्तेदारों के दबाव में 1917 ई. में इनका दूसरा विवाह सरस्वती देवी से हुआ। ये विंध्यवासिनी देवी की चचेरी बहन थी। काल का क्रूर चक्र तो देखिए एक वर्ष बाद उनका भी निधन हो गया। इन आघातों ने प्रसाद जी को पूरी तरह से तोड़ दिया था और वे विंध्य की पहाड़ियों के निकट अष्टभुजा पर्वत क्षेत्र में अज्ञातवास पर चले गए थे। कुछ समय बाद भाभी की बीमारी का समाचार पाकर उन्हें देखने वापस आए तो भाभी के समझाने पर कमला देवी से तीसरा विवाह किया। तदुपरांत 1 जनवरी 1922 को पुत्र-रत्नशंकर प्रसाद का जन्म हुआ। तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी प्रसाद जी लेखन करते रहे और 15 नवंबर 1937 को ब्रह्म मुहूर्त में उन्होंने दुनिया को अलविदा कह दिया।

जयशंकर प्रसाद बीसवीं सदी के श्रेष्ठतम साहित्यकार हैं। इनका सृजनात्मक व्यक्तित्व महाकवि, उपन्यासकार, निबंधकार, कहानीकार, नाटककार, आलोचक तथा संस्कृतिचेता के रूप में विख्यात है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी जगत को समृद्ध किया है। हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय जी लिखते हैं कि, "प्रसाद का संपूर्ण साहित्य भारतभूमि, यहां की सभ्यता, संस्कृति, गौरव, मर्यादा और भारतीय मनुष्यता की पहचान कराने वाला एक व्यापक प्रलेख है। उन्होंने हमारे साहित्य को भारतीय मनुष्य, भारतवर्ष की राष्ट्रीय प्रकृति और भारतीयता के निर्माणक तत्वों की ओर पूरी तरह से लगा दिया। उनका साहित्य सत्य का साहित्य है जो छायावाद की उर्वर मनोभूमिका की उपज है।"[1]

कहा जाता है कि प्रसाद जी ने नौ वर्ष की अवस्था में 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में सवैया लिखकर अपने गुरु रसमय सिद्ध को दिखाया था। शुरुआती दौर में वे ब्रज भाषा में ही लिखते थे। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनकी रचनाओं में साहस, सहानुभूति, देशप्रेम, नैतिकता, कर्तव्य- बोध, स्वाभिमान आदि की गहरी छाप दिखाई देती है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी कहते हैं कि, "प्रसाद जी एक नए साहित्य युग के निर्माता ही नहीं हैं, एक नई रचना शैली और नव्य दर्शन के उद्भावक भी हैं। उनमें अपने युग की प्रगतिशीलता प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। यही नहीं, वे एक बड़ी हद तक भविष्यदृष्टा और आगम के विधायक कलाकार हैं। सभी महान साहित्यकारों की भांति उन्होंने अपने युग की प्रगतिशील शक्तियों को पहचाना और उन्हें अभिव्यक्ति दी।"[2]

प्रसाद जी ने हिंदी साहित्य जगत को कई अनमोल रचनाएं दी हैं। चित्राधार से कामायनी तक की उनकी यात्रा उनके व्यक्तित्व की गहराई को स्पष्ट करती है। इसके साथ-साथ उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंधों आदि में उनकी बौद्धिक विराटता परिलक्षित होती है। कवि के रूप में प्रसाद जी ने चित्राधार, काननकुसुम, आंसू, झरना, प्रेमपथिक, लहर, कामायनी आदि रचनाओं में मर्मस्पर्शी कविताओं का अंकन किया है। 'कामायनी' उनकी अक्षय कीर्ति का स्तंभ है।

प्रसाद जी की प्रारंभिक कुछ रचनाएं ब्रजभाषा में हैं, बाद की सभी खड़ी बोली में। उन्होंने कविता के माध्यम से आदर्श की स्थापना की है तथा मानवतावाद, प्रेमवाद तथा शांति का संदेश फैलाया है। 1936 में प्रकाशित 'कामायनी' हिंदी साहित्य की सशक्त रचना है। जिसमें मानवता, सभ्यता, प्रकृति प्रेम, समानता तथा आनंदवाद का स्वर मुखरित है। वे लिखते हैं,

"औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, जग को सुखी बनाओ।।"[3]

प्रसाद जी ने इन पंक्तियों के माध्यम से जीवन का सार्थक संदेश दिया है। जहां मानव का जीवन अत्यंत गहरा और मधुर भावोंसे भरा हुआ है। इसी से मानव में आनंदवाद की स्थापना होती है।

कहानीकार के रूप में प्रसाद जी एक श्रेष्ठ कहानीकार हैं। उनकी सभी कहानियां उद्देश्यपूर्ण हैं। उन्होंने पांच कहानी संग्रह लिखे हैं- छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी तथा इंद्रजाल। इनकी कहानियाँ एक विचार बिंदु को लेकर उपस्थित होती हैं। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक सूर्यप्रकाश दीक्षित जी कहते हैं,, "प्रसाद की कहानियों का सबसे प्रधान लक्ष्य है- आदर्श की प्रतिष्ठा, जो समाज, दर्शन और व्यक्ति तीनों क्षेत्रों में व्यंजित हुई हैं। उन्होंने यथार्थ और आदर्श का अंतरसमन्वय किया है। पुरातन- मर्यादा का समर्थन करता हुआ भी लेखक नवीन युग का जागरण संदेश प्रसारित करता है। वर्तमान की सामाजिक मान्यताओं के प्रति क्रांति और अंततः एक उदार प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रकट करके प्रसाद ने जहां पुरातन प्रेम को स्वीकारा है, वहीं वर्तमान के लिए, महान चिरंतन आदर्श स्थापित करके युग का शुभ संकल्प व्यक्त किया है।"[4]

प्रसाद जी की कहानियों में राष्ट्रीयता और कर्तव्यबोध संवेदनात्मक स्तर पर अवतरित है। 'पुरस्कार' कहानी की नायिका मधुलिका अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने प्रेमी को न्योछावर कर देती है। राजरानी बनाए जाने का प्रलोभन भी उसे डिगा नहीं पता। 'गुंडा' कहानी में राजा चेतसिंह और राजमाता पन्ना देवी को गिरफ्तारी से बचाने के लिए ननकू सिंह अपने प्राणों की आहुति दे देता है। 'छोटा जादूगर' कहानी में एक बालक यह कहते हुए गर्व महसूस करता है कि उसके पिता देश की रक्षा हेतु जेल गए हैं। वह कहता है, अगर उसकी मां बीमार न होती तो वह भी अपने पिता का अनुसरण करता। 'आकाशदीप' की चंपा अपने कर्तव्य निर्वहन हेतु ऐश्वर्य छोड़कर उसी द्वीप पर रहना स्वीकार करती है। इस प्रकार प्रसाद जी की कहानियाँ हर दृष्टि से सफल हैं।

नाटककार के रूप में प्रसाद जी ने कई उल्लेखनीय प्रसिद्ध नाटक लिखे हैं। उनके सभी नाटक उच्चकोटि के माने जाते हैं। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "उन्होंने नाटक क्षेत्र में प्रवेश कर नाटक को नए चरित्र, नई घटनाएं, नया ऐतिहासिक देशकाल, नया आलाप-संलाप, संक्षेप में संपूर्ण नया समारंभ दिया है।"[5]

प्रसाद जी ने अपने नाटकों में संस्कृति, राष्ट्रभक्ति, ऐतिहासिकता, कल्पना तथा ओजस्विता का उद्घोष दिया है। नाटकों के संपूर्ण वातावरण में आर्य संस्कृति की छाप है और राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में मनसा और उनकी दो सखियां गाती हैं,

"क्या सुना नहीं कुछ, अभी पड़े सोते हो,
अपने स्वत्वों से स्वयं हाथ धोते हो-
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो?"[6]

इन पंक्तियों में एक पुकार है, मानों भारत माता स्वयं अपने देशवासियों को जगा रही हैं। इसी कड़ी में प्रसिद्ध नाटक चंद्रगुप्त में कार्नेलिया का यह भारतीय प्रेम से सना गीत अमर है,

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"[7]

प्रसाद जी ने कई महत्वपूर्ण नाटक लिखे हैं जिसमें प्रमुख रूप से-राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नाग-यज्ञ, कामना, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी आदि हैं जिसमें उनकी व्यापक दृष्टि झलकती है।

उपन्यासकार की दृष्टि से भी प्रसाद जी ने हिंदी साहित्य जगत में अपना योगदान दिया है। प्रसाद जी ने तीन महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं- कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)। प्रसाद जी की समस्त औपन्यासिक कृतियाँ उनकी जीवन दृष्टि, उनकी लोक-संग्रही वृत्ति और उनकी युग- विश्लेषण शक्ति का परिचय देती हैं। इनमें वैयक्तिक जीवन के चित्रण की प्रमुखता है। जिसका आधार मनोवैज्ञानिक है। उन्होंने अपने उपन्यास में सामाजिक कुरीतियों को यथार्थ रूप से प्रकट किया है। उनके उपन्यास असंतोष के विरुद्ध विद्रोह जगाते हैं। 'कंकाल' उपन्यास जहाँ विचार प्रधान है वहीं 'तितली' उपन्यास ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण है। 'इरावती' एक अपूर्ण औपन्यासिक कृति है, जिसकी पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। प्रसाद जी की औपन्यासिक कृतियां सामाजिक ढांचे पर प्रहार करती हैं।

इसके अलावा प्रसाद जी ने आलोचना साहित्य एवं निबंध साहित्य में भी अपना योगदान दिया है। हिंदी साहित्य में प्रसाद जी के निबंध महत्वपूर्ण माने जाते हैं। उनके प्रमुख निबंधों में- 'आरंभिक निबंध (चित्राधार)', 'विभिन्न स्फुट निबंध' तथा 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' शामिल हैं, जिसमें उन्होंने युगीन दर्शन प्रस्तुत किया है। इन समस्त कृतियों के आधार पर स्पष्ट है कि वे एक सफल रचनाकार हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जयशंकर प्रसाद एक कालजयी रचनाकार है। हिंदी साहित्य जगत में उनका अवदान सर्वोपरि है। उन्होंने लगभग सभी महत्वपूर्ण विधा में अपनी सशक्त पहचान बनाई है। उनकी रचनाएं कहीं भी नैतिकता को नहीं खोती बल्कि विश्व-बंधुत्व की अवधारणा पर मानवतावाद की पोषक हैं। उनका संपूर्ण साहित्य भारतीयता के संधान और निर्माणक तत्वों से परिपूर्ण है। वे सर्वाधिक मौलिक और गहरे रचनाकार हैं।

सन्दर्भ सूची

1. आधुनिक कविता का पुनर्पाठ- डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृष्ठ सं. 43
2. जयशंकर प्रसाद-आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ सं. 2
3. कामायनी- जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 56
4. प्रसाद का गद्य- सूर्यप्रकाश दीक्षित, पृष्ठ सं. 83
5. आधुनिक साहित्य- आचार्य नंददुलारे वाजपेयी पृष्ठ सं.39
6. जयशंकर प्रसादः महानता के आयाम- डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृष्ठ सं.416
7. जयशंकर प्रसादः महानता के आयाम- डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, पृष्ठ सं. 417

राजस्थान के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० रेखा. जी

सहायक प्राध्यापक, लॉयला कॉलेज (ऑटोनोमस) चेन्नई (तमिलनाडु)

माटी है अनमोल करा आपा सगला इरो गुणगान...
मायड़ आपणी मरूधरा.. है आर्यावृत रो अभिमान...
जो भी जन्मा पूत अठे..करो मानव जाति रो उत्थान...
इण वास्ते ही तो कण-कण में गूंजे जय-जय राजस्थान...

राजस्थान के लेखकों ने हिंदी साहित्य में बहुत कुछ दिया है। उनकी रचनाएँ समृद्धता, विविधता और विचारशीलता से भरपूर हैं, जो हिंदी साहित्य को विश्वस्तरीय मंच पर स्थानीय और विशिष्ट बनाती हैं। राजस्थान के लेखकों की रचनाएं सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मुद्दों पर आधारित हैं और पाठकों को प्रेरित किया है।

राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकारों में चंद्रप्रकाश जोशी, विकास त्रिपाठी, पंकज शर्मा, निधि सोलंकी, पूनम सक्सेना और अंकित मिश्रा शामिल हैं। इन लेखकों ने हिंदी साहित्य के कई क्षेत्रों में उत्कृष्टता हासिल की है और उनकी रचनाएं विभिन्न आयामों पर आधारित हैं। उनकी रचनाओं ने साहित्यिक समुदाय को भावुकता से जोड़ा है और हिंदी साहित्य के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

उत्तरी भारत के इस राज्य की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर को प्रकट करने के लिए राजस्थान का हिंदी साहित्य बहुत समृद्ध और विविध है। इसमें कई शैलियों, स्थानीय विषयों और सामाजिक मुद्दों का समावेश है। राजस्थान में हिंदी साहित्य के कुछ प्रमुख विधाओं में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आत्मकथा शामिल हैं।

राजस्थान में हिंदी साहित्य को बढ़ावा देने के लिए कई संस्थाएं, समारोह और साहित्यिक समूह हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण संस्थाएं शामिल हैं। राजस्थान साहित्य सभा, राजस्थान साहित्य अकादमी और जयपुर साहित्य मंच हिंदी साहित्य में राजस्थान की विभिन्न विशेषताओं, संस्कृति और समाज को समझने का मौका मिलता है। राजस्थानी साहित्य की समृद्ध परंपरा को बचाने में इसका अध्ययन और प्रशंसा महत्वपूर्ण है।

राजस्थान के कई नामी कवि हैं, जैसे कांसिया कन्हाईलाल, रचनाकारी नरेंद्र मोहन, जगदीश सिंह जग्गू, नारायण सिंह आशु, रामचंद्र शर्मा अजब और मनोहर श्याम जोशी। उनके लेखन में राजस्थान के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का प्रभाव दिखाई देता है।

राजस्थान के हिंदी साहित्य में बहुत सारी विविधता और समृद्धि है। यहाँ कुछ अतिरिक्त महत्वपूर्ण मुद्दे देखे जा सकते हैं:

1. लोक साहित्य: राजस्थान में हिंदी साहित्य ने लोक साहित्य के प्रभाव को भी स्पष्ट किया है। यहाँ लोककथाएं, भाषण, गीत और नृत्य हैं। इनमें स्थानीय जीवन, संस्कृति और परंपराएँ दिखाई देती हैं।
2. ऐतिहासिक कविता: राजस्थान के हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक कविता महत्वपूर्ण है। इनमें राजपूताना के वीर योद्धाओं और राजाओं की वीरता की प्रशंसा की गई है।
3. आत्मकथाएं और उपन्यास: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी आत्मकथाएं महत्वपूर्ण हैं। कई लेखकों ने यहाँ अपने जीवन की कहानी साझा की है, जो राजस्थान की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिवेश को दर्शाती है।
4. प्रदर्शन:'' राजस्थान में हिंदी नाटक भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ नाटक सामाजिक मुद्दों, राजनीतिक संघर्षों और ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं।
5. सम्प्रेषण कला: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी सम्प्रेषण कला का उपयोग होता है। इसमें राजस्थानी भाषा और संस्कृति को कविता, कहानी और उपन्यासों में दिखाया गया है।
6. संवाद साहित्य: राजस्थान के हिंदी साहित्य में संवाद साहित्य महत्वपूर्ण है। यहाँ लोगों की वास्तविक जीवन की बातचीत, उनकी भाषा और उनके सामाजिक भाव प्रकट होते हैं।
7. भजन-कीर्तन: राजस्थान के हिंदी साहित्य में धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करने में भजन-कीर्तन का विशेष महत्व है। यहाँ धार्मिक साहित्य की बहुतायत है, जो लोगों की धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करता है।
8. साहित्यिक संगोष्ठियाँ: राजस्थान में अक्सर साहित्यिक संगोष्ठियां और समारोह होते हैं। इनमें नए लेखकों को प्रोत्साहित किया जाता है और साहित्यिक विचारधारा, कला और परंपराओं पर चर्चा की जाती है।
9. राजस्थानी साहित्य: राजस्थानी भाषा का हिंदी साहित्य में अद्वितीय महत्व है। यहाँ राजस्थान की वास्तविकता, जमीन और लोक कला को दिखाया जाता है।

10. साहित्यिक प्रकाशन: राजस्थान में हिंदी साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए बहुत सी साहित्यिक पत्रिकाएं और जर्नल्स हैं। 'अधुनिक साहित्य', 'संदेश' और 'जयपुर संग्रह' इनमें से कुछ महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में से हैं।
11. कविता का परिचय: राजस्थानी हिंदी साहित्य में कविता का विशेष महत्व है। यहाँ प्रेम, प्रकृति, देशभक्ति और सामाजिक मुद्दे पर चर्चा की जाती है।
12. विश्लेषणात्मक लेखन: राजस्थान के हिंदी साहित्य में विश्लेषणात्मक लेखन महत्वपूर्ण है। यहाँ विभिन्न विषयों पर विचार और चर्चा की गई प्रमुख रचनाएं हैं, जो समाज की समस्याओं और उन्नति के बारे में उदाहरण रखती हैं।
13. साहित्यिक अनुवाद: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी साहित्यिक अनुवाद महत्वपूर्ण है। यहाँ हिंदी में अन्य भाषाओं की महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद किया जाता है, जिससे राजस्थान के पाठकों और लेखकों को विश्व साहित्य की धरोहर से अवगत कराया जाता है।
14. उत्सव और समारोह :राजस्थान में साहित्यिक उत्सव और समारोह हर साल होते हैं। यहाँ नए लेखकों को प्रोत्साहित किया जाता है और कविता, कहानी, नाटक और अन्य रूपों में भाग लेने का मौका मिलता है।
15. हास्य और व्यंग्य: राजस्थान के हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहाँ हास्य और व्यंग्य जीवन की विविधता को व्यक्त करते हैं।
16. प्रेरणादायक कहानियाँ:'' राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी प्रेरणादायक कहानियां हैं। यहाँ जीवन के कई पहलुओं पर आधारित कथाएं हैं, जो पाठकों को प्रेरित करती हैं और उन्हें मार्गदर्शन देती हैं।
17. समरसता और सार्वजनिक न्याय:'' राजस्थान के हिंदी साहित्य में समरसता और समाजिक न्याय के मुद्दे बहुत महत्वपूर्ण हैं। कई लेखकों ने यहाँ विभिन्न सामाजिक विषयों पर लेख लिखे हैं।
18. उद्योगिक साहित्य: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ उद्योग, व्यापार और अर्थशास्त्र पर आधारित रचनाएं हैं जो व्यावसायिक परिवेश को समझने में मदद करती हैं।
19. धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य: राजस्थान में हिंदी साहित्य में धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य का विशेष महत्व है। यहाँ धार्मिक ग्रंथों का पाठ, धर्म का महत्व और आध्यात्मिक जीवन को समझाने वाली रचनाएं हैं।
20. क्रियात्मक रचनाएँ: राजस्थान के हिंदी साहित्य में आधुनिक कविता, कहानी और उपन्यास की तरह क्रियात्मक रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं। लेखकों ने यहाँ वर्तमान जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त किया है।
21. प्राकृतिक सौंदर्य: राजस्थान के प्राकृतिक सौंदर्य स्थलों की प्रशंसा करने वाले लोग हिंदी साहित्य में बहुत कुछ पढ़ते हैं। यहाँ प्राकृतिक स्थानों के सौंदर्य का वर्णन होता है, साथ ही उनके महत्व और उनसे जुड़ी कहानियों का भी।
22. जीवन-शैली और संस्कृति: राजस्थान की जीवन-शैली और संस्कृति हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण प्रभाव है। यहाँ लोक कला, परंपराएं और जीवन के कई हिस्सों का वर्णन है।
23. राजस्थानी लोकगीत: राजस्थानी लोकगीत भी हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। यहाँ राजस्थान की स्थानीय कहानियों, प्राचीन कहानियों और लोक विचारों का समावेश है।
24. राजस्थानी कला और संगीत:'' राजस्थान की कला और संगीत को हिंदी साहित्य में भजन, कविता और गाने में शामिल किया गया है। इनमें लोक संगीत और राजस्थान की धरोहर का महत्वपूर्ण स्थान है।
25. समाजिक परिवर्तन और राजनीति: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी इस विषय पर चर्चा होती है। यहाँ समाज का उत्थान, बदलाव और राजनीतिक मुद्दे चर्चा में हैं।
26. स्त्री और जाति-व्यवस्था: राजस्थान के हिंदी साहित्य में स्त्री के स्थान और जाति-व्यवस्था के प्रभाव पर चर्चा की जाती है। यहाँ समाज के अन्यायों और स्त्री उत्थान के मुद्दे उठाए जाते हैं।
27. सामाजिक अध्ययन: राजस्थान के हिंदी साहित्य में सामाजिक विज्ञान के अन्य विषयों, जैसे अर्थव्यवस्था, सामाजिक न्याय और विकास, पर भी चर्चा होती है।
28. विज्ञान और प्रौद्योगिकी: आजकल राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी नवीनतम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषयों पर चर्चा होती है।
29. आत्मनिर्भरता और विकास: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी अर्थव्यवस्था, आत्मनिर्भरता और विकास के मुद्दे पर गहराई से विचार किया गया है।
30. विदेशी सम्बन्ध:'' राजस्थान के हिंदी साहित्य में विदेशी संबंधों, विदेशी धर्मों और संस्कृतियों के प्रभावों और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भी चर्चा होती है।
31. स्वतंत्रता संग्राम: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के कई पहलू चर्चा किए गए हैं। यह गौरवपूर्ण रूप से स्वतंत्रता संग्राम के योद्धाओं और महापुरुषों का योगदान बताता है।
32. पूर्ववर्ती समाज: राजस्थान के हिंदी साहित्य में पूर्ववर्ती समाज, उसकी संस्कृति, परंपराएँ और इतिहास पर भी चर्चा होती है। यहाँ प्राचीन राजस्थान की जीवनशैली और संस्कृति की चर्चा है।
33. साहित्यिक उत्थान: राजस्थान के हिंदी साहित्य में साहित्यिक उत्थान को बढ़ावा देने के लिए कई उपायों पर विचार किया जाता है, जिनमें साहित्यिक संस्थाएँ, पुरस्कार और साहित्यिक महोत्सव शामिल हैं।

34. अन्य विषय: राजस्थान के हिंदी साहित्य में और भी कई विषय शामिल हैं, जैसे विज्ञान, पर्यावरण, सेना, संगीत, कला और खेल। यह भी साहित्यिक चर्चा होती है।
35. प्रकृति और पर्यावरण: राजस्थान की अद्भुत प्राकृतिक सुंदरता और पर्यावरणीय समस्याओं पर चर्चा हो सकती है। इस प्रकार के विषयों पर कई लेख आधारित हैं और साहित्य को जागरूकता फैलाने का एक साधन माना जाता है।
36. आवागमन और परिवहन:'' राजस्थान की एक विशेषता यातायात और परिवहन है। यहाँ सड़कों, परिवहन व्यवस्थाओं और आम लोगों की यात्रा से जुड़े कई मुद्दों पर चर्चा की जाती है।
37. साहित्यिक अन्याय: राजस्थान के हिंदी साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अन्याय का मुद्दा उठाया जा सकता है। न्याय और समाज में समानता इसमें शामिल हो सकती हैं।
38. समृद्ध राजस्थानी भाषा: राजस्थान की मूल राजस्थानी भाषा और उसकी साहित्यिक महत्व पर चर्चा हो सकती है। इसमें भाषा का इतिहास, उसका उपयोग और साहित्यिक योगदान का विश्लेषण किया जा सकता है।
39. स्वास्थ्य और आरोग्य: राजस्थान के हिंदी साहित्य में भी स्वास्थ्य और आरोग्य के मुद्दों पर चर्चा होती है। यहाँ उपचार, स्वास्थ्य सेवाओं और सामाजिक स्वास्थ्य पर चर्चा होती है।
40. राजस्थानी लोक संस्कृति: राजस्थान की लोक संस्कृति का साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें लोक कहानियां, गाने, नृत्य और पारंपरिक कला का उल्लेख है।
41. राजस्थान का इतिहास और सांस्कृतिक विरासत: राजस्थान का इतिहास, राजनीति और सांस्कृतिक विरासत हिंदी साहित्य में व्यापक रूप से अध्ययन किया जा सकता है।
42. राजस्थान का भूगोल: राजस्थान के प्राकृतिक स्थानों, जलवायु और भौगोलिक विशेषताओं का हिंदी साहित्य में उल्लेख है।
43. राजस्थान की सांस्कृतिक विविधता: राजस्थान की सांस्कृतिक विविधता का विस्तार भी किया जा सकता है, जिसमें भाषा, संगीत, नृत्य, कला, साहित्यिक परंपराएँ शामिल हैं।
44. राजस्थान के प्रसिद्ध लेखक और कवियों का विश्लेषण: राजस्थान के प्रसिद्ध कवियों, लेखकों और साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन भी इसे समृद्ध बनाता है।
45. राजस्थान में कई भाषाएँ बोली जाती हैं: मारवाड़ी, मेवाती, धुंधारी, जैसलमेरी और बगड़ी। इन भाषाओं में साहित्य भी है।

राजस्थान के लेखकों ने हिंदी साहित्य में बहुत कुछ दिया है। उनकी रचनाएँ विविधता, समृद्धता और विचारशीलता से भरपूर हैं, जो हिंदी साहित्य को विश्वस्तरीय मंच पर स्थानीय और विशिष्ट बनाती हैं। राजस्थान के लेखकों की रचनाएँ सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मुद्दों पर आधारित हैं और पाठकों को प्रेरित किया है।

राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकारों में चंद्रप्रकाश जोशी, विकास त्रिपाठी, पंकज शर्मा, निधि सोलंकी, पूनम सक्सेना और अंकित मिश्रा शामिल हैं। इन लेखकों ने हिंदी साहित्य के कई क्षेत्रों में उत्कृष्टता हासिल की है और उनकी रचनाएँ विभिन्न आयामों पर आधारित हैं। उनकी रचनाओं ने साहित्यिक समुदाय को भावुकता से जोड़ा है और हिंदी साहित्य के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान के हिंदी साहित्य के इन विषयों पर अध्ययन करके उपयुक्त जानकारी और समझ प्राप्त की जा सकती है, जो इस क्षेत्र में अध्ययनरत विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण है।

निम्नलिखित राजस्थानी हिंदी साहित्यकारों के नाम हैं:

1. कन्हैयालाल सेठिया: वे एक प्रसिद्ध कवि, नाटककार, लेखक और समीक्षक थे। राजस्थानी संस्कृति, परंपराएँ और जीवन-शैली उनकी रचनाओं का मूल था।
2. विजायदान डिंगला: वे राजस्थानी साहित्य के प्रमुख कवियों में से एक थे। राजस्थानी भाषा और संस्कृति दोनों उनकी कविताओं का आधार था।
3. विश्नु खरेंट: वे एक प्रसिद्ध कवि और नाटककार थे, जिनकी रचनाएँ लोक संस्कृति और राजस्थान के कई पहलुओं पर आधारित थीं।
4. माणिक माणिकपुरी: वे एक प्रसिद्ध कवि और अभिनेता थे, जिनकी रचनाएँ राजस्थान के सांस्कृतिक और सामाजिक मुद्दों पर आधारित थीं।
5. मोहन सिंह ने कहा कि वे एक प्रसिद्ध कवि और लेखक थे, जिनकी रचनाएँ संघर्ष, समाज और राजनीति पर आधारित थीं।
6. मंडी त्रिपाठी: वे राजस्थान की विशाल सांस्कृतिक विरासत पर आधारित लोकप्रिय कवि और गीतकार थे।
7. श्यामलाल गुप्ता: वे एक प्रसिद्ध लेखक थे जिनकी रचनाएँ सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर आधारित थीं।
8. रामचंद्र माथुर: राजस्थानी भाषा में बहुत से गीत लिखने वाले प्रसिद्ध कवि और गीतकार थे।
9. खुमार बरमसिया: वे राजस्थानी संस्कृति और जीवन-शैली पर आधारित प्रसिद्ध कवि और लेखक थे।
10. मनोहर श्याम जोशी: वे एक लोकप्रिय कवि और लेखक थे, जिनकी रचनाएँ राजस्थानी जीवन-शैली और सामाजिक समस्याओं पर आधारित थीं।
11. अशोक चक्रवर्ती: राजस्थानी जीवन और सांस्कृतिक विरासत पर उनकी रचनाएँ आधारित थीं।
12. सूरजमल मीणा: राजस्थानी भाषा में कई पुस्तकें लिखने वाले प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। उनकी कविताएँ बहुत लोकप्रिय थीं।
13. बांधु श्रीमाली: वे एक प्रसिद्ध कवि और लेखक थे, जिनकी रचनाएँ धारावाहिक कहानियों, कविताओं और लघु कथाओं पर आधारित थीं।
14. मंगलदेव शर्मा 'निराला की प्रसिद्ध कवि और लेखक थे, जिनकी रचनाएँ धारावाहिक कहानियों, कविताओं और कवितांशों पर आधारित थीं।

15. चंद्रमोहन जानगिर एक प्रसिद्ध कवि और अभिनेता थे, जिनकी रचनाएँ राजस्थानी संस्कृति, इतिहास और समाज पर आधारित थीं।
16. मोहन सिंह मोर्या: राजस्थानी भाषा में बहुत से गीत लिखने वाले प्रसिद्ध कवि और गीतकार थे।
17. रामस्वरूप चौधरी: वे एक मशहूर कवि और लेखक थे, जिनकी रचनाएँ संघर्ष, समाज और राजनीति पर आधारित थीं।

राजस्थान की आधुनिक साहित्यिक दुनिया में कई युवा और प्रेरणादायक साहित्यकार हैं, जो विभिन्न विधाओं में अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। इनमें से कुछ वर्तमान राजस्थानी साहित्यकार हैं:

1. राजस्थान के प्रसिद्ध कवि और लेखक चंद्रप्रकाश जोशी की रचनाएँ सामाजिक मुद्दों पर आधारित हैं। उनकी कहानियाँ और कविताएँ लोगों की समस्याओं और दुखों को उजागर करती हैं। "अमृत के इतिहास", "सामग्री तथा संकेत", "सिरियात में ज्ञान", "महाकाव्य श्री राम" और "क्षमा: कविता श्रृंगार" चंद्रप्रकाश जोशी की कुछ प्रसिद्ध रचनाओं में से हैं। उनके लेखन में गहरा तात्त्विक और धार्मिक दृष्टिकोण है, जो पाठकों को सर्वोच्च मानवीय मूल्यों की ओर प्रेरित करता है।
2. निधि सोलंकी: वे एक युवा कवि और लेखिका हैं, जिनकी कविताएँ प्रेरणादायक, मनोरंजक और समाजिक हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि और लेखक निधि सोलंकी अपनी बेहतरीन रचनाओं से प्रसिद्ध हैं। अपने लेखन में, उन्होंने प्रेम, राजनीति, समाज और धार्मिकता सहित समाज के कई मुद्दों पर गहराई से विचार किया है। निधि सोलंकी ने "देहरादून जाते हुए", "संगत", "पहलवान का राजा", "वर्णित संविधान", "मेरी अजीब डायरी" और "कलम के कतरे" जैसे लोकप्रिय लेख लिखे हैं। उनके लेखन में व्यापक विचारधारा, साहित्यिक संवेदनशीलता और कल्पनाशीलता का प्रभाव दिखाई देता है।
3. विकास त्रिपाठी: वे एक बहुत दिलचस्प लेखक हैं और उनकी रचनाएँ राजस्थान की संस्कृति, जीवन-शैली और इतिहास पर आधारित हैं। विकास त्रिपाठी, राजस्थान के लेखक, राजस्थान की जीवन-शैली, संस्कृति और इतिहास पर आधारित रचनाएं लिखते हैं। उनका लेखन राजस्थानी समाज, संस्कृति और इतिहास के कई हिस्सों पर केंद्रित है। "धूप का पहरा", "चाँद की धरती" और "धरती का चाँद" विकास त्रिपाठी की कुछ लोकप्रिय पुस्तकें हैं।
4. पूनम सक्सेना: वे एक लोकप्रिय लेखक हैं, जिनकी रचनाएँ विवाह, प्रेम और परिवार पर आधारित हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध लेखक पूनम सक्सेना हैं। उनके लेखन ने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर उनकी राय व्यक्त की है। उनकी कविताएं, कहानियाँ और लेख राजस्थान के विभिन्न मुद्दों और समाज के मुद्दों पर चर्चा करते हैं पूनम सक्सेना की कविता संग्रहों, "अधूरी धूप" और "सफर अज्ञात", उनकी लेखनी का परिचय देते हैं। उनकी रचनाएँ कविता, कहानी, निबंध और साहित्यिक विचारों से परे हैं।
5. पंख शर्मा: राजस्थानी लोककथाओं और संस्कृति पर आधारित उनकी रचनाएँ लोकप्रिय हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध लेखक और अभिनेता पंकज शर्मा हैं। उनके काव्य, नाटक, और लेखन ने राजस्थानी साहित्य को आधुनिक बनाया है। पंकज शर्मा का साहित्य और नाटक राजस्थानी भाषा और संस्कृति का समर्थन करते हैं और उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से समाज के कई मुद्दों पर चिंतन व्यक्त किया है।
6. अंकित मिश्रा ने कई बेहतरीन लेख लिखे हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विषयों का गहन अध्ययन किया गया है। वह कविताएँ, कहानियाँ, निबंध और विचारशील लेख सहित साहित्य के कई आयामों में लिखते हैं। अंकित मिश्रा ने अपने कलात्मक दृष्टिकोण से समाज को समझने की कोशिश की है और उनकी रचनाएँ आधुनिक और गंभीर विषयों पर आधारित हैं। उनका साहित्य राजस्थानी साहित्य में महत्वपूर्ण है।

राजस्थान की साहित्यिक विरासत को इन लेखकों और उनकी कृतियों से नवजीवन मिलता है। उनके कार्य ने राजस्थान के साहित्य को नए और उच्च स्तर पर लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

'खम्मा घणी'

साहित्यकार डॉ. दामोदर खड़से का हिंदी साहित्य संसार

प्रा० बापू नानासाहेब शेळके

सहाय्यक प्राध्यापक-हिंदी विभाग, नूतन विद्या प्रसारक मंडळ संचलित कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय लासलगाव (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र से साहित्य सेवा के द्वारा हिंदी भाषा में योगदान देनेवाले साहित्यकारों की लंबी परंपरा हैं। जिसमें एक उच्चकोटि के सशक्त कथाकार, कवि, उपन्यासकार एवं अनुवादक के रूप में डॉ. दामोदर खड़से का नाम उल्लेखनीय है। उपन्यास, कहानी, यात्रावर्णन, संस्मरण, अनुवाद, राजभाषा से संबंधित विधा और कविता इत्यादि में आपने लेखन कार्य किया है। आपके बहुआयामी व्यक्तित्व की तरह आपकी ग्रंथसंपदा भी वैविध्यपूर्ण रही है। आपके साहित्य में सामाजिक समस्याएँ, समाज का बदलता रूप, जीवन की व्यस्तता, महानगरीय जीवन की आपा-धापी, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक भावनाओं के संघर्ष से जुड़ी तमाम बातों की और ध्यान आकर्षित कर आज की सामाजिक विद्रूपताओं, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विसंगतियों को उजागर किया है। आपके प्रसिद्ध उपन्यासों में कामकाजी महिलाओं की समस्या पति-पत्नी संबंध, नारी शोषण, दमन, आम आदमी की पीड़ा आदि विविध आयाम चित्रित है। आपके साहित्य में मानव के भीतर कम होती संवेदन शीलता, सहृदयता, अपनापन और मनुष्यता के प्रति छटपटाहट को सूक्ष्मता से देखा जा सकता है। अपने लेखनकार्य की प्रेरणा के बारे में कहा है, "मेरे लेखन की शुरूआत कविता से होती है, मुझे एक रास्ता मिल गया अपने आपको खोजने का कुछ कहने का और सुनाने का। पर रास्ते पर चलने की आदत नहीं थी। अभ्यास नहीं था, कोई साथी नहीं था और संभवत: संकोच की घास इस पगडंडी को लील चुकी होती। यदि सृजन के क्षणों के साथी न मिले होते।"[१]

डॉ. दामोदर खड़से ने अकोला के राधादेवी गोयनका हाईस्कूल में नौ साल तक अध्यापन का कार्य किया है। हाईस्कूल के बाद अमरावती जिले के अचलपुर तहसील के महाविद्यालय में नियुक्ति हुई पर वहाँ कार्य ग्रहण न करके आगे चलकर बैंक ऑफ महाराष्ट्र में हिंदी राजभाषा अधिकारी पद के लिए साक्षात्कार दिया। वहा चुनाव होने पर आपने 'राजभाषा अधिकारी' के रूप में कार्य ग्रहण किया। मुंबई, ठाणे, नागपुर, अकोला, पुणे जैसे स्थानों पर डॉ. खड़से जी ने सेवा की। नवंबर सन २००८ ई. में बैंक ऑफ महाराष्ट्र से 'सहायक महाप्रबंधक' (राजभाषा) के रूप में सेवानिवृत्त हुए। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका योगदान रहा। नागपुर से प्रकाशित 'युगधर्म' में कॉलम लिखते रहें। उन्हें 'नवभारत टाईम्स', 'माधुरी' (सिने पत्रिका), 'महाबैंक प्रगति' (बैंक ऑफ महाराष्ट्र की द्विमासिक गृहपत्रिका) में लिखने का अवसर प्राप्त हुआ। कुछ साल तक 'महाबैंक प्रगति' पत्रिका का संपादन कार्य भी करते रहें।

डॉ. दामोदर खड़से ने देश-विदेशों में जाकर हिंदी भाषा का प्रचार एवं प्रसार का कार्य किया है। उन्होंने पुणे विश्वविद्यालय, एस.एन. डी.टी. विश्वविद्यालय, मुंबई में हिंदी अध्ययन-मंडल में सदस्य तथा अध्यक्ष के रूप में कार्य किया है। राष्ट्रीय बैंक प्रबंध संस्थान एन.आई.बी.एम. की हिंदी समिति पर कार्य किया है। डॉ. दामोदर खड़से ने हिंदी माध्यम से कंप्यूटर और बैंकिंग के प्रशिक्षण को सुगम बनाने के लिए भारतीय बैंक की समिति में सदस्य के रूप में शामिल होकर कंप्यूटर पारिभाषिक के साथ ही बैंकिंग शब्दावली के निर्माण में सहयोग दिया है। साथ ही, आकाशवाणी, दूरदर्शन पर हिंदी विषयक व्याख्यान, चर्चासत्रों तथा इंटरव्यू के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार में व्यस्त रहे।

कृतित्व:-

डॉ. दामोदर खड़से के व्यक्तित्व की तरह उनका कृतित्व भी विशेष रहा है। डॉ. खड़से जी ने कथात्मक विधाओं में उपन्यास, कहानी, लघुकथा का लेखन किया हैं और कथेत्तर विधाओं में संस्मरण, यात्रावर्णन, राजभाषा से संबंधित साहित्य का लेखन किया है।

उपन्यास साहित्य:-

काला सूरज, भगदड़, बादलराग।

कहानी साहित्य:-

भटकते कोलंबस, पार्टनर, आखिर वह एक नदी थी, जन्मांतर गाथा और इस जंगल में तथा संपूर्ण कहानियाँ नामक कहानी संग्रह रचे हैं।

यात्रावृत्त:-

सन २००८ ई. में दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित 'एक सागर और' यात्रावृत्त है। इसमें अमेरिका देश की यात्रा का वर्णन किया है। यात्रा के संबंध में डॉ. दामोदर खड़से का कहना है- "यात्राएँ हमेशा ही सुखद लगती हैं। समय के बीच से आदमी पल-पल गुजरता है पर उसका समय यदि प्रदेशों, लोगों और हवा-पानी के बीच गुजरे तो उसका रोमांच द्विगुणित हो जाता है।"[२]

संस्मरण:-

संस्मरण में अनुभूतियों या अनुभूत स्मृतियाँ ली जाती हैं। उसमें कल्पना के लिए कम स्थान होता है। संस्मरण का अर्थ है बार-बार स्मरण करना संस्मरण परिचित व्यक्तियों से संबंधित होते हैं। संस्मरण में लेखक की निजी दृष्टि प्रधान होती है और वह अपने दृष्टिकोण से घटना तथा पात्रों का विश्लेषण करता है। 'जीवित सपनों का यात्री' सन १९६६ ई. में अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित संस्मरण विधा है।

राजभाषा हिंदी प्रसार संबंधी साहित्य:-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने जनतंत्र प्रणाली का स्वीकार किया। जनतंत्र में जनता का विचार सर्वोपरि रहता है। जनतंत्र के मूल्यों को समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय आदि सार्थक बनाने के लिए जनता की भाषा में ही सरकार का कारोबार होना चाहिए। जिस भाषा का प्रयोग सरकारी कामकाज के लिए सरकारी कार्यालयों में किया जाता है, उसे राजभाषा कहते है।

"राजभाषा प्रबंधन: संदर्भ व आयाम" सन २००० ई. में समय प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित रचना है। संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में दी गई मान्यता को साकार करने हेतु विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। हमारे भारतवर्ष में भाषाओं के साथ भाषिक आदान-प्रदान किया जाता हैं। हिंदी तथा अहिंदी प्रदेशों में सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों, बैंकों में राजभाषा विभागों का गठन किया गया है। हर क्षेत्र में बेहतर कार्य करने के लिए प्रबंधन प्रक्रिया साहित्य पर बल दिया जा रहा है। डॉ. दामोदर खड़से लंबे समय से राजभाषा कार्यान्वयन से जुड़े हैं। प्रस्तुत 'राजभाषा प्रबंधन: संदर्भ व आयाम' में उन्होंने राजभाषा से संबंधित तमाम पहलुओं को बहुत सूक्ष्मता से रेखांकित किया हैं जिससे राजभाषा प्रबंधन को नए सिरे से देखने एवं कार्यान्वित करने की दिशा मिली है। प्रस्तुत पुस्तक से प्रशासनिक हिंदी: स्थिति एवं कार्यान्वित करने की सही दिशा मिली है। इस पुस्तक से प्रशासनिक हिंदी, विकास का स्वरूप, राजभाषा अधिकारी की प्रबंधकीय भूमिका, प्रचार माध्यम और हिंदी, राजभाषा कार्यान्वयन में सूचना प्रणाली, निष्पादन व मूल्यांकन: राजभाषा के संदर्भ में, कार्यालयीन हिंदी की शब्दावली और मानकीकरण, प्रशिक्षण का निर्माण, हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण, हिंदी का संस्थागत स्वरूप, भाषा पठनीय लेखन की कला, जैसे विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

'कार्यालयीन और व्यावहारिक हिंदी' सन २००२ ई. में यशवंतराव चव्हाण मुक्त विद्यापीठ, नासिक से प्रकाशित पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक में आवेदन पत्र, सरकारी पत्र, छुट्टी के लिए प्रार्थना पत्र, कार्यालय ज्ञापन, कार्यालय आदेश, परिपत्र, कार्यालयीन व व्यावहारिक पत्रों के प्रकार हैं। पत्र-व्यवहार एक कला है। इस कला के माध्यम से हमें इच्छित बातें साध्य करनी होती हैं। इसी पत्र प्रकार में द्वि-अर्थक शब्दों एवं वाक्यांशों का जहाँ पर प्रयोग नहीं होना चाहिए यह समझाया है।

'बैंकों में हिंदी' सन २००८ ई. में आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा से प्रकाशित रचना है। इसमें बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन की दशा और दिशा का लेखा-जोखा है। भारत सरकार के दिशा निर्देशों के अनुरूप बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन के विविध आयामों को इसमें प्रस्तुत किया गया है। वित्तीय क्षेत्रों के सुधार कार्यक्रम, आर्थिक उदारीकरण और वैश्विकरण के दौर में बैंकों में हिंदी भाषा एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में है। लेखक डॉ. दामोदर खड़से, बैंक ऑफ महाराष्ट्र में सहायक महाप्रबंधक के रूप में कार्यरत रहे हैं। वे बैंक में राजभाषा विभाग के प्रभारी रहे हैं। लगभग तीस वर्षों के व्यापक अनुभव के साथ उन्होंने राजभाषा से संबंधित कई चर्चा- सत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अत: बैंकिंग क्षेत्र के लिए यह एक महत्वपूर्ण और उपयोगी पुस्तक सिद्ध होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में बदलता आर्थिक परिवेश और हिंदी, प्रशासकीय हिंदी विकास का स्वरूप, आर्थिक चुनौतियों में बैंकिंग उद्योग का महत्व, बैंकिंग व्यवसाय में हिंदी की भूमिका, हिंदी माध्यम से बैंकिंग प्रशिक्षण, प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्माण, बैंकिंग परिवेश में हिंदी प्रशिक्षण का स्वरूप, हिंदी के विकास में गृहपत्रिकाओं और आंतरिक प्रकाशनों की भूमिका, राजभाषा, कार्यान्वयन में सूचना प्रणाली, कार्यालयीन हिंदी की शब्दावली, प्रचार माध्यम और हिंदी, विश्व मंच पर हिंदी भाषा हमारी अस्मिता आदि विषयों पर विस्तार से जानकारी दी है।

काव्य:-

डॉ. दामोदर खड़से ने अब वहाँ घोंसले हैं, जीना चाहता है मेरा समय, सन्नाटे में रोशनी, तुम लिखो कविता काव्य संग्रहों का निर्माण किया है।

अब यहाँ घोंसले हैं-

सन २००० ई. में प्रेरणा प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित डॉ. दामोदर खड़से का पहला काव्य संग्रह है। डॉ. खड़से जी मूलत: कथाकार के रूप में परिचित है। 'अब वहाँ घोंसले हैं' इस काव्य संग्रह से उनका कवि के रूप में नया परिचय मिलता है। इस संग्रह में कुल साठ कविताएँ हैं। प्रस्तुत काव्य संग्रह में कवि ने राजनेताओं की गद्दारी, रिश्तों का खोखलापन, व्यवस्था की दरारें, प्रशासन तंत्र का भ्रष्टाचार, शिक्षा की अनुपयोगिता, आदमी का एकाकीपन, बौद्धिक अय्याशी, कोरी भावुकता आदि समस्याओं का प्रभावी चित्रण किया है।

जीना चाहता है मेरा समय-

सन २००५ ई. में पवन प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित डॉ. खड़से जी का दूसरा काव्य संग्रह है। इसमें कुल तिहत्तर कविताएँ संकलित हैं। डॉ. खड़से की प्रत्येक कविता कुछ नया अनुभव, नई प्रेरणा और अहसास दे देती है।

सन्नाटे में रोशनी-

सन २००८ ई. में क्षितिज प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित डॉ. दामोदर खड़से का तीसरा काव्य संग्रह है। इसमें इकसठ कविताएँ संकलित हैं। 'सन्नाटे में रोशनी' के संकलन की कविताओं में डॉ. दामोदर खड़से के यायावर प्रकृति के अनूठे दृश्य अंकित हुए हैं। नदी, पहाड़, समुद्र, मंदिर, झरने, पुल आदि प्रकृति के प्रति काव्यात्मक अभिव्यक्ति कविताओं में मिलती है।

तुम लिखो कविता-

सन २००८ ई. शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित डॉ. खड़से जी का चतुर्थ काव्य संग्रह है। 'तुम लिखो कविता' में इक्यान्वे कविताओं का समावेश किया गया है। संकलन की हर कविता इसी पंक्ति से आरंभ होने से पाठक के मन में पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ती है। 'मैं' को विसर्जित करती ये कविताएँ 'तुम' को माध्यम बना कर जीवन को पढ़ती नजर आती है। लीलाधर मंडलोई इस कविता संग्रह के संदर्भ में लिखते हैं- "दामोदर खड़से एक अत्यंत संवेदनशील कवि है यह इस संग्रह से पता चलता है। ये अनेक कविताओं के प्रचलित अर्थ में एक किताब नहीं एक लंबी भव्य प्रेम कविता है। कविता के इस कठिन दौर में यह एक आवाहन है, जिसमें कविता को बचाने का आमंत्रण है। इस कविता में समूची सृष्टि के प्रति अद्‌भूत प्रेम प्रार्थनाओं की दीर्घ श्रृंखला है जिसमें तमाम तत्वों, वस्तुओं, प्रसंगों और जीवन के आयामों को कविता में पुकारा गया है। मानवीय ध्वनि रूप और मौन को अपने भीतर समेट लेने का सार्थक मन बनाती है। इस प्रथम पंक्ति 'तुम लिखो कविता' के संबोधन शिक्षण में एक दीर्घ मनुहार है कि कविता में ही संभव है जीवन का बचा पाना।"[३] कवि अपनी कविताओं को समाज के लिए अपरिहार्य वरदान की तरह मानते हुए इस कविता को समाज की जरूरत की तरह प्रस्तुत करते हैं। वे कविता में पेड़-पौधों, नदियों, हवाओं, सूर्य-चंद्रमा, तारांगण आसमान को प्राकृतिक आलंबनों में इसलिए ले आना चाहता ताकि वह एक तरह का कवच हो उठे। कविता में जहाँ कोमलतम भावनाएँ हैं वहाँ ऐसे रूप भी है कि वह दुनिया को बचाने में भूमिका का निर्वाह कर सकें।

अनूदित साहित्यः-

मानव समाजशील प्राणी है। वह समाज में रहना पसंद करता है। समुदाय में रहते हुए विचार विनिमय हेतु भाषा की जरूरत होती है। एक ही क्षेत्र में रहनेवाले लोगों की भाषा एक होती हैं या भिन्न-भिन्न। दो भिन्न भाषा-भाषी के बीच विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अनुवाद की आवश्यकता महसूस होती है। एक भाषा की सामग्री का दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद है।

डॉ. दामोदर खडसे का अनुवाद कार्यः

अछूत- मराठी के दलित आत्मकथाकार दया पवार की चर्चित आत्मकथा 'बलुत' का मराठी से हिंदी में 'अछूत' नाम से अनुवाद सन १९८१ ई. में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

रामनगरी- मराठी रंगभूमि के कलाकार राम नगरकर की आत्मकथा 'रामनगरी' का डॉ. खड़से जी ने हिंदी में उसी नाम से अनुवाद किया है, जिसका प्रकाशन सन १९८३ ई. में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ।

पराया- लक्ष्मण माने की आत्मकथा 'उपरा' का अनुवाद सन १९९३ ई. में साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से 'पराया' शीर्षक से किया गया है। आत्मकथा कृतिओं के प्रति अनुवादक डॉ. खड़से जी लिखते हैं "पुस्तक की भाषा, परिवेश और अत्यधिक प्रादेशिकता के कारण जहाँ वह विशेषता लिए हुए हैं, वही अनुवाद की दृष्टि से अत्यंत चुनौतीभरा था। कई ऐसे लोगों की मदद ली जो सातारा जिले के आसपास की बोलियों, अभिव्यक्तियों से परिचित हैं।"[४] मूल रचना 'उपरा' की भाषा, मुँहावरे जो चुनौती भरे थे किंतु अनूदित रचना पढ़ते समय उतना ही प्रभाव बना रहता जो मूल रचना में है।

कालचक्र- जयवंत दलवी के मराठी नाटक 'कालचक्र' का हिंदी में अनुवाद सन १९९३ ई. में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस हिंदी 'कालचक्र' के पचास मंचन हुए। पुस्तक के रूप में इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित है।

ऐसे लोग ऐसी बातें- मराठी के सुप्रसिद्ध रचनाकार श्री. शिवाजी सावंत की मराठी पुस्तक 'अशी मने अशी नमुने' का अनुवाद 'ऐसे लोग ऐसी बातें' इस नाम से सन १९९६ ई. में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'ऐसे लोग ऐसी बातें' के रचनाकार शिवाजी सावंत का जन्म गाँव कोल्हापुर जिले के आजरा गाँव में हुआ। इस गाँव के जीवित पात्र मानवीय जीवन के सार्थक प्रतिनिधि बन गये हैं। मानव मन की भीतरी-बाहरी, कथा-व्यथा, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और वेदना का सूक्ष्म चित्रण रचना में हुआ है।

सवाल अपना-अपना- आधुनिक मराठी नाट्य लेखक श्री अभिराम भडकमकर की रचना 'ज्याचा त्याचा प्रश्न' सन १९९७ ई. में कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, विजयानगर, पुणे से प्रकाशित हुई है। अनुदित 'सवाल अपना अपना' का सन १९९९ ई. में साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से प्रकाशन हुआ है।

संघर्ष- शिवाजी सावंत की मराठी रचना 'छावा' का नाट्य रूपांतर 'संघर्ष' है। सन १९९९ ई. में इसका प्रथम संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से हुआ। इसमें छत्रपति शिवाजी महाराज के सुपुत्र छत्रपति संभाजी के जीवन की संघर्ष गाथा है। यह पुस्तक सार्थक और रोमांचित संवादों का जीवंत दस्तावेज है।

भूले-बिसरे दिन- मराठा चेंबर्स ऑफ कॉमर्स, पुणे में कार्यरत अरुण खोरे की मराठी पुस्तक 'पोरके दिवस' का हिंदी अनुवाद सन २००१ ई. में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ। 'भूले-बिसरे दिन' अरुण खोरे की आत्मकथात्मक पुस्तक है जिसमें रिमांड होम की सख्त दीवारों के पीछे लाखों बच्चों की दर्दभरी वेदनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति दी गई है।

विशिष्ट मराठी कहानियाँ- सन २००८ में आधार प्रकाशन पंचकुला (हरियाणा) से प्रकाशित यह अनूदित रचना है। इसमें में मराठी के कुल १८ कथाकारों वि. वा. शिरवाडकर (कुसुमाग्रज), शिवाजी सावंत, जी. ए. कुलकर्णी, भारत सासणे, आनंद यादव, ह. मो. मराठे, बाबूराव बागुल, दया पवार, शरणकुमार लिंबाले, विद्याधर पुंडलिक, अरविंद गोखले, गौरी देशपांडे, दीनानाथ मनोहर, सुबोध जावडेकर, ज्योत्सना देवधर, सानिया, मोहन विष्णु खड़से, शांताराम पारपिल्लेवार की कहानियाँ संकलित की गई हैं। प्रस्तुत किताब के द्वारा मराठी कहानियों की विशिष्ट छटाओं को समेटा गया है।

उपन्यास, कहानी, यात्रावर्णन, संस्मरण, अनुवाद, राजभाषा से संबंधित विधा और कविता जैसी रचनाओं के साथ विभिन्न समाचार पत्र, पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन, रेडिओ माध्यमों के द्वारा डॉ. खड़से निरंतर हिंदी सेवा में व्यस्त रहें। देश-विदेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका आप निभाते हैं।

हिंदी भाषा की महता और विश्व मंच पर हिंदी की स्थिति को लेकर डॉ. खड़से एक साक्षात्कार में कहते है- "भाषा दो तरह की है, एक जो वैज्ञानिक और तकनीकी रूप में विकसित होती है और दूसरी वह जो सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक ढंग से विकसित होती है। इस तरह से दो धाराएं हैं। जहां तक हमारी भारतीय भाषाएं है वह मूल रूप से काव्य की भाषाएं हैं। इसमें काव्य रहा है, इसमें संस्कृति रही है। हमारे बीच में संप्रेषण के लिए इन माध्यमों का उपयोग रहा है, चाहे वो हमारी हिंदी भाषा हो या फिर प्रांतीय भाषा हो। जब हम वैज्ञानिक भाषा और तकनीकी भाषा को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि अंग्रेजी भाषा की स्थिति हमारी हिंदी जैसी ही थी। अंग्रेजी में बहुत अच्छे काव्य थे, नाटक थे, कविताएं थी, शेक्सपीयर थे। वहां भी तकनीकी शब्द नहीं थे लेकिन उन्होंने भी दूसरों देशों के तकनीकी शब्द अपनाए। जितनी भी औद्योगिक क्रांतियां दुनिया में हुई, वो इंग्लैंड में नहीं हुई, वे जर्मनी में हुई, फ्रांस में हुई। जब ये तकनीकी क्रांतियां उन देशों में हुई तो ये क्रांतियां उन देशों की भाषाओं में हुई। अंग्रेजी भाषा ने उन तकनीकी शब्दों को जोड़कर उसे अपने तकनीकी शब्द भंडार में शामिल किया। आज की तारीख में हम कहें तो आज अनुवाद के माध्यम से हम अपनी भाषा में आगे हैं। ऐसे में मूल रूप से विचार के माध्यम से कोई बात आती है और फिर अनुवाद के माध्यम से बात रखी जाती है तो ऐसे में विलंब का मुद्दा आता है। जहां तक आपने विश्व मंच की बात कही है तो सब लोगों के बीच जो संपर्क सूत्र बनाने का माध्यम है, वो हिंदी ही है। विश्वमंच पर हिंदी इस तरह बहुत बड़ी भूमिका अदा कर रही है। आप विश्व में कहीं भी जाएं, दूर-दराज के जगहों में जाएं। मैं तो अमरीका एवं दूर-दराज के क्षेत्रों में भी गया और रहा। वहां यह देखा है एवं मेरा अनुभव रहा है कि हम हिंदी के माध्यम से जुड़ जाते हैं। तो विदेशों में जहां तक हिंदी का सवाल है हिंदी तो सबको अपने मंच में शामिल कर लेती है। तकनीकी रूप से हम अनुवाद के माध्यम से जा रहे हैं। जिस दिन हम अपनी भाषा में उस अनुसंधान को, उस खोज को, उस अन्वेषण को, अपनी भाषा में लाकर रखेंगे उस दिन हिंदी हमारे सामने एक नया रूप लेकर आएगी। मुझे जहां तक आपके कार्यालय में जाने का अवसर मिला मैंने देखा कि कई वैज्ञानिक अपनी भाषा में अच्छे आलेख तैयार कर रहे हैं। बहुत अच्छे संप्रेषण के साथ संवाद कर रहे हैं। मुझे लगता है कि एक नई स्थिति की शुरूआत हो चुकी है।"[५]

संदर्भः

१. कागजी जमीन पर-डॉ. दामोदर खड़से, पृ. सं. १४७
२. एक सागर और-डॉ. दामोदर खड़से, पृ. सं. १४
३. तुम लिखो कविता - डॉ. दामोदर खड़से, पृ. सं. २०
४. मेरे अनुवादः समस्याएँ और संदर्भ - डॉ. दामोदर खड़से, पृ. सं. १२९
५. गगन-विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र की गृह पत्रिका (अप्रैल -सितंबर २०२२), पृ.सं. २८

अन्य-विकिपीडिया, शोध गंगा, पत्र-पत्रिकाएँ

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में अभिव्यक्त अन्तर्द्वन्द्व

डॉ० कुसुम लता

असि० प्रो०-हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवबन्द (सहारनपुर) उ०प्र०

शोध सारांश- अन्तर्द्वन्द्व दो शब्दो से मिलकर बना है अन्तर और द्वन्द्व। इसका मतलब है- हृदय का संघर्ष। जब किसी विषय को लेकर हमारे मन-मस्तिष्क में बहुत से विचार आते है एवं मन में विचारो का झंझावात चल रहा होता है। तब उस कशमकश, दुविधा और ऊहापोह की स्थिति ही अन्तर्द्वन्द्व कहलाती है। अत: अन्तर्द्वन्द्व का सम्बन्ध अन्तरमन से होता है। मानव स्वयं अपने मन और सोच से लड़ता है। ''हम क्या है, यह हम तभी जान सकते है जब हम यह जान लें कि हमे क्या होना चाहिये, लेकिन हमे क्या होना चाहिये तभी जाना जा सकता है जब हमे ज्ञात हो कि हम क्या है।" पाश्चात्य विद्वान टी0एस0 इलियट के द्वारा रेखांकित निम्नलिखित पंक्तियां हमारे भीतर उपज रहे अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने का सार्थक प्रयास है। कथाकार निर्मल वर्मा का समूचा कथा-साहित्य अर्न्तमुखी व्यक्ति की अंतरंगता को अभिव्यक्ति देने का एक बेजोड़ सबूत है। अंतरंगता और अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा को उनके पात्र किस प्रकार अनुभव करते है इसकी बानगी इनके लेखन में व्याप्त है। उन्होने कहा भी है कि आपसी रिश्तो और उनके बीच गुजरते क्षणो के आन्तरिक एहसास को पकड़ पाने की कोशिश में व्यक्ति अक्सर अकेला पड़ जाता है और यही अकेला पन उसे भीतर तक ले जाने को मजबूर करता है इसी मजबूरी के तहत व्यक्ति सब तरह से कटकर अंर्तमुखी हो जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र ''निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में अभिव्यक्त अन्तर्द्वन्द्व" के कुछ अन्छुये पहलुओ को रेखांकित करने का मेरा लघु प्रयास है।

मुख्य शब्द- झंझावात, ऊहापोह, संत्रास, अस्तित्व बोध, खामोशी, असमंजस।

हिन्दी के आधुनिक कथाकारो में निर्मल वर्मा एक मूर्धन्य कथाकार और पत्रकार थे उन्हे मूर्ति देवी पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार और ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। वे दिन, लालटीन की छत, एक चीथड़ा सुख, रात का रिपोर्टर, अन्तिम अरण्य, इनकी औपन्यासिक कृति है। परिन्दें, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच बहस में, कव्वे और कालापानी आदि कहानियाँ प्रसिद्ध है। निर्मल वर्मा के कथ्य की भाषा अनोखी कसावट, विचार की गहनशीलता के साथ विषय वस्तु का विस्तार करती है। अकेलापन, टूटन घुटन, संत्रास, अन्तर्द्वन्द्व एवं खामोशी से भरे पात्रो के वे पहलु जो यर्थाथवाद की और अग्रसर होते है। उनका जीवंत चित्रण हमे निर्मल वर्मा जी के कथा साहित्य में मिलता है।

निर्मल वर्मा के पात्र अन्तर्द्वन्द्व के बीच जीते है, एक संघर्ष उनमें होता है। जो मुखरित नही हो पाता लेकिन हर जगह विद्यवान रहता है। वर्मा जी ने स्वयं कहा है कि- ''हर लेखक की शुरूआत में उसका अंत छुपा रहता है और इन दोनो के बीच वह स्वयं है, पराजित भी है और विजेता भी यातना भोगता हुआ, लेकिन उस यातना का द्रष्टा भी x x x एक उबड़-खाबड़ जमीन जिस पर उसकी समूची दुनिया बसी है"[2] प्राय: देखा गया है कि यातना व दु:ख का अपना ही एक स्मृति-खण्ड होता है जो मन में निरंतर गहराता रहता है। द्वन्द्व में व्यक्ति क्या करे और क्या न करें इसी ऊहापोह से भरा रहता है। लेखक स्वयं कहता है अरसे के बाद अपने इन स्मृति खण्डो को दौबारा पढ़ते समय मुझे एक अजीब-सा सुनापन अनुभव होता रहा है। x x x एक दूरी का अभाव, जो सफरी सूटकेस पर विभिन्न देशो के लेबलो पर लटका रहता है, उन्हे न रखपाने का मोह रह जाता है, न फेक पाने की निर्ममता ही जुड़ पाती है।"[3] वास्तव में, निर्मल वर्मा के साहित्य में असमंजस की स्थिति मानव की मानव के साथ ही नही अपितु वस्तुओं के साथ भी है उनकी कहानियों में-''आपसी रिश्तो की भीतरी तहे है, गांठे है, टूटने है, असमंजस है, पीड़ाएँ है x x x एक पुरानी पीड़ा का टेप जिसका सम्बन्ध किसी दूसरी दुनिया से है चीजे और आदमी कितनी अलग है '' लेकिन अलग-अलग होते हुये भी बहुत बार मेरे पास बरसाती है किताबे है, रिकॉर्ड प्लेयर है... क्या कमी है मुझे ग ग ग"[4] निर्मल वर्मा के पात्रो की दुनिया में भीतर कुछ भी नही बदलता सिर्फ अलग-अलग कोणे से यही झलक पाते रहते है कि भीतर कहीं बहुत कुछ आत्मीय है जिसे खोलते हुए प्रमुख खुद डरता है, एक भुर-भुरी-सी मूर्ति जो हवा लगते ही बिखर जाएगी। बस यही बिखर जाने का 'फोबिया' करीब-करीब निर्मल के हर पात्र में है चाहे वह परिंदे की 'लतिका' हो या 'वे दिन की 'रायना' या फिर एक चीथड़ा सुख की 'बिट्टो' इन सबको बिखरने और टूटने का डर है जो भीतर ही भीतर उन पर इस कदर हावी है कि ''वह चाहते हुये भी अकेलेपन का एकालाप करते रहते है। निर्मल वर्मा के पात्रो को पहाड़ो का अकेलापन, भुतहे खंडहर, सुनसान पार्क, खाली-खाली प्लेटफॉर्म ज्यादा रास आते है और-तो-और वे काई लगी दीवारो पर अपने नाम तलाशते रहते है सामने जीवित पात्र हो या दीवार उनका 'एटीट्यूड' वही भुतहा और खँडहरी एकांत होता है।"[5] वास्तव में, निर्मल वर्मा का कथा साहित्य हमें अन्दर-बाहर की गहराईयों में छिपी अनुभूतियों से वाकिफ कराता है। उपन्यास ''एक चिथड़ा सुख" न तो घटना प्रधान है और न ही भावना प्रधान उपन्यास है। यह उपन्यास अपने ढेर सारे पात्रो के साथ उनके अधूरे पन की गाथा कहने वाला नायक विहीन उपन्यास है। इसमें बहुत से पात्र है, परंतु उन पात्रों में बिट्टी, डेरी, नित्ती, इरा, से लेकर मुन्नू तक कोई भी पात्र नायक की तथाकथित संभावनाओं पर पूरा नहीं उतरता। महानगरीय अँधेरा और पात्रों की भटकन तथा अधूरापन ही अपने पूरे परिवेश की संवेदना के साथ यहाँ परम्परागत नायक का स्थान ले लेता है। आधे-अधूरे क्लीव टूटे हुए पस्त आधुनिक पीढ़ी के युवक-युवतियाँ जिन्हे एक अनजानी चीज की खोज है, उस गाथा के हिस्से है। अपने घरो और परिवार वालो से बिछुड़े हुए अपने शर्मनाक दु:ख को छिपाने में लगे रहते हैं। काले दु:स्वप्नों में भटकती जिंदा प्रेत आत्माएँ जीवन के सुख और दु:ख की परिभाषा में भटकने लगती है। हर पात्र एक चिथड़े सुख की तलाश में है। इसी सुख की तलाश में रिश्ते बनते बिगड़ते है।"[6]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में मन की गांठे, कशमकश की स्थिति, स्मृति-बोध एवं अन्तर्द्वन्द्व के रूप परिलक्षित हुये है। वे स्वयं कहते है कि आज का श्रेष्ठ सृजनात्मक-सहित्य आत्म प्रदर्शन और विद्रोह भंगिमाओं से बहुत दूर है। वह उस खाई के बीच अपनी यातना को परखता है जो मनुष्य और शब्द के बीच खुल गई है।"[7] वास्तव में, द्वन्द्व अस्तित्व बोध का एक आयाम है और आधुनिक साहित्य चिंतन का केन्द्र बिन्दु है। निर्मल के उपन्यासों में अस्तित्व बोध गहराया हुआ है। वर्मा जी के उलझाव को उनकी रचना में स्वीकार करते हुये कुंवर नारायण कहते है कि '' निर्मल वर्मा का अस्तित्व बोध अधिक बुनियादी कारणो से उपजता है और अधिक स्थायी समाधानों को खोजता है। उनके चिंतन की भांगिमा दार्शनिक है। उनकी रचनाओं के पात्र निराशापूर्ण स्थितियों में अपने को साहसी और अपराधिक देखना चाहते है। हताश और दीन नहीं इसी तरह अस्तित्व के प्रति आत्मचेतन दृष्टि अपनाते है, आत्मकेंद्रित नही।"[8] अत: अन्तर्द्वन्द्व निर्मल वर्मा जी के कथा साहित्य में यदा-कदा विद्यमान रहा है।

सन्दर्भ:-

1. वंदना केंगरानी-निर्मल वर्मा के स्त्री विमर्श, पृ0-3
2. डॉ0 प्रेमसिंह-निर्मल वर्मा: सृजन और चिंतन, लेख-हस्तक्षेप के बाद, पृ0-10
3. वही, पृ0-15
4. निर्मल वर्मा-कव्वे और कालापानी, पृ0-166
5. निर्मल वर्मा- एक चिथड़ा सुख, पृ0-13
6. निर्मल वर्मा- परिन्दे, पृ0-42
7. निर्मल वर्मा-शब्द और स्मृति पृ0-49-50
8. ऊषा चौहान-नई कहानी के कहानिकारो की आलोचनात्मक दृष्टि, पृ0-168

हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित थर्ड जेंडर

कनकलता कुमारी

शोध छात्र, ए०पी०एन०पी०जी० कालेज बस्ती उ०प्र० (संबद्ध-सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु सिद्धार्थनगर, उ०प्र०)

साहित्य अर्थात् सभी का हित चाहते हुए हमारे पेजों पर किन्नर उतरा है हमारे पन्नों पर किन्नर उतरा है। व्याकरण हिन्दी और अंग्रेजी में व्याकरण में जो थर्ड जेंडर है और थर्ड जेंडर ये नया शब्द आया है तो थर्ड जेंडर लिटरेचर में आया है कहानियों कविताओं उपन्यासों में आया है। जब हम संस्कृत की बात करते हैं आदिभाषा देवभाषा संस्कृत उसमें हम देखेंगे स्त्रीलिंग पुलिंग नपुंसकलिंग इसमें मर्यादित किया गया है तो हमारे व्याकरण में है और व्याकरण भाषा का मूल होता है तो उनको वही स्थान प्राप्त है। हिन्दी साहित्य में थर्ड जेंडर का विकास सामान्यत: कथा साहित्य में देखा जा सकता है। हमारा पुरा समाज दो स्तंभों पर खड़ा है पुरुष और स्त्री। आदिम सभ्यता से ही दोनों के काम आपसी सहयोग से बच्चे पैदा करना और मानवजाति को आगे बढ़ाना रहा है लेकिन हमारे समाज में इन दो लिंगों के अलावा भी एक अन्य प्रजाति का अस्तित्व मौजूद है। 'जो न पुरुष है न ही स्त्री। वह न संबंध बना सकता है और न ही गर्भ धारण कर सकता है। समाज में इन्हें हिजड़ा, खोजा, किन्नर, नपुंसक आदि कई उपनामों से संबोधित किया जा सकता है।'

इनका असली नाम, हिजड़ा यौनिक पहचान के साथ ही समाज द्वारा मिटा दिया जाता है। संविधान में इन्हें ट्रांसजेंडर के रूप में पहचाना गया और इसकी पहचान को थर्ड जेंडर में ट्रांसजेंडर श्रेणी में रखा गया।

मूल आलेख: किसी भी समाज के साहित्य को उस समाज का दर्पण माना जाता है और जो साहित्य अपने परिवेश को उकेरता है, वही साहित्य उस समाज का प्रतिनिधि कहलाने का अधिकारी होता है।

हिन्दी साहित्य की बात करें तो इसकी प्रवाहमान धारा विभिन्न सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रही है। साहित्य के सामाजिक परिदृश्य में समाज का हर वर्ग अपना स्थान प्राप्त करता है। इसी क्रम में हिन्दी साहित्य में कई विमर्श उभरकर हमारे सामने आए। समाज के वंचित और दमित वर्गों की आवाज को साहित्य में स्थान देने के लिए कई अस्मीतामुलक विमर्श सामने आए हैं। इसी कड़ी में थर्ड जेंडर विमर्श हिन्दी साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रहा है। थर्ड जेंडर पर केंद्रित पहली कहानी बलभद्र प्रसाद दीक्षित द्वारा लिखित 'चमेली जान' 1938 में आयी। हालांकि, विडंबना है कि यह कहानी किसी गंभीर पत्रिका में स्थान प्राप्त न कर चकलस नामक हास्य-व्यंग्य प्रधान पत्रिका में प्रकाशित होती है वर्तमान परिदृश्य में ही हिन्दी साहित्य थर्ड जेंडर विमर्श को लेकर सजग हुआ है। हिन्दी साहित्य थर्ड जेंडर जैसे हाशिए के वर्ग से मुंह नहीं मोड़ रहा है।

हिंदी साहित्य की थर्ड जेंडर धारा में शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'बिंदा महाराज' संभवत: शुरूआती प्रमुख कहानियों में से एक है। यह कहानी नयी कहानी आंदोलन के परिवेश में लिखी गयी है। इस कहानी में बिंदा महाराज नामक हिजड़ा पात्र के त्रासद जीवन का चित्रण है। हिजड़ा होने के कारण उपेक्षित जीवन व्यतीत करना उसकी नियति बन जाती है। बिन्दा महाराज का कोमल मन प्रेम और अपनत्व के लिए प्यासा रहता है। दीपू मिसिर के साथ प्रेम संबंधों की उड़ती कहानियों पर वह सोचने लगता है कि क्या सचमुच ऐसा सम्भव है! क्या उससे भी कोई मुहब्बत कर सकता है! वही दूसरी तरफ, इन सबसे अलग बिन्दा महाराज का मन मिसिर के बेटे मुन्ना के प्रति ममता से भरा हुआ था। वह उसके लिए बतासे, रेवड़ियाँ, मिठाई लाया करता। जिस दिन मुन्ना बीमार होकर दुनिया से चल बसा, समाज ने हिजड़ा के संसर्ग को इसका जिम्मेदार माना। लोगों के शब्द बिंदा महाराज के हृदय को छलनी करते "हिंजड़े के साथ का असर है भाई... सोने जैसा लड़का हवा हो गया।"। उसे डायन कहकर तिरस्कृत किया गया।

बिन्दा महाराज जैसे पात्र को गढ़ने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए शिवप्रसाद सिंह कहते हैं- "बिन्दा महाराज जैसे पात्र तो हर जगह आते-जाते हुए दिखाई पड़ते रहते हैं... इस कहानी में बिन्दा महाराज की जो पीड़ा उभरी है, वह किसी एक व्यक्ति में नहीं देखी गयी, बल्कि सिचुएशन्स के द्वारा क्रिएट की गई है। इस चरित्र के माध्यम से, मैं उस उपेक्षित जीवन को भी एक मूल्य देना चाहता था, जिसके अन्दर पीड़ा का बोध, मानवीय पीड़ा को भी लाँघ जाता है। जो पुरुष नहीं दे पाता, नारी नहीं दे पाती, वह एक हिजड़ा दे जाता है।"

राही मासूम रजा द्वारा लिखित 'ख़लीक अहमद बूआ कहानी के माध्यम से किन्नर समुदाय की मानवीय संवेदनाओं को उकेरने का प्रयास किया गया है। कहानी की मुख्य पात्र ख़लीक़ अहमद बूआ स्वयं अपने परिवार के बारे में नहीं जानती लेकिन रुस्तम खाँ को ही अपना परिवार मानती है। रुस्तम खाँ से अनुरक्ति का कारण यही है कि समाज तथा परिवार द्वारा बहिष्कृत अहमद बूआ को स्नेह और प्रेम की उम्मीद किसी ओर से नहीं रही। वह अपनी रोजी-रोटी के लिए रुस्तम खाँ पर आश्रित नहीं है, इसके विपरित बूआ ही उसकी जीविका चलाती है। ख़लीक़ अहमद बूआ को सिर्फ अपनत्व और प्रेम के आलंबन की आवश्यकता है। गली-मौहल्ले के बच्चे अहमद बूआ को मरने के नाम से चिढ़ाते हैं तो वह नाराज होने के बजाए इससे अपने अकेलेपन को दूर करती है। दुपहरी के समय सुनसान गली में वो अपने जीवन और हृदय की छवि देखने से घबरा उठती है। इससे ख़लीक़ अहमद बूआ के जीवन में अकेलेपन के अंधकार को महसूस किया जा सकता है- "ख़लीक़ अहमद बूआ के दिल में मौत का यह डर क्यों था, यह तो मुझे नहीं मालूम, सम्भव है कि वह मौत से नहीं, तन्हाई से डरते रहे हो। क्योंकि उनके आगे-पीछे तो कोई था नहीं।"

'मन मरीचिका' कहानी में डॉ. विमलेश शर्मा ने मानव से मानवी बनने की यात्रा को संजीदगी से उकेरा है। सुलोचना और मानव का रिश्ता दैहिक प्रेम की सीमाओं को लाँघ कर उस ऊँचाई तक पहुँच जाता है जहाँ दो आत्माएँ मिलती है। सुलोचना मानव की ओर आकर्षित होकर प्रेम से ओत-प्रोत थी जबकि मानव ट्रांसजेंडर होने के कारण अपनी भावनाओं से निरंतर युद्ध कर रहा था। मानव के अनगिनत कष्ट उसकी डायरी में दर्ज होते गए- "पाँच बहनों में सबसे छोटा था मैं। उन्हीं के साथ पला- बढ़ा। उन्हीं की बातें, व्यवहार, रहन-सहन सब मेरे व्यवहार में है। मुझे काँच की चूड़ियाँ, लाल बिंदी और सूरमा पसंद है जो दीदी लगाती थी। लहरिये का सूट पहनने की मुझे भी इच्छा होती है। आज मैंने यहाँ यह सब किया तो सबने मेरा मजाक उड़ाया।"

इस कहानी में मानव की सहज भावनाओं और उसकी घुटन का तो सजीव वर्णन है ही, इसके साथ ही ट्रांसजेंडर समुदाय से संबंधित विभिन्न परिभाषाओं, श्रेणियों, वर्गों जैसे एम.एस.एम (मेन हू हेव सेक्स विद मेन), हिजड़ा, कोठी, पंथी आदि का वैज्ञानिक ब्योरा भी दिया गया है। मानव के संबंध में मनोवैज्ञानिक डॉ. बसु कहते हैं- "जितना समझ पाया हूँ, दिस इज द केस ऑफ ए कोठी ट्रांसजेंडर। कोठी वो मेल होते हैं जो जैविक रूप से तो पुरुष होते हैं पर परिवेश या मनोवैज्ञानिक कारणों से अपने पुरुषत्व को खारिज करते हैं। ऐसे में विपरीत लिंग जैसा आचरण करते हैं।" इस कहानी में थर्ड जेंडर व्यक्तियों को उपेक्षित और हाशिए पर धकेलने के स्थान पर उनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हुए वैज्ञानिक और चिकित्सकीय राह दिखायी गयी है। मुख्यधारा समाज में विभिन्न यौन अभिव्यक्तियों के प्रति सहजता रखते हुए जटिलताओं को कम करके समतामूलक समाज की ओर बढ़ा जा सकता है।

कुसुम अंसल के द्वारा लिखित 'ई मुर्दन का गाँव' मार्मिक कहानी है जिसमें लैंगिक विकृति से पीड़ित बलदेव (बीलू) वर्मा के माध्यम से दिखाया है कि यदि हमारा समाज इन्हें सहज स्वीकार करें तो ये भी अपने कौशल से समाज में योगदान दे सकते हैं। कहानी में बीलू के द्वारा बाल मनौविज्ञान को भी समझने की कोशिश की गई है। बीलू अपने माँ-बाप के लिए बेटा है लेकिन उसकी आत्मा स्त्रीत्व भाव से सराबोर है। उसे नीलिमा के साथ गुड़ियों से खेलना अच्छा लगता है, लेकिन उसे इसकी इजाजत नहीं है। उसके शरीर में होने वाले अनजान परिवर्तनों को स्वीकार करने की क्षमता न उसके परिवार में है, न ही समाज में इसकी गुंजाइश है। उसके साथ दमन, जबरदस्ती, पाबंदी, कठोरता-पूर्ण व्यवहार किया जाता है जो उसके व्यवहार में प्रतिध्वनित होता रहता है। वह अपने हमउम्र बच्चों से दूर होकर अकेला हो जाता है। इन सबके बावजूद, बीलू के माता-पिता परिवेश और समाज की परिस्थितियों से वाकिफ थे। वे अपने बेटे को उज्ज्वल भविष्य के लिए विदेश भेज देते हैं जो आगे जाकर फैशन डिजाइनर बनता है। वहीं, इसके समानांतर गुरु जया, सलीमा, बद्री के अंधकारमय जीवन को रेखांकित करते हुए उन ट्रांसजेंडर्स की दशा का मार्मिक वर्णन किया गया है जिन्हें लिंगदोष के कारण अपने परिवार का त्याग करके गुमनाम जीवन जीने को बाध्य होना पड़ रहा है। शहर के रहस्यमय इलाके में रहने वाली सलीमा उदास आँखों से कहती है- "भाग्य की बात है, हम सब अलिंगी पैदा हुए हैं, एसेक्सुअल, इसी से यहाँ रहने को मजबूर हैं"।

उपन्यास साहित्य में थर्ड जेंडर समुदाय को केन्द्रित करते हुए चार उपन्यास यमदीप, तीसरी ताली, किन्नर कथा और गुलाम मंडी यह चारों उपन्यास थर्ड जेंडर पर केंद्रित है और उनकी जैविक संरचना से लेकर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संरचना के भिन्न-भिन्न पहलुओं को सामने लाने का प्रयास करते हैं।

इन सभी उपन्यासों की कथावस्तु इस समुदाय के सामाजिक अस्तित्व को स्थापित करती है। कहीं पौराणिक आख्यानों में रामायण के अयोध्याकांड में राम द्वारा स्त्री-पुरुष दोनों को लौट जाना कहने का संदेश-

जथा जोगु करि विनय और प्रनामा।
बिंदा किए सब सनुज रामा।।
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे।
सब सनमानी कृपा निधि फेरे।।

हिजड़ो के लिए यहां कुछ नहीं कहा जाता है। 14 वर्ष बाद राम का लौटना और उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर वरदान देना

' जब कलयुग आएगा, तब तुमलोग राज करोगे'। रामायण जैसा प्रसिद्ध आख्यान उनके अस्तित्व की प्रमाणिकता को सुनिश्चित कराता है। इसी तरह पौराणिक आख्यान महाभारत की कथा में शिखंडी और अर्जुन का बृहन्नला रूप आदर्श माना गया है।

यमदीप उपन्यास में नीरजा माधव मानवी और आनंद कुमार के माध्यम से इनके इतिहास की गहराई में जाती हैं 'अंग्रेजी में इनके लिए 'हरमोफ्रोडाइट्स' स्त्री-पुरुष लक्षणों वाला और ग्रीक में इन्हीं लक्षणों से युक्त हरमोफ्रोडाइट्स' ख की मूर्ति को स्त्री-पुरुष प्रेम और सौंदर्य का प्रतीक बताती हैं। मिस्र, बेबीलोन और मोहनजोदड़ो की सभ्यता में इनका प्रमाण मिलता है। संस्कृत नाटकों में इनका जिक्र है कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि राजा को हिजड़ों पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। इसी प्रकार गुलाम मंडी में सामाजिक हैसियत के अलावा उनकी राजनैतिक भूमिका को बताया गया। 'राजाओं के राज में हिजड़े बहादुर योद्धाओं के दल में शामिल किए जाते थे। स्त्री और पुरुष कुछ भी बन सकने की उनकी क्षमता उन्हें राजकीय जासूसों के पद भी दिलवाती थी। दरबार हो या मंदिर, वे अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन करके वाह-वाही भी लूट सकते थे। इनाम-इकराम भी कमाते थे। बादशाहों के हरम में सुरक्षाकर्मी होते थे, औरतों के साथ सेक्स न करना उनकी कमी नहीं, खूबी थी। हिजड़ों का तिरस्कार तो अंग्रेजों के जमाने से शुरू हुआ'। चारों उपन्यास की कथावस्तु हिजड़ा समुदाय के मनुष्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है और समाज में उनकी निर्धारित भूमिकाओं की आलोचना करती है। जहाँ माना गया कि यह परिवार, समाज और राजनीति में उपयोगी भूमिका नहीं निभा सकता है। यमदीप उपन्यास की लेखिका इस समाज में इनकी उपयोगी भूमिका की तरफ ध्यान केन्द्रित करती हैं 'जैसे मुंबई में एक कंपनी में बकाया धन की वसूली के लिए इनकी नियुक्ति हुई और परिणाम यह हुआ है कि जिस ऋण की वसूली वर्षों से नहीं हो पा रही थी, उसे चुटकी बजाकर ये लोग वसूल कर लेते हैं'। आर्थिक स्तर पर इनके लिए रोजगार उपलब्ध कराने की बात यहाँ लेखिका करती हैं ताकि यह समाज अपनी पारम्परिक भूमिका से बाहर आ सके और स्वतंत्र रूप से जीवनयापन कर सके। इसी तरह नाजबीबी का कहना अगर सरकार हमें भी हथियार दे दे। मैं तो लड़ूंगी। लड़ते-लड़ते हिंदुस्तान के पीछे अपनी जान दे दूंगी'। उपन्यास के अंत में नाजबीबी का यही संकल्प चुनाव में उनके खड़े होने की भूमिका

तय करता है और वह कहती हैं, जरूरत पड़ी तो भ्रष्ट लोगों के खिलाफ हथियार भी उठाऊँगी। हर गंदगी को जड़ से साफ कर दूंगी। दुनिया में शांति रहे, और क्या चाहिए किसी को? नाजबीबी का यह कथन शबनम मौसी, कमला जान, आशा देवी, कमला किन्नर और रायगढ़ की मेयर मधु किन्नर की याद दिलाता है जिसका कहना था कि वह ताली नहीं बजाना चाहती वह कुछ करना चाहती हैं। इसी तरह ट्रांसजेंडर एक्टिविस्ट लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ट्रांसजेंडर समुदाय के रोजगार के विकल्प में महिलाओं की सुरक्षा की जिम्मेदारी उन्हें देने और उससे संबंधित ट्रेनिंग की बात करती हैं। राजनीति यहाँ एक विकल्प के तौर पर इस समुदाय में उभर कर आती है। क्योंकि सत्ता, सत्ता की बात को सुनती और समझती है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण वह सभी लोग रहे जिन्होंने लंबे विरोध के बाद अपने लिए राजनीति में अलग पहचान बनाई और अपने समुदाय के लिए काम किया।

उत्पादन और उपयोगिता की राजनीति का प्रश्न उपन्यासों का केंद्रीय प्रश्न है, जहाँ जैविक और यौनिक भिन्नता समाज में इनके अस्तित्व को अस्वीकार्य बना देती है। तीसरी ताली उपन्यास में प्रदीप सौरभ लिखते हैं घर में ऐसे बच्चे का पैदा होना 'उसकी पैदाइश के साथ ही उसकी उपयोगिता को खत्म कर देता है। 'घर में बेटा जरूर हुआ था, लेकिन कुछ दिनों के अंदर ही परिवार को पता चल गया कि वह किसी काम का नहीं है। बढ़ने के साथ उसका पुरुषांग विकसित नहीं हुआ। उपयोगिता का यह प्रश्न सामाजिक व राजनैतिक उपयोगिता को दर्शाता है। जहाँ जैविक रूप से शरीर के किसी अंग का अविकसित होना विशेष तौर पर जननागों, उसके पूरे व्यक्तित्व को ही प्रश्न के घेरे में ला देता है। इसी कारण किन्नर कथा उपन्यास में राजशाही में पली बड़ी सोना को चंदा के रूप में इस समुदाय में पाला जाता है। क्योंकि ऐसे बच्चों को समाज व परिवार के डर से माँ-बाप छोड़ देते हैं। समाज के साथ-साथ राज्य भी इनके प्रति अपने उत्तरदायित्व को नहीं स्वीकारता। महताब गुरू कहते हैं 'कोई कुछ नहीं करता है। समाज भी नहीं, सरकार तो अपना वोट मांगने के लिए उन्हीं के सामने चारा फैकेगी न, जो रोज मुर्गियों की तरह अंडे देकर आबादी बढ़ाएगी। हम कौन से अंडे देने वाले हैं। अल्लाह मिया ने तो हमें वह नेमत दी ही नहीं। हिजड़ा समुदाय का यह जैविक यथार्थ है। इसी आधार पर समाज ने मुख्य धारा से इन्हें बाहर किया। यहाँ व्यक्ति की उपयोगिता को समाज उसके एक अविकसित अंग से ही क्यों सुनिश्चित करना चाहता है विचारणीय प्रश्न है?

यह समाज केवल जैविक असमानता को ही नहीं झेलता है वरन सामाजिक जेंडर आधारित असमानता का भी सामना करता है। समाज में स्त्री-पुरुष निर्धारित खांचों से बाहर इनकी यौनिक पहचान और अस्तित्व बार-बार इस असमानता को झेलने के लिए मजबूर होती है। यमदीप उपन्यास की नंदरानी अपने स्कूली शिक्षा के दौरान आए शारीरिक बदलाव को महसूस करने लगी थी। 'क्या नंदरानी, तुम कैसे चलती हो? हम लोगों की तरह चलो।.. कहीं हिजड़े देख लेंगे तो तुम्हें भी वही समझ बैठेंगे'। यहाँ समझ का मसला सामाजिक संरचना में इनकी स्थिति से है जिसे समाज द्वारा अपमान जनक बनाया गया है। हमारे समाज में जेंडर की सामाजीकरण की प्रक्रिया के तहत स्त्री और पुरुष व्यवहार व स्वभाव को ही समाज में स्वीकृति दी जाती है। ऐसे में इस समुदाय का व्यवहार समाज में स्वत: ही अव्यवाहारिक माना लिया जाता है। क्योंकि जेंडर निर्मिति में हमें इनके यौन व्यवहार की शिक्षा दी ही नहीं जाती बल्कि इनके यौन व्यवहार को कघनूनी अपराध माना जाता है। ऐसे में इस प्रकार के बच्चों का प्राकृतिक यौन व्यवहार उन्हें स्वयं से नफरत और आत्महत्या को मजबूर करता है। तीसरी ताली उपन्यास की निकिता की माँ सामाजिक मजबूरी के कारण अपनी बेटी को हिजड़ा समुदाय को सौप देती है और निकिता परिवार से दूर अपनी इस नई परिस्थिति को समझने और खुद की पहचान व भविष्य के प्रति आशंकित महसूस करती है। 'अपने को किसी से कम न समझने वाली निकिता के अंदर अपने आधे-अधूरे होने का हीन भाव घर करने लगा। उसके दिमाग की खिड़की अभी इतनी बड़ी नहीं थी कि वह ऐसे लोगों से प्रेरित हो पाती जो उसकी तरह ही थे....उसे यह बात सबसे ज्यादा डराती कि थोड़े दिनों के बाद नीलम उसे चुनरी पहनाकर मुकम्मल हिजड़ा बना जाती है। ऐसे में इस समुदाय का व्यवहार समाज में स्वत: ही अव्यवाहारिक माना लिया जाता है। क्योंकि जेंडर निर्मिति में हमें इनके यौन व्यवहार की शिक्षा दी ही नहीं जाती बल्कि इनके यौन व्यवहार को कघनूनी अपराध माना जाता है। ऐसे में इस प्रकार के बच्चों का प्राकृतिक यौन व्यवहार उन्हें स्वयं से नफरत और आत्महत्या को मजबूर करता है। तीसरी ताली उपन्यास की निकिता की माँ सामाजिक मजबूरी के कारण अपनी बेटी को हिजड़ा समुदाय को सौप देती है और निकिता परिवार से दूर अपनी इस नई परिस्थिति को समझने और खुद की पहचान व भविष्य के प्रति आशंकित महसूस करती है। 'अपने को किसी से कम न समझने वाली निकिता के अंदर अपने आधे-अधूरे होने का हीन भाव घर करने लगा। उसके दिमाग की खिड़की अभी इतनी बड़ी नहीं थी कि वह ऐसे लोगों से प्रेरित हो पाती जो उसकी तरह ही थे.. उसे यह बात सबसे ज्यादा डराती कि थोड़े दिनों के बाद नीलम उसे चुनरी पहनाकर मुकम्मल हिजड़ा बना देगी'। वह इस समाज में खुद के अस्तित्व का आंकलन नहीं कर पाती है और आत्महत्या कर लेती है। दूसरी ओर नंदरानी बार- बार महसूस करती है 'कि उसके शरीर का विज्ञान ही नंदिनी दीदी के विवाह में बाधक बनता है। कभी-कभी अपने ही हाव- भाव या चाल पर कुढ़ कर रह जाती। समाज कभी इनकी जैविक भिन्नता को तो कभी यौनिक भिन्नता को मुख्य धारा से अलग होने का कारण मानता है। सवाल उठता है कि आखिर मनुष्यता का तकाजा क्या इनके अस्तित्व और पहचान के लिए काफी नहीं है?

तीसरी ताली उपन्यास में ज्योति का प्रकरण पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार के एबीसीडी यानी आरा, छपरा के सफेदपोशों के घृणित और कुत्सित शौकों से परिचित कराता है। लौंडों के रूप में जिसमें खुबसूरत किशोरों को पहले तो शौकिया तौर पर पनाह दी जाती है और बाद में निकाल बाहर कर दिया जाता है। ऐसे में यह किशोर आर्थिक बदहाली यौन शोषण और समाज द्वारा अपमान से बचने के लिए हिजड़ा समूह में प्रवेश करते हैं। हिजड़ा समुदाय का यह उसूल है कि वह किसी भी पूर्ण स्त्री और पुरुष को अपने समूह में शामिल नहीं कर सकते हैं। सोनम ज्योति को समझाते हुए कहती है 'मैं तुम्हें हिजड़ा नहीं बना सकती। भगवान ने तुम्हें पूरा आदमी बनाया है। वैसे भी हम भगवान से डरते हैं। किसी सही आदमी को हिजड़ा बनाना हमारे समाज में कुफ्र है'। ऐसे में ज्योति का आगे बढ़कर कर स्वयं को हिजड़ा बनाने का प्रस्ताव "माना मैं मर्द हूँ, लेकिन ये समाज मुझसे मर्द का काम लेने के लिये राजी नहीं है। मुझे इस समाज ने मादा की तरह भोग की चीज में तब्दील कर दिया है। मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ या फिर हिजड़ा बन जाऊँ, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पेट की आग तो बड़ों-बड़ों को न जाने क्या से क्या बना देती है.... बिना हिजड़े के भी तो हिजड़ा बना हुआ हूँ। जो अपने को मर्द कहते हैं, वे कौन से हिजड़ों से कम हैं। गरीब का बेटा हूँ तो पूरे गाँव की भौजाई बन गया हूँ। ज्योति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति समाज के तथाकथित वर्ग बाबू श्यामसुन्दर सिंह जैसों की उपभोगी प्रवृति और शौकिया रिवाजों पर घृणा करने को मजबूर कर देती है। ज्योति का दिल्ली आकर नीलम के डेरे में हिजड़ा बनना इन्हीं

परिस्थितियों और शौकिया रिवाजों का परिणाम था। एक मुकम्मल पुरुष ज्योति के हिजड़ा बनने की रस्म और प्रक्रिया हमारे अन्दर एक ओर वितृष्णा भरती है तो दूसरी ओर एक प्रश्न भी हमारे आत्ममंथन के लिए छोड़ देती है कि आखिर इस समुदाय का अस्तित्व हमारे समाज में क्या है? इसी प्रकरण में गाँवों में स्वांग मंडली में नाच गा कर कमाने वाले लोगों की स्थिति ज्योति के समान ही देखी जाती है। काम हो जाने के बाद जिन्हें समाज द्वारा स्वांग वाला, खसुआ, जनखा, हिजड़ा कहकर टरका दिया जाता है। उनके काम को उनकी जेंडर पहचान से जोड़ कर उन्हें ताने मारे जाते हैं। उन्हें समाज में उपेक्षित बना दिया जाता है। इसी कारण ज्योति, रहमान जैसे गरीब परिवार के पुरुष जो समाज द्वारा रोजगार के नाम पर उपेक्षा का शिकार होते हैं। वह सभी दो वक्त की रोटी के लिए नकली हिजड़ों के रूप में यौन कर्म को अपनाते हैं और परिवार का भरण पोषण करते है। क्योंकि उनका मानना है इस लाइन में अच्छी कमाई होती है। पेट की यही आग तो हिजड़ों को नाचने गाने के साथ समाज की उपेक्षा और उपहास के दंश से बचने के लिये, वैश्यावृति में घुसने और रईसजादों के लौण्डेबाजी के शौक को पूरा करने के लिये मजबूर करती है।

आर्थिक स्थितियां मनुष्य को जितना मजबूर बनाती हैं

उससे कई अधिक प्रशासनिक गतिविधियाँ। प्रशासन भी अपने चरित्र में पितृसत्तात्मक होता है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी कहती हैं घायल हिजड़ो, बीमार हिजड़ों के साथ हॉस्पिटल में भेदभाव किया जाता है। पुलिस चौकी में उनके साथ हुई दुर्घटना को दर्ज नहीं किया जाता। स्वयं उनके साथ दो बार बलात्कार करने की कोशिश की गई। प्रशासन भी मौका पड़ने पर मदद की अपेक्षा शोषण की प्रवृति को अपनाता है। गुलाम मंडी उपन्यास की पात्र रानी जिसका जन्म तो पुरुष शरीर में हुआ था मगर उसकी यौनिकता स्त्री स्वभाव की थी। इसी कारण उसे परिवार में पिता के हाथों मार तक खानी पड़ी और समाज में भी अपमानित होना पडा। उसके अपमान का एक कारण उसकी यौनिकता थी तो दूसरी गरीबी। वह कहती है 'मुझ एक को छोड़ सब पूरे थे। मेरी दाढ़ी-मूंछ नहीं निकले। आवाज छोरियों जैसी रह गई तो सब मेरे को मारते-चिढाते-खिजाते थे। बाप भी जब देखो, तब हाथ छोड़ देता था। लोगों के घर बर्तन मांजने गई तो बोले, हिजड़े से बर्तन मंजवाएंगे क्या? मैंने कह दिया,... से बर्तन थोड़ी मांजते हैं, मांजते तो हाथ से ही हैं न। तो घराती ने थाने में रिपोर्ट कर दी कि हिजड़ाघर औरतों को छेड़ रहा है। अश्लील बाते कर रहा है। पुलिस मुझे पकड़कर ले गई। मारा भी और रेप भी किया। अब पूछो कानून के रखवालों से, भला हिजड़ों को पुरुष थाने में क्यों भेजते हैं। नहीं तो बनाए तीसरा थाना'। शारीरिक शोषण केवल महिलाओं के साथ ही नहीं होता बल्कि यह समाज भी इससे प्रताड़ित है। अंतर केवल इतना है कि महिलाओं के साथ हुए शोषण को संविधान में बलात्कार के अंतर्गत परिभाषित कर दिया गया है। मगर इस समुदाय के साथ किया गया यौन शोषण संविधान की किसी भी परिभाषा में दर्ज नहीं हो सका है।

निष्कर्ष:

हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित थर्ड जेंडर कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से इस समुदाय की व्यथा, वंचना और उपेक्षित जीवन को पर्याप्त स्थान दिया है। हालाँकि इस दिशा में अभी भी कई संभावनाएँ हैं। मुख्यधारा समाज से विलग रहने के कारण इनके जीवन की विस्तृत जानकारी भी दुर्लभ हो जाती है। इसके कारण इस समुदाय के प्रति कई तरह की गलत धारणाएँ भी चल पड़ी है। हालाँकि मानवीय संवेदना और सहानुभूति आधारित साहित्य की रचना करके इस वर्ग की सामाजिक स्वीकार्यता के लिए हिंदी साहित्य प्रयासरत है। इसके अलावा थर्ड जेंडर समुदाय के लोगों द्वारा स्वानुभूत आधारित साहित्य लिखे जाने की आवश्यकता है ताकि प्रामाणिक अभिव्यक्ति सामने आए। इसके लिए इस वर्ग की शिक्षा जैसी मूलभूत अधिकार तक पहुँच को आसान करना होगा। बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य में तृतीय लिंगी समाज के मानवीय अधिकारों और सम्मानजनक स्थिति के लिए उम्मीद की जा सकती है। उत्तर आधुनिक काल में प्रौद्योगिकी और तकनीकी के बढ़ते प्रयोग से द्विलिंगी समाज (जेंडर बाइनरी) की सीमाओं को तोड़ कर एक समावेशी समाज के निर्माण का अवसर भी है। समाज के एक बड़े तबके तक पहुँच बनाते हुए हिंदी कहानियों और उपन्यासों का स्थान इस दिशा में काफी महत्वपूर्ण हो जाता है।

संदर्भ:

1. थर्ड जेंडर : चर्चित कहानियाँ, सम्पादक-डॉ. विमल ग्यानोबाराव सूर्यवंशी, रोशनी पब्लिकेशंस, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ17
2. वाङ्गय त्रैमासिक पत्रिका (जनवरी-मार्च 2017), सम्पादक: डॉ. एम. फीरोज अहमद, नवमान आफसेट प्रिंटर्स अलीगढ़ में मुद्रित, ई-3, अब्दुल्लाह क्वाटर्स, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग अलीगढ़ से प्रकाशित, पृष्ठ 15
3. थर्ड जेंडर चर्चित कहानियाँ, सम्पादक डॉ. विमल ग्यानोबाराव सूर्यवंशी, रोशनी पब्लिकेशंस, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ 31
4. यमदीप, माधव, नीरजा, सुनील साहित्य सदन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-93,
5. किन्नर कथा-भीष्म, महेंद्र, सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ-8.
6. तीसरी ताली: प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन,
7. गुलाम मंडी, निर्मला भुराड़िया, सामयिक प्रकाशन
8. वाङ्गय त्रैमासिक पत्रिका (जनवरी-मार्च 2017), सम्पादक: डॉ. एम. फीरोज अहमद

हिन्दी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन

रीना चन्दौला

शोधार्थी, चन्द्रावती तिवारी कन्या स्नात्कोत्तर, महाविद्यालय काशीपुर।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा को आधुनिक महाकाव्य कहा गया है। उपन्यास विधा हिन्दी गद्य साहित्य की सर्वोपरि विधाओं में से एक मानी गयी है। आज के समय में हिन्दी साहित्य पुरानी विचारधाराओं से अलग होकर वैज्ञानिक तथा नई आधुनिक विचारधारा की तरफ आगे की ओर बढ़ रहा है, तो इसमें जिसका सबसे ज्यादा योगदान है वह है उपन्यास विधा। गद्य साहित्य हिन्दी के विकास का नवीन साहित्य का रूप माना गया है। हिन्दी में गद्य विधा के माध्यम से नवीन क्रान्तियों तथा विचारों के सम्पर्क में आए तथा इसी परिणामस्वरूप पैदा हुए वातावरण में साहित्य और देश के नवीन विकास के कई परिवर्तन हुए। उपन्यास विधा के माध्यम से साहित्य और समाज की सभ्यता, आलोचना तथा विवेचना करता है। उपन्यास समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। यह मानवीय चेतनाओं का यथार्थ चित्रण होता है।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास के माध्यम से समाज में चित्रण के साथ ही विभिन्न प्रवृत्तियों का भी वर्णन होता है। विभिन्न विमर्श के दौर में उपन्यास विधा का सर्वोपरि स्थान है। समाज के दलित विमर्श स्त्री विमर्श के साथ ही किन्नर विमर्श भी चर्चा का मुख्य विषय बन गया है। किन्नर विमर्श की मूल संवेदना को व्यक्त करने का मुख्य स्रोत उपन्यास ही बने है। उपन्यासों के द्वारा ही किन्नरों के संघर्षों तथा मूल भावनाओं को साहित्यकारों ने पाठको के समक्ष रखा है। उपन्यासों के माध्यम से किन्नरों की व्यक्तिगत विभिन्नताए एवं समाज की उपेक्षा तथा प्रताड़ना आदि देखने को मिलते हैं। हिन्दी साहित्य में इक्कीसवीं सदी में किन्नर समुदाय को लेकर कई उपन्यास लिखे गये है। इन उपन्यासों के आधार पर ही हमें किन्नर समुदाय की मूल संवेदना की जानकारी प्राप्त होती है। किन्नर समाज में आधारित उपन्यास दरमियाना (सुभाष अखिल), अस्तित्व (गिरिजा भारती), जिन्दगी 50:50 (भगवन्त अनमोल), यमदीप (नीरजा माधव), किन्नर कथा (महेन्द्र भीष्म), मैं पायल (महेन्द्र भीष्यम), तीसरी ताली (प्रदीप सौरभ), गुलाम मंडी (निर्मला भुराड़िया), तीसरे लोग (गीतांजलि चटर्जी), प्रति संसार (मनोज रूपड़ा), मैं भी औरत हूँ (अनुसूया त्यागी), पोस्ट बॉक्स नम्बर 203 नालासोपारा (चित्रा मुद्गल) आदि है। प्राचीन समय में शोध कार्य की लम्बी परम्परा में किन्न समुदाय हमेशा से वंचित रहा था। जबकि हम इतिहास में किन्नर समाज की समस्या को देखते थे। किन्नर समास हिन्दी साहित्य से पृथक ही रहा था। तत्पश्चात् धीरे-धीरे विस्तार होने लगा। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श तथा आदिवासी समाज चर्चा का विषय बना। समकालीन समाज में किन्नर विमर्श एक ज्वलंत मुददा बन गया है। इस पर शोध कार्य तीव्र गति से हो रहे है। इससे एक नई दिशा का प्रसार व प्रचार होता है। हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श को स्थान मिलने में सदिया लग गई। किन्नरों को समाज में हास्यपद तथा मनोरंजन की वस्तु मात्र समझा जाता है। पहले समय से ही किन्नरों को मुख्यधारा से पृथक देखा गया है। प्राचीन समय से ही किन्नर शुभ अवसरों में ही याद किए जाते थे। इन्हें केवल स्वार्थ के लिए ही याद किया जाता था। किन्नर समुदाय आज भी मुख्यधारा से नहीं जुड़ा है, लेकिन अब इससे सम्बन्धित उपन्यास लिखे जाते हैं, उपन्यासों के माध्यम से ही किन्नर समुदाय की सांस्कृतिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक जानकारी प्राप्त होती है। लेखकों ने सूक्ष्म दृष्टि से किन्नर समुदाय की समस्याओं को भी उजागर किया है। समाज ने किन्नरों को अपने से पृथक कर हाशिए पर रख दिया है, किन्नर अपनी समस्या को सुलझाने के लिए स्वयं ही अपने भगवान का चुनाव करते हैं। इनकी संस्कृति सामान्य मनुष्य से बहुत अलग होती है। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं, या फिर यह भी कह सकते हैं, कि जानना भी नहीं चाहते हैं।

हिन्दी साहित्य में यमदीप उपन्यास किन्नर विमर्श का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है। यह उपन्यास 2002 में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक नीरजा माधव है जो कि समकालीन हिन्दी साहित्यकारों में एक प्रसिद्ध लेखक मानी जाती हैं। नीरजा माधव की कथा साहित्य के साथ ही कंधेतर गद्य साहित्य में भी समान महारत हासिल है। इन्होनें आधुनिक समय की सम सामायिक विषयों पर अपने उपन्यास लिखे हैं, जोकि हिन्दी साहित्य को नई दिशा प्रदान करता है। यमदीप उपन्यास में नंदरानी सोना तथा मानवी आदि पात्रों के मध्य एक कथा है। जोकि किन्नर पात्र नंदरानी (नाजवीवी) के माध्यम से किन्नर समाज की मूल संवेदना को व्यक्त करने वाला एक उपन्यास है। इस उपन्यास में मानवी एक पत्रकार है, जोकि संवेदनशील विषय पर अपने विचार खुलकर रखती है और अपने इस कार्य के प्रति तत्पर रहती है। दूसरी तरफ नाजवीवी एक किन्नर है, जोकि किन्नर होने के साथ ही मानवीय गुणों से परिपूर्ण एक पात्र है। वह अपने मानवीय गुण का परिचय देती है। इस उपन्यास में नाजबीबी के किन्नर होने के कारण परिवार से अलग होने की भी कहानी है कि किस प्रकार किन्नर को किस-किस परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। समाज उन्हें अलग दृष्टि से देखता है। 2002 के बाद से हिन्दी साहित्य में कई उपन्यास लिखे गये हैं। तृतीय लिंगी समुदाय अपने आपको लोगों से जोड़ने का बहुत प्रयास करते हैं, लेकिन समाज इन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करता है। इस समुदाय का केवल यही प्रयास होता है कि लोग मुख्य धारा से इन्हें अलग न समझें। इनमें भी मानवीय मूल्यों का संरक्षण होना चाहिए। इनके सपनों को भी पूरा करने का अवसर इन्हें मिलना चाहिए। इसके अस्तित्व को लोगों स्वीकार करें। केवल कागज की स्वीकार्यता ही नहीं चाहिए। बल्कि इन्हें मानवीय संवेदना मिलनी चाहिए।

हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के माध्यम से किन्नर जीवन के पीछे छिपे पहलू पीड़ा, वेदना, संघर्ष आदि जानने को मिलता है। उपन्यासों के द्वारा किन्नरों की मानसिक स्थिति का भी वर्णन किया जाता है। किन्नरों का जो सर्वप्रथम बहिष्कार होता है वह उनके परिवार के द्वारा होता है। जब परिवार वाले को यह

ज्ञात होता है, कि यह न तो पुरूष है तथा न ही नारी तो वहीं लोग उनसे घृणा करने लगते हैं। वह उन्हें धीर-धीरे नरजअंदाज करने लगते है। बस यहीं से उनका संघर्ष तथा कठिनाई आरम्भ हो जाती है, जोकि लेखक ने अपने-अपने माध्यम से कथा का निर्माण कर लेते हैं। हर एक किन्नर की अपनी-अपनी कहानी होती है, किन्नरों के पारिवारिक तथा सामाजिक बहिष्कार के पीछे समाज का दबाव तथा उनके प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित मानसिकता वाले लोगों का योगदान होता है। जिसका प्रभाव उनके माता-पिता पर भी पड़ता है और भी उनको अपने से पृथक करते हैं।।

किन्नर विमर्श से सम्बन्धित उपन्यासों से हमें विभिन्न समुदाय की दयीनय स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। मुख्यधारा किन्नर समुदाय के प्रति संवेदनशीलता, उपहासात्मक व्यवहार तथा नकारात्मक मानसिकता इसके साथ हमेशा रखते हैं तथा समाज इन्हें अंधेरे की और धकेलता रहता है। अपने अधूरे लिंग के कारण किन्नरों को समाज से पृथक करा जाता है। अगर ये अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाते हें, तो इन्हें प्रताड़ित करा जाता है। तथा मारा और पीटा भी जाता हे। जो लोग पूर्वाग्रहों से ग्रसित विचारों वाले हैं, वह इनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। इनको शिक्षा से भी अलग रखा जाता है। इसके हाव-भव को देखकर कोई भी इनको काम में भी नहीं रखते हैं। मुख्यधारा के कारण किन्नरों को आत्मनिर्भर बनाने के सारे दवार बन्द कर दिए जाते हें। इनको अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यासों का अध्ययन से हमें ऐसी छोटी-छोटी जानकारी मिलती है, जो सामान्य समस्यायें होती है। जिनका वर्णन हमें हर उपन्यास में देखने को मिलता हे। उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा में बिन्नी नामक पात्र को पारिवारिक तथा सामाजिक दबाव झेलना पड़ता है, इसके अतिरिक्त किन्नर कथा में सोना तथा तारा, यमदीप में नाजबीबी, तीसरी ताली में निकिता, ऐ जिन्दगी तुझे सलाम में रोशनी, गुलाम मंडी में अनारकली तथा अस्तित्व की तलाश में सिमरन आदि पात्र है जो समाज से उपेक्षित पात्र है। पोस्ट बाक्स नं0 203 नाला सोपारा में बिन्नी उर्फ विनोद अपने किन्नर समुदाय को जागरूक करता है। इसके अतिरिक्त यमदीप में यह बताया गया है कि यदि माता पिता अपने किन्नर सन्तान को अपनाना चाहते हैं तो उन्हें किन-किन परिस्थितियों तथा समस्यायों का सामना करना पड़ता है। किन्नर समुदाय परिवार तथा समाज की प्रताड़ना से यह समुदाय आवास तथा विस्थापन क समस्या को झेलता रहता है।

किन्नर जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों में किन्नर समुदाय के पीड़ा, संघर्ष विस्थापन, अकेलापन तथा त्रासदी आदि महत्वपूर्ण विषयों पर उपन्यासकारो इनको मुख्य धारा से जोड़ने का हर सम्भव प्रयास कर रहे हैं। किन्नरों में भी स्नेह, प्रेम, करूणा तथा ममता आदि के भाव होता है, जोकि सामान्य जन की संवेदना तथा भावना से किसी भी रूप से पृथक नहीं है, अतः इन उपन्यासों में भारतीय वर्ग तथा समाज के प्रति मूल संवेदनाओं को जागरूक करने का उपन्यासकारों ने सफलतापूर्वक प्रयास किया है। इनके हर एक पहलू को पाठक तक पहुँचाने का प्रयास किया है। उपन्यासकारों ने इनमें समाज के प्रति सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पक्षों का सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. हिन्दी उपन्यासों के आईने में थर्ड जेंडर, डॉ0 विजयेन्द्र प्रताप सिंह।
2. विमर्श का तीसरा पक्ष, जगदीश पंवार।
3. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, धनराज मानधाने
4. साहित्य और समाज में उभरता किन्नर विमर्श, सं0-भारती अग्रवाल, नालंदा प्रकाशन दिल्ली 2019।
5. किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में, डा0 इकरार अहमद वांग्मय बुक्स अलीगढ, 2017।
6. किन्नर गाथा, शीला डागा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019।

डॉ० सूरज सिंह नेगी का वृद्ध विमर्श में योगदान

डॉ० प्रविण देशमुख

शोध मार्गदर्शक, गुलाम नबी आजाद कला, वाणिज्य, महाविद्यालय, बार्शीटाकली अकोला

कु. राजकन्या राघोजी भगत

शोधार्थी, श्री. शिवाजी कनिष्ठ महाविद्यालय, कुटासा अकोला विज्ञान

साहित्यकार एवं प्रशासनिक अधिकारी अद्यतन हिंदी कथा साहित्य के चर्चित एवं वरिष्ठ युवा कथाकार डॉ. सूरज सिंह नेगी का जन्म अल्मोड़ा जिले में 17 दिसंबर 1967 में हुआ। पिता स्व. इंद्रसिंह नेगी तथा माता लक्ष्मीदेवी जी की छत्रछाया में रहते हुए हाई स्कूल में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात् राजस्थान यूनिवर्सिटी, जयपुर में प्रथम श्रेणी से एम.कॉम तथा एम.फिल करते हुए "A CriticalAppraisal of Industrial Development of Rajasthan" विषय पर पीएच.डी. की उपाधि ग्रहण कर नेगी जी संप्रति सवाई माधोपुर में अतिरिक्त जिला कलेक्टर एवं अतिरिक्त जिला मजिस्टेèkट के पद को शोभायमान कर रहे हैं।

साहित्य को समर्पित डॉ. सूरज सिंह नेगी जी ने पत्र-विधा को जीवन्त बनाने के अलावा साहित्यधर्मी भी हैं। 'पापा फिर कब आओगे' कहानीसंग्रह के अतिरिक्त उनके 'रिश्तों की ऑच', 'वसीयत','यह कैसा रिश्ता', 'नियतिचक्र', 'सांध्य पथिक' शीर्षक से उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। 'रिश्तों की ऑच' का उर्दू में एवं 'नियतिचक्र' का अनुवाद राजस्थानी भाषा में हो चुका है। 'यह कैसा रिश्ता' का अनुवाद अन्य भाषाओं में हो रहा है। 'संस्मरण में 'ईजा' नामक किताब प्रकाशित हो चुकी है। साहित्य सृजन के लिए राज्य एवं राष्ट्रीèkय स्तर के अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त कर चुके डॉ. सूरज सिंह नेगी की रचनाओं के केन्द्र में आम व्यक्ति, जीवन मूल्य, मानवीय संवेदनाएं, प्रकृति चित्रण प्रमुख है। डॉ. सूरज सिंह नेगी की रचनाओं पर विश्वविद्यालयों में शोधकार्य हो रहा है। साहित्यीक गतिविधियों तथा राजकीय गतिविधियों के निर्वहन हेतु उन्हें कई अवार्ड एवं सम्मान प्राप्त हो चुके हैं।शिक्षा में नवाचार पर जोर- डॉ. नेगी जी ने टोंक एवं अजमेर में कार्यरत रहते हुए अनेक विद्यालयों को न सिर्फ गोद लिए अपितु उनमें कई नवाचार भी करवाए जिनमें स्टार ऑफ द क्लास, स्टार ऑफ दी स्कूल, मेरा कोना सबसे अच्छा, आओ पेड़ गोद ले, इनसे मिलिए इनको जानिए, आओ लेख सुधारे प्रमुख है। डॉ. सूरज सिंह नेगी लोगों की खोई हुई संवेदनाओं को जाग्रत कर रहे है एवं स्कूली बच्चों के बीच में जाकर उनको एक अच्छा नागरिक एवं संवेदनशील इंसान बनाने में रत है।

डॉ. सूरज सिंह नेगी एक प्रतिभावान लेखक हैं। उन्होंने अपनी रचना के केन्द्र में जनसामान्य को रखा हैं। उनका कथा साहित्य यथार्थ को चित्रित करते हुए भी आदर्श के प्रति पाठक को सचेत करता हुआ चलता है। क्या हो रहा है तथा क्या होना चाहिए इसका हल उपन्यासों में लेखक द्वारा परत दर परत गंभीरता से स्पष्ट कर दिया जाता है। यह आदर्शात्मक समाधान पाठक को ना सिर्फ संस्कारों एवं जीवन मूल्यों के बारे में सोचने को विवश करता है अपितु, एक साकार रूप ग्रहण करते हुए पाठक के व्यावहारिक जीवन का हिस्सा बनने का सामर्थ्य रखता है। उनका संपूर्ण कथा साहित्य में वृद्ध जीवन का जीवंत एवं सुक्ष्म चित्रण मिलता है। आज मौजुदा परिस्थितियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि हमारे देश के बुजुर्गों को अपने परिजनों से सामंजस्य नहीं बना पाते तब उनके सामने वृध्दाश्रम का ही विकल्प रहता है, जो सभी के लिए आसान भी नहीं है इसीलिए आवश्यकता है कि वृद्धों के प्रति संवेदनशीलता से विचार कर उनकी भावनाओं को समझने का प्रयास करने की। 'रिश्तों की ऑच' उपन्यास में लेखक कहते हैं- 'अक्सर बुढ़ापे में इंसान दूसरों पर निर्भर हो जाया करता है। जो काम हम यौवनावस्था में स्वयं कर लेते है, जैसे भी आना हो, जाना हो, क्या खाना, किससे मिलना, इन सबमें स्वतंत्र होते हैं। वृद्धवस्था आते ही इन सभी कामों के लिए दूसरों पर निर्भर हो जाते हैं।'[1] इसके माध्यम से सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में बुजुर्गों की समस्याओं को समझना, उनका अध्ययन करना और संभावित समाधानों को खोजने का प्रयास करना ही लेखक का प्रमुख प्रयास रहा है।

वृद्ध माता-पिता के प्रति संवेदनशून्यता के इस युग में संवेदनशीलता एवं भावों की गहराइयों के साथ लिखा गया उपन्यास 'वसीयत' जिसमें लेखक ने उत्तराखण्ड की कुमाऊंनी भाषा को शामिल कर पारिवाारिक रिश्तों की महत्ता को उजागर करने का प्रयास किया है। लेखक ने यथार्थ को दिखाते हुए माता-पिता की पीड़ा का वर्णन करने के लिए कई ऐसी घटनाओं को आधार बनाया है जो सीधे पाठक के हदय को रोमांचित करते हुए स्थिति पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है। नायक विश्वनाथ के माध्यम से कथाकार ने विश्वनाथ के पिता एवं विश्वनाथ के पुत्र दोनों के व्यवहार की तुलना करते हुए कथानक को आगे बढाया है। जब विश्वनाथ का पुत्र उसकी उपेक्षा करता है तब पुत्र द्वारा की गई यही उपेक्षा विश्वनाथ को अपने पिता के साथ स्वयं द्वारा किए हुए व्यवहार की याद दिलाता है। ऐसी स्थिति में उसे अपने पुत्र राजकुमार में अपनी युवावस्था तथा स्वंय में अपने पिता की परछाई नजर आती है। उसे याद आता है कि उसने पिता को इसीलिए दोषी माना कि उन्होंने उसे विदेश पढ़ने हेतु नहीं भेजा। तब से उसने माता-पिता से मुँह मोड़ लिया और यही कारण है कि उसे विदेश जाने का पत्र जान से भी प्यारा लगा, लेकिन पिता द्वारा भिजवाए गये उस पत्र का मूल्य कुछ भी नही, जिसमें उसकी मां की बीमारी तथा अंतिम इच्छा को

बताते हुए पिता उसे घर बुला रहा है। स्मृति शैली में लिखे गए इस उपन्यासमें डायरी तथा पत्रों के माध्यम से कथा को सार्थक विस्तार मिला है। विश्वनाथ की वृध्दावस्था से आरंभ होनेवाला यह उपन्यास पुत्र राजकुमार के व्यवहार को तो पाठक के सामने रखता ही है किंतु वर्तमान के प्रति चिंतित तथा पश्चातापबोध से ग्रस्त विश्वनाथ द्वारा जो गलतियां हुई है उन्हें भी समानांतर बताता है। बुजुर्ग शर्मा के साथ घटित घटना के माध्यम से लेखक ने आज की संपूर्ण वृध्द की स्थिति को रख दिया है। जहॉ अपने ही पोते के जन्मदिन पर घर के नोकर को तो पार्टी में ले जाया जाता है किंतु दादा को नहीं। पार्टी के दिन अकेले घर पर रह रहे दादा के खाने की व्यवस्था भी नहीं की जाती है। शर्मा जी के शब्दों में- 'बहू तो पराये घर की बेटी है, उसे क्या दोष दूँ, उसने तो मेरी तकलीफें नहीं देखी हैं। पर मेरा करण जो बचपन से ही मेरी मजबूरी देखता आ रहा है आज मेरी भावना को न समझ सका। मैंने एक-एक पल कैसे बिताया मेरी आत्मा ही जानती है। रात के ग्यारह बजे तक बेसब्री से इंतजार करता रहा। न कोई फोन आया, न ही वह लोग पार्टी कर घर वापस लौटे। भूख के मारे हाल बेहाल हो रहा था। सोचा था पार्टी में से लौटते समय मेरे लिए खाना पैक करके ले आयेंगे। मैंने किचन में देखा कुछ न था, तभी टिफिन पर नजर पड़ गई। अक्सर सुबह की बची हुई रोटियॉ टिफिन में रख दी जाती हैं, और शाम को कामवाली बाई को दे दी जाती हैं। मैंने टिफिन में रखी रोटी निकाली और खाकर भूख शान्त कर डाली।'[2] इसप्रकार युवा पीढ़ी अपनों के अपनेपन को खोती जा रही है, इसका बखूबी चित्रण उपन्यास में किया गया है। उपन्यास में जिसे 'वसीयत' माना गया है वह है विश्वनाथ के पिता की डायरी। जिसमें उनके पिता ने लिखा है कि- 'मेरे पुरखों द्वारा आजन्म, परोपकार, परहित और सत्य का पालन करते हुए संस्कार, जीवनमूल्यों तथा सिध्दांतो के साथ जीवन यापन किया गया, जिनका अनुसरण मैंने अपने संपूर्ण जीवन कोल में किया, यही मेरी असल कमाई है, जिसे मैं आज अपने विश्वा के नाम वसीयत के रूप में समर्पित करता हूँ।'[3] लेखक द्वारा लिखा गयी उपन्यास की यह पंक्तियॉ न केवल उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता को सिध्द किया है वरन वृद्धावस्था में जीवन को नैराश्यपूर्ण ना बनाकर मातृभूमि की सेवा में समर्पित हो जानेवाले भाव की ओर भी दिशा निर्देशित करती है। कुल मिलाकर परिवार, पैसा, नाम व शोहरत इन सभी के तालमेल पर आधारित है- 'वसीयत' उपन्यास। जिसमें हमारे समाज का यथार्थ चित्रित हुआ है।

'नियतिचक्र' उपन्यास में पिता के स्नहे का चित्रण किया है जो अपनी औलाद के वात्सल्य एवं प्रेम के वशीभूत होकर अपना सबकुछ अपनी औलाद को सुपुर्द कर देता है। बेटा उस पिता के त्याग और प्रेम को नहीं समझ पाता। अपने अंतिम समय में पिता को अपने ही घर से बेघर होना पड़ता है। यहॉ तक की अपना वास्तविक नाम तक छिपाना पड़ता है ताकि दुनिया उसके बेटे को ताने न दे। 'नियतिचक्र' उपन्यास में पुत्र चित्रांश अपने पिता के बारे में कहता है- 'मैंने बाबूजी के जीवन काल में उनका तिरस्कार किया, मैं स्वंय उनको अपना प्रतिद्वन्द्वी मान बैठा, मुझे लगा जैसे वह पुरातनवादी विचारधारा के साथ जी रहे है। यहॉ तक कि उनके घर से जाने के बाद भी मुझ पर कोई असर नहीं हुआ, लेकिन इस पुण्यात्मा को सम्मान न देने का नुकसान मुझे उठाना पड़ा। धीरे-धीरे कंपनी घाटे में जाने लगी, तैयार किए जा रहे माल की गुणवत्ता घटिया होने से बाजार में खरीददार नहीं मिले। कार्य का बोझ बढ़ता जा रहा था। इसी दौरान जब आपसे मुलाकात हुई और बाबूजी के विषय में नजदीक से जानने का अवसर मिला, मैंने प्रण कर लिया था कि उनके बताए गए मार्ग पर चलूँगा आप द्वारा सौंपी गई बाबूजी की डायरी एक जीता जागता जीवन दर्शन है।[4] एक पुत्र की बदलती हुई मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने चित्रांश के हदय परिवर्तन को दिखाया है।- 'पिताजी की डायरी जब भी किसी संकट में या असमंजस में होता हूँ मेरा मार्गदर्शन करती है, लगता है जैसे मेरे बाबूजी आज भी मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं। जिन कर्मनिष्ठ और संस्था के वफादार कर्मचारियों को मैंने अहंकारवश संस्था से निकाल दिया उनसे पुन: संपर्क साधा और उन सबको अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करते हुए संस्था में लौट आने का आग्रह किया। आज बाबूज के समय के कुछ वफादार कर्मचारी मार्गदर्शक की भूमिका में कार्य कर रहे है। सच यही है कि मैं अहंकार के वशीभूत इन नींव के पत्थरों की कद्र न कर सका और कंगारूओं को देख उन्हीं को सब कुछ मान बैठा था।'[5] इस तरह उसे अपनी भूल का अहसास होता है वह समझ जाता है कि जिस चकाचौंध में वह रह रहा था यह सब पिता के आशीर्वाद से ही था। किंतु अब उसे समझ में आ गया था कि कर्म ही इंसान को महान बना सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि डॉ. सूरज सिंह नेगी का वृद्ध विमर्श में योगदान सराहनीय रहा है। उन्होंने वृद्ध विमर्श पर केंद्रीत चार उपन्यास लिखकर एक नई मिसाल कायम की है। उन्होंने अपने उपन्यासों में पारिवारिक रिश्तों में वृद्धों की पीड़ा का यथार्थ चित्रण किया हैं। उनका नियतिचक्र उपन्यास अन्य उपन्यासों से एक कदम आगे है। इस उपन्यास का पिता पुत्र प्रेम के वशीभूत बच्चों को समाज के ताने न सुनने पडेघ इसलिए वह अपना वास्ततिक नाम भी छिपाता है, जिससे उनके बच्चों की बेइज्जती न हो। इससे बड़ी जीवन की विटंबना क्या हो सकती है वृद्धों की। उन्होंने संवेग, मानवीय संवेदना, परम्परागत मूल्यों को स्थापित करते हुए उपन्यासों की रचना की है। आज वृद्धों के प्रति जो संवेदनशुन्यता दिखाई देती है वही यथार्थ रूप में हमें उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। साथ ही डॉ. नेगी जी ने अपने साहित्य के माध्यम से पत्र विधा तथा डायरी विधा की प्रासंगिकता को भी सिध्द किया है। सहज, सरल भाषा को अपनाते हुए डॉ. सूरज सिंह नेगी जी का संपूर्ण साहित्य उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के साहित्य के समान आदर्शउन्मुख यथार्थवादी साहित्य है।

संदर्भ:-

1. 'रिश्तों की ऑच' उपन्यास, डॉ. सूरज सिंह नेगी, नवजीवन प्रकाशन,2016 पृ. 101
2. 'वसीयत' उपन्यास, डॉ. सूरज सिंह नेगी, साहित्यागार प्रकाशन , पृ. 80
3. 'वसीयत' उपन्यास, डॉ. सूरज सिंह नेगी, साहित्यागार प्रकाशन, पृ. 213
4. 'नियतिचक्र' उपन्यास, डॉ. सूरज सिंह नेगी, सनातन प्रकाशन, पृ. 122
5. 'नियतिचक्र' उपन्यास, डॉ. सूरज सिंह नेगी, सनातन प्रकाशन, पृ. 123

"वेश्या समाज के बदलते स्वरुप को दर्शाता हबीब कैफी का उपन्यास: 'सफिया"

सलमा अश्फा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

शोध सार:- हबीब कैफी एक राजस्थानी साहित्यकार के रूप में विख्यात हैं। हबीब कैफी की रचनाओं में समाज की अनेक समस्याओं को साहित्यिक रूप में उजागर किया गया है। उनके कथा साहित्य में स्त्री विमर्श की एक लम्बी यात्रा रही है। हबीब कैफी के स्त्री पात्र केवल प्रश्न ही नही उठाते बल्कि वह नारी अस्मिताबोध जैसे मानदंडों से संघर्ष कर समाज में अपना अस्तित्व भी बनाते हैं। हबीब कैफी के पात्र समाज की कुरीतियों, विडम्बनाओं पर प्रश्न चिन्ह लगाते दिखाई देते है फिर बात वेश्या की हो, वृद्धों की या बाल-शोषण की। उनके पात्र सामाजिक विसंगतियों का विरोध कर समाज में अपना स्थान बनाते हुए दिखाई देते है। 'सफिया' उपन्यास के माध्यम से हबीब कैफी 'सफिया' नामक पात्र के द्वारा एक वेश्या का पारिवारिक जीवन में अपना स्थान बनाने के संघर्ष का वर्णन करते हैं। मध्यवर्गीय समाज की (बिजनेस क्लास) स्त्रियों की आंतरिक वेदना का सच समाज के सामने लाने का प्रयत्न करते हैं। 'सफिया' नायिका के द्वारा वेश्या स्त्री के वैवाहिक जीवन, पारिवारिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष एवं जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं की सार्थकता पर दृष्टि डालते हैं।

बीज शब्द:- हबीब कैफी, सफिया, वैश्या, मध्यवर्गीय समाज, परिवारिक संघर्ष, अस्तित्वबोध, मानसिकता, स्त्री-वेदना।

मूल आलेख- भारतीय समाज में स्त्री सदैव से पुरुष की अर्धांगिनी मानी गई है। दोनों एक समाज रूपी गाड़ी के दो पहियों हैं जो आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, हालाँकि भारतीय समाज में नारी के अनेक रूप देखने को मिलते हैं- पुत्री, पत्नी, माता, बहन आदि। प्राचीनकाल से देखा जाए तो गृहणी के रूप में घर चलाने वाली स्त्री ही होती है। स्त्री का परम कर्तव्य केवल परिवार का पोषण करना रहा है तथा उसकी भूमिका परिवार के प्रत्येक प्राणी के विकास में सदैव एक सहायक की रही है। परन्तु समाज की स्त्री का एक और रूप है जिसे समाज स्वीकृत नहीं करना चाहता है और वह है 'वेशया'। जीवन की विवशताओं के कारण पथभ्रष्ट या अनेक मजबूरियों के चलते पथभ्रष्ट हो जाने वाली शोषित एवं प्रताड़ित स्त्री को 'वेश्या' का नाम दे दिया गया है। स्त्री को वेश्या बनाने में समाजिक एवं आर्थिक कारक मुख्य रूप से उत्तरदायी रहें हैं। एक वेश्या को सदैव ही सामाजिक रूप से बहिष्कृत किया जाता रहा है। आधुनिक समय में समाज के परिवर्तन के साथ-साथ वेश्या जीवन संघर्षरत होने के बाद भी बहिष्कृत समाज में अपना स्थान बनाने में थोड़ा सफल हो पाया है। प्रेमचन्द ने यह अनुभव किया था कि "समाज के समुचित विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि नारी को उचित सम्मान मिले और वह पतिता बनने के लिए बाध्य न की जाए।"[1]

हबीब कैफी के उपन्यास 'साफिया' में वेश्या समाज का बदलता स्वरूप:- आधुनिक स्त्री-विमर्श के स्तर पर स्त्री चेतना से उत्पन्न अनेक कहानियां और उपन्यास लिखे जा रहे हैं, जिसमें स्त्री की आत्मा, स्व, अहं, अस्मिता आदि ध्वनित हैं। लेकिन बात जब वेश्या की हो तो उसके अहं, अस्मिता को ठेस पहुँचाने में लोगों को कोई परेशानी नहीं आती है। हालाँकि सत्य इसके विपरीत है क्योंकि कोई भी स्त्री स्वयं ही वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसित नहीं होती है। इस सम्बन्ध में 'सफिया' उपन्यास में हाजरा बी कहती है कि- "सफिया कोई खानदानी तवायफ नहीं थी। वह किस खानदान से है, मैं यह भी नही जानती। बस इतना ही जानती हूँ कि मुश्किल से वह जब तीन बरस की थी तो उसे मैंने फकत पाँच सौ रुपयों के एवज खरीदा, पाल-पोस कर उसे बड़ा किया, अच्छी तालीम दिलाई। माहिर उस्ताद की निगरानी में रक्स और नग्मे का रियाज कराया और आस लगाए रही कि जवानी की दहलीज पर उसके कदम पड़ते ही मेरे यहाँ सोना बरसने लगेगा।"[2]

सफिया' उपन्यास हबीब कैफी के प्रमुख उपन्यासों में से एक माना जाता है। यह उपन्यास सन् 1988 में प्रकाशित हुआ था। 'सफिया' उपन्यास एक वेश्या स्त्री के जीवन की कहानी है। जिसमें उसके एक सम्मानित परिवार की बहु बन जाने के बाद उसके जीवन में होने वाले संघर्ष को दिखाया गया है। एक समय था जब वेश्याओं से बात करने में भी लोग कतराते थे। वेशयावृति में लिप्त नारी को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। यदि वेश्या वेश्यावृति को त्याग दे तो उसे आजीवन इधर-उधर भटकना ही पड़ता है। उसके चरित्र पर लगे दाग को वही पुरुष, वहीं समाज कभी नहीं मिटा कर अपनाता जो उसे वेश्या बनने पर विवश करता है। उसे एक पतित नारी की संज्ञा दे दी जाती है, चाहे वह कितना ही त्यागपूर्ण जीवन क्यों न व्यतीत करे, उस पर विश्वास नहीं किया जाता है। सफिया अपनी अन्त: भावना को व्यक्त करते हुए अपने पति जलाल से रोते हुए कहती है- "मैं जो भी थी उसे भुला चुकी हूँ। भीतर की तवायफ का गला घोट कर हमेशा के लिए गहरे में दफन कर चुकी हूँ। अपने बदन से औरों की छुअन तक को मिटा चुकी हूँ, और उसके लिए मुझे बड़ा जतन करना पड़ा है।"[3]

हबीब कैफी ने 'सफिया' के द्वारा वेश्या की बदलती स्थिती, परिवार में उसका स्थान, मध्यवर्गीय समाज में बिजनेस क्लास पार्टियों में होने वाले शारीरिक शोषण, नजरों द्वारा किया जाने वाला शोषण आदि का चित्रण किया गया है। स्त्री केवल पुरुष प्रेम चाहती है और उसी की प्रेम छाया के तले अपना पूरा जीवन बिताना चाहती है। एक वेश्या भी यही भाव रखती है कि कोई उसे अपनाये, कोई उसे भी प्रेम के साथ अपने साथ रखने को तैयार हो परन्तु उसके साथ

स्थिती बिल्कुल विपरीत है। भूख और यौन संबंध से आगे वेश्या नारी का पारिवारिक जीवन में अपना स्थान बनाने और पारिवारिक जीवन में संघर्ष की दयनीय स्थिती में अभी भी विकास नहीं आया।

समाज किसी भी वेश्या के पिछले जीवन को भुला नहीं पाता है। पुरुष केवल अपनी वासना की पूर्ति के लिए ही उसके पास आते-जाते है। जबकि वेश्या को इस चीज से घृणा होने के बाद भी वह किसी को मना नहीं कर पाती है। सफिया का विवाह जलाल से हो जाने के बाद भी अरशद, मतीन जैसे लोग सफिया को उसकी पुरानी जिन्दगी के आधार पर ही आंकते हैं। वह चाहते हैँ कि सफिया अब भी उनको वही अपना पुराना ग्राहक समझे जैसे पहले समझती थी। "अरशद के पास और भी जो चीजें बरामद हुई हैं, उनमें जलाल के फोन नम्बर के अलावा एक निहायत खूबसूरत तस्वीर भी मिली है। इस तस्वीर की पुश्त पर सफिया के नाम की एक रोमानी नज्म भी थी।"[4] वहीं दूसरी ओर मतीन मियाँ की जवानी वाली मस्ती फिर से लौट आयी थी। वह सफिया के हुस्न के दीवाने थे और इसलिए अपने घर पर पार्टी केवल सफिया के लिए रखते हैं। सफिया पार्टी में अपने पती के बहुत कहने पर जाती है। पार्टी से वापस आते समय सफिया बहुत अजीब सा अनुभव करती है- "सफिया अपने बदन के कुछ हिस्सों पर अजीब गिलगिलापन महसूस करने लगी। कंधे पर ढींगरा के मुर्दा से हाथ की छुअन बाजू पर त्रिपाठी की उँगलियो का बेजान स्पर्श, कमर पर डांडिया के ठंडे हाथ का लम्स, कई निगाहों में हवस भरी प्रशंसा, कइयों की आँखों में ईर्ष्या।"[5]

हबीब कैफी 'सफिया' में वेश्या जीवन की उस मन:स्थिती के विकसित रूप को उल्लेखित करते हैं जो कि कभी पूरी नहीं हो पाती है। वेश्याओं को परिवार में स्थान कौन दे रहा है? जबकि आम जन की तरह वह भी परिवार के साथ, सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। उन्हें केवल बाजारू औरत समझ लेने से जो ठेस पहुँचती है उसका वर्णन अकथनीय है। वह भी चाहती हैं उनका भी कोई अपना हो जिसे निकट से अनुभव कर सकें। सफिया कहती है कि- "हो सकता है कि मैं किसी तवायफ के पेट से ही होऊ, मेरी रगो में किसी समाज दुश्मन शख्स या समाज के क्रीम का ही खून दौड़ रहा हो। यह भी मुमकिन है कि मैं किसी निहायत ही शरीफ खानदान से ताल्लुक रखती होऊं। जो भी है, पर यह भी एक हकीकत है कि मेरे जी में भी अपने मां-बाप, भाई, बहन वगैरह की बात आती है। ऐसा प्यार-दुलार मैंने किताबों में पढ़ा है या फिर सिनेमा के पर्दे पर ही देखा है फकत।"[6] जब कोई व्यक्ति हाथ थाम कर किसी वेश्या को एक सम्मान भरी दृष्टि से उसे अपनी पत्नी, बहन या बेटी के रूप में स्वीकार कर लेता है तब यह समाज उसका पीछा नही छोड़ता है। सफिया रोते हुए जलाल से कहती है कि "उस जहन्नुम को मैने आपके कारण, आपकी पनाह में, आपके लिए अलविदा कहा।"[7]

जलाल के तीन बच्चों और बीमार पत्नी की सेवा करने में उसे कोई झिझक नहीं, न ही पत्नी भाव की तरह उसे कोई आपित्त है। बस उसे एक सम्मानपूर्वक जीवन मिला जिसके लिए वह सब करने को तैयार है। सफिया केवल एक वेश्या नहीं बल्कि पूरे वेश्या समाज के बदलते रूप को प्रदर्शित करती है। उसमे अपना अहं, अस्मिता ध्वनित होता दिखाई देता है। हबीब कैफी ने उच्च मध्यवर्गीय समाज का यथार्थ चित्रण भी 'सफिया' उपन्यास में प्रस्तुत किया है। उच्च मध्यवर्ग में स्त्री की क्या स्थिति है, उनके साथ किये जाने वाले उपेक्षित व्यवहार को 'सफिया' में चित्रित किया गया है। उच्चमध्यवर्ग में स्त्री केवल बिजनेस को बढ़ाने, उससे होने वाले लाभ एवं स्वार्थ के लिए एक वस्तु के रूप में इस्तेमाल की जाती रही है। सफिया को अचानक शालिनी की स्पष्टोक्ति याद आती है कि "बीवियों को तरक्की के लिए जरिया और जीना बनना पड़ता है।"[8]

हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री की जो भूमिकाएं अंकित की गई है, उससे कथाकारों का सजग दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। हबीब कैफी ने विवेच्य उपन्यास में श्सफियाश नामक पात्र के द्वारा संवेदना, संघर्ष, शालीनता, बदलते जीवन के परिदृश्य को चित्रित किया हैं। 'सफिया' जो कि एक वेश्या रह चुकी है परन्तु फिर भी उसे वह उच्च मध्यवर्ग की स्थिती पर आपत्ति है। किसी का भी पति किसी की भी पत्नी के साथ नाच रहा हैं, किसी की पत्नी के गले में किसी और के पति का हाथ है, यह सब देख कर सफिया को बुरा लगता है। अपने स्वार्थ के लिए यहाँ सब तवायफ से भी बुरे हैं। लेकिन वहाँ घृणा, बहिष्कार, या अपमान केवल वेश्या समाज को ले कर है। उस जीवन में और यहाँ इस से दिखावे वाले समाज में इतना सम्मान कैसे? यह सब बस एक दलाली है। सफिया सोचती है कि "ऊंचे दर्जे की और बेदाग लगने वाली स्वीकृत दलाली ऐसा है? और नहीं हो क्या? अगर ऐसा ही है तो वह जिंदगी, तवायफ का पेशा क्या बुरा था? पर उसमें इज्जत कहाँ थी? और गृहस्थ हो जाने के बाद इस तरह की इज्जत है। यानी दोनों हाथों में लड्डू! दोनो हाथों में क्या सभी के हाथों में!"[9]

'सफिया' इन सबसे स्वयं को दूर रखना चाहती है। छुअन, घूरती नजरे, सांसों की गरमाहट उसे बरदाश्त नही होती है। वह जलाल से कहती है- "मैं एकदम नार्मल हूँ और आपको बताए देना चाहती हूँ मैंअपने पास जो है उसका मुझे एहसास है, पर यह किसी गिद्ध या भेड़िए के लिए नहीं? मेरी जूती की फटकार भी नही? इस सूरत में आपकी तरक्की और खुशहाली का जरिया नहीं बनना चाहती, नहीं बन सकती।"[10] लेकिन यह सब होने के उपरान्त भी सफिया का संघर्ष जारी रहा। जलाल और सफिया ने अपने पारिवारिक जीवन के सुंदर पलों के साथ जीवन में आगे बढ़ने का प्रण लिया। अन्त में जलाल सफिया से कहता है कि "नींद आये या न आये, पर बरामदे के इस अँधेरे कोने में तो मत रहघ्ेाआओ चल कर दोनो ही नींद के न आने तक साथ-साथ जागते रहे।"[11]

निष्कर्ष:- उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि हबीब कैफी अपने उपन्यास 'सफिया' में परम्परागत स्त्री के बदलते स्वरूप को दिखाने का प्रयास करते हैं। सफिया परम्परागत मूल्यों को नकारते हुए सामाजिक आग्रहों को तोड़ने को प्रयासरत है। अन्तत: वह उसमे कामयाब भी होती है। सफिया उपन्यास की पात्र 'सफिया' उपभोक्तावादी दृष्टि से सर्वथा अनुचित है। 'सफिया' विकसित समाज की बदलती हुई वेश्या स्त्री का परिदृश्य है। पूँजीवादी सामाजिक विधान में स्त्री को अपनी प्रतिष्ठा का सौदा करना पड़ता है, सफिया उसके विपरीत एक तमाचे का काम करती है। सफिया जलाल के साथ पार्टियों में जाने को मना करती है। सफिया उन सब प्रचडों को तोड़ते हुए परिवार में अपने दायित्व को पूरा करती है। हबीब कैफी समाज को इस तथ्य से अवगत कराना चाहते हैं कि उनका यह अनैतिक कर्म परिवेश के कारण अनैतिक नहीं रह जाता। वेश्या के प्रति सहानुभूति एवं करुणा का भाव 'सफिया' में स्पष्टत: परिलक्षित होता है। वर्तमान में विकसित समाज के पाप के गर्त में गिरी हुई नारी को पुन: समाज का अंग बनाकर समाज को कोढ़ रूपी बीमारी से दूर करने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ रक्षापुरी, प्रेमचन्द- साहित्य में व्यक्ति और समाज, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली (1970) पृष्ठ सं- 143
2. कैफी हबीब, सफिया, राजकमल प्रकाशन (प्रथम संस्करण (1988), पृष्ठ सं. 120
3. वहीं, पृष्ठ सं- 117
4. वहीं, पृष्ठ सं-80
5. वहीं, पृष्ठ सं-112
6. वहीं, पृष्ठ सं- 118
7. वहीं, पृष्ठ सं 118
8. वहीं, पृष्ठ सं- 113
9. वहीं, पृष्ठ सं-117
10. वही, पृष्ठ सं- 115
11. वही, पृष्ठ सं- 174

'भूमंडलीकरण के परिदृश्य में मंगलेश डबराल और वीरेनडंगवाल की कविता'

मनोज मोदनवाल

शोधछात्र हिंदी विभाग, एम०एम०एच० कॉलेज गाजियाबाद

शोध सारांश- भूमंडलीकरण की अवधारणा व्यवहार रूप में नवसाम्राज्यवाद के नजदीक है।जिसे समझने के लिए बीसवीं सदी के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था और उस तत्कालीन समय की मांग को समझने के लिए गहन अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। भारत में भूमंडलीकरण के आगमन से ही निजीकरण और आर्थिक नीतियों में तेजी से विस्तार देखा गया। भूमंडलीकरण के आने से जहां एक तरफ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारत में तेजी के साथ फलते-फूलते देखा गया वहीं दूसरी ओर सामाजिक क्षेत्र में मानवीय मूल्यों में गिरावट देखी गई। भूमंडलीकरण के आगमन के फलस्वरुप न केवल आर्थिक क्षेत्र में भारी परिवर्तन देखा गया बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन देखा गया। साहित्यिक अस्मिता की पहचान को बनाये रखने के लिए मंगलेशडबराल और वीरेनडंगवाल जैसे सामाजिक प्रतिबद्ध कवियों ने मानवीय मूल्यों को बचाये रखने के लिए कविता को माध्यम बनाया।

बीज शब्द- मानवीय मूल्य, सामाजिक अस्मिता, साहित्यिक अस्मिता, पूंजीवाद, बाजारवाद साम्राज्यवाद, नवसाम्राज्यवाद

मूलआलेख- भूमंडलीकरण से तात्पर्य समग्र विश्व के एकीकरण से है। इसका सर्वाधिक प्रभाव आर्थिक नीतियों पर पड़ा और यह व्यापार विषयक नियमों की वैश्विक एकता के लिए लाई गई प्रक्रिया है। इस व्यवस्था में यह भी देखा गया कि विश्व के सभी लोगों, कंपनियों तथा समस्त राष्ट्रों की सरकारों को एक ही व्यापार विषयक नियमावली में बांधने का प्रयत्न करती है। भूमंडलीकरण को वैश्वीकरण के नाम से भी जाना जाता है, जिसमें समस्त विश्व के लोग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से एक दूसरे से जुड़े हुए नजर आते हैं। इस व्यवस्था के आगमन के बाद लोगों की संस्कृतियाँ एक दूसरे से प्रभावित हुई।

भूमंडलीकरण सभी क्षेत्रों में अपना प्रभाव व्याप्त किया, जहाँ आर्थिक दृष्टि से व्यापार के रूप में सभी देश एक दूसरे से जुड़े और उन्नति के लिए अग्रसर हुए, वहीं सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों का भारी गिरावट देखा गया। लोग एक दूसरे से दूर भागते हुए दिखाई दिए। भूमंडलीकरण के आगमन स्वरूप साहित्य के क्षेत्र में बीसवीं सादी के अंत में समकालीन कविताओं पर भी इसका प्रभाव देखा गया, जिसमें एक अलग ही सामाजिक व्यवस्था बनी हुई थी। उसे समय के समाज में अनास्था, घुटन,कुंठा और संत्रास जैसी बेचौनी बनी हुई थी, जिसमें कवियों ने अपने समाज के मानवीय मूल्यों को बचाए रखने के लिए अपने-अपने माध्यम से कलम चलाई। भूमंडलीकरण के शुरुआती दौर में जन सामान्य के कल्याण की बात जुडी हुई थी, लेकिन उसमें निहित परिस्थितियों को देखने से यह महसूस होता है कि भूमंडलीकरण के नाम पर साम्राज्यवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति हम सभी पर थोपा जा रहा है।

भूमंडलीकरण और बाजारवाद ने समस्त भूमंडल को एक गाँव के रूप में बदल कर रख दिया है। इस समय का उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे सामाजिक संवेदनाओं को नष्ट कर रहा है, जिसमें सभी लोग एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं, बाजारवादी संस्कृति ने मनुष्य को मनुष्य नहीं वस्तुवत बना दिया है। सभी जगह पर बाजारवादी ताकत और उपभोक्तावादी संस्कृति का आधिपत्य है। इस संस्कृति के आने से हमारी आपसी संबंधों में भी दूरियाँ बनती गई, "रिश्तेदारों मित्रों का मिलना जुलना लगभग समाप्त हो चुका है। जिंदगी की आपाधापी, पूजीसंग्रह, निजी उपभोग आदि के कारण खून के रिश्तों में भी दरार पड़ गई है। एक दूसरे के दुख सुख की चिंताएं समाप्त हो रही हैं। मनुष्य पशु की भांति संवेदन विहीन जीवन जी रहा है।"[1]

बाजारवाद समकालीन हिंदी कविता के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है, इस बाजारवादी संस्कृति का जितना विरोध समकालीन हिंदी कविता ने किया है उतना किसी दूसरे भाषा के कविता ने शायद ही किया हो। मंगलेशडबराल ने अपनी कविताओं में भूमंडलीकरण से उत्पन्न हुई इस बाजारवादी व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया। वे कहते हैं कि यह पूरा विश्व एक डिब्बे में बंद हो रहा है, जिसको अपनी कविता श्अभिनयश में व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"बाजारों में घूमता हूं निस्शब्द
डिब्बों में बंद हो रहा है पूरादेश
पूरा जीवन बिक्री के लिए
एक नई रंगीन किताब है
मेरी कविता के विरोध में आई है
छपे सुंदर चेहरों को कोई कष्ट नहीं
जगह-जगह नृत्य की मुद्राएं हैं विचार के बदले

जनाब एक पूरी फिल्म है लंबी
आप खरीद लें और भरपूर आनंद उठायें।"[2]

मंगलेशडबराल ने बाजार को भटकाव के रूप में चिन्हित किया है, वे कहते हैं कि जब लोग अपनी रोजी-रोटी के तलाश में कहीं घर से बहुत दूर निकलते हैं, तो उन्हें बाजार की शरण लेनी पड़ती है और बाजार उन्हें ही स्वीकार करता है जिसके पास पूंजी है। कवि ने बहुत से ऐसे मनुष्य को देखा है की बाजार उसे विवश करके वापस लौटा देती है। इस भाव को कवि मंगलेशडबराल ने अपनी कविता 'अंतिम प्रारूप' में व्यक्त किया है-

"इस बीच मैं दूर-दूर गया
बाजारों में भटकता रहा
जहाँ चीजें मनुष्य की
विवशता पर खिलखिलाती थीं
प्रेम और रोटी की पीड़ा
महसूस करने के लिए
कहीं लौटना संभव नहीं था।"[3]

इस भूमंडलीकरण के दौर में संयुक्त परिवार से लोग अलग होते जा रहे हैं। एकाकी जीवन जीने की विवशता लोगों की हॉबी बनती जा रही है। पहले के समय में परिवार का एक मुखिया होता था और लोग उसके छत्रछाया में अपने को महफूज रखते थें। लेकिन आज सामाजिक व्यवस्था बदल चुकी है लोग एक दूसरे से दूर भाग रहे हैं। बुजुर्गों का सम्मान कोई नहीं करता इन सभी बातों पर पाश्चात्य सभ्यता हावी है, जिसके कारण लोग अपनों से दूर होते जा रहे हैं। इन सभी बातों को हिंदी समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में विरोध स्वरूप आवाज उठाएं, और लोगों को अपने जमीन से जुड़े रहने की सलाह दी। जिसमें 90 के दशक के कवि के रूप में मंगलेशडबराल ने अपनी कविता 'दुख' में व्यक्त किया-

"लोग छोड़कर जाते हैं घर द्वार
अनजान दुनिया में भटकते निरुद्देश्य
रोटी के बदले बदल देते
अपने नाम और विचार
मैं उनके पीछे-पीछे चलता हूं
सर पर एक गठरी उठाए हुए
मैं थमता हूं गिरते हुए कपड़ों को
बचाएं रहता हूं खामोशी को।"[4]

कवि मंगलेशडबराल कहते हैं कि, अपने पुरखों को सदैव अपने पास रखना चाहिए उनका मान सम्मान हमारे धरोहर के समान होना चाहिए। लेकिन आज उन्हें अकेले जीवन जीने के लिए मजबूर और अकेला छोड़कर अन्य देशों में पलायन कर जाते हैं। जिसे कवि ने अपनी कविता 'छूट गया है' में व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

"भारी मन से चले गए हम
तजकर पुरखों का घरबार
पीछे मिट्टी घसक रही है
गिरती पत्थर की बौछार
थोड़ा मुड़कर देखो भाई
कैसे बंद हो रहे द्वार
उनके भीतर छूट गया है
एक-एक कोठार।"[5]

भूमंडलीकरण में पूंजीवाद का स्वरूप बहुत तेजी से बढ़ते हुए दिखाई देता है। लोगों को अपने संस्कृति का पलायन करने में यह सबको मजबूर करता है, लोग अपना देश छोड़कर पैसे कमाने के लिए अन्य देशों में भागते हैं। वहां उनके साथ मानव श्रम के द्वारा पीड़ा देते हैं। अत्यधिक काम की वजह से लोग बीमार भी पड़ जाते हैं, फिर उनके साथ जानवरों जैसा सलूक किया जाता है। इस भयानक पीड़ा को कवि मंगलेशडबराल ने अपनी कविता 'एक पुरानी कहानी' में व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

"घर से बहुत दूर आ गए हैं हम
तकलीफों की एक और ही
दुनिया में

जहां लगातार दौड़ते रहना होगा
दलदल में धसेंगे पैर
सूझेगा नहीं रास्ता सन्नाटे में
तब हम पुकारेंगे एक दूसरे को।"[6]

भूमंडलीकरण के नाम पर इस युग में हमारी गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा को अपने चमकती हुई मायावी स्वरूप से नष्ट करने के प्रयास किया जा रहे हैं। जो हमारे सांस्कृतिक विविधता पर बुरे असर के रूप में सीधा प्रभाव दिखाई दे रहा है। अपनी भूमंडलीकरण कविता के द्वारा कवि मंगलेशडबराल लिखते हैं कि- "बड़ी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बड़ा गांव लोभ,क्रोध,ईर्ष्या,द्वेष के लिए कहीं और नहीं जाना पड़ता है। मनुष्य के संबंध बहुत पतले तारों से बांध दिए गए हैं जो बात बात में टूट जाते हैं उन्हें जोड़ने के लिए फिर से जाना पड़ता है बाजार जहां तमाम स्वादिष्ट चीजे एक बेस्वाद जीवन को घेरे हुए हैं।"[7]

भूमंडलीकरण के दौर में वीरेनडंगवाल अपनी कविताओं में टूटते संबंधों और सामाजिक मूल्यों को बचाने के लिए अपनी कविताओं को एक हथियार के रूप में देखते हैं। इन्होंने आपसी संबंधों के टूटने का हवाला अपने कविता संकलन 'स्याही ताल' के 'वापसी' कविता में दिया हैं,वे कहते हैं कि-

"भाई भाई के गर्दन पर
छूरी फेर रहा है
दोस्त मुकदमे लिख रहे हैं
एक दूसरे पर
सौदा लेकर लौटती
स्त्री के गले से चेन तोड़
भाग जा रहा है एक सोहदा
विधान भवन की तरफ।"[8]

आज के समय को लक्ष्य करके कवि ने अपने समाज में बीत रहे अनास्थ और घुटन को महसूस किया है और उसे कविता के माध्यम से उसे सजावट के रूप में प्रदर्शित किया है वे अपने कविता 'मसला' में रहते हैं कि-

"बेईमान सजे बजे हैं
तो क्या हम मान लें कि
बेईमानी भी एक सजावट है
कातिल मजे में है
तो क्या हम मान लें
कत्ल करना मजेदार काम है।"[9]

कवि मंगलेशडबराल ने अपने समाज को नजदीक से देखा परखा है, जिसमें उन्होंने अपने समाज के प्रति कलम के माध्यम से बहुत ही सराहनीय कदम उठाए हैं। उन्होंने भूमंडलीकरण से व्याप्त तथा छीड़ होती हुई मानवीय संवेदनाओं और संस्कृतियों को बचाए रखने के लिए हम भूमिका निभाई। कवि मंगलेशडबराल को सन 2001 ई० में इनके कविता संग्रह 'हम जो देखते हैं' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। उसे समय उनके द्वारा दिया गया वक्तव्य इस प्रकार है "लेकिन मैं एक ऐसे समाज का सदस्य हूं जहां भाषा और शिक्षा के प्रति बहुत कम सम्मान है संस्कृति की सजकता बहुत कम हो चली है, पोषण और अवलंबन देने वाला, सावधान करने वाला पाठक समुदाय नहीं रह गया है। और कुल मिलाकर भ्रष्ट सत्ता राजनीति ही सबसे बड़ा रोजगार है जिसमें लोग पूरी अश्लीलता से लगे हुए हैं।"[10]

निष्कर्ष-

भूमंडलीकरण के आने से समाज के सभी क्षेत्रों में एक भारी मात्रा में परिवर्तन दिखाई दिया, जिसमें लोगों की आस्थाएं, मर्यादाएं, और मानवीय मूल्यों में गिरावट दिखाई दिया। इसके विरोध में कवि मंगलेशडबराल और वीरेनडंगवाल जैसे कवियों ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए अपनी लेखनी चलाई और मानवीय मूल्यों को बचाए रखने के लिए हर संभव प्रयास किया।

संदर्भ ग्रंथ-

1. डॉ रवींद्रनाथ मिश्र, हिंदी अनुशीलन, जून-सितंबर 2005, पृ०40
2. कवि ने कहा, मंगलेशडबराल, 'अभिनय', संस्करण 2019, किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ०66
3. वही पृष्ठ संख्या 114, 'अंतिम प्रारूप' कविता से
4. वही पृष्ठ संख्या 115, 'दुख' कविता से

5. वही पृष्ठ संख्या 83, 'छूट गया है' कविता से
6. वही पृष्ठ संख्या 49, 'एक पुरानी कहानी' कविता से
7. समकालीन भारतीय साहित्य, संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, जु०-अगस्त 2011, पृष्ठ 159
8. स्याही ताल, वीरेनडंगवाल, 'वापसी', प्रथम संस्करण 2019, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या 59
9. वही पृष्ठ संख्या 58, मसला कविता से
10. कवि ने कहा, भूमिका से, मंगलेशडबराल, संस्करण 2019 किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली

"तारसप्तक में संकलित रामविलास शर्मा की कविताओं में प्रगतिशील चेतना"

सना फातिमा

शोधार्थी हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

शोध सार-: 'तार सप्तक' एक महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है जिसका संकलन और संपादन अज्ञेय ने सन् 1943 ईस्वी में किया था। इस संग्रह में सात प्रमुख हिंदी कवियों की कविताएं शामिल हैं, जिनमें गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय शामिल हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से रामविलास शर्मा की तारसप्तक में संकलित कविताओं पर विचार किया गया हैं जो उनकी प्रगतिशील चेतना को उजागर करती है। रामविलास शर्मा के काव्य में सामाजिक जीवन का यथार्थ रूप देखने को मिलता है। उनकी कविताएँ भारतीय ग्राम-जीवन की संवेदना और समाजवादी विचारधारा के तत्व से ओत-प्रोत हैं। उनकी कविताओं में आम आदमी की पीड़ा, ग्रामीण जीवन की चुनौतियाँ, और समाज की समस्याएँ विविधता से दिखाई देती है। रामविलास शर्मा ने अपने प्रगतिशील विचारों के माध्यम से तत्कालीन समय की सामाजिक समस्याओं, चिंताओं और मनोदशाओं को उजागर किया है।

बीज शब्द- तारसप्तक, रामविलास शर्मा, कविता, प्रगतिशील चेतना।

मूल आलेख- रामविलास शर्मा की काव्य यात्रा संक्षिप्त रही है लेकिन इससे उनके काव्य का महत्व कम नहीं हो जाता। रामविलास जी ह्रदय से कवि थे। उन्होंने तारसप्तक के वक्तव्य में कहा है कि- ''कविता लिखने की ओर मेरी रुचि बराबर रही है।"[1] उनकी कविताओं में ग्रामीण परिवेश, किसानों और मजदूरों की संवेदनाओं का जो विवरण मिलता है, वह उन्हें काव्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण बनाता है। उनकी कविता-यात्रा ने उन्हें भारतीय हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित किया है। रामविलास शर्मा की कविता-यात्रा एक ऐसी साहित्यिक यात्रा है जिसमें वे समाज, संस्कृति और मानवता के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं। उनकी कविताओं में गहरी सामाजिक चेतना और उत्कृष्ट कल्पना का संयोजन है। वे अपने काव्य में विभिन्न सामाजिक मुद्दों और विचारों को उजागर करते हैं। उनकी कविता-यात्रा में साहित्यिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ आधुनिक समाज की चुनौतियों और समस्याओं का भी विवरण मिलता है।

रामविलास शर्मा ने अपनी कविताओं में सामाजिक मुद्दों को गहराई से छूने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में समाज की समस्याओं को उजागर किया और जनसाधारण के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त की है। रामविलास शर्मा की 'तारसप्तक' में संकलित अधिकतर कविताएँ प्रगतिशील विचारधारा को लेकर लिखी गयी है जिनमें शारदीया, कार्यक्षेत्र, सिलहार, गुरुदेव की पुण्यभूमि, हड्डियों का ताप आदि प्रमुख हैं। उनकी अधिकांश कविताओं का विषय शोषित जन है। वे शोषित जनों के सुख दुख से आहत है और अपनी कविता में उनके सुख दुख को ही स्थान देते हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक जागरूकता और विचारशीलता का प्रतीक हैं एवं जनसाधारण के प्रति पूरी सहानुभूति से भरी हुई हैं, जिससे उनके काव्य में प्रगतिशील चेतना का दृष्टिकोण साफ नजर आता है।

रामविलास शर्मा की कविता में "जवानी की हुंकार के साथ साथ भारतीय ग्राम सौन्दर्य तथा सर्वहारा वर्ग की वेदनाएँ भी संश्लिष्ट है।"[2] तारसप्तक में संकलित श्कार्यक्षेत्रश कविता में उन्होंने किसानों की मेहनत और संघर्ष को महत्ता दी है, जो उनकी कविता को समृद्ध और गहरा बनाता है। ग्रामीण परिवेश के माध्यम से वर्ग विभाजित समाज का चित्रण दृष्टव्य है-

"धरती के पुत्र की,
होगी कौन जाति,
कौन मत
कहो कौन धर्म?
धूलि-भरा धरती का पुत्र है,
जोतता है बोता जो किसान इस धरती को,
मिट्टी का पुतला है।"[3]

रामविलास शर्मा ने 'तारसप्तक' में ग्रामीण जीवन को व्यापक और सुस्पष्ट रूप से चित्रित किया है। उनकी कविताओं में गाँवों, किसानों और ग्रामीण समुदाय की जीवनशैली और समस्याओं का मार्मिक वर्णन है। 'कतकी' कविता में उन्होंने गाँव की सामाजिक समस्याओं को बेहद संवेदनशीलता से चित्रित किया है-

"तने हुए तंबू भीतर पैरा बिछा
सुखी बाल-बच्चे बैठे हैं ऊँघते,
गरम रजाई में निश्चिंत किसान भी
बैठा बैलों की पगही ढीली किए।"[4]

'सिलहार' कविता में ग्रामीण जीवन की समृद्धि और कठिनाइयों का सामाजिक चित्रण है, जो उनकी कविता को विशेष बनाता है। कविता के प्रारंभ में फसल काटने का चित्रण है परन्तु कविता के अन्त में इन खेतों को जोतने-बोने और सींचने वाले लोगों को जब पारिश्रमिक के बदले सीला बीनते देखते है तो खेत का सौन्दर्य एक बैचेनी उत्पन्न कर देता है-

"काले धब्बों-से बिखरे वे खेत में,
फटे अँगोछों में, बच्चे भी साथ ले,
ध्यान लगा सीला चमार हैं बीनते
खेत कटाई की मजदूरी, इन्हीं ने
जोता बोया सींचा भी था खेत को।"[5]

'दिवा स्वप्न' कविता में उन्होंने गाँव के चारों ओर की तस्वीर को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है-

"वर्षा से धुल कर निखर उठा नीला-नीला
फिर हरे-हरे खेतों पर छाया आसमान,
उजली कुँआर की धूप अकेली पड़ी हार में,
लौटे इस बेला सब अपने घर किसान।
पागुर करती छाहीं में, कुछ गंभीर अध-खुली आँखों से।"[6]

रामविलास शर्मा की कविताओं में शोषित जन के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनकी कविताओं में यह भावना स्पष्ट होती है कि दुर्बलता और अन्याय को स्वीकार नहीं किया जा सकता और इनका सामना करने के लिए सशक्त होना आवश्यक है। उनकी संघर्ष भावना उन युवाओं को प्रेरित करती है, जो समाज के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हैं। उनकी कविताओं में गहरी सहानुभूति का भाव है। तारसप्तक की कविताओं में सामाजिक चेतना और संघर्ष के विषयों पर उन्होंने गहराई से चर्चा की है। उनकी कविताओं में शोषित जनों के प्रति गहरी सहानुभूति और संघर्ष भावना को सुनिश्चित रूप से प्रकट किया गया है। 'गुरूदेव की पुण्यभूमि' कविता में रामविलास शर्मा ने बंगाल के दुर्भिक्ष, महामारी, और शोषण से उत्पीड़ित भूमि का एक करुणापूर्ण चित्रण किया है-

"उन भरे धान के खेतों में दिन-रात भूख,
बस भूख महामारी का आकुल क्रंदन!
हड्डी-हड्डी में सुलग रही है आग भूख की;
सुलग रहा है भीतर-भीतर रक्तहीन मानव-तन।"[7]

हड्डियों का ताप' कविता में रामविलास शर्मा ने भारतीय युवाओं की कठिन स्थिति को उनके दु:खद रूप में प्रकट किया है। उन्होंने युवाओं की दुर्दशा और परिस्थितियों की कठिनाई को प्रकट किया है-

"कंकाल,
हड्डियों के रक्तहीन मांसहीन कंकाल;
माँसल बलिष्ठ नहीं भुजाएँ, रक्ताभा नहीं है कपोलों पर,
परतंत्र देश के युवक हैं।"[8]

इसके साथ ही, वे उन युवाओं को भी संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं, जो अपनी स्थिति से परिचित होते हुए भी समाज के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हैं। इस कविता के माध्यम से रामविलास शर्मा ने युवाओं को उत्पीड़ित और दुर्बल मान्यता से निकलने के लिए प्रोत्साहित किया है, जो समाज सुधार के लिए उनके कलात्मक प्रयासों का माध्यम बन सकती है-

"जन्म होगा हड्डियों के ढाँचों से
रक्ताभ माँसल शरीर का,
हड्डियों में बसे हुए ताप से,
चिरंतन आत्मा का,
जन्म होगा नर-कंकालों से,
सबल स्वतंत्र नवयुवकों की सेना का।"[9]

रामविलास शर्मा की कविताएँ उन्हें एक उत्कृष्ट कवि के रूप में स्थापित करती हैं, जिन्होंने समाज की समस्याओं और दुखों को अपनी कला के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी कविताएँ मानवीय सहानुभूति की एक अजस्त्र धारा दिखाती हैं। उनकी कविताएँ विभिन्न समाजिक विषयों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। उन्होंने गरीबी, असमानता, और उत्पीड़न जैसी समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने व्यापारिकृत समाज में जो अन्याय हो रहा है, उसकी सख्त आलोचना की है। उनकी कविताएं गरीबी से पीड़ित लोगों की स्थिति को दर्शाती हैं और समाज में न्याय और समानता की मांग करती हैं। उन्होंने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के जीवन की सच्चाई को बेहद उदात्त और गहराई से दिखाया है। उनकी कविताएं आम जनता के दु:ख-दर्द और संघर्ष को चित्रित करती है-

"भाई-भाई से जुदा चिता पर लड़ते हैं
भाई-भाई, दो भीरु श्वान-से कायर!
लाखों की रकमें काट रहे हैं, काट रहे हैं
गले करोड़ों के, छिप-छिप कर कायर।"[10]

रामविलास शर्मा की कविताओं में उन्होंने एक गहरे और उत्तेजक सामाजिक और मानविक दृष्टिकोण को प्रकट किया है। उन्होंने जीवन की विविधता और चुनौतियों को समझने के लिए अनूठे पहलुओं को प्रस्तुत किया है, जो उन्हें एक प्रगतिशील कवि के रूप में उच्च स्थान पर स्थापित करता है। उनके द्वारा लिखी गई कविताओं में समाज, राष्ट्र और मानवता के विभिन्न पहलुओं का उत्कृष्ट चित्रण है। रामविलास शर्मा की तारसप्तक की कविताओं ने समाज में व्याप्त अन्याय और दुर्बलता के खिलाफ उठने और उन्हें जवाब देने के लिए प्रेरित किया है। उनकी कविताएं उस साहसिक भावना को प्रकट करती हैं जो उन्हें समाज के अधिकारी और उनके दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती है।

निष्कर्ष- रामविलास शर्मा की तारसप्तक की कविताओं में सामाजिक दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तारसप्तक में संकलित उनकी कविताओं में जन-जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का विवेचन किया गया है। उन्होंने किसानों, मजदूरों, गरीबों आदि के जीवन को उजागर करने का सफल प्रयास किया है। उनकी कविताओं में उन्होंने जीवन की वास्तविकता को चित्रित किया है, जिससे पाठकों को उसमें समाज की अनेक समस्याओं का समाधान देखने को मिलता है। उनकी तारसप्तक की कविताओं में विशेष रूप से खेती-बाड़ी, किसानों की मेहनत, और उनकी संघर्षपूर्ण जिंदगी को दर्शाया गया हैं। रामविलास शर्मा का काव्य संसार युगीन यथार्थ के ताने बाने से बुना हुआ है, जिससे उनकी कविताएँ समय के साथ सामयिक और मौजूदा समाज की प्राथमिकताओं को छूती हैं। उन्होंने वर्ग वैषम्य और समाज में जनित अन्याय को कविता में मुख्य विषय के रूप में उठाया है, जिससे पाठकों को समाज में सुधार के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

संदर्भ-

1. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 189
2. रूपतरंग, परिचय, संस्करण, 1990, पृष्ठ 18
3. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 191
4. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 195-196
5. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 197
6. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 197
7. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 201
8. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 206
9. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 207
10. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 201

उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० रमेश यादव

शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, विजय सिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, कैराना (शामली)

अमित कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, विजय सिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, कैराना (शामली)

शोध सारांश

हिंदी हमारे भारत की राजभाषा एवं उत्तर प्रदेश की कर्मस्थली व जननी मानी जाती रही है। एक क्षेत्र विशेष से बोली के रूप में शुरू होकर हिंदी ने जो मानक साहित्यिक उपादान हासिल किया है उसका बहुत बड़ा श्रेय उत्तर प्रदेश की कर्मभूमि को जाता है। आज हिंदी ने साहित्यिक उपलब्धि के क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल किया है उसमें बहुत बड़ा योगदान उत्तर प्रदेश में जन्म लेने वाले साहित्यकारों का रहा है, जिन्होंने हिंदी साहित्य की आदिकाल की परम्परा से लेकर वर्तमान काल तक साहित्य की हर विधा में लिखकर हिंदी साहित्य व हिंदी भाषा को महत्त्वपूर्ण उपलब्धि दिलाई है। उत्तर प्रदेश की भूमि पर जन्म लेने वाले महत्त्वपूर्ण व उत्कृष्ट कोटि के कवि, लेखकों की यह सुदीर्घ परम्परा आदिकालीन कवि अमीर खुसरो से शुरू होकर भक्तिकालीन कृष्ण व रामकाव्यधार में प्रवाहित होती रही। साहित्यकारों के साहित्य की यह पावन, निर्मल गंगा रीतिकाल, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग आदि युगों, कालों में बहती हुई आज भी हिंदी साहित्य की हर विधा में अपनी पावन गरिमा में समेटे हुए प्रवाहित हो रही है। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक के उत्तर प्रदेश में जन्म लेने वाले अनेकों-अनेक विद्वानों साहित्यकारों की मणि के समान चमकती रचनाएँ हिंदी साहित्य में आगे भी हजारों हजार साल तक अपना उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान धारण किए रहेंगी जितना महत्व वे आज रखती हैं। वर्तमान और भविष्य में भी उत्तर प्रदेश की धरा पर जन्म लेने वाले अनेक कवि, लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी को चमकाते रहेंगे और अपनी आगे आने वाली पीढ़ी में हमेशा याद किए जाते रहेंगे।

अमीर खुसरो, सूरदास, तुलसीदास, कबीर, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, भूषण, पद्माकर, बिहारी, देव, गिरधर कविराय जैसे कवि हमेशा याद किए जाते रहेंगे। भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचंद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव जैसे प्रसिद्ध लेखकों का गद्य साहित्यिक का योगदान कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। साहित्यकार हिंदी साहित्य को हिंदी के इस महासागर में उत्कृष्ट रचना रूपी मोती हिंदी एवं गैर हिंदी भाषी पाठकों को हमेशा मिलते रहेंगे इसलिए उत्तर प्रदेश में जन्म लेने वाले इन साहित्यकारों का अवदान विस्मृत नहीं किया जा सकता।

बीज शब्दः राजभाषा, उत्कृष्ट, जन्मभूमि, विस्मृत, प्रेरणास्पद, कण्ठोपहार, कुंडलियाँ, कुंठित, उजागर, विसंगतियों।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश की मिट्टी ने हिंदी साहित्य के इतने साहित्यकारों को जन्म दिया है यदि उत्तर प्रदेश के हिंदी साहित्यकारों को हिंदी साहित्य के इतिहास से निकाल दिया जाए तो हिंदी साहित्य का अस्तित्व खतरे में पड़ जाए या नाममात्र को रह जाए। यहाँ की जन्मभूमि से जन्मित साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के एक व्यवस्थित इतिहास में अपनी इतनी महती भूमिका निभाई है यदि बनारस और इलाहाबाद की जन्मभूमि के साहित्यकारों के साहित्यिक अवदान का मौलिक मूल्यांकन किया जाए तो वह भी अपने में विशिष्ट एवं महती भूमिका निभाता है।

यदि एक व्यवस्थित क्रम की दृष्टि से देखा जाए तो आदिकाल के खड़ी बोली के सर्वश्रेष्ठ कवि अमीर खुसरो का जन्म उत्तर प्रदेश के 'पटियाली' में 1253 ई० में हुआ था जिनकी मुकरियों, दोहों, पहेलियों से हिंदी साहित्य में खड़ी बोली की एक व्यवस्थित परम्परा की शुरूआत मानी जाती है। आदिकाल के प्रसिद्ध चर्चित कवि अमीर खुसरो को हिंदी साहित्य खड़ी बोली के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। जिनके जिक्र के बिना हिंदी खड़ी बोली जिनको आज हिंदी साहित्य की मानक भाषा के साहित्यिक रूप का दर्जा प्राप्त है, के रूप में जाना जाता है इनके बिना अधूरा है।

उत्तर प्रदेश से ही संबंध रखने वाली भक्तिकाल के कृष्ण काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि सूरदास जी ने आगरा-मथुरा के रूनकता नामक गाँव में जन्म लेकर कृष्ण काव्यधारा की एक व्यवस्थित परम्परा की शुरूआत कर दी थी जिस पर आगे चलकर बहुत से कृष्ण काव्याधारावादी कवियों ने उनकी व्यवस्थित पद्धति का अनुसरण किया उनके द्वारा रचित सूरसागर का 'भ्रमरगीत सार' अनेक आगामी कृष्ण काव्यधारा के कवियों का प्रेरणास्पद काव्य व कण्ठोपहार बना हुआ है जिसका अनुसरण द्विवेदी युग के ब्रजभाषा के प्रसिद्ध चर्चित कवि जगन्नाथ दास रत्नाकर तक बना रहा है। भक्तिकाल के ही अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि चतुर्भुजदास, छीतस्वामी आदि का संबंध उत्तर प्रदेश से ही है जिन्होंने भक्तिकाल की कृष्ण काव्यधारा के अन्तर्गत कृष्ण की भक्ति एवं वात्सल्यता के अनेक

पद गाए हैं। इसी प्रकार रामभक्ति काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसी जी भी उत्तर प्रदेश से ही नाता रखते हैं जिन्होंने भक्तिकाल की राम परम्परा की हिंदी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिलाया है। रामचरितमानस तुलसी जी की प्रसिद्धि का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है।

रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि त्रिपाठी बंधुओं का जन्म भी उत्तर प्रदेश की जन्मभूमि तिकवापुर (कानपुर, उत्तर प्रदेश) में हुआ। भूषण जी रीतिकाल के वीर रस के प्रसिद्ध कवियों में अपना श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। इसी काल के कवियों में प्रसिद्ध नीतिकार कवि गिरधर कविराय जी हैं जिन्होंने रीतिकाल में अनेक कुण्डलियों का संग्रह किया है।

आधुनिक काल के हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का संबंध भी उत्तर प्रदेश के काशी से ही हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य को गद्य साहित्य की एक व्यवस्थित परम्परा की ओर मोड़ दिया। भारतेन्दु जी स्वयं में एक संस्था थे वे एक साथ कवि, पत्रकार, नाटककार, जीवनी लेखक, यात्रावृत्तांतकार आदि अनेक विधाओं के आरम्भकर्ता व प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। भारतेन्दु हिंदी नवजागरण के अग्रदूत थे और उनका युग हिंदी नवोत्थान का युग था। भारतेन्दु ने अपने नाटकों सत्य हरिश्चन्द्र, अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी इत्यादि के माध्यम से भी नवजागरण का मार्ग प्रशस्त किया। भारतेन्दु ने अंधेर नगरी प्रहसन के द्वारा राजनीति पर करारा व्यंग्य किया। वे नये साहित्य के नये युग के प्रवर्तक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य को नये मार्ग पर खड़ा किया ''आधुनिक हिंदी का वर्तमान स्वरूप भारतेन्दु के हाथों परिवर्तित होता है और इसी अर्थ में भारतेन्दु को स्वयं उद्घोष हरिश्चन्द्र मैगजीन के प्रवेशांक के साथ 'हिंदी नई चाल में ढ़ली' (1873) सर्वाधिक सार्थक बनता है।''[1]

हिंदी खड़ी बोली को साहित्यिक एवं मानक भाषा के रूप में स्थान दिलाने वाले एवं उत्कृष्ट कोटि का साहित्य सृजन करने में उत्तर प्रदेश में जन्म लेने वाले अनेक हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य को सुदृढ़ बनाया है एवं उसे एक व्यवस्थित दिशा प्रदान की है। इन साहित्यकारों में प्रमुख साहित्यकार हैं- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, रामचन्द्र शुक्ल, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांस्कृत्यायन, प्रेमचंद, यशपाल, अमृतलाल नागर, बनारसीदास चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, भुवनेश्वर, राजेन्द्र यादव, निराला जी, मैथिलीशरण गुप्त, गुलाबराय, डॉ० नगेन्द्र, नन्ददुलारे वाजपेयी, रघुवीर सहाय, कुमार विश्वास, अशोक चक्रधर, कुँवर बैचेन, मैत्रेयी पुष्पा, उषा प्रियंवदा, दिविक रमेश, प्रकाश मनु, प्रयाग नारायण त्रिपाठी, रामविलास शर्मा आदि साहित्यकारों की हिंदी साहित्य की इतनी लम्बी कतार है कि यदि सभी हिंदी साहित्यकारों का विवरण देने लगे तो यह शोध हमारे लिए अत्यधिक विस्तृत भी हो जाएगा और हम अपने शोध विषय से भी हट जायेंगे। सरस्वती पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी गद्य का परिमार्जन महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया तथा गद्य एवं पद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली हो इस पर बल दिया। कालिदास की निरंकुशता, विक्रमांकचरित चर्चा, नैषधचरित चर्चा इत्यादि आलोचनात्मक पुस्तकें लिखकर इन्होंने आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को इन शब्दों में स्पष्ट किया है ''महावीर प्रसाद द्विवेदी सरीखे आलोचक संस्कृत प्रतिमानों की अवज्ञा न करते हुए भी अपनी सहानुभूति हिंदी लेखन के प्रति रखते थे। इसी कारण संस्कृत के अमूर्तनप्रिय काव्यशास्त्र से अलग हिंदी की व्यावहारिक आलोचना विकसित हो सकी।''[2]

महादेवी वर्मा को यामा (1940) काव्य के लिए 1982 ई० में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। महाकवि निराला ने उन्हें 'हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती' कहा था। महादेवी वर्मा अपने उत्कृष्ट निबंधों के लिए भी जानी जाती हैं। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उनके निबंधों के विषय में लिखा है- ''महादेवी के आलोचनात्मक निबंध अपने युग के काव्य की आधारभूमि खोजना चाहते हैं। 'काव्यकला', 'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'गीतिकाव्य', 'यथार्थ और आदर्श' शीर्षक निबंध प्रसाद की ही तरह साहित्य की सैद्धांतिक समस्याओं का तात्विक विवेचन करते हैं।''[3]

रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे समकालीन युग के चर्चित कवि जिनके काव्य की चर्चा बिना मानो समकालीन हिंदी काव्य जगत अधूरा है। 'सीढ़ियों पर धूप', 'आत्महत्या के विरूद्ध', 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' जैसे कविता संग्रह आज भी नयी कविता जगत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। रघुवीर सहाय के काव्य-संग्रह, कहानी आदि के लेखन के साथ-साथ उनके कुछ काव्य-ग्रंथों की भूमिकाएँ भी चर्चित हैं जहाँ उनका समाज के प्रति, साहित्यकार के संघर्ष के प्रति व अपने स्वयं के साहित्यिक जीवन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण उभरकर सामने आया है।

अपने चर्चित काव्य संग्रह 'आत्महत्या के विरूद्ध' की भूमिका में रघुवीर जी साहित्यकार एवं साहित्य के अंर्तसंघर्ष एवं संबंधों पर अपने वक्तव्य में विचार करते हुए लिखते हैं कि ''अकसर मुझे यह अहसास- एक तीखा अहसास- साहित्य के बारे में दुबारा सोचने पर मजबूर करता है कि क्या आज हम यानी साहित्यकार अपनी उस खास दुनिया से बेगाने नहीं होते जा रहे हैं जिसमें रहकर हम दुनिया वालों की दुनिया में एक खास ढंग से हिस्सा लेते और एक खास ढंग से ही उससे अलग हो जाते हैं। वह हमारी खास दुनिया या तो नकली उदासीनता से या सतही दिलचस्पी से कमोवेश छिन्न-भिन्न हो चली है। अगर कोई चीज उसे संभाले है तो वह यह जिद है कि साहित्य की आज भी अपनी एक दुनिया है और साहित्यकार की अपनी एक जिंदगी।''[4] सहाय जी ने अपने साहित्यकार जीवन की कुण्ठित चेतना एवं संघर्षशील परिस्थितियों को इस वक्तव्य में उजागर कर सम्पूर्ण साहित्यकार समाज को हिंदी साहित्य से जोड़कर उसे वर्तमान यथार्थ के दर्पण में दिखाने की कोशिश की है। उत्तर प्रदेश के लखनऊ शहर में जन्में सहाय जी समकालीन कविता के आधार स्तम्भों में गिने जाते हैं। इनकी कविताएँ आधुनिक मानव जीवन की विसंगतियों को उजागर करने वाली खोजपरक कविताएँ हैं। इनकी कविताओं में एक साथ स्त्री-पीड़ा, स्त्री चेतना, गैर बराबरी, अन्याय, आत्महत्या, हत्या, राजनीतिक सम्प्रभुता आदि की झलक देखने को मिलती है। वर्तमान पीढ़ी के अस्तित्व संकट को बचाने की कोशिश इनकी कविताओं में खूब की गई है।

उत्तर प्रदेश के कानपुर में जन्मी उषा प्रियंवदा आज की महिला कथाकारों में महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। महिलाओं के शोषण उनकी कुण्ठा, उन पर किए जा रहे विभिन्न शारीरिक-मानसिक अत्याचारों एवं उनके अधिकारों को अपनी लेखनी से अपने साहित्य में उजागर करने वाली आज भारत के सबसे प्रसिद्ध महिला लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने उत्तर प्रदेश की भूमि पर जन्म लेकर इस भूमि व हिंदी साहित्य को धन्य कर दिया है। ये अपने लेखन से भारत की महामहिम पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के हाथों से पद्मभूषण पुरस्कार से भी नवाजी गई हैं। हिंदी साहित्य जगत् में इनके उपन्यासों की खासी चर्चा रही है। प्रियंवदा जी के प्रमुख उपन्यासों में 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', अंतर्वशी', 'भय कबीर उदास' आदि हैं।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में जन्में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना समकालीन हिंदी कविता के प्राण माने जाते हैं। सर्वेश्वर जी हिंदी साहित्य में एक

साथ कवि, उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, यात्रा संस्मरणकार और एक अच्छे सम्पादक के रूप में भी जाने जाते हैं।

सर्वेश्वर दयाल जी के साहित्य का अध्ययन करती हुई उनके काव्य के विषय में डॉ० शीला शर्मा लिखती हैं कि ''सर्वेश्वर नये मूल्य चेतना के कवि हैं जिनका मूल्य संसार उनके विस्तृत अनुभव पर टिका है। हमने इनकी कविताओं में वैयक्तिक सामाजिक तथा राजनीतिक मूल्यों का अध्ययन किया जहाँ इनकी कविताएँ सोद्देश्य एवं विभिन्न मूल्यों को अभिव्यंजित करती प्रतीत हुई क्योंकि सर्वेश्वर के सामने उस युग की तमाम सामाजिक, राजनीतिक विडम्बनाएँ मुँह बाये खड़ी थी और कवि भी उनसे लड़ने के लिए हर क्षण तैयार रहते हैं।''[5] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएँ वर्तमान समाज की विसंगतियों एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार दाँव-पैंतरे आदि का यथार्थ चित्रण करने वाली कविताएँ हैं। सर्वेश्वर जी का 'बकरी' नाटक उनकी लोकप्रसिद्धि का आधार है, जिसमें भ्रष्ट शासनतन्त्र पर करारा व्यंग्य किया गया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश की भूमि पर इतने हिंदी साहित्यकारों ने जन्म लिया है कि जिनका साहित्य अवदान हिंदी साहित्य में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। उत्तर प्रदेश की पावन धरा भूमि एवं हिंदी साहित्य की कर्मस्थली कही जाने वाली काशी एवं प्रयाग (इलाहाबाद) ने ही इतने हिंदी साहित्यकार पाले हैं जिनके साहित्य का महत्व एवं मूल्यांकन आज भारत ही नहीं वरन् पूरे विश्वभर में किया जा रहा है और दुनियाभर के हिंदी साहित्य प्रेमी यहाँ की पावन भूमि पर हिंदी साहित्य की शिक्षा लेने व अध्ययन-मनन के लिए आते रहते हैं।

संदर्भ सूची

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी गद्य विन्यास और विकास, पृ०सं० 228

2 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ०सं० 141

3 वही, पृ०सं० 229

4 रघुवीर सहाय, आत्महत्या के विरूद्ध (भूमिका वक्तव्य), राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 1985

5 डॉ० शीला शर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना: संवेदना और शिल्प, आनन्द प्रकाशन, 176/178, रवीन्द्र सरणी, कोलकाता, प्रथम संस्करण 2008, पृ०सं० 106

काशीनाथ सिंह की कहानी 'सुख' न समझ पाने की पीड़ा"

सनोवर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

शोध सार- साहित्यकार अपने कथा-साहित्य में तत्कालीन समय व समाज के सत्य को उजागर करना चाहता है। काशीनाथ सिंह ऐसे यथार्थवादी कथाकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में जीवन के अंतर्विरोधों के साथ मनुष्य के प्रकृति से विछिन्न होने की मानसिकता को परिभाषित किया है। इनकी कहानियाँ अर्थहीनता की अनेक गहरी अंधेरी गुफाओं से निकालकर सामाजिक सरोकारों के साथ जोड़ती हैं। मनुष्य का आदिम समय से प्रकृति के साथ अटूट संबंध रहा है। भूमंडलीयकरण, बाजारवाद और औघोगिकीकरण जैसी प्रक्रियाएं मानव समुदाय को आधुनिक जीवन शैली की दिशा में अग्रणी बना रही है। मनुष्य, प्रकृति से अलग होकर बाजारवाद के साथ अपना संबंध जोड़ने लगा है। जिससे मनुष्य प्रकृति से दूर अपना जीवन बिता रहा है। 'सुख' कहानी मनुष्य को प्राकृतिक लगाव से मिले सुख को दु:ख में परिवर्तित करने की कथा को शब्दबद्ध करती है।

बीज शब्द- सुख, अनुभूति, दु:ख, संवेदना, भूमंडलीयकरण, प्राकृतिक संबंध, मानसिकता, भौतिकवाद।

प्रस्तावना- आधुनिक समय में नए विचार और वैज्ञानिकता के साथ-साथ, मध्यवर्ग की बढ़ती ऊर्जा, शहरीकरण के दबाव, अलगावबोध, अकेलापन, अजनबीपन, एकरसता, और संबंधों में बदलते मानव समाज और संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। यह प्रभाव साहित्य पर भी हुआ है, जो आधुनिकता के चुनौतीपूर्ण पहलुओं को दर्शाता है। इस युग में, सहजता की खोज में लिखी गई कई कहानियाँ हैं। 'सुख' कहानी में मानव और प्रकृति संबंधों के विघटन, अलगावबोध, और बदलती संवेदनाओं को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। काशीनाथ सिंह की कहानी कहने की कला उन्हें समकालीन कथाकारों की श्रेणियों से अलग करती है। इनकी कहानियाँ यथार्थ के अत्यंत करीब हैं जिसका एक उदाहरण उनके कहानी संग्रह 'कहनी उपखान' में प्रकाशित पहली कहानी 'सुख' है। लगभग सन् 1960 के आस-पास काशीनाथ सिंह ने अपना लेखन कार्य आरम्भ किया। जो भी वह उन्होंने लिखते उसका परीक्षण करने के लिए अपने अग्रज भाई नामवर सिंह को दे दिया करते थे। नामवर सिंह कहानी पढ़ते हुए जहाँ तहाँ सुधार हेतु कलम से चिह्न अंकित कर देते थे। इस संदर्भ में काशीनाथ सिंह लिखते हैं कि- "मैंने लगकर दो तीन रातों में एक कहानी लिखी-छोटी सी। मैंने बहुत कोशिश की लेकिन नाम नहीं सूझा। यह मेरा शुरूआती दौर था। जब कहानी बनती थी तब शीर्षक नहीं सूझता था और शीर्षक होता तो कहानी नहीं बनती थी। मैंने उन्हें एक कहानी दी। जब पढ़ लिया तो बुलाया देखो मैंने कुछ नहीं किया है कहानी को सिर्फ एक अर्थ दे दिया है। इसका शीर्षक है- 'सुख'। यही एक कहानी थी जिसमें पेंसिल का निशान कहीं नहीं था। वरना वे पढ़ने के बाद अक्सर कहा करते थे कि ऐसे नहीं ऐसा लिखा होता तो और बेहतर रहा होता या इसमें सब कुछ है, कहानी नहीं है या इसी 'थीम' को जरा यूँ देखो या इसका अन्त ऐसा हो तो कैसा हो। मैं तंग आ जाता। उस आदमी को संतुष्ट करना हमेशा मुश्किल रहा है मेरे लिए।"[1] इस कहानी के प्रमुख पात्र भोला बाबू को जीवन भर दु:ख मिला है परंतु कहानी का शीर्षक 'सुख' पड़ा। रिटायर हो जाने के बाद भोला बाबू को पता चलता है कि भौतिक वस्तु के अतिरिक्त और भी अन्य वस्तु सुख प्रदान कर सकती हैं। परंतु लोगों द्वारा उनके इस सुख की अनुभूति को न समझ पाने के कारण वह दु:खी हो जाते है। काशीनाथ सिंह अपनी कहानी 'सुख' के विषय में कहते हैं कि- "सुख प्रकृति से विच्छिन्न होते जा रहे मनुष्य की कहानी है। मनुष्य से मनुष्य के, पिता से पुत्र के, पत्नी से पति के, माँ से बेटे के संबंध के टूटने या बिखरने की कहानियाँ तो लिखने वाले और भी थे लेकिन 'सुख' की थीम अलग थी उनसे कहीं व्यापक और सामाजिक। अपने ही परिवार और समाज में अकेले पड़ते जा रहे मनुष्य की कहानी। स्वाधीनता ने 'नई कहानी' में जो आशाएँ, आकांक्षाएँ और सपने जगाए थे, उन्हें भारत-चीन युद्ध ने ध्वस्त कर दिया। विकास की सारी योजनाएँ भ्रष्टाचार की शिकार साबित हो गई थी। देश असहाय हो गया था और हमारा राष्ट्रनायक खुद को अकेला और निरीह महसूस करने लगा था। हमारी कहानियाँ इसी अकेलेपन और ध्वस्त होते जा रहे पुराने मूल्यों की प्रतिछवियाँ थी।"[2]

भूमंडलीकरण ने हमारे जीवन तथा समाज को भी अपने शिकंजे में कस लिया है। इसने हमें पूंजी का गुलाम बना दिया है, इसने हमसे हमारी अस्मिता छीन ली है, इसने हमें उपभोक्ता बना दिया है, इसने हमारी संस्कृति को भी प्रदूषित कर दिया है, इसने हमसे हमारा परिवार भी छीन लिया और समाज भी। कहने का अर्थ यह कि भौतिक एवं मानसिक दोनों धरातलों पर इसके प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया ने, पूंजी के विस्तार ने तथा तेजी से बदलती जीवन शैली ने हमारे वर्तमान जीवन को ऊपर से आकर्षित एवं चमकदार बना दिया है, लेकिन भीतर से इसने हमें झकझोरा दिया है। हमारी संवेदना को संकुचित कर दिया है। फलत: हमारी सोच, हमारी दृष्टि, हमारी भावनाएँ, हमारे संबंधों के धरातल, हमारी मानवीयता, हमारा प्राकृतिक संबंध सबके सब सिमट से गए हैं, और एक नए तरह का पूंजीवादी साम्राज्यवाद अपनी चमक-दमक के साथ हमारे मन-मस्तिष्क पर हावी होता जा रहा है।

'सुख' कहानी ऐसे मनुष्य की कहानी है जो वर्तमान में अपने भविष्य की चिंता करके वर्तमान जीवन का आस्वादन नहीं कर पाता है। मनुष्य खोखले सुखों की ओर भागते ही प्राकृतिक सुखों की निरंतर उपेक्षा करता है। भोला बाबू सेवानिवृत्त के पश्चात अपने जीवन में उस सुख का अनुभव करते हैं, जिसकी ओर उनके पास जीवन भर ध्यान देने का समय नहीं था। अब वह उस सुख का अनुभव करते हैं जो भौतिकवादी सुख से परे है- "वे तेज कदमों से आगे बढ़ गए और चारदीवारी तक गए। फिर रुक गए। यहाँ से सूरज दिख रहा था- पहाड़ियों के कुछ ऊपर, बादलों के कहीं आसपास! ताड़ और बबूलों के बीच में।.. "देखो, दुनिया में क्या-क्या चीजें हैं। कितनी अच्छी-अच्छी चीजें।". लेकिन यह सूरज! अब तक कहाँ था? यह शाम आखिर किधर थी?.. आज वे क्या देख रहे हैं?"[3] भोला बाबू को इस दृश्य को देखने में आनंद की वह अनुभूति होती है कि उसे बाँटने के लिए अपनी पत्नी को बुलाते हैं-

"ताड़ों के बीच में देखो। धुँधली-धुँधली पहाड़ियाँ हैं?"

"हैं?"

"लाल सूरज है।

"हाँ।"

"गोलाई पर पतले भूरे बादलों की लकीरें हैं?" "हाँ, हैं।"

"तो देखो। उसे अच्छी तरह देखो।"

"उसे क्या देखना? आप आज देखते हैं। मैं जिन्दगी भर से देख रही हूँ।" "हूँ," भोला बाबू ने गर्दन हिलाई, "जिन्दगी-भर से देख रही हो।"

"हाँ।"

"अच्छा। बड़ा अच्छा कर रही हो। अब एक काम करो कि चलो। चूल्हा फूँको।"[4] कहानी के कथ्य को इस ढंग से गढ़ा गया है कि मानो संसार में इस दृश्य को अकेले देखने वाले भोला बाबू ही स्वयं पहले व्यक्ति हों। वह अपने इस सुख की अनुभूति को सभी को बताना चाहते हैं परंतु उनकी इस अनुभूति को कोई नहीं समझ पाता है। भोला बाबू के इर्द-गिर्द जो सुख घूम रहा था, वो बिट्टी की माँ, नीलू और ऊँट वाला सोहन आदि द्वारा सूरज की सौंदर्य आभा पर सामान्य प्रतिक्रिया देने के कारण दु:ख और खीझ में परिवर्तित होने लगता है। इसके पश्चात भी भोला बाबू इस पर नए स्तर से सोचने लगते हैं- "यह ऐसी बात नहीं, जिसे सब समझ लें।" इस विचार से उन्हें पीड़ा होने लगी। किंतु वे धीरे-धीरे संतोष करने लगे-हालांकि जिलेदार साहब ज्यादा पढ़े-लिखे हैं, लेकिन पढाई से क्या होता है? वास्तव में देखा जाए तो पढाई और समझ दो चीजें है।. और खघस तौर से ऐसी बातों के लिए उम्र और तजुर्बा चाहिए।"[5] यहाँ भी भोला बाबू को निराशा ही होती है। वास्तविकता में, भोला बाबू ऐसे व्यक्ति हैं जो अत्यंत व्यस्तता के बाद सेवानिवृत्त हो गए हैं। अब उनके पास समय है, जबकि अन्य लोग अभी भी व्यस्त हैं, जिसके कारण उनकी अनुभूतियाँ अन्यों से अलग हैं। यही कारण है कि उनका सुखमय जीवन अचानक दुखमय हो जाता है, जो भोला बाबू की समझ से बाहर है।

'सुख' कहानी में, मानवीय संबंधों के साथ-साथ प्राकृतिक संबंध भी विभाजित हो रहे हैं। इस अज्ञानता के कारण, जहां भोला का जीवन खींच और दुख से भरा हुआ है, वहीं अन्य लोग, जिन्हें यह विभाजन महसूस नहीं हो रहा है, उनका जीवन अभी भी सुखमय है। प्रकृति ने आदिमकाल से ही मनुष्य के सुख-दु:ख के साथी की भूमिका निभाई है, लेकिन तत्कालीन समय के साथ इन सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया है। आधुनिक काल में, मानव ने अपनी व्यस्त जीवनशैली के कारण प्रकृति से संबंध बिगाड़ लिए हैं। वह भौतिकवादी और बाजारवाद के जाल में फँस-सा गया है। अब हालत यह है कि मानव, आधुनिकता के चक्र में, प्रकृति का शत्रु बन गया है- "हाय! दुनिया कितनी बदल गई है,' उन्होंने बार-बार सोचा। सोचा-कल शाम होगी। वे सभी लोगों को बुलाएंगे। सूरज दिखाएंगे। और समझाएंगे कि देखो, दुनिया में चूल्हा योजना, कचहरी, ऊँट और दूध ही सब कुछ नहीं है। सूरज भी है। पहाड़ियों के कर होता है। ताड़ो के बीच में आता है। फिर काँपता है। और फिर वह क्षण भी आता है, जब वह पहाड़ियों के पीछे जाता है। और डूबने के पहले एक मुलायम किरण तुम्हारे गंजे सिर पर छोड़ जाता है।"[6] काशीनाथ सिंह ने समय और समाज के बदलते हुए स्वरूप का निरीक्षण किया है। यही कारण है कि वे प्रकृति सौंदर्य का सूक्ष्म विश्लेषण कर पाते हैं- "गोले का ऊपरी सिरा, जिसके एक किनारे काले बादल की पतली लकीर है, डूब रहा है। सूरज की किरणें अब इधर नहीं हैं, न मैदानों में, न हरे खेतों में, न झोंपड़ियों पर। वे बादलों के पीछे से ऊपर आकाश की ओर जा रही हैं, प्रकाश की कई धाराओं में, कई रंगों में।"[7] अपनी अनुभूतियों को साझा करने के लिए भोला बाबू को बाजार और सड़क पर परिचित लोग भी अपरिचित लगने लगे थे। जिन्हें लोग योग्य और बुद्धिमान समझते थे उन सभी की पोल आज भोला बाबू के आगे खुल गई थी। उन सभी ने सूरज को देखा था परंतु उसके पीछे छिपे सुख का अनुभव किसी को नहीं हुआ। भोला बाबू के जीवन की यह सब से बड़ी विडंबना है कि वह जो सुनाना और समझाना चाहते हैं लोगों को उसको सुनने में कोई रुचि नहीं है। उन्हें दु:ख है कि सूर्यास्त के सौंदर्य को समझने वाले अब नहीं रहे। क्या कल भी कोई इसे समझ पायेगा? यही कारण है कि धीरे-धीरे उनका 'सुख' सरलता से 'दु:ख' में बदल गया- "देखो, कहने को यह बीवी है। यह बेटा है। यह बेटी है। यह मकान है। यह जायदाद है। ये दोस्त हैं। ये नातेदार हैं। लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं।".. "जब मेरा कोई दु:ख नहीं समझ सकता, तो कैसी बीवी और कैसा बेटा?". बिट्टी की माँ रोने लगीं। उन्हें देखकर बच्चे भी सिसकने लगे।.. रोनेवालों में सबसे ऊँचा और दुखी स्वर भोला बाबू का था।"[8] 'सुख' मानवीय संवेदना को न समझ पाने वाले पीड़ा की कहानी है। इसी कारण कहानीकार ने कहानी का नाम ही 'सुख' रखा है।

निष्कर्षत: काशीनाथ सिंह की कहानी में 'सुख' का अनुभव करुण और त्रासदी है। कहानी में मनुष्य और प्रकृति के संबंधों को इतने मार्मिक ढंग से व्याख्यायित किया गया है कि कहानी हृदय और मस्तिष्क में अपना विशिष्ट स्थान बना लेती है और सदैव के लिए स्मृतिमय हो जाती है। संवेदना और सहानुभूति का सम्मिश्रण 'सुख' कहानी मानव जीवन की समग्रता को परिलक्षित करती है। कृष्ण कुमार श्सुखश कहानी की श्रेष्ठता के संदर्भ में कहते हैं,- "सन् 36 के आस-पास जो काम कफन ने किया था, सन् 64 में वही काम काशीनाथ सिंह की 'सुख' ने किया। यह कहानी निर्मल वर्मा की 'परिंदे', 'डेढ़ इंच ऊपर',

'जलती झाड़ी' कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'नीली झील', 'खोई हुई दिशाएँ', राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लड़की की कहानी', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', 'वारिस' से आगे की कहानी है।"[9]

संदर्भ-

1. सिंह, काशीनाथ, 'याद हो कि न याद हो', प्रथम संस्करण-1992, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-221।
2. सिंह, काशीनाथ, 'आलोचना भी रचना है', संशोधित संस्करण-1996, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 13।
3. सिंह, काशीनाथ, 'कहनी उपखान', प्रथम संस्करण-2003, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-13-15।
4. वही, पृष्ठ संख्या-14
5. वही, पृष्ठ संख्या-17
6. वही, पृष्ठ संख्या -18
7. वही, पृष्ठ संख्या-15
8. वही, पृष्ठ संख्या-19
9. मो शानू, आलोचना की नई दृष्टि, वाङ्मय बुक्स, संस्करण-2017, अलीगढ़, पृष्ठ संख्या-91

"साए में धूपः मुक्ति की आकाँक्षा"

फिरदौस

शोधार्थी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

"यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।"[1]

हिंदी गजल को समसामयिक विषयों से जोड़ने वाले गजलकार दुष्यंत कुमार 'त्यागी' की ख्याति का आधार "साये में धूप" गजल-संग्रह की गजलों में तत्कालीन समय के यथार्थ परिवेश को अभिव्यक्त किया गया है। ये गजलें व्यक्तिगत पीड़ा और सामाजिक वैषम्य की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। गजलकार के इन गजलों में राजनीतिक व्यवस्थाओं, विडम्बनाओं तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मोहभंग की स्थिति से समाज में व्याप्त निराशा से मुक्ति प्राप्त करने की आकाँक्षा परिलक्षित होती है।

दुष्यंत कुमार के गजल संग्रह का नामकरण अपने आप में एक प्रतीकात्मक नामकरण लगता है। प्रतीकात्मकता के साथ-साथ उसमें एक प्रकार का व्यंग्य छिपा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि गजलकार ने अपनी गजल संग्रह का शीर्षक उपर्युक्त शेशर से लिया है। जिसमें 'साया' और 'धूप' ये दोनों शब्द अलग अलग प्रतीक लिए हुए हैं। जहाँ 'साया' मन की शांति, आशा-आकाँक्षा, सुखमय जीवन का प्रतीक है, वहीं 'धूप' अव्यवस्था, अशांति का माहौल दर्शाता है। "दुष्यंत मामूली कवि नहीं है वह हमारे दौर का एक बहुत बड़ा कवि है जो हमारी चिंताओं और सपनों-अरमानों से हमें रू-ब-रु करवाता है और इस दुनिया की स्थितियों को बदलने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही यह भी लोक स्वीकृति प्राप्त यह साहित्य हमें बेहतर दुनिया बनाने के इरादे से लैस करता है। इसीलिए दुष्यन्त हिस्सा की अपराजेय गजले हमारी स्मृति का जरूरी हिस्सा बन चुकी है। संसद से लेकर आम सभाओं तक दुष्यंत कुमार को आज उतना ही 'कोट' किया जाता है, जितना कि कभी तुलसीदास और कवीर को कोट किया जाता था।"[2]

"साये में धूप" में प्रकाशित गजलों में दुष्यंत कुमार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की दशा का चित्रण किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की राजनीतिक, सामाजिक, स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वतंत्रता आंदोलन का समय जनता के लिए नए आत्म-विश्वास और भविष्य की आशाओं, इच्छाओं-आकाँक्षाओं का समय था। जनता की सत्ता से उम्मीदें थी कि आजादी के बाद मूलभूत वस्तुओं के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ेगा।

जनता ने स्वप्न देखा था कि उन्हें देश में वर्गहीन, शोषण-मुक्त समाज, जातीय भेदभाव, अत्याचार, भ्रष्टाचार में आदि से मुक्ति मिलेगी और एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसमें मनुष्य प्रत्येक स्तर पर सामान होगा। जनता के सर से दुःख के बदल हट जायेंगे और वह सुख-समृद्धि में शांतिपूर्ण वातावरण के सागर में गोते लगाएगा। परन्तु स्वतंत्रता के कुछ ही वर्षों बाद सारी उम्मीदें टूटने लगीं, उसकी आशाएँ निराशा में परिवर्तित होने लगीं। स्वतंत्र भारत की सरकार ने जनता को जो अश्वासन दिया था वह केवल भाषणों और अखबारों तक ही सीमित रह गया और जनता शोषण की चक्की में पीसती रही।

देश में आम आदमी की पीड़ा, शोषण, भेदभाव, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, अत्याचार, भ्रष्टाचार, मानवीय मूल्यों का विघटन, महानगरीय जीवन की विद्रूपता, आर्थिक विपन्नता, पूँजीवाद, साम्प्रदायिकता, अलगाव आदि समस्याओं से जूझ रही जनता का यथार्थ चित्रण करने के साथ- साथ उनमें आशा की उम्मीद जगाने का कार्य दुष्यंत कुमार की गजलों ने किया। वे जनता को बिना डरे संघर्षों का सामना करने का हौसला देते हैं। वे जनता से प्रतिबद्ध कवि है। दुष्यंत स्वयं लिखते हैं कि "मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ..... यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं, आज के मनुष्य से है और मैं जिस आदमी के लिए लिखता हूँ यह भी चाहता हूँ कि वह उसे पढ़े और समझे।"[3]

वस्तुतः दुष्यंत कुमार की गजलें मानवता, सामाजिक परिवेश, यथार्थ आदि का दस्तावेज है, जो जनता को पीड़ाओं और संघर्षों के बीच से जीने का रास्ता दिखाता हैं तथा समकालीन परिस्थितियों से मुक्ति दिलाने का प्रयास करता है।

दुष्यंत कुमार कृत "साये में धूप" गजल-संग्रह में इसी मुक्ति की आकाँक्षाओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से देखा जा सकता है-

क. आम जनता के अधिकारों हेतु संघर्ष

ख. विद्रोह का स्वर

ग. राजनीतिक विसंगतियों और विडम्बनाओं से मुक्ति

घ. आशावादी स्वर

ङ. भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा

क. आम जनता के अधिकारों हेतु संघर्ष

दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में सबसे ज्यादा आम आदमी को केंद्र में रखकर उससे सम्बंधित मुद्दों तथा समस्याओं को उठाया है। तत्कालीन समय की जनता चारो ओर से अत्याचारों तथा शोषण से हताश, निराश तथा विवश दिखाई देती है। इनकी गजलों में व्यक्त पीड़ा न केवल समाज की पीड़ा है, बल्कि स्वयं गजलकार द्वारा भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है-

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ,
वो गजल आपको सुनाता हूँ।[4]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनता द्वारा निर्वाचित सरकार से जो उम्मीदें लगाई गयी थी वो सब टूटते-बिखरते नजर आ रहे थे। नेताओं द्वारा किये गए वादे झूठे साबित हो रहे थे। वो देश को प्रगति के पथ पर चलाने के बजाय गढ्ढे में डाल रहे थें, देश की दशा दिन ब दिन दयनीय होती जा रही थी। ऐसी स्थिति का चित्रण करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

कल नुमाइश में मिला वो चिथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला की हिंदुस्तान है।[5]

समाज में समस्याएँ इतनी घर कर गई है कि मजदूर वर्ग रोटी, कपड़ा तथा मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के आभाव में जीवन व्यतीत कर रहा है-

न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।[6]

दु:ख, दर्द, पीड़ा ने आम आदमी को अपना निशाना बना लिया है। उसका शरीर पीड़ा की ज्वाला में तप रहा है, परन्तु सुधार की कोई आशा या उम्मीद नहीं दिखाई देती-

सिर से सीने में कभी, पेट से पाँव में कभी,
एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।[7]

मनुष्य के जीवन से दु:ख का अटूट सम्बन्ध सा हो गया है। सुख की अभिलाषा तो कपूर की टिकिया जैसे हो गया है जो दु:ख का स्पर्श पाते ही उड़ जाता है। जीवन में सुख की अनुभूति कुछ क्षण मात्र के लिए ही होती है-

दुख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें
सुख तो किसी कपूर की टिकिया-सा उड़ गया।[8]

वस्तुतः दुष्यंत जी द्वारा आम-समाज समाज की पीड़ा की जो अभिव्यक्ति हुई है, उस पीड़ा को गजलकार स्वयं भी भोगे हुए है इसीलिए वह न केवल समस्याओं की बात करता है बल्कि उससे उबरने हेतु जनता को संघर्ष करना भी सिखाता है। स्वातंत्र्योत्तर समाज में चारो ओर शोषण, पीड़ा, दु:ख, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अत्याचार, जातीय भेदभाव, आर्थिक विषमता आदि से जो विषम परिस्थितियाँ बनी हुई है, उससे छुटकारा दिलाना चाहते है। वह शोषित जनता को विरोध करने हेतु प्रेरित करते हैं-

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।[9]

ख. विद्रोह का स्वर

दुष्यंत कुमार की गजलों में विद्रोही स्वर प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है। मोहभंग के कारण सत्ता और व्यवस्था के विरुद्ध जनता में विद्रोह की भावना पनपने लगती है जिसकी प्रतिक्रिया "साये में धूप" में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यवस्था से जनता ने जो आशाएँ-आकांक्षाएँ बाँधी हुई थी वो जल्दी ही टूटती हुई दिखाई देने लगी। जनता का शोषण उस पर्वत के सामान हो रहा था जिस पर धूप, धुल, वर्षा, हिमपात सब पड़ता है परंतु पर्वत से हिमालय भी निकलती है, इसी उम्मीद से जनता को उसके शोषण से मुक्ति दिलाने की बात करते हुए दुष्यंत लिखते है-

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकालनी चाहिए।
हर सड़क, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।[10]

दुष्यंत कहते है कि अब आवाम को सड़को और गलियों पर निकलकर अपने अधिकारों के लिए मांग करनी होगी तभी सोई हुई सत्ता जागेगी। घर पर बैठ कर बातें बनाने से कुछ नहीं होगा। सड़को पर निकलकर हंगामा करने की आवशयकता है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित शेशर को देखा जा सकता है-

पक गई आदतें, बातों से सर होगी नहीं,
कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं।[11]

साथ ही गजलकार सचेत भी करता है कि सिर्फ बातों के द्वारा हंगामा खड़ा करने से कुछ नहीं होगा, कोशिश ये करो कि देश की बदहाल परिस्थिति में परिवर्तन हो और जनता को समस्याओं से छुटकारा मिले। वे शोषणकारी सत्ता को उखाड़कर फेंक देना चाहते हैं-

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।[12]

दुष्यंत कुमार जनता को सजग करते हुए कहते कि डरने से किसी समस्या का समाधान नहीं निकलता, अपने अधिकारों के लिए लड़ना ही पड़ेगा तथा अपने हृदय से भय को निकालकर शोषणकारी सत्ता के लिए आवाज उठाना पड़ेगा–

पुराने पड़ गये डर, फेंक दो तुम भी,
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।
ये मूरत बोल सकती है अगर चाहो
अगर कुछ बोल कुछ स्वर फेंक दो तुम भी।[13]

जनता के लिए लिखे गए गजलों के लिए दुष्यंत कुमार को अपने जीवन में व्यक्तिगत रूप किया से सत्ता की चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। उन्हें कई बार जवाब-तलब किया गया लेकिन उसके बाद भी वे मुखर रूप से जनता के लिए लिखते रहें। वे कहते हैं कि मैं चुप नहीं रह सकता या लिखना नहीं बंद कर सकता हूँ। मैं अपने जैसे करोड़ों लोगों का प्रतिनिधित्व करता हूँ। मेरी गजलों में सिर्फ मेरी दर्द या पीड़ा नहीं है इसमें मेरे जैसे करोड़ों शोषित-पीड़ित लोगों की वेदना सम्मिलित है। मेरी गजलें निरंकुश और शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध बयान तथा विद्रोह की पहली चिंगारी है–

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ,
हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।[14]

ग. राजनितिक विसंगतियों और विडम्बनाओं से मुक्ति

समाज और राजनीति का सम्बन्ध बहुत गहरा होता है। जिस देश के समाज में राजनीति की राह भटक जाती है उस देश का विकास दुर्लभ हो जाता है। दुष्यंत कुमार ने गजल को स्वातंत्र्योत्तर जनविरोधी व्यवस्था का प्रतिवाद करने के लिए अपनाया। समकालीन समय के स्वार्थपरक शासन व्यवस्था, अराजक सामाजिक व्यवस्था और विषम आर्थिक व्यवस्था को गजलों के माध्यम से जिस तरह दुष्यंत कुमार ने निरूत्तर कर दिया, वह अत्यंत सराहनीय है। 'सारिका' के संपादक कमलेश्वर उनकी गजलों की महत्ता पर विचार करते हुए लिखते हैं- "नाजिम हिकमत, पाब्लो नेरूदा की कविताएँ अपने देशों में जो और जितना कर सकीं, उससे कहीं ज्यादा दुष्यंत की गजलों ने भारतीय लोकतंत्र को बचाने में की है।"[15] 'साये में धूप' का आगाज ही आमजन के जीवन को केंद्र में रखकर किया गया है। लोकतंत्रीय संविधान में 'लोक' की संवैधानिक और वास्तविक स्थिति के पार्थक्य को दुष्यंत कुमार ने बड़े ही सूक्ष्मता से उद्घाटित किया है–

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।[16]

विदेशी दासता से मुक्त होने के बावजूद विपन्न भारतवासी अपने मूलाधिकारों से वंचित रहे, यह केवल एक संयोग नहीं था, यह सत्ता और पूँजीवादी ताकतों की गहरी साजिश थी। दुष्यंत समझ रहे थे कि–

तुम्हीं से प्यार जतायें तुम्हीं को खा जायें,
अदीब यों तो सियासी हैं पर कमीन नहीं।[17]

यही सत्ता की असलियत है। सत्ता के लिए आमजन सिर्फ और सिर्फ 'बोट बैंक' है। आजादी उपरांत राजनीति का जो रूप सामने आया, वह बेहद भयावह था। जन-उद्धारक कुर्सी पर बैठकर 'जनहित' की आड़ में 'स्वहित' में व्यस्त हो गये और भूख, गरीबी, अभाव को झेलता आम आदमी सत्तासीनों के आश्वासनों को सच में परिणत होने की आशा लिए काल- कलवित होता गया। आज स्थिति यह है कि भारत एक गरीब देश के रूप में विश्व पटल पर चिन्हित है। दुष्यंत लिखते हैं–

बहुत मशहूर है आयें जरूर आप यहाँ,
ये मुल्क देखने के लायक तो है, हसीन नहीं।[18]

विकास का जो गुणगान सत्ता और मीडिया मिलकर करती है, उस विकास की वास्तविकता कुछ और ही है। विकास तो हो रहा है पर किसका? जो सम्पन्न है वे और संपन्न होते जा रहे हैं तथा जो विपन्न है वे निरंतर विपन्न होते जा रहे हैं। समाज का मेहनतकश तबका जिस हाल में जीवन यापन कर रहा था, स्वतंत्रता के बाद भी वह उसी फटेहाल में अपना जीवन जी रहा है। उसके अन्दर जिस रोशनी की आस जगाई गयी, उसकी हकीकत कुछ और ही निकली–

ये रोशनी है हक़ीक़त में एक छल, लोगो,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगो।[19]

आजादी उपरांत जिस स्वार्थपरक राजनीति की नींव पड़ी, उससे विकास का लाभ सीमित वर्ग तक सिमट गया। 'लाभ और लोभ' की संस्कृति ने भ्रष्टाचार को जन्म दिया। रक्षक ही भक्षक की भूमिका अदा करने लगें, जनता की टूटी-फूटी दीवारों के दरारों पर इश्तिहार चिपका कर उसकी दरिद्रता और हीनता को छिपानें का प्रयास किया जाने लगा, सरकारी योजनाओं के बिल जनता के नाम पर कटे लेकिन सारी विकासशील योजनाएँ आमजन तक पहुँचने से पहले बीच में ही दम तोड़ने लगीं–

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियों,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार।
"रोज अखबारों में पढ़कर ये खयाल आया हमें,
इस तरफ आती तो हम भी देखते फस्ले-बहार।[20]

तत्कालीन सरकार की नीतियों और कार्यों पर जिस तरह की प्रतिक्रिया दुष्यंत कुमार ने व्यक्त की, वह उस समय के बड़े-बड़े दिग्गज कवि भी न कर सके। स्वातंत्र्योत्तर चिथड़े हुए 'हिन्दुस्तान' को नुमाइश में देखकर करोड़ों लोगों को अपने भीतर महसूस करने वाले गजलकार का लहजा व्यंग्यात्मक हो गया। जब स्थिति यह हो जाए कि "जब से आजादी मिली है मुल्क में रमजान है।"[21] तो किसी भी सच्चे जन-प्रतिबद्ध रचनाकार के लिए अपनी जबान को खामोश रख पाना असंभव हो जाता है। दुष्यंत कुमार के लिए भी यह असंभव हो गया-

ये जुबां हमसे सी नहीं जाती,
जिन्दगी है कि जी नहीं जाती।[22]

दुष्यंत कुमार समाज में व्याप्त इन्हीं विसंगतियों और विडम्बनाओं से जनता को अपनी गजलों के माध्यम से मुक्त कराना चाहते हैं और जनता कुछ हद तक अपने अधिकारों और शोषण मुक्त जीवन जीने का प्रयास भी करती हुई दिखाई देती है-

होने लगी है जिस्म में जुंबिश तो देखिए,
इस पर कटे परिंदे की कोशिश तो देखिए।
गूँगे निकल पड़े हैं, जुबाँ की तलाश में,
सरकार के खिलाफ ये साजिश तो देखिए।[23]

अपनी गजलों में गजलकार ने राजनीतिक विसंगतियों पर कटु प्रहार किया है। जन विरोधी राजनीति और स्वार्थी, असंवेदनशील राजनेता उनकी जनोन्मुखी दृष्टि को खटकती है। यही कारण है कि वे अपनी गजलों को जनविरोधी, असंवेदनशील, दमनकारी व्यवस्था के विरुद्ध एक हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं।

घ. आशावादी स्वर

दुष्यन्त कुमार की गजलों में विषम परिस्थितियों से मुक्त होने हेतु आशावादी स्वर प्रमुख रूप से मुखरित होता है। दुष्यंत कुमार की गजलों में स्वतंत्रता पश्चात की यथार्थ छवि दिखाई देती है। स्वतंत्रता पश्चात स्थापित लोकतंत्र से लोक जैसे गायब हो गया और सबकुछ तंत्र के कटघरे में आ गया-

हमको पता नहीं था हमें अब पता चला,
इस मुल्क में हमारी हुकूमत नहीं रही।[24]

दुष्यंत कुमार की गजलें आपातकाल का दौर और शासन की तानाशाही का उदाहरण है। उस समय जब 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर पाबंदी लगाई गई, दुष्यंत ने लिखा-

गिड़गिड़ाने का यहाँ कोई असर होता नहीं,
पेट भरकर गालियाँ दो, आह भरकर बद्दुआ।[25]

कमलेश्वर लिखते हैं, "आपातकाल के सारे प्रावधानों और राजनीतिक तानाशाही द्वारा बाधित किए गए सारे मानवीय सरोकारों की पक्षधरता में हमें हिन्दी का एक ही कवि दिखाई पड़ता है, और वह है श्साए में धूपश का कवि दुष्यंतकुमार, जिसने कलावादी- व्यक्तिवादी दस्ताने उतारकर आग को छूने का साहसिक साहित्यिक उपक्रम किया।"[26] गजलकार मानते हैं कि जनविरोधी ताकतों को जनशक्ति के द्वारा न केवल नेस्तानाबूद किया जा सकता है बल्कि लोकतंत्र में लोक को सही स्थान भी दिलाया जा सकता है बशर्ते 'एक पत्थर तबीयत से उछालने' के लिए हरेक शख्स अपना हाथ उठाये-

रहनुमाओं की अदाओं पर फिदा है दुनिया,
इस बहकती दुनिया को संभालो यारों।
कैसे आकाश में सुराख हो नहीं सकता,
एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारो।[27]

स्वातंत्र्योत्तर समाज में मानवीय मूल्यों का विघटन तथा भ्रष्ट नेताओं की संवेदनहीनता सामान्य जन-जीवन को प्रभावित कर रही थी। ऐसी स्थिति में दुष्यंत कुमार जनता को निराशा के वातावरण से निकालकर उन्हें आशावादी बनाने का महत्वपूर्ण कार्य अपनी गजलों के माध्यम से किया। उन्होंने इस दृष्टिकोण से असंख्य शेश्र देकर उसका संबंध जीवन की आस्था से जोड़ दिया। समाज और राजनीती की असहनीय परिस्थितियों के बाद भी जनता के आशाहीन जीवन के अन्दर आशा की किरण उगाने का कार्य करते हुए उन्हें हौसला प्रदान करते है-

वो मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता
मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिए।[28]
इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही लहरों से टकराती तो है।[29]

ङ. भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा-

आजादी के बाद नेताओं ने औद्योगिक प्रगति पर ज्यादा जोर दिया जिससे महानगरों का विकास बहुत तेजी से होने लगा, साथ ही एक महानगरीय संस्कृति भी विकसित हुई जिसने भारतीय प्राचीन संस्कृति पर प्रहार किया। समाज में कृत्रिम और रोबीले पंजर वाली नगरीय सभ्यता देखने को मिलने लगीं। इंसान नगरों महानगरों में जाकर अपने मानबीय मूल्यों का त्याग करने लगता है। वह इतना स्वार्थी बन जाता है कि अपने आत्मीय सम्बन्ध को भी नजरअंदाज करने लगता है। उसके व्यवहार में औपचारिकता की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। मानवता से उसका कोई सरोकार नहीं रहता है। वह लोगों से घिरा होकर भी अकेला है और यदि किसी से सम्बन्ध रखता भी है तो केवल अपनें स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ही रखता है। वहाँ की चकाचौंध भरी जिन्दगी में वह अपनों को भूल जाता है। वह सबसे आगे निकलने की अंधी दौड़ में दौड़ने लग जाता है, और एकदम अकेला पड़ जाता है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

ये धुएँ का एक घेरा कि मैं जिस में रह रहा हूँ,
मुझे किस कदर नया है, मैं जो दर्द सह रहा हूँ।[30]

मानवीय मूल्यों के विघटन ने खोखली संस्कृतियों को जन्म दिया। इसमें धार्मिक कुंठाओं, रूढ़ियों, कुप्रथाओं और असामाजिक परम्पराओं आदि का प्रचलन तेजी से होता गया जिसका विरोध दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में किया है। आज के समय में धर्म के नाम पर ही सबसे ज्यादा आडम्बर हो रहे हैं। लोग अपने संस्कारों को भूल गए हैं। धर्म के ठेकेदारों ने धार्मिक ग्रंथों और पूजा-पाठ की छवि को भी धूमिल किया है। अतः गजलकार लोगों को धर्म और सत्य के मार्ग पर चलने की सलाह देते हैं-

गजब है सच को सच कहते नहीं है वो,
कुरानो-उपनिषद खोले हुए है।[31]
ये लोग होमो-हवन में यकीन रखते हैं,
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं।[32]

गजलकार कुंठाओं, रूढ़ियों, कुप्रथाओं और असामाजिक परम्पराओं आदि को छोड़ने या फेंकने की बात करता है। पुराने मूल्यों से चिपके रहने से किसी देश या समाज का विकास या भला नहीं होता है इसलिए उनको छोड़कर आगे बढ़ने में ही भलाई होती है। क्योंकि कचरा घर में रहने से मुगंध नहीं, बल्कि दुर्गन्ध ही फैलती है। वे अपनी गजल में लिखते हैं कि-

पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी,
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।[33]
ष्अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कमल के फूल कुम्लाने लगे हैं।[34]

जब समाज की गली सड़ी रूढ़ियाँ और जीर्ण-शीर्ण परम्पराएँ जड़ हो जाती है तो समाज की प्रगति के लिए नए मूल्यों की आवश्यकता होती हैं। जब कोई व्यक्ति पुराने मूल्यों को चुनौती देकर, उन्हें बदलने की कोशिश करता है तो अन्य लोग नए मूल्यों को मिथ्या बताते है। और जब तक नए मूल्यों को समाज स्वीकार नहीं कर लेता है तब तक गली-सही रूढ़ियों और जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं से जोंक के समान चिपके रहते हैं। पुराने मूल्यों को नए मूल्यों की मान्यताओं को स्थापित करने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ता है क्योंकि इन मूल्यों की जड़ें समाज में गहरी बैठी हुई होती है। इन रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए गजलकार दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि-

ये दरवाजा खोलो तो खुलता नहीं है,
इसे तोड़ने का जतन कर रहा हूँ।[35]

आधुनिक समय में व्यक्ति के जीवन का कोई ऐसा मानवीय मूल्य नहीं बचा है जिसका विघटन नहीं हो रहा हो। जीवन की मान्यताएँ बदल गयी है। हमारे सांस्कृतिक जीवन को विसंगतियों और विद्रूपताओं ने दूषित कर दिया है। लोगों ने झूठ, फरेब और स्वार्थ आदि को अपना मित्र बना लिया है तथा सत्य, ईमानदारी और सदाचार आदि को शत्रु बना लिया है। चारों तरफ दिखावा परोसा जा रहा है। मनुष्य अपनी मानवता खो चुका है। दुष्यंत कुमार अपनी गजल में लिखते हैं कि-

अब नई तहजीब के पेशे-नजर हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं।[36]

मनुष्य ने जैसे-जैसे आधुनिकता को अपनाया, वैसे-वैसे वह एक दिखावे का जीवन जीने की ओर अग्रसर हो गया। उसने अपने मानवीय मूल्यों को ताक पर रख दिया। उसने ठोस मूल्यों को छोड़कर खोखले मूल्यों को ग्रहण किया इससे उसका ही नहीं, बल्कि समाज का भी पतन शुरू हो गया।

हालात-ए-जिस्म सूरते जाँ और भी खराब,
चारों तरफ ख़राब, यहाँ और भी खराब।
नजरों में आ रहे हैं नजारे बहुत बुरे
होंटों में आ रही है जहाँ और भी खराब।[37]

लोग अपनी संस्कृति और मानवीय मूल्यों को भूलकर पाश्चात्य संस्कृतिक अन्धानुकरण करने लगे है। अनुकरण कोई बुरी प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु जो हमारे लिए विनाशकारी है उसका अनुकरण अवश्य बुरा है। लोगों ने पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयों के साथ-साथ बुराइयों का भी अनुकरण किया, जिसके फलस्वरूप फैशन के नाम पर लोग शरीर का प्रदर्शन करते हुए दिखाई देने लगे है-

जिस्म पहरावों में छिप जाते थे, पहरावों में-
जिस्म नंगे नजर आने लगे, ये तो हद है।[38]

भाषागत वैशिष्ट्य: साये में धूप

दुष्यन्त कुमार ने उर्दू-हिन्दी मिश्रित भाषा अर्थात् हिन्दुस्तानी भाषा को अपने चिन्तन और भावों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बनाकर व्यक्त किया है। एक प्रकार से यह भाषा उनकी गजलों की शक्ति है, क्योंकि वह आम आदमी के बोलचाल की भाषा है। समसामयिक कविता की अस्पष्टता, दुरुहता और बौद्धिकता से उनका मन ऊब चुका था। इस कविता की भाषा में आम आदमी की समझने की क्षमता खो चुकी थी, इसीलिए दुष्यन्त कुमार ने गजल विधा का चयन भी किया है, उनका कहना है कि "मैं तो यह मानता हूँ कि उर्दू और हिन्दी दोनों सगी बहनें हैं और दोनों जब अपने ऊँचे सिंहासनों से उतरकर आम आदमी के पास आती हैं तो उनमें फर्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है।"[39] दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी गजल को परम्परागत विषयों और इश्कबाजी से निकालकर जन जीवन से जोड़ा। देश की राजनीति में व्याप्त त्रुटियों, विदूपताओं पर करारे व्यंग्य किए-

जले जो रेत में तलुवे तो हमने ये देखा,
बहुत से लोग वहीं छटपटा के बैठ गए।[40]

विचारों की नवीनता और भाषा विशेष शब्दावली के प्रयोगों द्वारा दुष्यन्त कुमार ने अपनी गजलों को शक्ति प्रदान की।

दुष्यंत कुमार अपनी गजलों की भाषा के विषय में लिखते हैं कि, "एक बात इन गजलों की भाषा के बारे में मुझे और कहनी है, जिसे लेकर शुरू-शुरू में मुझे सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। मेरी दिक्कत यह है कि: उर्दू मैं जानता नहीं और हिंदी में मुझे वह चुहल, वह मुहावरा और बोलचाल का वह वहाव नहीं मिला, जिसके सहारे गजल कही जाती है या जो ज्यादात्तर लोगों की जवान पर चढ़ा है। मगर यही अज्ञानता मेरे लिए एक शक्ति बन गई, क्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली जबान बोलता है। वह न तो शुद्ध उर्दू होती है, न शुद्ध हिंदी। इसलिए मैंने इस भाषा की तलाश शुरू की जो हिंदी को हिंदी और उर्दू को उर्दू दिखाई दे और आम आदमी उसे अपनी जुबान समझकर अपना सके। इस प्रक्रिया में मैंने उर्दू शब्दों के तत्सम रूपों को रद्द करके उन्हें उस तरह स्वीकार किया, जिस तरह वे हिंदी में प्रचलित हैं। यो प्रयोग के लिए मैंने कुछ गजलें शुद्ध हिंदी और कुछ शुद्ध उर्दू में कही है। किन्तु मैंने देखा है कि उनमें से ज्यादातर या तो ज्यादा साहित्यिक हो गई हैया ज्यादा कृत्रिम। और मैं जीवन की जिस बेचौनी को उजागर करना चाहता हूँ, वह शब्दों की चमक-दमक में कहीं खो गई है। इसलिए इन गजलों में गजलियत के साथ मेरी एक कोशिश यह भी रही है कि हिंदी और उर्दू के बीच ये एक सेतु का काम कर सकें।[41] अत: दुष्यंत कुमार ने सरल, सहज व आम जन के समझ आने वाली भाषा का प्रयोग किया, जिसके कारन उनके गजलों का प्रत्येक शेश्र आम जन मानस के पटल पर सदा अंकित रहता है-

यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चले उम्र भर के लिए।[42]

उपसंहार

उर्दू साहित्य की लोकप्रिय विधा गजल में दुष्यन्त कुमार ने आत्मसंघर्ष और अंतर्द्वद से भरे अनुभवों को समाहित कर दिया और रूप और शिल्प दोनों से के माध्यम से दुधारी तलवार का काम लिया। आधुनिक जनजीवन के गहरे स्वरूप को रूपायित करने की में क्षमता गजल में पाकर ये गजल की ओर आकर्षित हुए। सर्वहारा वर्ग के दैनिक जीवन से जुड़ी हुई तकलीफ और शंकाओं, कानून, न्याय की गड़बड़ियाँ, जीवनमूल्यों का हनन, बलिष्ठ व्यवस्था और सामाजिक विषमता को दुष्यन्त कुमार ने कुछ इस प्रकार आशावादी स्वरों में और भविष्य के प्रति आश्वासित होकर प्रस्तुत किया कि उनका स्वर युग का स्वर बन गया। दुष्यंत कुमार वास्तव में आम आदमी के रचनाकार थे। वे थे। उसकी पीड़ा, उसके मन को कड़वाहट को नजदीक से देखते रहते थे। क्योंकि जनसाधारण मध्यवर्गीय समाज से ही थे। इसी कारण उनके मन में देश के हर आम आदमी को खुश देखने दुख-दर्द को सम के की तमन्ना हिलोरे लेती ही रहती थी। ये गवल अपने उद्देश्य में पूर्णरूपेण सफल कही सकती है।

दुष्यंत कुमार की गजलें हमारी चेतना को उद्भूत करती है। हमें हमारे अधिकारों और कर्तव्य के लिए सजग करती है। हमारे देश की आज जो स्थिति है, उसके मूल में कहीं न कहीं हमारी चुप्पी है। आजादी मिले हमें साल से अधिक हो चुका है पर भूख, महंगाई, अभाव और लोकतंत्रीय विडंबना से आमजन आज भी त्रस्त है। हमारे कर्णधारों के लिए आमजन आज भी केवल श्वोट बैंकश ही है, उत्तरदायित्व नहीं। सरकार आज भी उनके प्रति संवेदनहीन है। अपने इस गजल-संग्रह में गजलकार ने समसामयिक राजनीतिक परिवेश के साथ-साथ मानवीय मूल्यों पर मंडराते पूँजीवादी खतरे पर भी अपनी तीक्ष्ण दृष्टि डाली है। पूँजीवाद के वर्चस्व से मानवीय और नैतिक मूल्य धराशायी हो रहे हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति पर हमला कर हमें दिग्वमित करने का कुचक्र रहा जा रहा है। आज नैतिक अवमूल्यन एक गहरी समस्या बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में दुष्यंत कुमार की गजलें अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं कि जब तक संसार में सत्ता के सताए हुए लोग हैं, तब तक दुष्यंत की गजलें जनता को समस्याओं से मुक्ति दिलाने में प्रासंगिक बनी रहेंगी।

आज सड़कों पे चले आओ तो दिल बहलेगा,
चंद गजलों से तन्हाई नहीं जाने वाली।[43]

सन्दर्भ सूचि

1. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संकरण-71वाँ, पृ.सं. 13
2. प्रमोद सिन्हा,
3. वहीं, पू. सं. 195
4. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-71वीं, पृ.सं. 62
5. वही, पृ.सं. 57
6. वही, पृ.सं. 13
7. वही, पृ.सं. 47
8. वही, पृ.सं. 38
9. वही, पृ.सं. 30
10. वही, पृ.सं. 30
11. वही, पृ.सं.51
12. वही, पृ.सं. 30
13. वही, पृ.सं. 33
14. वहीं, पृ.सं.57
15. शशि शर्मा, अपनी माटी, वर्ष-2, अंक-22, अगस्त-2016, हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है.
16. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संकरण-71वाँ, पृ.सं. 13
17. वहीं, पृ.सं.64
18. वही,
19. बही, पृ.सं. 29
20. वही, पृ.सं. 63
21. वही, पृ.सं. 57
22. वही, पृ.सं. 45
23. वहीं, पृ.सं. 61
24. वही, पृ.सं. 18
25. बही, पू.सं. 21
26. शशि शर्मा, अपनी माटी, वर्ष-2, अंक-22, अगस्त-2016, हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है
27. दुष्यन्त कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संकरण-71वाँ, पृ. सं.49
28. वही, पृ.सं. 13
29. वही, पृ.सं. 16
30. वही, पृ.सं.५३
31. वही, पृ.सं. 19
32. वही, पृ.सं.25
33. वही, पृ.सं. 33
34. वही, पृ.सं.14
35. वहीं, पृ.सं. 20
36. वही, पृ.सं. 14
37. वही, पृ.सं. 48
38. वही, पृ.सं.55
39. प्रमोद सिन्हा
40. दुष्यन्त कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संकरण-71वाँ, पृ. सं. 23
41. वही, भूमिका से
42. वही, पृ. सं. 13
43. वही, पृ. सं. 17

दक्षिण के तेलुगु भाषी साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान

डॉ० अपर्णा चतुर्वेदी

सहायक आचार्य हिन्दी, गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज स्वायत, नलगोंडा (तेलंगाना)

अनादि काल से दक्षिण के आँध्र प्रांत में मातृभाषा के साथ ही साथ राष्ट्रीयता का द्योतक रही हिन्दी भाषा के प्रति आदर भाव रहा है और साहित्यकारों व सामान्य जनता ने भी हिन्दी भाषा सीखने में रुचि दिखाई। यद्यपितब आँध्र प्रदेश, तेलंगाना व आँध्रा में विभाजित नहीं था, परंतु इस राज्य में लंबे समय से विभिन्न भाषाओं व संस्कृतियों का सम्मेलन रहा। यहाँ की संस्कृति गंगा-जमुनी तहजीब की रही है।

हिन्दी भाषा के विकास में सर्वप्रथम योगदान तेलुगु भाषी ईमनी लक्ष्मण स्वामी का रहा। जिन्होंने 1882 ईस्वी में नेशनल थियेटर कंपनी के सदस्य बनकर कंपनी के लोगों को हिन्दी सिखाकर तेलुगु नाटकों जैसे- तपोबंद, विश्वामित्र इत्यादि का मंचन किया।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार को दक्षिण भारत के संदर्भ में हम दो रूपों में देख सकते हैं। एक, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाओं का योगदान और दूसरा, साहित्यकारों का योगदान।

हिन्दी के विकास क्रम को आगे बढ़ाने में एक अन्य नाम स्मरण होता है वह है जंध्याल शिवन्ना शास्त्री का। इन्होंने सरस्वती पत्रिका के लिए कई लेख लिखे और हिन्दी-तेलुगु व्याकरण की रचना की।

दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार-प्रसार से जुड़ा एक अन्य महत्वपूर्ण नाम है, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के संस्थापक पद्मश्री डॉ0 मोटूरी सत्यनारायण का। आंध्र प्रांत के कृष्णा जिला में जन्में सत्यनारायण जी दक्षिण में हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं विकास के युग-पुरुष माने जाते हैं। हिन्दी के प्रति वे काफी समर्पित थे और हिन्दी को राजभाषा घोषित कराने और उसके स्वरूप का निर्धारण करने में उन्होनें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने विज्ञानसंहिता नामक ग्रन्थ की रचना की। वे प्रयोजनमूलक हिन्दी के विचार के जनक थे।

मोटूरी सत्यनारायण ने हिन्दीतर राज्यों में सेवारत हिन्दी शिक्षकों को हिन्दी भाषा के सहज वातावरण में रखकर उन्हें हिन्दी भाषा, साहित्य एवं हिन्दी शिक्षण का विशेष प्रशिक्षण प्रदान करने की आवश्यकता का अनुभव किया। उन्होंने कहा था कि- "भारत एक बहुभाषी देश है। हमारे देश की प्रत्येक भाषा दूसरी भाषा जितनी ही महत्वपूर्ण है। भारतीय राष्ट्रीयता को चाहिए कि वह अपने आपको इस बहुभाषीयता के लिए तैयार करें। हिन्दी को देश के लिए किए जाने वाले विशिष्ट प्रकार्यों की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन बनना है।"

डॉ. बालाशौरी रेड्डी हिन्दी व तेलुगु के यशस्वी साहित्यकार माने जाते हैं, उन्हें मुख्यत: बालसाहित्य रचयिता के रूप में जाना जाता है। इनकी मातृभाषा तेलुगु होने पर भी इनका साहित्य हिन्दी के प्रति समर्पित रहा। इनका जन्म भोल्लर गुडर नामक ग्राम में हुआ। उन्होंने कई वर्षों तक बालकों के लिए छपने वाली पत्रिका 'चंदा-मामा' का संपादन किया।

हिन्दी में उनकी 72 तथा तेलुगु में 16 पुस्तकें प्रकाशित हुई। उनके प्रमुख कहानियाँ हैं- हड़ताल और चाँदी का जूता। बाल साहित्य में भी उनकी लेखनी का खुला विस्तार रहा। तेनालीराम के लतीफे, न्याय की कहानियाँ, तेनालीराम की कहानियाँ, इत्यादि। हर-हर गंगे, सत्य की खोज नामक उनके एकांकी संग्रह है। संस्कृति एवं साहित्य से संबंधित उनकी पुस्तक- पंचामृत हिन्दी प्रचार-सभा हैदराबाद से प्रकाशित हुई। शबरी, बैरिस्टर आदि उनके उपन्यास हैं।

हिन्दी के प्रति समर्पित एक अन्य तेलुगु भाषी लेखक हैं श्री अरगपुड़ी रमेश चौधरी। इन्होंने मौलिक हिन्दी कथा लेखन में कीर्ति प्राप्त की। इनके लगभग बीस उपन्यास हैं, जिनमें भूले- भटके, खरे-खोटे, धन्य भिक्षु, दूर के ढोल, आदि लोकप्रिय हैं।

हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं में निष्णात प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं- श्री यार्लागड्डा लक्ष्मीप्रसाद। इनका जन्म 24 नवम्बर, 1953 को कृष्णा जिले के वानपामुला नामक ग्राम में हुआ। इन्होंने अपनी लेखनी की प्रतिभा ही नहीं दर्शायी वरन राजनीति में भी सक्रिय भूमिका निभाई। इन्हें भीष्म साहनी द्वारा रचित उपन्यास 'तमस' का तेलुगु भाषा में अनुवाद करने के लिए 1992 ईस्वी में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। इन्होंने तेलुगु भाषा में हालावाद के प्रवर्तक कवि हरिवंश राय बच्चन की जीवनी एवं जयप्रकाश नारायण की जीवनी लिखी। वे आँध्र प्रदेश अधिकार भाषा संघ के अध्यक्ष भी रहे। इनकी ख्याति इतनी विशिष्ट है कि इन्हें दो बार साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया है। प्रथम बार 1992 ईस्वी में 'तमस' का तेलुगु में अनुवाद के लिए एवं दूसरा इनकी मौलिक रचना (उपन्यास) द्रौपदी के लिए। इन्हें 31 मई, 2021 को गंगा शरण सिंह अवार्ड प्रदान किया गया। उन्हें अथक साहित्य सेवा हेतु 2003 में पद्मश्री एवं 2016 में पद्मभूषण प्रदान किया गया।

हिन्दी साहित्य को सशक्त बनाने हेतु एक अन्य तेलुगु भाषी कवि/लेखक के रूप में जिनका नाम उभरता है एक नाम वह है कुम्भम यादव रेड्डी 'निखिलेश्वर' का। उन्होंने कई रचनाओं का हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद किया।

विविधा (2009) में निखिलेश्वर ने बीसवीं शताब्दी के तेलुगु साहित्य को चुनकर प्रतिनिधि रचनाओं, कविताओं और कहानियों के साथ नाटक और साक्षात्कार का अनुवाद हिन्दी में किया। निखिलेश्वर का मानना था-"भारतीय भाषाओं के आदान-प्रदान से ही भारतीय साहित्य संपूर्ण हो सकेगा तथा अंग्रेजी द्वारा जो अनुवाद का कार्य चलता रहा, यदि वह हिन्दी के माध्यम से फैलता जाए तो आसानी से हम अपने आपको अधिक पहचान सकेंगे।" (Rishalruvech-glogspot-com):- तेलुगु साहित्य का परिवर्तनशील परिदृश्य।

एक अनुवादक की भूमिका में तेलुगु के श्रेष्ठ साहित्य से हिन्दी पाठकों को परिचित कराना उनका उद्देश्य था।

हिन्दी के विकास क्रम को आगे बढ़ाने में साहित्यकारों के साथ-साथ भारत के नौवें प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहा राव जी का योगदान भी अविस्मरणीय है। वे कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ बहुभाषाविद थे। श्री राव संगीत, सिनेमा एवं नाटक में रुचि रखते थे। भारतीय दर्शन एवं संस्कृति, कथा साहित्य एवं राजनीतिक टिप्पणी लिखने, विविध भाषाएं सीखने, तेलुगु व हिन्दी में साहित्य सृजन करने में उनकी रुचि रही। उन्होंने स्वर्गीय श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के प्रसिद्ध तेलुगु उपन्यास 'वेई पड़गालू' का हिन्दी में 'सहस्त्रफन' नाम से किया।

हिन्दी भाषा के प्रति समर्पित साहित्यकारों में श्रीमती शांता सुन्दरी का नाम भी आदर से लिया जाता है। उन्होंने कई पुस्तकों का तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद किया। इन्होंने एक अनुवादक के रूप में ही अपनी पहचान बनाई। इन्होंने तेलुगु के प्रसिद्ध लेखक कोशवटीगंटी कुटुम्बराव की रचना 'चंदुवू' का हिन्दी में 'पढ़ाई' नाम से अनुवाद किया।

हिन्दी के प्रगति में योगदान देने वाले एक अन्य विद्वान रहे आलूरी बैरागी। उनका जन्म 1924 ईस्वी में गुंटूर के तेनाली में हुआ। इन्होने चंदामामा के संपादकीय विभाग में दो वर्षों तक कार्य किया। 1951 में इन्होंने 'पलायन' जैसी रचना लिखकर हिन्दी साहित्य जगत में खलबली मचा दी। इन्होंने पंत और दिनकर की अनेक कविताओं का अनुवाद किया।

हिन्दी के उच्चकोटि के कवि अनुवादक थे श्री वाशणसी राममूर्ति रेणु। इनकी प्रमुख रचनाएँ रहीं- गीत विरह (काव्य), आदान-प्रदान (आलोचना)।

कर्णवीर नागेश्वर राव हिन्दी व संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान थे। साहित्य सौरभ, उनकी मौलिक निबन्ध है। 'कथा मंजरी' उनका कहानी संग्रह है।

एक अन्य तेलुगु भाषी हिन्दी विद्वान हैं- सी. बालकृष्ण राव। इन्होंने कौमुदी, आभास, कवि और छवि, हमारी राह जैसी रचनाएँ लिखीं।

गाँधी जी के 1918 में दक्षिण भारतीयों को हिन्दी का ज्ञान देने के लिए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की स्थापना की। कहा जाता है कि गाँधी जी के द्वारा शुरू किए गए हिन्दी प्रचार-प्रसार आंदोलन से भी पहले दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रचारकों और साहित्यकारों का उदय हो चुका था-डॉ आदेश्वर राव के अनुसार हिंदी साहित्य की सतसई परंपरा को बिहारी सतसई को प्रभावित करने वाले प्राकृत भाषा में लिखित गाथा सप्तशती के रचयिता महाराज हल (शालिवाहन) आंध्र के थे। हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति शाखा के प्रवर्तक आचार्य श्री वल्लभ, गोदावरी नदी के किनारे स्थित खंभापांडू के तेलंग ब्राह्मण थे। इन्हीं से प्रभावित व प्रेरणा प्राप्त करके कवि सूरदास ने सूरसागर की रचना की थी।

संदर्भ सूची

1. bharatdiscovery.org
2. rishabhuvachblogspot.com
3.Abhibyakti.life

उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में योगदान

डॉ० अरुणा दुबलिश

शोध निर्देशिका, पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष एवं पूर्व प्राचार्य, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला, महाविद्यालय, मेरठ

रवि कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मेवाड़ विश्वविद्यालय, चित्तौडगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश

उत्तर प्रदेश में हिंदी भाषा एवं साहित्य का संसार समृद्ध रहा हैं। हिंदी की अधिकांश बोलियाँ ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, बुंदेलखण्डी, कन्नौजी उत्तर प्रदेश में प्रचलित है। भक्तिकाल के महाकवि कबीर, सूरदास एवं तुलसीदास की यह जन्म भूमि एवं कर्मभूमि रही है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा हालावादी कवि हरिवंश राय बच्चन गंगा-जमुनी तहजीब वाले प्रदेश के प्रमुख साहित्यकार हैं जिनका हिंदी साहित्य में अतुलनीय योगदान है। उत्तर प्रदेश के वाराणसी को साहित्यकारों की जननी माना जाता है। हिंदी की विकास यात्रा में उल्लेखनीय योगदान करने वाली साहित्यिक संस्थाएँ यथा हिंदी साहित्यिक सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी पत्रिका इसी प्रदेश की देन रही है।

बीज शब्दः सर्वतोन्मुखी, प्रवेशांक, अंगोपांग, आह्लाद, अद्वैत चिंतन, अकाल्पनिक वृत्त।

भारतेन्दु अपने युग के प्रवर्तक पथ प्रदर्शक साहित्यकार और हिंदी गद्य के जनक थे। इनकी हिंदी सेवा से प्रभावित होकर हिंदी समाचार पत्रों द्वारा इन्हें भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किया था। भारतेन्दु ने 1877 ई० में हिंदी भाषा के महत्व पर भाषण दिया था जो हिंदी प्रदीप पत्रिका में छपा था। इसी में भारतेन्दु ने कहा था- ''निज भाषा उन्नत्ति अहै, सब उन्नत्ति के मूल'', भारतेन्दु जी ने लगभग 175 रचनाएँ लिखीं, जिनमें 70 काव्य ग्रन्थ हैं। शृंगार, भक्ति, प्रेम, समाज सुधार इनकी कविताओं के मूल वर्ण्य-विषय हैं। ''भारतेन्दु जी के कवित्त सवैये बड़े ही मार्मिक होते थे। अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल पर एक ओर तो वे पदमाकर, द्विजदेव की परम्परा में दिखाई देते हैं दूसरी ओर बंग देश के माइकेल मधुसूदन और हेमचन्द श्रेणी से। एक ओर तो राधा-कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नयी भक्तिमाला गूँथते दिखाई देते हैं दूसरी ओर स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते हैं।''[1]

भारतेन्दु हिंदी नवजागरण के अग्रदूत थे और उनका युग हिंदी नवोत्थान का युग था। भारतेन्दु ने अपने नाटकों सत्य हरिश्चन्द्र, अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी इत्यादि के माध्यम से भी नवजागरण का मार्ग प्रशस्त किया। भारतेन्दु ने अंधेर नगरी प्रहसन के द्वारा राजनीति पर करारा व्यंग्य किया। वे नये साहित्य के नये युग के प्रवर्तक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य को नये मार्ग पर खड़ा किया ''आधुनिक हिंदी का वर्तमान स्वरूप भारतेन्दु के हाथों परिवर्तित होता है और इसी अर्थ में भारतेन्दु को स्वयं उद्घोष हरिश्चन्द्र मैगजीन के प्रवेशांक के साथ 'हिंदी नई चाल में ढ़ली' (1873) सर्वाधिक सार्थक बनता है।''[2]

उत्तर प्रदेश की माटी में जन्में दूसरे साहित्यकार हैं, हिंदी और उर्दू साहित्य के महानतम लेखक मुंशी प्रेमंचद, जिन्होंने कथा साहित्य में नए युग की शुरूआत की। प्रेमचंद ने साहित्य में यथार्थवाद की नींव रखी। प्रेमचंद की रचनाएं हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर है। प्रेमचंद ने 15 उपन्यास, 3 नाटक, 7 बाल साहित्य की पुस्तकें और तीन सौ के लगभग कहानियाँ लिखीं, उनके प्रथम कहानी संग्रह सोजे वतन को राजद्रोह के आरोप में कानपुर के अंग्रेज कलक्टर ने जब्त कर बची हुई 700 प्रतियों को जलवा दिया था, जिसमें देश-प्रेम की कहानियाँ थीं, जिससे उनके मित्र दयाराम निगम ने उन्हें प्रेमचंद के छद्म नाम से रचनाएँ लिखने का सुझाव दिया था ''तीस के दशक में जापान में रहते हुए भारतीय पत्रकार केशोराम सब्बरवाल ने प्रेमचंद की कहानियों का जापनी भाषा में अनुवाद किया था।''[3] उनका मानना था कि ''उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार मनोवैज्ञानिक सत्य पर होता है। 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'नमक का दरोगा', 'सदगति', 'अलगोझा', 'छोटी बहू', 'ठाकुर का कुआँ' उनकी सर्वकालिक कहानियाँ हैं। उनकी अंतिम कहानी 'कफन' है, जिसमें दिखाया गया है कि गरीबी मनुष्य को कितना अमानवीय बना देती है। उपन्यासों में उनकी रचना 'गोदान' सर्वप्रसिद्ध है, जो महाकाव्य की श्रेणी में आता है। 'गोदान' कृषि संस्कृति एवं ग्रामीण जीवन का महाकाव्य है।''[4] 'गोदान' उपन्यास के विषय में बच्चन सिंह लिखते हैं ''गोदान महाकाव्यात्मक उपन्यास है। दुनिया में केवल दो ही महाकाव्यात्मक उपन्यास हैं- एक टॉल्सटॉय का युद्ध और शांति और दूसरा गोदान।''[5]

सरस्वती पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी गद्य का परिमार्जन महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया तथा गद्य एवं पद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली हो इस पर बल दिया। कालिदास की निरंकुशता, विक्रमांकचरित चर्चा, नैषधचरित चर्चा इत्यादि आलोचनात्मक पुस्तकें लिखकर इन्होंने आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को इन शब्दों में स्पष्ट किया है ''महावीर प्रसाद द्विवेदी सरीखे आलोचक संस्कृत प्रतिमानों की अवज्ञा न करते हुए भी अपनी सहानुभूति हिंदी लेखन के प्रति रखते थे। इसी कारण संस्कृत के अमूर्तनप्रिय काव्यशास्त्र से अलग हिंदी की व्यावहारिक आलोचना विकसित हो सकी।''[6]

महावीर प्रसाद द्विवेदी को सरस्वती पत्रिका के माध्यम से समकालीन साहित्य को देखने-परखने का सहज सुयोग प्राप्त हुआ। वे लगातार नवप्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा करते रहे। ''अनुशासन की धारा का व्यवस्थित नेतृत्व महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया पर इस धारा के पहले सबसे बड़े कवि हैं- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'। 1914 में प्रकाशित उनका प्रियप्रवास खड़ी बोली हिंदी का पहला महाकाव्य कहा जा सकता है। हरिऔध जी जब खड़ी बोली की ओर मुड़े तो उन्होंने भारी संख्या में विभिन्न विषयों को लेकर यथा मानव शरीर के अंग उपांग, उसके क्रियाकलाप, मनोभाव, पौराणिक प्रसंग और चरित्र, प्रकृति, समाजसुधार तथा देशभक्ति पर कविताएँ लिखीं।''[7]

जिनमें हरिऔध जी ने हिंदी के पुराने और नये छंदों का प्रयोग किया। हरिऔध जी अपनी अद्‌भुत साहित्य सेवा के कारण कवि सम्राट के रूप में प्रसिद्ध हैं। गणपतिचन्द्र गुप्त जी ने उन्हें आधुनिक युग का सूरदास कहा है। हिंदी के प्रथम राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने 40 काव्य ग्रंथों, 19 खण्डकाव्यों और 2 महाकाव्यों की रचना की। गुप्त जी राष्ट्रीय प्रेम की रचना 'भारत भारती' सर्वाधिक लोकप्रिय हुई। इसी रचना के कारण गुप्त जी को जेल भी जाना पड़ा। भारत भारती के आधार पर महात्मा गाँधी ने उनको 1936 में राष्ट्रकवि की उपाधि दी। उनके साकेत महाकाव्य को रामचरिमानस के बाद हिंदी का दूसरा बड़ा महाकाव्य माना जाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्य की उपेक्षित नारी पात्र उर्मिला को अपने साकेत में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। गुप्त जी सांस्कृतिक नवजागरण के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्हें हरिगीतिका छंद का बादशाह कहा जाता है। इन्होंने 21 प्रबन्ध काव्य लिखें जिनमें दो महाकाव्य साकेत और जयभारत हैं। उनके काव्य ग्रंथ जयद्रथ वध में राष्ट्र की बलिवेदी पर प्राण न्यौछावर करने वाले युवक (अभिमन्यु) का चरित्र-चित्रण हुआ है। जयद्रथ वध के विषय में नंदकिशोर नवल अपनी पुस्तक में लिखते हैं ''जयद्रथ वध ने महाभारत के एक प्रसंग पर आधारित होते हुए भी तत्कालीन परिस्थितियों में राष्ट्रीय सन्दर्भ ग्रहण किया था।''[8] भारत भारती में कवि ने राष्ट्रीय भावना की रूपरेखा प्रस्तुत की है तो साकेत में भक्ति भावना की। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी मैथिलीशरण गुप्त के विषय में लिखते हैं- ''खड़ी बोली कविता को लोकप्रिय बनाने में उनका योगदान असाधारण है और विडम्बना यह है कि आलोचकीय मूल्यांकन में वे साधारण कवि माने जाते हैं।''[9]

महान कवि, नाटककार एवं कहानीकार जयशंकर को छायावाद का बाह्य भी कहा जाता है। उन्हें प्रेम और सौन्दर्य का कवि कहा जाता है। कामायनी जिसे छायावाद का उपनिषद् कहा जाता है, में उनकी सौन्दर्य दृष्टि दर्शनीय है-

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग

जयशंकर प्रसाद जी के कामना नाटक पर गाँधी जी का प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ० दशरथ ओझा लिखते हैं ''कामना में जिस प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है यह आगे चलकर 'आँसू' (काव्य), 'प्रतिध्वनि' (कहानी) और 'एक घूँट' (नाटक) में विकसित हुई है और वही कामायनी में प्रस्फुटित हो उठी है। प्रसाद का महत्वपूर्ण चिंतन रहस्यवाद और छायावाद की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर अधिक है। रहस्यवाद को उन्होंने वैदिक परम्परा के स्वस्थ सहज विकास के रूप में देखा जो अपने अद्वैत चिंतन में इस संसार को स्वीकार करके चलता है और विवेक के स्थान पर आनंद को महत्व देता है।''[10]

जिस प्रकार निराला के काव्य में पौरूष की प्रखरता है, प्रसाद के काव्य में शिवत्व और पंत के काव्य में सौंदर्य प्रेम हैं। उसी प्रकार महादेवी के काव्य में वेदनाभूति है। वे अपनी पीड़ा की व्यापकता को अपने प्रियतम परमात्मा से संपृक्त कर देती हैं- तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूंगी पीड़ा। महादेवी जब अपने जीवन की तुलना नीर भरी दु:ख की बदली या दीपशिखा से करती हैं तो वहाँ आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ लोककल्याण की भावना भी विद्यमान रहती है, जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है या दीपक स्वयं जलकर राख हो जाता है किंतु परिवेश को आलोकित करता है उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद व मंगलमय बनाना चाहती है। वस्तुत: महादेवी की वेदना का स्वरूप विषादकारी न होकर आह्लादकारी है। रामस्वरूप चतुर्वेदी महादेवी की सृजनशीलता को स्पष्ट करते हैं ''महादेवी के गद्य साहित्य में अकाल्पनिक वृत्त (रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृत्त) ही रचना के केंद्र में हैं जिसका अर्थ है कि उन्हें पूरी तरह से गद्य की क्षमता पर निर्भर रहना है कल्पना तत्व को परे रखकर। कहानी, उपन्यास, नाटक जैसे कल्पनाश्रित साहित्य रूप उनके यहाँ नहीं है। उन्होंने या तो कविता लिखी है जो भाषा की सर्जनात्मक शक्ति का सघनतम रूप है या फिर अकाल्पनिक गद्य की रचना की है जहाँ भाषा का हल्का सर्जनात्मक संस्पर्श है।''[11]

महादेवी वर्मा को यामा (1940) काव्य के लिए 1982 ई० में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। महाकवि निराला ने उन्हें 'हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती' कहा था। महादेवी वर्मा अपने उत्कृष्ट निबंधों के लिए भी जानी जाती हैं। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उनके निबंधों के विषय में लिखा है- ''महादेवी के आलोचनात्मक निबंध अपने युग के काव्य की आधारभूमि खोजना चाहते हैं। 'काव्यकला', 'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'गीतिकाव्य', 'यथार्थ और आदर्श' शीर्षक निबंध प्रसाद की ही तरह साहित्य की सैद्धांतिक समस्याओं का तात्विक विवेचन करते हैं।''[12]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विरासत के बिना हिंदी साहित्य अधूरा है। विभिन्न युगों में उत्तर प्रदेश के असंख्य साहित्यकारों का हिंदी साहित्य की विकास यात्रा रूपी यज्ञ में आहुति रूपी अमूल्य योगदान है। उपरोक्त लेख में वर्णित प्रत्येक साहित्यकार अपना विशिष्ट एवं विस्तृत रचना संसार रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ०सं० 312
2 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी गद्य विन्यास और विकास, पृ०सं० 228
3 बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी उपन्यास, (सं०) नरेन्द्र मोहन, पृ०सं० 75
4 डॉ० गोपालराय, गोदानः एक नया परिप्रेक्ष्य, पृ०सं० 17
5 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी विन्यास और विकास, पृ०सं० 108
6 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ०सं० 141
7 नंदकिशोर नवल, मैथिलीशरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ०सं० 27
8 वही, पृ०सं० 115
9 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ०सं० 16
10 वही, पृ०सं० 229
11 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी गद्य विन्यास और विकास, पृ०सं० 248
12 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ०सं० 229

कर्नाटक के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० रश्मि बी व्हि

उपन्यासिका, विश्वविद्यालय कॉलेज मेंगलुरु, दक्षिण कन्नड, कर्नाटक

प्रस्तावना:

इतिहास में कन्नड़ साहित्य के इतिहास का कार्य विभाजन भिन्न-भिन्न आधारों पर किया गया है। किसी ने 12 वी शताब्दी के मध्यकाल तक 'जैन युग' भारवि शताब्दी के मध्य काल से 15वीं शक्ति के मध्य भाग तक 'वीर रस' एवं 15वीं शताब्दी से मध्य भाग से 19वीं शताब्दी के पूर्व धर्म तक 'ब्राह्मण युग' और उसके बाद के कल को 'आधुनिक' माना है स और किसी विद्वान के अनुसार आरंभ काल दसवीं शताब्दी तक, धर्म-प्रबल-कल और 10 वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक जैन कवि, वीर शय कवि, ब्राह्मण कवि रगले शतपद एवं नवीन कल कहते हैं स यह निश्चित रूप से कहा जाता सकता है कि, अब तक लिखे गए कन्नड़ साहित्य के इतिहास में कन्नड़ साहित्य चरित्र कई दृष्टियों से सर्वोत्तम है स अत: यहां कहां सकते हैं कि मुलगी का काल विभाजन सर्वाधिक मान्य है स जो इस प्रकार हैं कि; पंपापूर्व सन 950 तक, पापा युग सन 956 और 1150 तक, सन 1150 से 500 तक बसाव युग, कुमार व्यास युग 1500 से 1900 तक और आधुनिक सन 1900 स इस प्रकार प्रत्येक युग के सर्वाधिक प्रतिभा संपन्न कवि के नाम से उस युग का नामकरण करते हुए मोटे तौर पर सारे साहित्य को मार्ग युग संक्रमण युग देसी युग के रूप में विभाजित किया गया है।

कन्नड़ साहित्य का इतिहास लगभग डेढ़ हजार वर्ष पुराना है स कुछ साहित्यिक कृतियां जो नवी शताब्दी में रची गई थी अब भी सुरक्षित है स कन्नड़ साहित्य को मुख्यत: तीन साहित्यिक कालों में बांटा जाता है; प्राचीन काल 452-1200, मध्यकाल 1200-1700 तथा आधुनिक काल 1700 से अब तक स कन्नड़ साहित्य की एक विशेष बात यहां है कि, इसमें जैन, वीरशिव और वैष्णव तीनों समुदायों ने साहित्य रचना की,v जिसमें मध्यकाल में तीन स्पष्ट धाराएं दिखाइए देती है स यद्यपि 18वीं शताब्दी से पूर्व का आदि काल साहित्य धार्मिकथा किंतु कुछ असंप्रदायिक साहित्य भी रचा गया है। कन्नड़ साहित्य के इतिहास पर जितने छोटे बड़े ग्रंथ रचे गए हैं उनमें मुख्य इस प्रकार है ;1875 में किठालु द्वारा लिखी नाग वर्मा के चांदोबुद्ध नामक ग्रंथ की प्रस्तावना, एपी ग्राफिया कर्नाटक में बी एल राइस का लेख आर नरसिं- हाचार का लिखा हुआ "कर्नाटक कवि चरित" ई पी राइस की "ए हिस्ट्री ऑफ कैनरीस लिटरेचर", डॉ आर एस मुलगी का "कन्नड़ साहित्य चरित्र", श्री एम मरियप्प भट्ट का "संक्षिप्त कन्नड़ साहित्य चरित्र"। इतिहासों में कन्नड़ साहित्य के इतिहास का काल विभाजन भिन्न-भिन्न आधारों पर किया गया है। किसी ने भारवि शताब्दी के मध्यकाल तक जैन युग, भारवि शताब्दी के मध्य भाग से 15वीं शताब्दी के मध्य भाग तक वीर रस एवं युग 15वीं शताब्दी के मध्य भाग से 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक ब्राह्मण युग और उसके बाद के कल को आधुनिक युग माना है। किसी विद्वान के अनुसार आरंभ कल दसवीं शताब्दी तक ही है। धर्म प्रबल कल रख ले चटपटी एवं नवीन कल कहा जाता है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अब तक लिखे गए कन्नड़ साहित्य के इतिहासों में डॉक्टर आर एस मुलगी का लिखा हुआ कन्नड़ साहित्य चरित्र कई दृष्टियों से सर्वोत्तम है। अत: यहां कहा सकते हैं की मुलगी का खाल विभाजन सर्वाधिक मान्य है। जो इस प्रकार है कि; पंपापुर युग सन 950 तक, सन 9507 1150 तक, सन 1150 से 1500 तक कुमार व्यास योग, सन 1500 से 1900 तक और आधुनिक युग सन 1900 से है। प्रोफेसर मुलगी ने प्रत्येक युग के सर्वाधिक प्रतिभा संपन्न कवि के नाम से इस युग का नामकरण करते हुए मोटे तौर पर सारे साहित्य को मार्ग युग संक्रमण युग देसी युग के रूप में विभाजित किया है।

कन्नड़ साहित्य के इतिहास में पंप का कई राज्य मार्ग का प्रतिपाद्य विषय अलंकार है ग्रंथ तीन परिचछेदों में विभाजित है द्वितीय तथा तृतीय परिचछेदों में क्रमश: शब्द अलंकारों तथा अर्थ अलंकारों का निरूपण उदाहरण सहित किया गया है। जैन युग होती है लौकिक काव्य में पौराणिक काव्य के कथा नाकों का चित्रण होता था। इस प्रकार दो-दो ग्रंथ रचना का उद्देश्य एक और जैन धर्म के तत्वों का प्रचार करना था। दूसरी ओर संस्कृत के लोकप्रिय महाकाव्य का कन्नड़ में प्रतिरूप प्रस्तुत करने के लोगों को अपने धर्म की ओर आकर्षित करना था। यह जैन कवि संस्कृत प्रकृति तथा अपहरण शाह भाषण के विद्वान थे। साहित्य शास्त्र के मारमग्ने थे और अवश्य बनाया किंतु उनकी मौलिकता को नष्ट न होने देकर रोचक कथा को बनाए रखा। जैन साहित्य की रचनाओं में कन्नड़ भाषा और साहित्यिक का बड़ा उपकार हुआ है। अवधि में चंपा का विषय का विशेष प्रचार हुआ इस समय के धार्मिक कवियों में अद्‌भुत तथा शांत और लौकिक कार्यों में वीर तथा रौद्र रसों की विशेष रूप से अधिक व्यंजन हुई। उपयुक्त दो प्रकार के कवियों के अतिरिक्त चांद रस, अलंकार, व्याकरण, कोष, ज्योतिष, वैद्या, वैदिक आदि विभिन्न विषयों पर भी ग्रंथ लिखे गए। इस प्रकार इस युग में कन्नड़ साहित्य की सर्वोत्तम की उन्नति हुई।

इस युग के प्रसिद्ध कवि तीन थे पंप, पोन्ना तथा राना जो रन्नतयी नाम से प्रसिद्ध थे। महाकवि चंपा अथवा आदि पंप में दो काव्य रचे स "आदिपुराण" और 'विक्रमारनविजय' अथा 'पंपभारत' स आदिपुराण में जिसे नचरीकृत संस्कृत पूर्व पुराण के आधार पर प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ का जीवन चरित्र चित्रित किया गया है और विविविविक्रमार्जुनव मै भारत के कथानक का निरूपण किया गया है। यह दोनों चंपा काव्य में पंपाा कनाडा के आदिकवि माने जाते हैं। इनका समय सन 1941 के लगभग माना जाता है। पौन पंप के समकालीन थे, उन्होंने तीन ग्रंथ रखे थे ;शांति पुराण, जीनाक्षरमाला तथा 'भूवनाएंकरामाभूदाया' स अंतिम ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। रन्न की मुख्य रचनाएं दो हैं; 'अजीतपुराण' तथा 'साहस भीमविजय' अथवा गदायुद्ध में वीर रस की अनूठी व्यंजन हुई है। इसी काव्य से रन्न की कीर्ति अचल हुई है।

पंप युग के अन्य कवियों में चामुंडाराय, नागवर्मा, दुर्गासिंह, चंद्रराज, नागचंद्र, नागवर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। चामुंडाराय का चामुंडारायपुराण पुराण प्राचीन कन्नड़ गद्य का सुंदर रचना है। नागवर्मा प्रथम के दो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। कर्नाटक कादंबरी तथा चांदोबुद्धि। कर्नाटक कादंबरी बन की कादंबरी का कन्नड़ प्रतिरूप है। यहां चंपू शैली में है प्रोफेसर मुलगी का मत है कि कन्नड़ में अनुचित जितने ग्रंथ थे उनमें नागवार्म की कर्नाटक कादंबरी सर्वश्रेष्ठ है। चंद्रराज और श्रीधराचार्य नागवर्मा के समकालीन कवि है। चंद्रराज का कामशास्त्र पर लिखा हुआ मदन तिलक नामक ग्रंथ और श्रीधराचार्य का जाट का तिलक नमक ज्योतिष ग्रंथ दोनों उत्तम कृतियों में है। इसी काल में दुर्गा सिंह ने, जो भागवत संप्रदाय के कवि थे, संस्कृत 'पंचतंत्र' का अनुवाद प्रस्तुत किया।

पंप युग में महाकवियों का अविभाव हुआ और उन्होंने अपने महान आकृतियों से कन्नड़ को समृद्ध बनाया। 11वीं और 12वीं शताब्दी के बीच एक अन्य प्रसिद्ध कवि हुए जिनका नाम नाचंद्र था। कई क्योंकि इन्होंने पंपभारत से प्रेरणा पाकर रामायण की रचना की, इसलिए इनका दूसरा नाम 'अभिनव पंप' पड़ा स नागचंद्रा ने भी पूर्ववृत्ति जैन कवियों की भांति दो काव्य रचे; "मल्लिनाथपुराण" तथा "रामचंद्रचरितपुराण" अथवा "परंपरारामायण"। पंपरामायण ही कन्नड़ के उपलब्ध राम कथा संबंधी काव्य में सबसे प्राचीन है स यद्यपि इस काल में बड़े-बड़े कलात्मक प्राउड काव्य का निर्माण हुआ तो भी समाज के साधारण लोगों के जीवन के साथ साहित्य का संपर्क नहीं था। इसका मुख्य कारण यह था कि इस समय के कई राजाओं के आश्रय में रहते थे और वे जो कुछ लिखते थे, या तो अपने आश्रयदात राजाओं का यश गाने के लिए लिखते थे, या दरबार के अन्य पंडितों के बीच वहां वाही लूटने के लिए अथवा अपने धर्म का प्रचार करने के लिए, इसका परिणाम यहां हुआ कि बोलचाल की भाषा साहित्य सृजन के लिए उपयुक्त नहीं समझी गगई स सर्वत्र संस्कृत का प्रभाव पड़ा। चंपू शैली में जो प्राउड काव्य रचे गए वे साधारण जनता की वस्तु न होकर पंडितों का सीमित रहे।

12वीं शताब्दी के उतरन से 15वीं शताब्दी तक का कल बसवा युग कहलाता है स इस युग का दूसरा नाम है क्रांति युग। इस समय कर्नाटक में धार्मिक सामाजिक या राजनीतिक, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जो क्रांति से अछूत रहा सकता हो। इस क्रांति के उन्नयन बसवा, बसवन्ना अथवा बसवेश्वर थे, इसीलिए इस युग का नाम बसाव युग पड़ा स कन्नड़ साहित्य के निर्माण के लिए उपयुक्त समाज गई और संस्कृत के काव्य शैली के बदले देसी छंदों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया पिछली शताब्दियों में जैन माता वाला वीडियो का साहित्य क्षेत्र में सर्वाधिक तार था इस युग में भिन्न-भिन्नमता व लंबी होने साहित्य के निर्माण में योगदान दिया साहित्य केसरी वृद्धि में भक्ति यह क्यों प्रबल प्रेरक शक्ति के रूप में सहायक हुए भारवि शताब्दी के उत्तरार्ध में बसवेश्वर का आविर्भाव हुआ इन्होंने वीर साहब मत का पुनः संघटना करके कर्नाटक के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में बड़ी उतार पुताई मचाए स बसवा तथा उनके अनुयायियों ने अपने मत के प्रचार के लिए बोलचाल के कन्नड़ को माध्यम बनाया स वीर साहिब भक्तों ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार एवं नीति पर निराडंबर शैली में अपने अनुभवों के भंते सुनाएं स जो वचन साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह न वीर रस एवं भक्तों अथवा शिव आश्रमों के वचन एक प्रकार के गद्य गीत है शिव शरणों ने साहित्य के लिए साहित्य नहीं रचा उनका मुख्य उद्देश्य अपने विचारों का प्रचार करना ही था उनके विचारों में सरलता थी सच्चाई थी और सच्चे जिज्ञास के समस्या था।

15वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के अंत तक का कल 'कुमारव्यास' जी को कहलाता है। इस अवधि में विजयनगर के सम्राटों तथा मैसूर के राजाओं ने कन्नड़ साहित्य की श्रीवृद्धि में विशेष हाथ बताया स वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा आप बड़ी तेज जिसकी प्रतिक्रिया कन्नड़ साहित्य में भी दिखाई पड़ी स वैश्यनव धर्म द्वारा प्रचारित भक्ति साहित्यसृजन में प्रेरक शक्ति के रूप में प्रकट हुई स साहित्य जनक के अति निकट संपर्क में आया। इस कल के सर्वश्रेष्ठ कवि नरनप्पा है। जो अपनी लोकप्रियता के कारणकुमार व्यास के अभिधान से प्रयुक्त हुए। कुमराव्यास भागवत संप्रदाय के प्रमुख कवि थे। कुमार व्यास के कन्नड भारत के उपरांत महाभारत, रामायण और भागवत के कथानकों के आधार पर बहुत से उत्तम कार्य शैली में प्रस्तुत की गई हैं। कुमारव्यास के दिखलाए हुए मार्ग पर चलकर नरहरि अथवा कुमारवाल्मीकि नमक कवि ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर कन्नड़ में "तोरवे रामायण" की रचना की स यह भी भक्ति प्रधान प्रबंध काव्य है जो प्राचीन कन्नड़ की एक सरस कलाकृति है। भागवत मातावालंबी कवियों में तिमाअन्न कवि, चाटू विठलानाथ लक्ष्मीश तथा नागरस नाम उल्लेखनीय है। कुमार व्यास से प्रेरणा पाकर थिम्मन्ना कवि ने महाभारत के अंतिम आठ पार्वकी कथा का निरूपण "कृष्णा राज भारत" नामक अपने काव्य में किया। सबसे पहले समग्र भागवत का कन्नड़ प्राध्यानुवाद चाटु विट्ठलनथ वर्णन किया है। लोकप्रियता की दृष्टि से कर्नाटक के कुमार व्यास के भारत के बाद जैमिनी भारत का स्थान है। नागरस नमक कवि ने भागवत गीता का "वासुदेवकथाअमृतसार" नमक कन्नड पद्यानवाद प्रस्तुत किया है।

जन्म तिथि जन्म स्थान तथा उनके रचनाकार के संबंध में विद्वानों के मतभेद में जो मुलगी के अनुसार 14वी और 15वीं शताब्दियों के बीच कुमार व्यास जीवित थे। कुमराव्यास ने कन्नड़ भारत अथवा गाड़गिन भारत और ऐरावत नामक दो काव्य लिखे थे, ऐसा माना जाता है। लेकिन एरावत के उनकी कृति होने में संदेह प्रकट किया गया है। कन्नड़ भारत में व्यासरचित महाभारत के प्राथम दस वर्षा की कथा का निरूपण किया गया है। कन्नड प्रतिरूप को प्रस्तुत किया था तो भी वहां कुमार व्यास के कन्नड़ भारत की तरह लोकप्रिय नहीं हो सका। इसके दो कारण है एक यहां है कि ;पंप भारत में पांडित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक थी और दूसरा यह कि उसने जैन धर्म का रंग भी चढ़ा था।

जिस प्रकार इस अवधि में कुमारव्यास, कुमारवाल्मीकि, लक्ष्मीशा जैसे भागवत संप्रदाय के कवियों ने भारत रामायण भागवत आदि महाकवियों से कथावस्तु लेकर कन्नड़ में भक्ति प्रधान प्रबंध कार्यों का प्राणायाम किया स इस प्रकार माधवमतवालंबी भी भक्तों ने बोलचाल के कन्नड़ में गीत, भजन, कीर्तन रखकर भक्ति का संदेश कर्नाटक के घर-घर पहुंचा स इन भक्तों के परंपरा का आरंभ 13वीं शताब्दी में नरहरितीर्थ द्वारा हुआ था। इस समय इन भक्तों की एक बड़ी मंडली छूट गई थी जो प्रधानतय दो भागों में विभाजित थी। एक दल का नाम था व्यासकोटे और दूसरे का दासकूट। इन दोनों में अंतर यही था कि वह भक्त व्यासकूट के कहलाते थे, जो अधिकांश ब्राह्मण थे और जो अपने विचारों के अभिव्यक्त के लिए संस्कृत को ही उपयुक्त समझते थे एवं वे भक्ति दासकूट के माने जाते थे जिनमें सभी दरबारी कवियों में कैंप नारायण तथा बसवप्पा शास्त्री ने संस्कृति एवं अंग्रेजी के कुछ नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करके कन्नड़ में नाटक के साहित्य के निर्माण के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया कालिदास के शकुंतला आदि नाटकों का शास्त्री ने इतनी सफलता से अनुवाद किया कि वह अभिनव कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हुए किंतु नारायण ने मुद्रा मञ्जूष नामक के ऐतिहासिक उपन्यास लिखा नंद वंश की कहानी इसके कथावस्तु है जिस पर मुद्रा राक्षस का प्रभाव लक्षण होता है यही कन्नड़ का सर्वप्रथम उपन्यास है स19वीं शताब्दी के अंत में मुद्रण नामक एक सफल कवि हुए जिन्होंने

तीन सरस काव्य लिखो; "अद्‌भुत रामायण", "रामपट्टाभिषेक और "रामाश्वमेध"। 'अद्‌भुत रामायण' और रामाश्वमेध दोनों गद्य ग्रंथ है। इनके गद्य की यहां विशेषता है कि प्राचीन कन्नड़ की प्रौढ़ता एवं मधुरता के साथ साथ आधुनिक कन्नड़ के सरलता का परिचय मिलता है।

भारतीय जीवन के इतिहास में 19वीं शताब्दी का उत्तरा अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस समय सम्मान परिस्थितियों तथा प्रभावों के सारा भारतीय जीवन समर्थित तथा आंदोलन हुआ था, अत यहां कहा जा सकता है कि आधुनिक कन्नड़ साहित्य की गतिविधि की कहानी अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य की कहानी से कुछ विभिन्न नहीं है। आधुनिक कन्नड साहित्य चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे इस प्रकार है; 1900 तक का प्रथम उत्थान, 1981 से 1920 तक द्वितीय उत्थान, 1921 से 1940 तक तृतीया उत्थान होती है और 1940 से अब तक चतुर्थ अध्ययन।

आधुनिक कर्नाटक प्रथम गद्य के साथ प्रारंभ होता है जिसके निर्माण में ईसाई मिशनरियों की सेवा उल्लेखनीय है। कहा जाता है, 1890 में रेवा रेवरेंड विलियम कैरी ने बाइबिल का अनुवाद प्रस्तुत किया। लगभग 1831 में बेल्लारी तथा मंगलोर में मिशनर्ययों द्वारा मुद्रणालय स्थापित किए गए जिनके कारण कन्नड़ ग की छपाई से सहायक मिली। सन 1823 में प्रकाशित कन्नड़ बाइबल ही आधुनिक कन्नड का सर्वप्रथम गद्य ग्रंथ है। तदुपरांत इसाई पद्धतियों ने अपने धर्म के प्रचार हेतु कन्नड में पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित कराई जिम 'सभापत्र' 'सत्यदीपिके' तथा 'कर्नाटक' मुख्य है। 19वीं शताब्दी की अंतिम तिन दशाब्दिय में कन्नड़ भाषा तथा साहित्य के अभिवर्धन के लिए महत्वपूर्ण कार्य हुआ। इधर दक्षिण कर्नाटक में कर्नाटक के राजाओं के प्रोत्साहन के फल स्वरुप कर्नाटक में प्राच्य पुस्तकालय तथा उधर धारवाड़ में कर्नाटक विद्यावर्धक संघ की स्थापना हैं।

निष्कर्षः-

बहुत सारा आधुनिक कन्नड के प्रमुख तथा प्रथम द्वितीय अध्ययन में राष्ट्रीयता का स्वरूप मुखरित हुआ। उसके बाद समाज सुधार तथा दलित जातियों के उधर की भावना जोर पकड़ने लगती है। पौराणिक विषयों तथा पत्रों का मानवीकरण एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रकृति के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण पूरी तरह से व्यक्त हुआ है। नवीन लेखक के नया साक्षात्कार था कि साहित्य व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होकर स्वयं पूर्णता को प्राप्त होता है। गीत और निबंध उपन्यास और नाटक इत्यादि भी इसी व्यक्तित्व वार्ड से अनुभूति पूर्ण तथा अनुप्राणित हुए हैं। यथार्थवादी लेखकों ने सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं के जूते विश्वास स्वतंत्रता कोकअली पन का पर्दाफाश किया है। प्रगतिशील शक्ति साहित्यकारों में प्रधानता है। समाज की दुर्व्यवस्था की समस्या को मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर हल करने का ऑपरेशन किया है। रूढ़िवादी लेखक अपने के जिनका चरम उद्देश्य सोंदर्य जगत में साहसपूर्ण अभियान है। साहित्यकारों की एक आर्थिक धारा भी है जिसने नीति तथा विचार पूर्ण दर्शनी कथा की ध्वनि मुखरित है। इस प्रकार विविध विचारधारा के लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विधाओ के माध्यम से कन्नड बाराती को सजाया है। ईन विभिन्न विचारधाराओं से जिस साहित्यसंगम की सृष्टि हुई है। उसके समासटी रूप में से एक मानवतावाद उज्जवल जीवन दर्शन प्रकाशित हुआ है जिसका कालांतर में व्यापक प्रभाव अवश्य लक्षित होगा।

सन्दर्भ सूचीः

1) कन्नड साहित्य और संस्कृति; सं. डॉ.अमरसिंह वधान स
2) समग्र कन्नड साहित्य सौरभ दर्शन; प्रो.रा.श्री.सुनकद स
3) कन्नड भाषा और साहित्य दर्शन; मानसा मैसूर स
4) कन्नड साहित्य चरितार ;मुगली आर एम स
5) साहित्य विमर्श; डॉ.सी एन.रामचंद्र स

स्वाधीनता आंदोलन मे हिंदी साहित्यकारों का योगदान

डॉ० मीना अग्रवाल

वाई.एम.एस पीजी. कॉलेज, मंडीधनौरा (अमरोहा)

स्वाधीनता संग्राम का इतिहास दीर्घ काल तक फैला हुआ है। इस इतिहास का केंद्रीय तत्व संस्कृति है। 1857 का स्वाधीनता संग्राम दुनिया की पहली राष्ट्रवादी क्रांति है। 1857 भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अग्नि धर्मा विद्रोह था। भारत ने संस्कृति की विरोधी प्रत्येक विदेशी हमला का प्रतिकार किया।

इस विद्रोही तूफान का समापन गांधी अहिंसा के बल पर 15 अगस्त 1947 को आजादी के रूप में हुआ।

स्वतंत्रता आंदोलन भारतीय इतिहास का युग है जो पीड़ा, कड़वाहट ,आत्मसम्मान और गौरव तथा सबसे अधिक शहीदों के लहू को समेटे हैं। स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में समाज के प्रत्येक वर्ग में अपने अपने तरीके से बलिदान दिए। इस स्वतंत्रता के युग में साहित्यकार और लेखकों ने भी अपना भरपूर योगदान दिया। अंग्रेजों को भगाने में कलमकारों ने अपनी भूमिका बखूबी निभाई।

प्रेमचंद की रंगभूमि, कर्मभूमि उपन्यास हो या भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'भारत दर्शन', नाटक के जयशंकर प्रसाद का 'चंद्रगुप्त' सभी देश प्रेम की भावना से भरी पड़ी है। इसके अलावा वीर सावरकर की 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम हो, या पंडित नेहरू की 'भारत एक खोज' या फिर लोक मान्य बाल गंगाधर तिलक की 'गीता रहस्य' या शरद बाबू का उपन्यास 'पथ के दावेदार' यह सभी किताबें ऐसी हैं जो लोगों में राष्ट्र की भावना जागृत लगाने में कारगर साबित हुई।

भारत में स्वाधीनता संग्राम का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि हमारी परतंत्रता का इतिहास यह देश 1000 वर्ष से भी अधिक समय तक गुलाम रहा। परंतु उसका सांस्कृतिक स्वरूप अक्षुण्ण बना रहा भारत की राष्ट्रीयता का आधार राजनीतिक एकता ना होकर सांस्कृतिक एकता रही है।

मोहम्मद इकबाल के शब्दों में-

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहा हमारा।"

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र हिंदी भाषा के पहले कभी माने जाते हैं जो समाज को जागृत करने के लिए अपनी लेखनी उठाते हैं उनका रचनाकाल इसलिए 1867 से 1885 रहा। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने आधुनिक युग का प्रारंभ किया, उसकी जड़े स्वाधीनता आंदोलन में ही थी भारतेंदु और भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों ने युग चेतना को पद्य और गद्य दोनों में अभिव्यक्ति दी।

इसके साथ ही इन साहित्यकारों ने स्वाधीनता संग्राम सेनानियों की भूरी भूरी प्रशंसा करते हुए भारत के स्वर्णिम अतीत में लोगों की आशा जगाने का प्रयास किया।

'अंधेर नगरी चौपट राजा' व्यंग्य के माध्यम से भारतेंदु जी ने तत्कालीन राजाओं की निरंकुशता, अंधेर गर्दी और उनकी मूर्खता का सटीक वर्णन किया है अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है कि-

"भीतर भीतर सब रस चुसै, हंसी हंसी के तन मन धन मुसै।
जाहिर बातिन में अति तेज, क्यों सखि साजन, ना सखि अंग्रेज।"

बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेंदु जी से प्रभावित होकर काव्य अब नाटकों की रचना की उन्होंने ई0 1888 में कांग्रेस के महाधिवेशन के अवसर पर खेले जाने के लिए 'भारत सौभाग्य' नाटक लिखा 'प्रेमघन' को भारतेंदु मंडल का उज्जवल नक्षत्र कहा जाता है।

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने भी स्वाधीनता संग्राम में अपनी लेखनी द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने भारतीय संविधान हेतु अपनी तलवार रूपी कलम को पैना किया। इन कवियों ने आम जनता में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाने तथा उन्हें स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बनने हेतु प्रेरित किया।

भारत भारती के रचयिता मैथिलीशरण गुप्त कभी राष्ट्रकवि कहलाए, तो वही माखनलाल चतुर्वेदी ने 'पुष्प की अभिलाषा' लिखकर जनमानस में सेनानियों के प्रति सम्मान के भाव जागृत किए, 'सुभद्रा कुमारी चौहान' ने 'झांसी की रानी' आदि कविताओं के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन को तेज करने में अद्वितीय भूमिका अदा की। मैथिलीशरण गुप्त ने भारतवासियों को स्वर्णिम अतीत की याद दिलाते हुए वर्तमान और भविष्य को सुधारने की बात की।

"हम क्या थे, क्या हैं, और क्या होंगे अभी
आओ बिचारे मिलकर यह समस्याएं सभी।"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती में उन्होंने लिखा-

"जिसको न निज गौरव तथा नहीं देश का अभिमान है।
वह नर नहीं ,नर-पशु निरा है और मृतक समान है।"

सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसीकीरानी' कविता ने अंग्रेजों को ललकार ने का काम किया-

"बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।"

पंडित श्याम नारायण पांडे ने महाराणा प्रताप के घोड़े चेतक के लिए 'हल्दीघाटी' में लिखा-

"रण बीच चौकड़ी भर भर कर चेतक बन गया निराला था
राणा प्रताप के घोड़े से पड़ गया हवा का पाला था
"गिरता न कभी चेतक तन पर राणा प्रताप का था कोड़ा था।
वह दौड़ रहा मस्तक पर या आसमान पर घोड़ा था।"
जयशंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा
'सुमित्रा नंदन पंत ने 'ज्योति भूमि' जय भारत देश
इकबाल ने 'सारे जहां से अच्छा हिंदुस्ता हमारा' तो
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'विप्लव गान' लिखा।

इसके अलावा बंकिम चंद्र चटर्जी का देश प्रेम से ओतप्रोत गीत 'वंदे मातरम' ने लोगों की रगों में उबाल ला दिया

'वंदे मातरम!
सुजलां सुफलां मलयज शीतलां
शस्य श्यामला मातरम! वंदे मातरम!
शुभ्र ज्योत्सना -पुलकित -यामिनी
फुल्ल -कुसुमित- द्रुम दल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखधामं वरदां मातरम! वंदे मातरम!'

देशभक्ति से ओत-प्रोत उनकी यह एक ऐसी रचना है जिसके जरिए कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने आजादी की बलिवेदी पर शहीद हुए वीर सपूतों के प्रति अगाध श्रद्धा दिखाई है और बलिदानों को सर्वोपरि बताया है एक फूल के माध्यम से उन्होंने अपनी बातों को सशक्तता व उत्कृष्टता के साथ कहां है। वह बेहद सराहनीय है।

'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं मैं गथू अलकों में बिंद प्यारी को ललचाऊं चाह नहीं सम्राटों के द्वार पर हे हरि! डाला जाऊं
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं,भाग्य पर इतराऊं मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक मातृभूमि पर शीश
चढ़ाने जिस पथ पर जावे वीर अनेक।'

इसी प्रकार राधा कृष्ण दास, बद्रीनारायण चौधरी प्रताप नारायण मिश्रा ,पंडित अंबिका दत्त व्यास, बाबू राम किशन वर्मा, ठाकुर जगमोहन सिंह, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे प्रबुद्ध रचनाकारों ने राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की ऐसी गंगा बहाई। जिसके तीव्र वेग से विदेशी नीवं हिलने लगी।

स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भी भागीदारी

राष्ट्र के नवनिर्माण में महिलाओं का योगदान सराहनीय है। वह अपनी योग्यता और साहस के बल पर पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर ही नहीं बल्कि एक कदम आगे चल रही हैं। उन्होंने भारत के राष्ट्रपति प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल आदि का दायित्व बड़ी कुशलता से संभाला है। और संभाल रही हैं इनके अलावा यह प्रशासनिक सेवा पद, विज्ञान, शिक्षा अनुसंधान, सेना, अंतरिक्ष, व्यापार, खेल, चिकित्सा आदि सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दे रही हैं राष्ट्र अपने नवनिर्माण में इनके योगदान से गौरव अनुभव कर रहा है।

अंग्रेजों के विरुद्ध घर की इस लड़ाई में पुरुषों के साथ महिलाओं के सक्रिय योगदान की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857 में पुरुषों की संघर्षशील भूमिका के मध्य, महारानी लक्ष्मीबाई, रानी चेन्नम्मा आदि वीरांगनाओं के साथ और सक्रिय योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। वीर शिवाजी की स्वराज स्थापना के पीछे उनके वीरमाता जीजाबाई का जैसा हाथ था। उसी प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के पीछे महिलाओं के योगदान की प्रेरणा रही।।

महिलाओं ने आंदोलन में भाग लेने वालों ,जेल जाने वालों, फांसी के फंदे पर झूलने वालों के तिलक लगाकर, और राखी बांधकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। अंग्रेजो के खिलाफ होने वाले आंदोलनों में कंधे से कंधा मिलाकर उनका योगदान किया। इतिहास गवाह है कि मानव मन की

घुटन से ही विद्रोह के भाव जागे हैं। इसी क्रम में विदेशी अंग्रेजों ने व्यापार करने के माध्यम से हमारे देश में प्रवेश कर देसी राज्यों में फूट डालो राज्य करो कि कूटनीति अपनाकर देश का राज्य स्थापित कर खोखला कर दिया। भारतीय मानसिकता में विद्रोह की आग धीरे-धीरे सुलगी। सनू 1857 मैं मेरठ की एक छावनी से मंगल पांडे के माध्यम से अंग्रेजों के खिलाफ हुआ धीरे-धीरे गांधी के रूप में हुआ।

1857 के स्वाधीनता संग्राम के इस प्रथम युद्ध में भारतीयों ने जो एकता प्रदर्शित की, उससे यह लगने लगा था कि भारतीय अब अधिक समय पराधीनता में नहीं रहने वाले। स्वाधीनता संग्राम की यह चिंगारी सुलगती रही। अंतत उसी भारत भू पर महात्मा गांधी, तिलक, गोखले, लाला लाजपत राय तथा मोतीलाल जैसे नेताओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजा दिया। स्वामी दयानंद और अरविंद घोष जैसे महापुरुषों ने ऐसे संघर्ष के लिए पहले ही उचित वातावरण तैयार कर लिया था। एक और महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसावादी दोलन छिड़ने वाला स्वतंत्रता सेनानी का दल था। दूसरी ओर भगत सिंह, राजगुरु सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद, तथा पंडित राम प्रसाद बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों का दल था। जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तैयार था सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में अंग्रेजों से लोहा लेना शुरू कर दिया।

भारत छोड़ो आंदोलन के स्वाधीनता संग्राम एक निर्णायक दौर में पहुंच गया अंतत: 15 अगस्त 1947 को भारत वर्ष आजाद हुआ। अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए। तब से अब तक 15 अगस्त 1947 को भारत का स्वतंत्रता दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है 15 अगस्त को स्कूलों कालेजों और सरकारी संस्थानों में समारोह होते हैं तथा तिरंगा फहराया जाता है स्कूलों तथा कालेजों में इस दिन गीत और संगीत के कार्यक्रम होते हैं तथा स्वाधीनता संग्राम में काम आ जाने वाले शहीदों को स्मरण किया जाता है राज्य के प्रत्येक जिला स्तर पर मुख्य समारोह से होते हैं राष्ट्रपति द्वारा पुलिस तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों तथा अधिकारियों के लिए अलंकरण तथा पुरस्कार घोषित किए जाते हैं राष्ट्रपति भवन जैसे मुख्य भवनों पर रोशनी की जाती है।इस तरह धूमधाम से स्वाधीनता दिवस मनाया जाता है।।

हिंदी के विकास में महात्मा गांधी का योगदान

आदिकाल से देश के लोगों को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता रही है। प्रत्येक देश के सर्वाधिक समृद्ध भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया जाता है। प्राचीन काल में संस्कृत और मध्य काल में प्रशासनिक भाषा फारसी थी। लेकिन जनमानस की भाषा हिंदी रही है।

सामान्य भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा की उच्च पदवी दिलाने की महात्मा गांधी जी की उत्कृष्ट कोशिशों को हर कोई जानता है। गांधी जी जब भारत दर्शन कर रहे थे तब उन्होंने देखा कि स्वतंत्रता आंदोलन तो चंद पढ़े-लिखे शहरी बाबू और वकीलों के हाथ में है।

हिंदुस्तान का हर एक व्यक्ति अगर इस आंदोलन में भाग नहीं ले रहा ,अपना योगदान नहीं दे रहा। तो यह आजादी तो मिलने से रही, ग्रामीण गरीबों और शिक्षित और अशिक्षित तक पहुंचने के लिए उन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना सही समझा।और मातृभाषा गुजराती में नवजीवन सप्ताहिक प्रकाशित करना शुरू कर दिया। महात्मा गांधी जी के विचार गुजराती में और अंग्रेजी में ही प्रकट होते देखकर स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज ने गुजराती नव जीवन की हिंदी आवृति निकालने का आग्रह किया।

प्रतिभा के धनी गांधी जी की उपलब्धियां राजनीति एवं समाज सुधार के क्षेत्र में इतनी ज्यादा महत्वपूर्ण है। कि शिक्षा तथा विशेषकर राष्ट्रभाषा हिंदी विकास के संबंध में उनके योगदान को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया। हिंदी से उनका तात्पर्य हिंदुस्तानी से था।जो हिंदी उर्दू की विशेष भाषा थी।हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाए जाने के संबंध में गांधीजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। भारत आते ही उन्होंने जिन आंदोलनों का नेतृत्व किया, उनमें हिंदी आंदोलन प्रमुख ही नहीं, बल्कि शीर्ष पर रहा। गांधी जी ने हिंदी को भारतीय स्वतन्त्रता की वाणी की संज्ञा दी।

भारतीय भाषाओं में विशेषकर हिंदी के प्रति उनका लगाव दक्षिण अफ्रीका के प्रवासकाल के दौरान ही स्पष्ट रूप ले चुका था। दक्षिण अफ्रीका के समाचार पत्र में उन्होंने कहा था। यह भाषा उत्तर भारत के सभी लोग बोलते हैं इसकी माता संस्कृत और फारसी होने के कारण वह हिंदू और मुसलमान दोनों को अनुकूल पड़ सकती है इसके सिवा चूँकि फकीर और सन्यासी भी यही भाषा बोलते हैं ,अत: इसका प्रचार सभी जगह होता है अनेक अंग्रेजी भी सीखते हैं इस भाषा का फैलाव बहुत है यह भाषा अपने आप बहुत मीठी और ओजस्वी है। हर एक पाठशाला में भाषा के अतिरिक्त इस भाषा को शिक्षा दिया जाना चाहिए अब गांधी जी का यह भी मानना था। कि जो हिंदुस्तानी माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेजी में बोलने और सोचने की बचपन से ही शिक्षा देते हैं एक प्रकार से अपने देश के साथ धोखा कर रहे हैं, वे लोग ऐसा करके अपने बच्चों को आध्यात्मिकता और सामाजिक विरासत से वंचित कर उन्हें देश की सेवा के लिए असमर्थ बनाते हैं।

गांधीजी ने दक्षिण के 4 प्रांतों आंध्र, तमिलनाडु केरल और कर्नाटक को हिंदी के अनुकूल बनाया। और बाकी के प्रांत असम, बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र गुजरात और सिंध में हिंदी का प्रचार चलाकर यहां के लोगों को हिंदी के अनुकूल बनाया। उन्होंने अनेक प्रभावशाली नेताओं को हिंदी के पक्ष में किया, जो आसान काम नहीं था।

गांधीजी का मानना था कि मां के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं उनके और पाठशाला के मध्य जो मेल होना चाहिए यह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से टूट जाता है। हम ऐसी शिक्षा के वशीभूत होकर मातृद्रोह करते हैं इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देने से सम्मानित जनता के बीच दूरी बढ़ जाती है।

गांधीजी राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए एक भाषा मैं निम्नलिखित का होना अनिवार्य मानते हैं-

- वह भाषा राज कर्मचारियों के लिए सरल हो।
- उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष के परस्पर धार्मिक आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार निभ सकें।

- इस भाषा के देश के अधिकांश निवासी बोलते हों।
- वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो।

इस प्रकार किसी भी राष्ट्र के तीन शरीर आवश्यक रूप से होते हैं। भौगोलिक शरीर, राजनीतिक शरीर एवं सांस्कृतिक शरीर, यह तीनों ही शरीर एक-दूसरे में समाए हुए एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे के आश्रित हैं इनमें से एक के क्षीण, नष्ट होने पर दूसरा एवं तीसरा शरीर क्षीण हो जाता है।

संसार की प्रत्येक भाषा के काव्य में हर युग में राष्ट्रीय भावना का समावेश होता है। किसी भी देश के राष्ट्रीय काव्य में समग्र राष्ट्र की चेतना होती है।राष्ट्रीय भावना राष्ट्र की प्रकृति का मंत्र है। राष्ट्रीय भावना का सर्जनात्मक पक्ष मानवतावादी होता है। वह न केवल अपने देश को स्वतंत्र देखना चाहता है अपितु समस्त मानवता को स्वाधीन एवं सुखी देखने की कामना रखता है।

छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

गीतेश कुमार अमरोहित

शोधार्थी, हिन्दी साहित्य पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

डॉ० बृजेन्द्र पांडेय

शोध निर्देशक, मालवीय मिशन टीचर ट्रेनिंग सेंटर, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

हिंदी साहित्य की इतिहास परंपरा काफी पुरानी है, लेकिन हिंदी भाषा का साहित्य के रूप में प्रयोग अपभ्रंश के विकसित रूप खड़ी बोली हिंदी के रूप में होता है। छत्तीसगढ़ में अनेक ऐसे कवि या लेखक हुए जिन्होंने माँ हिंदी के कोष को समृद्ध किया और अपने कलम की ताकत से इसे लगातार सींचते रहे। भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति छत्तीसगढ़ के अंचल में भी हिंदी विकास का क्रम ब्रज और अवधि भाषा के बाद हुआ है। यहाँ भी हिंदी साहित्य की परंपरा अत्यंत गौरवपूर्ण रही है।

आज हम ऐसे ही छत्तीसगढ़ के रचनाकारों का अध्ययन करेंगे जिन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा निश्छल भाव से की है। यहाँ के विद्वानों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कई विद्वानों ने छत्तीसगढ़ में हिंदी साहित्य के क्रमिक इतिहास को देखते हुए अपने-अपने अनुसार काल विभाजन किया। किसी ने छत्तीसगढ़ में हिंदी के विकास को रचना काल के अनुसार पांच भागों में विभक्त किया है 1.चारण कवियों की श्रृंखला, 2.भक्तिकाल, 3.भारतेंदु युग, 4.द्विवेदी युग, 5.आधुनिक काल। इसे किसी ने तीन काल में विभक्त किया है- 1.भारतेंदु काल, 2.द्विवेदी काल 3.आधुनिक काल। और किसी ने सिर्फ दो काल में विभक्त किया है- प्राचीनकाल और आधुनिक काल। छत्तीसगढ़ का हिंदी काव्य साहित्य हिंदी राष्ट्रीय साहित्य से पृथक नहीं है, अतः छत्तीसगढ़ में काव्य चेतना के संस्कार का अनुशीलन करते हुए उपर्युक्त काल क्रमों का ध्यान रखना आवश्यक है। छत्तीसगढ़ में यों तो भाटों की परंपरा रही है, किंतु उनके काव्य का मौखिक रूप होने के कारण वे लोक साहित्य तक ही सीमित रह गये। वीर रस का कोई काव्य छत्तीसगढ़ में नहीं लिखा गया। संपूर्ण छत्तीसगढ़ में पूर्व में चौदह रियासतें थीं और सभी रियासतों ने अपनी शक्ति के अनुसार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। खैरागढ़ के राजदरबार के चारण कवियों की रचनाएं जो 15वीं से 16वीं शताब्दी तक प्राप्त होती है, ये सभी हिंदी साहित्य के आदि युग की प्रवृत्तियोंके समान ही रही, लेकिन ये कुछ देर से परिलक्षित होती है। ये नौ चारण कवि थे जो एक ही वंश के थे इनमें सबसे प्रथम दलपत राम राव एवं अंतिम कवि कमल राय थे। इन सभी ने खड़ी बोली हिंदी साहित्य की साधना की और हिंदी को समृद्ध बनाया। इन्हीं की वंश परंपरा में दलवीर आते हैं ये अपने समय के सफल कवियों में गिने जाते हैं। इन्होंने खैरागढ़ के राजा घनश्याम के लिए खड़ी बोली हिंदी में एक कविता लिखी जो इस प्रकार है-

गुण न कटक देख, भूप भय रवाना नहीं।
झाड़ो तलवार और हिम्मत अड़ाना है,
कल-बल-छल और साहस बहादुरी के
शाप न घटाना और अकल बढ़ाना है।

खड़ी बोली हिंदी का छत्तीसगढ़ में आज से साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व इतना शुद्ध रूप मैं उपयोग होना किसी आश्चर्य से कम नहीं। रत्नपुर के राजकवि गोपालमिश्र एक उल्लेखनीय नाम है जिन्होंने औरंगजेब की क्रूरता पूर्ण शासन की धज्जियां उड़ाने वाली रचना खूब तमाशा की रचना की। इनकी अन्य रचनाएँ सुदामा चरित्र, भक्ति चिंतामणि, रामप्रताप, जैमिनी अस्वमेघ आदि भी इनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ है। इनके पुत्र माखन भी एक अच्छे कवि। इनके पश्चात् रत्नपुर के बाबू रेवाराम है। पूर्व मध्यकाल भक्ति काल 1375 से 1700 विक्रम संवत् हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास का अगला चरण है जो दो धाराओं में सगुण और निर्गुण धारा में विभाजित था। निर्गुण धारा के प्रवर्तक कबीरदास जी है। इनके पंथ के प्रमुख स्थानों में एक बनारस है, तो दूसरा कवर्धा है। कवर्धा छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ का प्रमुख स्थान माना जाता है यही से कबीर पंथ के साहित्य का प्रचार-प्रसार हुआ। छत्तीसगढ़ में कबीर के कई शिष्य थे किंतु उनके प्रमुख शिष्य धरमदास छत्तीसगढ़ के बांधवगढ़ के निवासी थे जो आगे चलकर कबीर के उत्तराधिकारी हुए और कबीर के पंथ को आगे बढ़ाया। भक्ति काल में प्रवाहित दूसरी धारा सगुण भक्ति की थी सगुण भक्ति धारा के कवियों में श्री वल्लभाचार्य जी का स्थान प्रथम आता है भले ही इनका कार्यक्षेत्र ब्रजभूमि रहा हो किंतु इनका जन्म रायपुर के चम्पारण नामक स्थान पर हुआ। ब्रज एक पावन तीर्थ स्थान है, जहाँ भारत के विभिन्न प्रांतों की श्रद्धालु जनता का आगमन प्राचीन काल से हो रहा है, फलतः वल्लभाचार्य के अनुयायी पर्याप्त संख्या में हर प्रांत में पाये जाते हैं, फिर भी छत्तीसगढ़ को इस बात का गर्व तो है ही कि उसने वल्लभाचार्य जैसे पुष्टिमार्ग के संस्थापक को जन्म दिया। इनकी दार्शनिक दृष्टि शुद्धाद्वैतवाद की थी इनका लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और निर्वतवाद से मुक्ति की थी। इनके प्रमुख ग्रंथ श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका, तत्वदीप निबंध, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, ब्रज सूत्रा भाषा, सोलह प्रकरण

ग्रंथ आदि हैं। वल्लभाचार्य के पश्चात् सगुण धारा की प्रवृत्ति को प्रभावित करने का कार्य इनके पुत्र विट्ठलनाथ एवं नाती गोकुलनाथ ने किया। इनके पश्चात् छत्तीसगढ़ में सगुण धारा के कवियों के रूप में गोपालचंद्र मिश्र, माखन लाल मिश्र, बाबू रेवाराम, पहलाद दुबे, पंडित शिवदत्त शास्त्री, तेज नाथ शास्त्री, अमरावबख्शीं आदि आते हैं। गोपाल कवि की शठ शतक, माखन कवि की छंद विलास, प्रहलाद दुबे की जयचंद चंद्रिका, गंगाधर मिश्र की कोसलनंद, बाबू रेवाराम की कृष्णलीला, पंडित तेज नाथ शास्त्री की रामायण सार संग्रह, अमराव बख्शी की रामलीला रामायण नाटक, कवित्त रामायण, फतेह विनोद, फतेह विलास आदि रचनाओं ने छत्तीसगढ़ में हिंदी साहित्य के विकास में विशेष योगदान दिया है।

रीतिकाल की समय सीमा 1700 से 1900 विक्रम संवत्तक रही। इस समय में छत्तीसगढ़ के कुछ साहित्यकार ऐसे हुए जिन्होंने भक्ति काव्य और रीतिकाव्य परंपरा को परिपुष्ट करने में अपनी सहायता प्रदान की। जिनमें रत्नपुर के गोपालचंद्र मिश्र का नाम बड़े आदर्श के साथ लिया जा सकता है। वे छत्तीसगढ़ के छंद सम्राट कवि हैं इनके ही समकालीन अन्य रीतिकालीन कवियों में माखन लाल मिश्र, चंद्र मिश्र, रेवाराम आदि का नाम लिया जा सकता है। जिन्होंने भक्ति परक रचनाओं के साथ रीति परक रचनाएं भी की है। रीतिकाल के मध्य भाग के पश्चात् अर्थात 1850 के बाद इसमें नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया ज्यो-ज्यो राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां बदलने लगी, त्यो-त्यो साहित्य ने भी अपना रुप बदला। भारतेंदु युग मे छत्तीसगढ़ के कुछ साहित्यकारों के नामों का उल्लेख कुछ इस प्रकार है। सबसे पहले तो ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम आता है, जिन्होंने श्यामा स्वप्न, प्रलय, प्रेम हजारा, प्रेम संपत्ति लता, मेघदूत, कुमार संभव सार, श्याम सरोजनी, ज्ञान प्रदीप आदि ग्रंथों की रचना कर हिंदी साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया। इनके अलावा भी कुछ अन्य साहित्यकार और हैं जिनकी रचनाएँ हिंदी साहित्य के विकास में मूल्यवान रही है। हीरालाल की दुर्गायन, जगन्नाथ प्रसाद भानु की छंद प्रभाकर, काव्यप्रभाकर, छंद सारावली, अलंकार दर्पण, हिंदी काव्यालंकार, अलंकार प्रश्नोत्तरी, रस रत्नाकर। सैयद अमीर अली मीर इन्होंने हिंदी के प्रचार के लिए मीर मंडल की स्थापना की थी। इनके ग्रंथ बूढ़े का ब्याह, नीति दर्पण, सदाचारी बालक आदि हैं। पंडित रामदयाल तिवारी एक अच्छे साहित्यकार थे इनकी रचनाएँ गांधीं मीमांसा, गांधीज्म एक्सरेड, स्वराज्य प्रश्नोत्तरी, हमारे नेता आदि हैं। मेदिनी प्रसाद पांडेय की श्रृंगार सुधा संग्रह, गणेशोत्सव दर्पण, पद्य सुमन, सत्संग विलास। अनन्त राम पांडेय एक अच्छे साहित्यकार और निबंधकार भी थे इनकी रचनाओं का संग्रह अनन्त लेखवली नाम से प्रकाशित है। दाऊद कृष्ण किशोरदास की रचना श्रीराधा कृष्ण चंद्रिका आदि साहित्यकार हुए जिन्होंने रीतिकाल के साहित्यिक विकास में छत्तीसगढ़ से अपना योगदान दिया।

आधुनिक काल 1900 से प्रारंभ हो जाता है हिंदी साहित्य के विकास में आधुनिक काल में भी अनेक ऐसे साहित्यकार हुए जिन्होंने अपनी साहित्यिक सेवा देकर हिंदी का गौरव बढ़ाया है। 19वीं से 20वीं सदी में गणपति लाल चौबे, रामा राव चिचोंलकर, माधवराव सप्रे, श्रीनंदलाल बनवारी प्रसाद, चुन्नी लालमुन्शी, नंदलाल शुक्ल, मुंशिक कुमार, मोहम्मद याकूब, बहादुर सिंह, ठाकुर प्यारे सिंह, बैरिस्टर प्यारे लाल, राम दयाल तिवारी, जीवन प्रसाद दुबे, सैयद अमीरअली मीर, खंडेराव मराठे, बिसाहू राम सोनी, विश्वनाथ दुबे, हीरालाल काव्योपाध्याय, सुंदरलाल शर्मा, सुखदेव प्रसाद चतुर्वेदी, मुरली प्रसाद पुरोहित, स्वामीविद्या प्रकाश, आदि उल्लेखनीय हैं। सुन्दरलाल शर्मा एक उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार हैं जिन्होंने हृदय तरंग, फुटकर काव्य, ध्रुव चरित्र, पहलाद नाटक, आख्यान नाटक, विक्टोरिया वियोग, सीता परिणय, पार्वती परिणय, श्रीकृष्ण जन्म, कंस वध आदि रचनाएं लिखकर हिंदी साहित्य की सेवा की और इन्हें साहित्य जगत में अच्छा सम्मान मिला। छत्तीसगढ़ में गद्य साहित्य के विकास में माधवराव सप्रे जी की भूमिका अतुलनीय रही हिंदी गद्य के विकास में इनका कार्य अनूठा रहा है। द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकारों में लोचन प्रसाद पांडेय, सुखलाल प्रसाद पांडेय, बलदेव प्रसाद मिश्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीं, मुकुटधर पाण्डेय, श्री राम दयाल तिवारी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निबंध विधा के साहित्यकारों में दो नाम प्रमुख रहे हैं पहला बिसाहू राम इनके निबंध आध्यात्मिक विषयों पर केंद्रित रहे हैं। दूसरा अनंतराम पांडेय इनके निबंध समालोचनात्मक विषयों पर रहे हैं। इन के पश्चात् समकालीन निबंधकारों में लोचन प्रसाद पांडेय, गोपाल दामोदर तामस्कर, वनमाली प्रसाद शुक्ल, राम दयाल तिवारी, बाबू कुपदीय सहाय आदि उल्लेखनीय हैं। डॉक्टर बलदेव प्रसादने मानस से संबंधित लेख लिखकर जो इनके ग्रन्थ मानस माधुरी, मानस से राम में संग्रहित है, इससे उन्होंने काफी प्रभावित किया। जीवनी विधा में प्यारेलाल गुप्त की पंडित लोचन प्रसाद पांडेय व्यक्तित्व व कृतित्व, श्री ठाकुर की ठाकुर प्यारे सिंह की जीवनी, चंद्रशखेर, विश्वनाथ वैश्म्पायन की क्रांतिकारी आजाद की जीवनी विशेष उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। सखुलाल पांडे इनकी रचनाएँ बाल शिक्षक पहेली, बाल गीत, पद्य पंचामृत, मैथिली मंगल, भूलभुलैया, मातृ मिलन आदि। इनकी रचनाएँ सरस्वती, प्रभा, हितकारिणी पत्रिकाओं में छपती थी।

लोचन प्रसाद पांडे- दो मित्रा, प्रवासी, नीति कविता, रघुवंश सार, प्रेम प्रशंसा, छात्रा दुर्दशा, साहित्य सेवा, पुष्पांजलि, कविता कुसुममाला, महानदी, पुष्पांजलि,चरित माला आदि। इनके साहित्य का मूल्यांकन खड़ी बोली हिंदी साहित्य के प्रारंभिक इतिहास की पृष्ठभूमि में किया जा सकता है। आधुनिक हिंदी को प्रशस्त करने में मुकुटधर पाण्डेय ने अपना योगदान दिया। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र- जीवन विज्ञान, साकेत सन्त, रामराज्य, तुलसी दर्शन, मानस में रामकथा,जीवन संगीत, क्रांति, गाँधी आदि। सरयू प्रसाद तिवारी- सीता अन्वेषण, अज्ञातवास, मधु सीकर, मधु बोल। इनका गद्य कम मिलता है, लेकिन ये पद्य के अच्छे रचनाकार थे। द्वारिका प्रसाद तिवारी- सुराज गीत, शिव स्तुति, गांधी गीत, जवाहर ज्योति, सन् सन्तावन की क्रान्ति, गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी, कांग्रेस विजय, भजन संग्रह, राम केवट संवाद। श्रीकांत वर्मा- भटका मेघ, भाषा दर्पण, दिनारंभ, जलसागर, मगध, झाड़ी, संवाद कहानी, घर, दूसरे के पैर, जिरह,अपोलो का रथ, हरि ठाकुर-लोहे का नगर, गीतों का शिलाले, नए विश्वास के बादल, ठाकुर प्यारेलाल की जीवनी, कपिल नाथ कश्यप- वैदेही विछोह, उबावरी राधा, युद्ध आमंत्रण, सीता विलाप, राम राज्य, सीता की अग्निपरीक्षा, स्वतंत्राता के सेनानी, आह्वान, सुलोचना विलाप, पुरुषार्थ प्रेम पीयूष, बिखरे। मुकुटधर पाण्डेय- स्मृति पुंज, परिश्रम, हृदय दान, शैलवाला, मामा, पूजा का फूल, कानन कुसुम। इन्हें छायावाद के प्रवर्तक के रूप में भी जाना जाता है। इन्हें पद्मश्री की उपाधि एवं डी. लिट. से सम्मानित किया गया है। हिंदी साहित्य को आगे बढ़ाने वालों में मुक्तिबोध, शानी, हरिशंकर परसाई, विनय कुमार पाठक, श्याम लाल चतुर्वेदी, प्रेरणा कुमारी, त्रिवेणी वैष्णव, सुखीराम निषाद, भैया लाल ताम्रकार, देवीप्रसाद वर्मा, राम नारायण शुक्ल, विमल पाठक, पालेश्वर शर्मा, केशव पांडेय, अरुण अग्रवाल, रूपनारायण वर्मा रेणु, अमृतलाल नागर, पुरुषोत्तम, दयाशंकर शुक्ल, उमाशंकर शुक्ल, हीरालाल शुक्ल, डॉ. नरेंद्र देव वर्मा, ध्रुव नारायण वर्मा, नंदकिशोर तिवारी, कुंजबिहारी, पुन्नालाल बख्शी, नारायण लाल परमार, कुंतल गोयल, केदार नाथ ठाकुर आदि साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपनी सराहनीय भूमिका निभाई।

निष्कर्षः-

छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिंदी की तीन विभाषाओं में से एक है। यह रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग, जगदलपुर तथा बस्तर आदि में बोली जाती है। संभलपुर में तथा उसके आसपास छत्तीसगढ़ी लरिया कहलाती है। छत्तीसगढ़ी भाषा मराठी तथा उड़िया भाषाओं से प्रभावित हुई है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि छत्तीसगढ़ में साहित्य की नींव वर्षों पूर्व रख दी गयी थी। लगभग सौ वर्षों की सक्रिय सतत् यात्रा में छत्तीसगढ़ के साहित्य एवं साहित्यकारों ने भावनाओं का एक घेरा अपने इर्द-गिर्द बनाकर जहाँ छत्तीसगढ़ राज्य को जन्म दिया वहीं छत्तीसगढ़ की अस्मिता को सम्मान भी दिया है। साथ इसने हिंदी साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भः

1. गुप्त, मदनलाल, छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन द्वितीय भाग द्वितीय संस्करण, प्रकाशक भारतेंदु हिंदी साहित्य समिति बिलासपुर म.प्र., 1998
2. गुप्त, प्यारेलाल, प्राचीन छत्तीसगढ़ प्रथम संस्करण, प्रकाशक रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर म.प्र., 1973,
3. छत्तीसगढ़ की विभूतियाँ एवं लौकिक प्रसून छत्तीसगढ़ सांस्कृतिक मंडल बी.एच.ई.एल. भोपाल प्रथम संस्करण, 1976
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन,नई दिल्ली,आठवां संस्करण, 2012
5. पाठक, डॉ, कुमार विमल, छत्तीसगढ़ के हीरे, श्री प्रकाशन, दुर्ग छ.ग., 2010
6. बेहार, डॉ. राजकुमार, बेहार, श्रीमती निर्मला, छत्तीसगढ़ के गौरव रत्न, छत्तीसगढ़ शोध संस्थान रायपुर
7. नगेंद्र डॉ., हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन मयूर पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2018

हरियाणा के समाज सुधारकों, साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

योगेश्वर कुमार

शोधार्थी, हिन्दी साहित्य, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर छ.ग.

डॉ० बृजेन्द्र पांडेय

शोध निर्देशक, मालवीय मिशन टीचर ट्रेनिंग सेंटर, पंडित, रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर छ.ग.

हिंदी साहित्य की इतिहास परंपरा काफी पुरानी है, लेकिन हिंदी भाषा का साहित्य के रूप में प्रयोग अपभ्रंश के विकसित रूप खड़ी बोली हिंदी के रूप में होता है। हरियाणा हिंदी भाषी राज्य है जहां पर हरियाणवी बोली जाती है परंतु वास्तव में यह हरियाणवी ना होकर खड़ी बोली का ही पर्याय रूप है। डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार खड़ी बोली के कई रूप हैं जैसे हिंदुस्तानी, नागरी, मूलत: हरियाणवी को भी कौरवी का ही रूप माना जाता है इसके अलावा हरियाणा में सामान्यत: हरियाणवी पंजाबी हिंदी उर्दू व अंग्रेजी भाषा बोली जाती है लेकिन 89 प्रतिशत से ज्यादा राज्य की जनसंख्या बहुदा हिंदी भाषा का ही प्रयोग करती है। हरियाणा साहित्य गद्य व पद्य में रचित होने के साथ तत्सम व तद्भव शब्दों से भी युक्त है। हरियाणा को साहित्यिक दृष्टि से संपन्न बनाने में जैन तथा नाथ कवियों का विशेष रूप से योगदान रहा है। हरियाणा में हिंदी का प्रथम साहित्यकार चौरंगी नाथ को माना जाता है। कुरुक्षेत्र के हस्त लिखित ग्रंथालय में शारदा लिपि में रचित पांच नाथ संप्रदाय से जुड़े हुए ग्रंथ हैं जिनका नाम है अष्टाधोग, हटयोग, प्रदीपिका, विवेक मार्तड, सात चक्र निर्णय व अमटोधशासनम इसके अतिरिक्त प्राण सांकली, श्रीनाथ अष्टक कुछ शब्दिया तत्व भवनों प्रदेश नामक रचनाएं सिद्ध चौरंगी नाथ द्वारा रचित है। सिद्ध सिद्धांत पद्धती तथा गोखन सिद्धांत संग्रह नामक योगराज पूर्ण नाथ द्वारा रचित है।

अरुण जेमिनी- अरुण जेमिनी हरियाणा के प्रसिद्ध आधुनिक कवि है। उनका जन्म 1959 में हरियाणा के झज्जर जिले के बादली गाँव में हुआ था। जेमिनी ने अपनी कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- फिलहाल इतना ही है, खून बोलता है, हास्य व्यंग की शिखर कविताएं आदि।

गरीबदास- गरीबदास हरियाणा के प्रसिद्ध भक्ति कवि थे। उनका जन्म 1717 में हरियाणा के रोहतक जिले के एक गाँव में हुआ था। गरीबदास ने कृष्ण,राम और रहीम की भक्ति में अनेक सुंदर कविताएँ लिखी हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- सदग्रंथ साहिब, संत गरीबदास की वाणी, रत्न सागर आदि। सुरेंद्र शर्मा-सुरेंद्र शर्मा हरियाणा के प्रसिद्ध आधुनिक कवि है। उनका जन्म 1945 में हरियाणा के महेंद्रगढ़ जिले के नागल चौधरी गांव में हुआ। शर्मा ने अपनी कविताओं में प्रेम, प्रकृति और सामाजिक विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- मान सरोवर के कुएं, बड़े-बड़ों के उत्तपात, मुझसे भला ना कोए कविताएँ आदि। हरियाणा के कवियों का योगदान-हरियाणा के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हरियाणा की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और संवर्धित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भक्ति साहित्य-हरियाणा के भक्ति कवियों ने कृष्ण, राम, और अन्य देवी-देवताओं की भक्ति में रचित सुमधुर और भावपूर्ण कविताएँ लिखकर हरियाणा में भक्ति आंदोलन को बढ़ावा दिया। सूरदास, गरीबदास, और अन्य कवियों की रचनाएँ आज भी हरियाणा के लोगोंके बीच लोकप्रिय हैं। लोक साहित्य- हरियाणा के लोक कवियों ने अपनी सरल और सहज भाषा, हास्य और व्यंग्य के माध्यम से लोक जीवन और संस्कृति को अभिव्यक्त किया। प्रगतिशील साहित्य-हरियाणा के प्रगतिशील कवियों ने प्रगतिशील सोच, सामाजिक चेतना, और मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण के माध्यमसे समाज में बदलाव लाने की कोशिश की। हरियाणा के हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार दंतकवि, माणिक्य राज, नेमीचंद, भगवती, बालमुकुंद, गुलाब सिंह, संतोष सिंह, ईश दास, सम्राट हर्षवर्धन, गरुड़ ध्वज, बाणभट्ट, माधव प्रसाद मिश्र, रामप्रसाद, बृजलाल सैनी, शंभू दयाल, हरिद्वार लाल, रामचंद्र, श्रीधर ठाकुर, फेरु मनभावन, निश्चल दास, बुधराम द्वारा रचित बाराखडी, अमर संचारित, त्रिलोक दर्पण, सीता सेतु,तारा तुलसी सुधाकर, आध खिल फूल, कादंबरी, माधव मिश्र निबंध धवली, स्वदेश दर्शन, निंबार्क संप्रदाय, प्रकाश, रुक्मणी मंगल, सारस्वत कुरुक्षेत्र, महामात्य, चंद्रमा, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्धमान, महावीर वस्तु कर तथा रत्न परीक्षा, ब्रिज विनोद, विचार सागर, वृत्ति प्रभाकर, युक्ति प्रकाश, संतोषजय तिलक नेवी नाथ वास्तु नेमिश्वर का, बारहमासा, आश्रम, हिंदी भाषा, हिंदी भाषा की भूमिका, भंवर सम्राट तथा प्रबोध चंद्रोदय रामकोष, श्री गुरु नानक प्रकाश गौरव गजनी, वाल्मीकि रामायण, आत्मा पुराण, गुरु प्रताप, सूरज अंगद पर, भारत मिलाप व, सत्यवती कथा, प्रियदर्शिका, रत्नावली, नागानंद, धर्म ध्वज,चांदी शतक, पार्वती परिणाम, हर्ष चरित्र, आदि रचनाओं ने हिंदी साहित्य के विकास में विशेष योगदान दिया है। हरियाणा के बहुत से लेखकों ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। इनमें से प्रमुख लेखकों और

उनकी कृतियों की सूची नीचे दी जा रही है- उन्होंने अपने परिश्रम और कलम की ताकत से हिंदी साहित्य की सेवा की और उसे सींचा है। विशम्भर नाथ कौशिक- मणिमाला, गल्प मंदिर, पेरिस की नर्तकी, प्रेम प्रतिमा, कल्लोल (लघुकथा संग्रह) और माँ तथा भिखारिन (उपन्यास बाबू बालमुकुन्द गुप्त- शिवशम्भू का चिट्टा, चिट्टे और खत, शिवनारायण शास्त्री छात्र बोधिनी और स्त्री कर्तव्य शिक्षा, छज्जू राम- पाणिनी हिंदी व्याकरण और कुरुक्षेत्र महात्म्य, श्रीराम शर्मा- हरियाणा के स्वतंत्रता सेनानी, हरियाणा का इतिहास और हरियाणा के नौ रत्न।. विष्णु प्रभाकर- दलती रात, स्वप्नमयी, अर्धनारीश्वर, हत्या के बाद, नव प्रभात, डॉक्टर, प्रकाश और परछाइयाँ, संघर्ष के बाद, धरती अब भी धूम रही है, मेरा वतन, खिलोने, आवारा मसीहा, निशांतकेतु- दर्द का दायरा, आखिरी हंसी, माटी टीला, तीसरे आदमी की शिनाख्त, जख्म और चीख, अंध घाटी के टीले, उत्तर शती महा कुंभक, आचार्य निशांतकेतु की प्रतिनिधि कहानियां, प्रताड़ित पुरुषों की कहानियां, नारी उत्पीड़न की कहानियां आदि, सुनीता जैन -डॉ. चन्द्रत्रिखा- कैसे भूलें आपातकाल का दंश सहित 22 कृतियाँ, रामकुमार आत्रोय- बुझी मशालों का जलूस, बूढ़ी होती बच्ची, आँधियों के खिलाफ, रास्ता बदलता ईश्वर, प्यारे बच्चों जैसे दुख, पिलूरे तथा अन्य कहानियाँ, समय का मोल, इक्कीस जूते, आँखें वाले अन्धे, छोटी सी बात आदि, मधुकांत अनूप बंसल- दूसरा निश्चय, गाँव की ओर, लौटने तक, मास्टर जी, वीसीआर बीमार है, परीक्षा क्यों, नया सवेरा, इंद्रा स्वप्न- महाराष्ट्र का गौरव, वैशाली सुन्दरी, उर्मी कृष्ण- मैं यायावर, मातृ ऋण, महल-दुमहले, सुनीता जैन- हम मोहरे दिन रात के, इतने बरसों बाद हो जाने दो मुक्त, कौन सा आकाश, एकऔर दिन, सपफर के साथी, बिंदू, मरणातीत, अनुगूँज, तितिक्षा आदि शकुन्तला बृजमोहन- पवित्रा झूठ,भगवानदास मोरवान- रेत, काला पहाड़ और बाबल तेरा देश आदि, राकेश बत्स- फिर लौटते हुए, महाकवि के वारिस, पहर एक रोज का, अंतिम प्रजापति एवं सफेद सूरज आदि, स्वदेश दीपक- अश्वारोही, मातम, तमाशा, मायापति, बाल भगवान, कोर्ट मार्शल, जलता हुआ रथ आदि, यश गुलाटी- कविता और संघर्ष चेतना, लीलाधर वियोगी- सीही का संत, विष्णु पुराणपरिचय आदि, जयनारायण कौशिक- हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद, हरियाणवी प्रत्यय कोश, शुद्ध हिन्दी लेखन, बूढ़ सुहागिन आदि। सुभाष रस्तोगी- एक लड़ाई चुपचाप, तपते हुए दिनों के बीच, बयान मौसम का, समय के सामने, उठ जाग बावले, कत्ल सूरज का, तपते हुए दिनों के बीच, बयान मौसम का, क्रान्तिकारी भगत सिंह, समय के मायने। अमृतलाल मदान- विषगाथा, सिन्धु पुत्र, तलाश जारी है, टूटता हुआ आकाश, मानुष अमानुष, तथास्तु, एक सिद्धार्थ और, दो पाटन के बीच, बौना राधेश्याम शुक्ल- त्रिकाल के गीत, पंखुरी पंखुरी झरता गुलाब, त्रिविधा, एक बादल मन, दरपन वक्त के, वस्तु और कला, घमंडीलाल अग्रवाल- चुप्पी की पाजेब, गणित बनती जिंदगी, आओ पापा बात करें, मेरे पिय बाल गीत, बाल कवितावनी, बाल गीतांजलि, सुनपरी सोन चिरैया, बगिया के फूल, कानाबाती कुरे, मन में गुलमोहर, कृष्णलता यादव-अनमोल धरोहर, चेतना के रंग, भोर होने तक, पतझड़ में मधुमास, गरीबी के फायदे, मन में खिला वसंत, दोस्ती की मिसाल, मीठे बोल आदि। 29. हरेराम समीप- संग्रह-हवा में भीगते हुए, आँधियों के दौर में, कुछ तो बोलो, किसे नहीं मालूम, समय से पहले, जैसे, साथ चलेगा कौन आदि 30. रघुविन्द्र यादव- नागफनी के फूल, वक्त करेगा फैसला, आये याद कबीर दोहा संग्रह, मुड़ में संत कबीर, कुंडलिया कुमुद कुंडलिया छंद संग्रह, बोलता आइना और अपनी-अपनी पीड़ा लघुकथा संग्रह, आस का सूरज गजल संग्रह आदि। ज्ञान प्रकाश विवेक- अस्तित्व, अलग अलग दिशाएँ, शहर गवाह है, जोसफ चला गया, उसकी जमीन, पिताजी चुप रहते हैं, इक्कीस कहानियाँ, शिकारगाह, धूप के हस्ताक्षर, आँखों मे।आसमान आदि। विकेश निझावन-हर छत का अपना दु:ख, अब दिन नहीं निकलेगा, एक टुकड़ा आकाश, एक खामोश विद्रोह, मेरी कोख का पांडव, महासागर, माँ। माधव कौशिक- ठीक उसी वक्त, सुनो राधिका, लौट आओ पार्थ, किरण सुबह की, सपने खुली निगाहों के, मौसम खुले विकल्पों का, शिखर सम्भावना के, सबसे मुश्किल मोड़ पर। रोहिणी अग्रवाल- आर्किटेक्ट, समकालीन कथा साहित्य आदि। कुमार रविन्द्र- एक और कौन्तेय, पं बिखरे रेत पर, गाथा आह संकल्पों की, आहत है वन, चेहरों के अंतरीप, लोटा दो पगडंडियां, बिखरे रेत पर, गाथा आहत संकल्पों की एवं अंगुलीमाल, सुनो तथागत, और हमने संधियां की। नन्दलाल मेहता वागीश- संस्कृति तत्त्व-भीमासा, बलदेव राज शांत- लगभग 80 कृतियाँ,पवन चौधरी मनमौजी- इंदिरायण, वकालत में अदालत, ठोकर से ठाकुर, न्याय के धाम पर,खामोश यह अदालत है, व्यंग्य के रंग व्यंग्य, कानून और हम, कानून की डाल पर, रेल दावा अधिकरण अधिनियम, कानून हाजिर है, मिस्टर इंसाफ, कानूनश्री, दर्द-ए-दाखिला ;उपन्यास, कानून के फूल, कचहरी में कोहिनूर आदि, राजेंद्र मोहन भटनागर-अज्ञातवास का हमसफर, कुली बैरिस्टर, खुदा गवाह है, गौरैया, तरुण सन्यासी, दलित संत और दिल्ली चलो। छविनाथ त्रिपाठी धरा की यात्रा, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन आदि। सुगनचंद मुक्तेश- स्वाति बूँद, युगान्तर आदि। 16. श्री यशपाल वैद- आस बन्ध गई, समय के साथ-साथ, हरिश्चंद्र वर्मा- डॉ. डमरू गोपाल, डॉ. बैजनाथ सिंघल नयी कविता: मूल्य मीमांसा, अलगाव दर्शन और साहित्य, साहित्य मूल्य और प्रयोग, डॉ. हेमराज निर्मम- करुणा के प्रतिनिधि, जीने के लिए, ससुराल की सौगात, वसंत फिर आएगा, टूटता बंधन और लाल बहादुर, ओमप्रकाश आदित्य तोता मैना, इधर भी गधे हैं, थर्ड डिवीजन, सितारों की पाठशाला अल्हड बीकानेरी- भज प्यारे तू सीताराम, घाट-घाट घूमे, अभी हंसता हूँ, अब तो आंसू पोछ, भैंसा पीवे सोमरस, ठाठ गजल के, रेत पर जहाज, अनछुए हाथ,खोल न देना द्वार,, हर हाल में खुश हैं, मन मस्त हुआ, उदयभानुहँस- हिंदी रुबाइयाँ, धड़कन, सरगम, संत सिपाही, निबंध रत्नाकर, हिंदी के प्रमुख कलाकार। डॉ. जयभगवन गोयल- गुरमुखी में हिंदी साहित्य, गुरु गोबिंदसिंह विचार और चिन्तन, मध्य-युगीन काव्य,डॉ.शशि भूषण सिंघन- ये युग वे अपने ;लघुकथा संग्रह, जानी अनजानी राहें ;उपन्यास आदि, डॉ. जयनाथ नलिन- यामिनी, धरती के बोल, चिंतन और कला, इस पार के बंधन, सिक्के असली और नकली तथा देवयानी आदि। मोहन चोपड़ा- टूटा हुआ आदमी, येनये लोग, बाहें, नीड़ से आगे, एक छाया और मैं, सुबह से पहले, आधा कटा हुआ सूर्य, पीले पत्ते, शाम और अकेला आदमी, बंद, दरवाजा, समय के स्वर आदि।

निष्कर्ष-

हरियाणा के कवियों ने अपने साहित्य से हरियाणा के साहित्यिक गौरव को बढ़ाया है। उनकी रचनाएँ आज भी लोगों को प्रेरित और प्रभावित करती हैं। हरियाणा का साहित्यिक इतिहास बहुत समृद्ध है। यहाँ अनेक प्रसिद्ध कवि हुए हैं हरियाणा के कवियों की रचनाएँ आज भी हरियाणा के लोगों के बीच लोकप्रिय हैं। इन रचनाओं को विभिन्न मंचों पर प्रस्तुत किया जाता है, और इन्हें लोकप्रिय संगीतकारों द्वारा संगीतबद्ध किया जाता है। हरियाणा के कवियों की रचनाएँ हरियाणा की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और संवर्धित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। हरियाणा के साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के विकास में अपनी सराहनीय भूमिका निभाई।

संदर्भः

1. मिश्र, प्रसाद विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का अतीत ;भाग-1,2, वाणी प्रकाशन, 1960
2. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1961
3. द्विवेदी, प्रसाद हजारी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1961
4. द्विवेदी, प्रसाद हजारी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1963
5. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1973
6. राजे, सुमन, साहित्येतिहासः संरचना और स्वरूप, ग्रन्थम कानपुर, 1975
7. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 2007
8. वाजपेयी, नंददुलारे, आधुनिक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, 2008
9. मिश्र, शिवकुमार, भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य, अभिजीत प्रकाशन, 2010
10. नवल, डॉ. नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, भारतीय जनपीठ वाणी प्रकाशन, 2012
11. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, 2018
12. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2022
13. पांडेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, 2023
14. गुप्त, गणपतिचन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन

उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में अवदान

डॉ० बृजेन्द्र पांडेय

मालवीय मिशन टीचर ट्रेनिंग सेंटर, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर छ.ग.

उत्तर प्रदेश में भाषा और साहित्य का समृद्ध और प्राचीन इतिहास रहा है। उत्तर प्रदेश का साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत में योगदान प्राचीन अभिलेखों में भी दर्ज है। हिंदू धर्म के संस्कृत भाषा में दो महाकाव्यों रामायण और महाभारत की रचना भी इसी भूमि पर हुई। यह प्रदेश कबीर, तुलसीदास, सूरदास और केशवदास की कर्मभूमि रहा है। इनके अलावा राजे-रजवाड़ों समेत नवाबों ने भी प्रदेश की साहित्यिक विरासत को और बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विभिन्न राजाओं और नवाबों ने साहित्यिक विद्वानों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। अश्वघोष, बाण, मयूर, दिवाकर, वाक्पति, भवभूति, राजशेखर, लक्ष्मीधर, श्रीहर्ष और कृष्ण मिश्र अलग-अलग दौर में राजाओं के दरबारों के रत्नों में शामिल रहे। शिक्षा के प्रमुख केंद्र के लिहाज से वाराणासी प्राचीन दौर के प्रयाग और काशी के अलावा ब्रज क्षेत्र, अवध, बुंदेलखंड और कालांतर में प्रयागराज है। वाराणासी प्राचीन काल से ही शिक्षा और धर्म पर दुनिया भर के विद्वानों के व्याख्यान और तार्किक बहस का केंद्र रहा है। बाद की सदियों में भी इसने अपना यह मुकाम नहीं गंवाया। विभिन्न विषयों पर बहस और दार्शनिक संवाद के लिए भी प्रतिष्ठित और दिग्गज यहां आते रहे हैं। उत्कृष्ट शिक्षा के प्रति इस नगर का झुकाव ही रहा है, जो इसे संस्कृत भाषा में रचे गए महाकाव्यों में स्थान मिला। हिंदू और बौद्ध साहित्य के पवित्र ग्रंथों के अलावा, वेद-पुराणों का कुछ हिस्सा भी यहीं लिखा गया है। हिंदी, उर्दू, संस्कृत, हिंदुस्तानी, ब्रज भाषा, इंग्लिश, अवधी, बाघेली, भोजपुरी, बुंदेली और कन्नौजी ... के रूप मेंउत्तर प्रदेश की भाषा संबंधी परंपराएं काफी पुरानी और समृद्ध हैं। इस प्राचीन और समृद्ध साहित्यिक परंपरा को कालांतर में आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण काम किया नागरी प्रचारणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन ने। उत्तर प्रदेश हिंदी और उर्दू जबान को विकसित कर उन्हें फैलाने वाला राज्य रहा है। हिंदी में भारतेंदु हरिशचंद्र, मुंशी प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, श्रीकांत वर्मा सरीखे लेखक, तो सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत, महावीर प्रसाद दिवेदी और उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे कवि इसी प्रदेश की माटी में जन्में हैं। संस्कृत से लेकर हिंदी और उर्दू की यह भूमि कर्म स्थली रही है। इस भूमि ने ऐसे-ऐसे नामवर साहित्यकार दिए हैं जिनका डंका आज भी बजता है। इसीलिए कहा जाता है कि 'यहां साहित्य की खेती होती है। उत्तर प्रदेश को, विश्व में साहित्य की यात्रा का प्रस्थानक होने का गौरव प्राप्त है। उत्तर प्रदेश में अयोध्या के निकट बहने वाली तमसा नदी के तट पर ही निषाद द्वारा मार दिए गए क्रौंच को देख कर करुणा विगलित वाल्मीकि के मुख से 'मा प्रतिष्ठां त्वंगमःशाश्वती समाः' श्लोक फूट निकला था। जिससे वाल्मीकि को प्रथम कवि की संज्ञा मिली और विश्व के सब से अनुपम, रामायण नामक महाकाव्य का सूत्रपात हुआ। साहित्य और रक्षा दो ऐसे क्षेत्र हैं, जिन पर उत्तर प्रदेश निवासी गौरव कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश अश्वघोष, बाण, मयूर भंज, दिवाकर, वाक्पति, भवभूति,राजशेखर, लक्ष्मीधर, श्रीहर्ष, कृष्णा मिश्रा जैसे संस्कृत के कालजयी साहित्यकारों की भूमि है। गोस्वामी तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास से लेकर भारतेंदु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, राही मासूम रजा, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती जैसे हिंदी के महान कवि और लेखकों ने साहित्य को समृद्ध किया है। उत्तर प्रदेश का उर्दू साहित्य में भी बहुत योगदान रहा है। फिराक गोरखपुरी, जोश मलीहाबादी, नजीर अकराबादी, वसीम बरेलवी, चकबस्त आदि सैकड़ों शायर उत्तर प्रदेश ही नहीं बल्कि पूरे देश की शान रहे हैं। उत्तर प्रदेश में साहित्य की भाषा के जो स्वरूप प्रचलित हैं उनमें अवधी, ब्रज, बुंदेली और खड़ी बोली हिंदी प्रमुख हैं। अवधी को तुलसी कृत राम चरित मानस और जायसी कृत पद्मावत से, ब्रज को सूर कृत सूरसागर और रहीम, रसखान, केशव,घनानंद और बिहारी के साहित्य से तथा बुंदेली को जगनिक रचित आल्हाखंड से सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली। खड़ी बोली हिंदी, मूलतः उत्तर प्रदेश के रामपुर,बिजनौर, मेरठ तथा अलीगढ़ क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है, जिसके संवर्धित और परिष्कृत स्वरूप को कालांतर में मानक हिंदी की मान्यता मिली। आज यही खड़ी बोली हिंदी साहित्य की मुख्य भाषा, संविधान में भारत की राजभाषा और जनमानस के हृदय में देश की राष्ट्रभाषा बन गई है। अवधी, ब्रज और बुंदेली आदि क्षेत्रीय भाषाएं हिंदी की बोलियों के रूप में जानी जाती हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभ 19 वीं सदी से माना जाता है। सन 1885 से 1900 काल खंड हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु युग के नाम से दर्ज है। वस्तुतः, काशी में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र के आविर्भाव तक काव्य की भाषा ब्रज ही थी। उनके प्रयास से कविता में खड़ी- बोली या हिंदी का प्रयोग प्रारंभ हुआ। हिंदी गद्य का उद्भव भी अभी व्यवस्थित रूप में नहीं हुआ था। भारतेंदु जी ने अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के माध्यम से कविता में खड़ी-बोली हिंदी के प्रयोग तथा हिंदी गद्य लेखन को प्रोत्साहन दिया। भारतेंदु के बाद काशी के साहित्यिक परिवेश में प्रसाद, प्रेमचंद और रामचन्द्र शुक्ल का चमत्कारिक पदार्पण हुआ। मोटे तौर पर प्रसाद कवि और नाटककार, प्रेमचंद कथाकार और रामचन्द्र शुक्ल आलोचक थे। प्रसाद और प्रेमचंद आज भी अपने-अपने क्षेत्र में अप्रतिम हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी गद्य का व्याकरण सम्मत परिमार्जन कर, गद्य की विभिन्न विधाओं के विकास में अतुलनीय योगदान दिया। इलाहाबाद से उनके संपादन में निकलने वाली 'सरस्वती' पत्रिका ने प्रतिष्ठित साहित्यकारों की लम्बी श्रृंखला तैयार की। पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रेमचंद और प्रसाद ने भी किया था। प्रेमचंद की 'हंस' तथा प्रसाद की 'इंदु' नामक पत्रिकाएं अपने साहित्यकार संपादकों

के प्रभामंडल तक सीमित थीं। पर, 'सरस्वती' पत्रिका की धाक विषयों के वैविध्य और सम्पादकेतर लेखकों को स्थान मिलने के लिए भी थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य में भाषा और भावों की शुद्धता के प्रति इतने सजग थे कि वे उनकी कसौटी पर खरी न उतरने वाली, बड़े-बड़े कवियों- लेखकों की रचनाओं को लौटा देते थे। निराला की 'जुही की कली' कविता जो बाद में युगांतरकारी रचना मानी गई, सरस्वती में स्थान न पा सकी थी। द्विवेदी जी के साहित्यिक अवदान का स्मरण करने हेतु हिंदी साहित्य के सन 1900 से 1920के कालखंड को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त इसी द्विवेदी युग की उपलब्धि हैं। छायावाद आधुनिक हिंदी काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। छायावाद के चारों स्तंभों जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की साधना स्थली भी उत्तर प्रदेश थी। भाषा, भाव, शैली, छंद, अलंकार सभी दृष्टियों से हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि छायावाद में मिलती है। छायावादी कविता का सौंदर्य, प्रेम और वेदना के भावों को वहन करने योग्य भाषा संस्कार, लाक्षणिकता, चित्रमयता, नूतन प्रतीक विधान, मधुरता, सरसता, व्यंग्यात्मकता, दार्शनिकता आदि गुणों ने लम्बे समय तक परवर्ती कविता पर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखा। राम कुमार वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, शिवमंगल सिंह सुमन जैसे समर्थ कवियों को भी स्वयं को छायावादी प्रभाव से मुक्त करने में बड़ी मशक्कत करनी पड़ी। उत्तर प्रदेश के बाहर के प्रसिद्ध कवियों जैसे- बिहारके रामधारी सिंह 'दिनकर' और मध्य प्रदेश के माखनलाल चतुर्वेदी ने भी छायावाद की छाया में काव्य साधना प्रारंभ की। मार्क्सवादी विचारधारा का साहित्य में प्रगतिवाद के रूप में उदय हुआ। प्रगतिवाद का आरंभ सन 1936से माना जाता है। इसे मात्रा संयोग नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश की साहित्यिक माटी का प्रभाव कहना होगा कि सज्जाद जहीर विदेशी धरती से मार्क्सवाद की जो पौध लाकर भारत में रोपना चाहते थे उसके आगाज के लिए उन्हें उत्तर प्रदेश का लखनऊ शहर सब से उपयुक्त लगा। मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला सम्मलेन हुआ। यह अलग बात है कि 'साहित्यकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है' कह कर इस सम्मलेन के अध्यक्ष ने ही साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन की हवा निकाल दी। तथापि, नामवरसिंह, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल जैसे साहित्यकार संभवत: इसलिए अपाहिज पैदा हुए प्रगतिवादी बच्चे को अपनी साहित्यिक प्रतिभा की पौष्टिक खुराक से मोटा ताजा बनाने का असफल प्रयास करते रहे कि इस बच्चे ने उनके प्रदेश में जन्म लिया था।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने भारतीय साहित्य परंपरा को प्रोत्साहन देने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। वाराणसी और इलाहाबाद सदैव से साहित्य के गढ़ रहे हैं। बाद में प्रगतिशील आंदोलन प्रगतिशील लेखक संघ के नाम से प्रमुख शहरों में अपने पैर पसारने लगा। आयातित और अभारतीय संस्कारों से अनुप्राणित होने के कारण प्रगतिशील धारा साहित्य जगत को सहज स्वीकार्य कभी नहीं रही। अत:, साहित्य में खेमेबाजी

की शुरुआत हुई। इलाहाबाद में परिमल संस्था और प्रगतिशील लेखक संघ की खेमेबाजी के किस्से पूरे देश में मशहूर हुए। 'परिमल' तत्कालीन नवोदित लेखकों की संस्था थी जिसके सारे सदस्य मित्रा-परिवार जैसे थे। जबकि प्रगतिशील लेखक संघ वामपंथी राजनीति का साहित्यिक मंच और आंदोलन दोनों ही था। दोनों की गतिविधियां एक दूसरे के जबाब में होती थीं। 'परिमल' में साहित्य सम्बंधी वैचारिक तथा सैद्धांतिक खुलापन था। तत्कालीन नवोदित अधिकांश लेखक परिमल' से जुड़े थे। प्रगतिशील लेखक संघ में राजनीतिक बपतिस्मा लेने पर ही लेखक माना जाता था। दोनों ही खेमों में लेखकों की कोई कमी नहीं थी। ऐसे में केवल रथियों और महारथियों की ही चर्चा संभव हो सकती है। प्रगतिशील खेमें में आलोचक प्रकाशचंद गुप्त, अमृतराय, उपेन्द्रनाथ अश्क, शमशेर, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, अमरकांत, शेखर जोशी आदि थे तो 'परिमल' में धर्मवीर भारती, रघुवंश, केशवचन्द्र शर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेवनारायण साही,अज्ञेय, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, दुष्यंत कुमार आदि थे। कहना न होगा कि ये सभी लेखक हिंदी साहित्य को नई ऊंचाइयों तक ले जानेवाले साहित्यकारों में परिगणित किए जाते हैं। राजनीति में मार्क्सवाद के पराभव के उपरांत आज मार्क्सवादी विचारधारा का साहित्य अप्रासंगिक हो गया है। अखिल भारतीय साहित्य परिषद जैसी राष्ट्रवादी साहित्यिक संस्था ने उत्तर प्रदेश के साहित्यिक वातावरण में राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम का ज्वार ला दिया है। मंच से लेकर पत्र-पत्रिकाओं तक राष्ट्रवादी साहित्य की धूम है। नए कवियों-लेखकों की फौज तथा आधुनिक संचार माध्यमों की जुगलबंदी में भूषण, श्यामनारायण पांडे, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की शौर्य परंपरा वाले साहित्य के नए तेवर सामने आ रहे हैं। देश भर के कवि सम्मेलनों में उत्तर प्रदेश के ओज के कवियों-बुलंदशहर के डॉ. हरिओम पावर, इटावा के गौरव चौहान, झांसी के रवींद्र शुक्ल, फिरोजाबाद के डॉ. ओमपाल सिंह 'निडर' को सब से अधिक सुना और सराहा जाता है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश की साहित्यिक प्रदक्षिणा करते समय डॉ. विद्याबिंदु सिंह, नीरजा माधव, राजनाथ सिंह सूर्य, आनंद मिश्र अभय, गिरिशवर मिश्र, सूर्य प्रसाद दीक्षित, यतीन्द्र मोहन मिश्र, यश मालवीय, गुलाब सिंह, डॉ. कन्हैया सिंह, डॉ. उदय प्रताप सिंह, नरेश सक्सेना, करुणा पांडे, अंजलि चौहान, किरण कुमार थपलियाल, डॉ. नीतू सिंह, निवेदिता, डॉ. नेत्रापाल सिंह, उषा चौधरी, सुभद्रा राठौर, डॉ. दिनेश पाठक नाम साहित्य तक को समृद्ध कर रही है।

निष्कर्ष:

इस स्थान की प्राचीन काल से शिक्षा व साहित्य में विशेष स्थान है। वाल्मीकि रामायण में नेमिसारण्य में एक विश्वविद्यालय का संदर्भ है, जहां धर्म, दर्शन और विज्ञान पर व्याख्यान थे। 88,000 ऋषियों और उनके शिष्यों ज्ञान की तलाश में नेमिसारण्य में रहते थे। मुगल काल के दौरान लहरापुर इस्लामिक ज्ञान के प्रसिद्ध केंद्र थे, ये स्थान 16 वीं शताब्दी ईस्वी के बाद से फारसी, अरबी और संस्कृत भाषा के अध्ययन केंद्र थे। प्रसिद्ध कवि नरोत्तम दास भी सीतापुरके निवासी थे। वह तुलसीदास के समकालीन थे, सुदाम चरित्र उनकी प्रसिद्ध रचना थी। इस जिले के एक अन्य प्रमुख व्यक्तित्व राजा टॉडर्मल थे, जो राजस्व मंत्री थे और सम्राट अकबर के नव-रत्न थे। आचार्य नरेंद्र देव का जन्म सीतापुर में हुआ था। इस तरह उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है जो हिंदी साहित्य को परिपूर्ण करने में अपना अमूल्य योगदान है।

सन्दर्भग्रन्थ-

1. मिश्र, प्रसाद विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-1,2 वाणी प्रकाशन, 1960
2. द्विवेदी, प्रसाद हजारी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1961

3. द्विवेदी, प्रसाद हजारी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1963
4. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1961
5. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1973
6. गुप्त मैथिलीशरण, मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, खंड-12 वाणी प्रकाशन संस्करण, 2008
7. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, 2018
8. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2022
9. गुप्त, गणपतिचन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन
10. शर्मा, रामविलास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन
11. उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ
12. उ0 प्र0 भाषा संस्थान, लखनऊ
13. उ0प्र0 संस्कृत संस्थान, लखनऊ
14. अहमद फखरूद्दीन अली मेमोरियल कमेटी, लखनऊ हिन्दुस्तानीएकेडमी, प्रयागराज राज्य कर्मचारी साहित्य संस्थान
15. सिद्धान्त और अध्ययन: भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तों का प्रसादपूर्ण शैली में विवेचन, आत्माराम एण्ड संस

महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन के प्रतिष्ठित संतः संत नामदेव

डॉ० संगीता ठाकुर

हिंदी विभागाध्यक्ष, सोनोपंत दांडेकर महाविद्यालय, पालघर

प्रस्तावनाः

"संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर सुख द्रवहिं संत सुपुनीता।"

अर्थात गोस्वामी तुलसीदास जी ने संतों के हृदय को मक्खन के समान माना है, क्योंकि मक्खन तो स्वयं के ताप से पिघलता है जबकि परम पवित्र संत दूसरों के दुख से पिघल जाता है संतों का यह स्वभाव उनको इस संसार का उद्धारकरता सिद्ध करता है स जो मनुष्य से प्रेम करना जानता है वही ईश्वर से भी प्रेम करना जानता है जो इस संसार के समस्त प्राणियों के दुख दर्द को समझता है संतों की भक्ति में सांसारिक उत्थान का समन्वय भी होता है इसी कारण से संतों के उच्च आदर्श उच्च विचारों एवं अंत स्थल की पवित्रता का प्रभाव समाज पर पढ़ना स्वाभाविक है।

संत इस धरती के आदर्श है, उनसे जीवन जीने की कला सीखी जा सकती है स सांसारिक प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम का रास्ता है, जो इस संसार के समस्त प्राणियों के दुख-दर्द को समझता है। वही ईश्वर को भी समझता है ससंतों की भक्ति में सांसारिक उत्थान का समन्वय होता है। इसी कारण से संतों की भक्ति एवं विचारों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। संतों की वाणी समाज के सर्वांगीण विकास के लिए संजीवनी औषधि का कार्य करती है ससंतों ने अपनी वाणी द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति विद्रोह का कार्य किया, उन्होंने जाति या धर्म को नहीं बल्कि नैतिक शुद्धता पर बल दिया है।

संत नामदेव का जीवन परिचय

महाराष्ट्र के संत पंचायतन (ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और रामदास) मैं एक नागदेव केवल महाराष्ट्र के ही नहीं संपूर्ण भारत में प्रमुख संतों में एक है नामदेव के भक्तिगंगा में महाराष्ट्र भक्तों का ही नहीं उत्तर भारत के भक्तों में भी उनका प्रभाव रहा है सनामदेव का जन्म महाराष्ट्र के परभणी नजदीक नरसी बामणी में सन 1270 में दरजी परिवार में हुआ था।

उनके पिता का नाम दामाशेट और माता का नाम गोणाई देवी था सयह दोनों ईश्वर के परम भक्त थे और सामान्य जनता प्रति वर्ष आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को उनके दर्शनों के लिए पंढरपुर की "वारी" (यात्रा) किया करती थी (यह प्रथा आज भी प्रचलित है) इस प्रकार की वारी (यात्रा) करनेवाले "वारकरी" कहलाते हैं। विट्ठलोपासना का यह "पंथ" "वारकरी" संप्रदाय कहलाता है। नामदेव इसी संप्रदाय के प्रमुख संत माने जाते हैं।

उनके गुरु महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर थे। उन्होंने बह्मविद्या को लोक सुलभ बनाकर उसका महाराष्ट्र में प्रचार किया तो संत नामदेव जी ने महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक उत्तर भारत में 'हरिनाम' की वर्षा की।

प्रसंगः

एक बार संत नामदेव अपने शिष्यों को ज्ञान-भक्ति का प्रवचन दे रहे थे। तभी श्रोताओं में बैठे किसी शिष्य ने एक प्रश्न किया, "गुरुवर, हमें बताया जाता है कि ईश्वर हर जगह मौजूद है, पर यदि ऐसा है तो वो हमें कभी दिखाई क्यों नहीं देता, हम कैसे मान लें कि वो सचमुच है, और यदि वो है तो हम उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" नामदेव मुस्कुराये और एक शिष्य को एक लोटा पानी और थोड़ा सा नमक लाने का आदेश दिया। उस शिष्य से कहा, "पुत्र, तुम नमक को लोटे में डाल कर मिला दो। संत बोले, "बताइये, क्या इस पानी में किसी को नमक दिखाई दे रहा है?" सबने 'नहीं' में सिर हिला दिए। "ठीक है!, अब कोई जरा इसे चख कर देखे, क्या चखने पर नमक का स्वाद आ रहा है?", संत ने पुछा। "जी", एक शिष्य पानी चखते हुए बोला।

"अच्छा, अब जरा इस पानी को कुछ देर उबालो।", संत ने निर्देश दिया। कुछ देर तक पानी उबलता रहा और जब सारा पानी भाप बन कर उड़ गया, तो संत ने पुनः शिष्यों को लोटे में देखने को कहा और पुछा," क्या अब आपको इसमें कुछ दिखाई दे रहा है?" "जी, हमें नमक के कण दिख रहे हैं।", एक शिष्य बोला। संत मुस्कुराये और समझाते हुए बोले," जिस प्रकार तुम पानी में नमक का स्वाद तो अनुभव कर पाये पर उसे देख नहीं पाये उसी प्रकार इस जग में तुम्हे ईश्वर हर जगह दिखाई नहीं देता पर तुम उसे अनुभव कर सकते हो। और जिस तरह अग्नि के ताप से पानी भाप बन कर उड़ गया और नमक दिखाई देने लगा उसी प्रकार तुम भक्ति, ध्यान और सत्कर्म द्वारा अपने विकारों का अंत कर भगवान को प्राप्त कर सकते हो।"

संत नामदेव के संदेश पूरी मानवता के लिए हैं, उनका कहना था कि- सर्वभूतों में हरि यही एक सत्य। सर्व नारायण देखते हरि अर्थात् 'सभी जीवों में ईश्वर ही सत्य है। प्रभु सभी को देख रहे हैं।' संत-नामदेव ने पंजाब में श्री गुरु नानकदेव जी से लगभग दो सौ वर्ष पहले निर्गुण उपासना का प्रतिपादन किया। उत्तर भारत में भक्ति-भाव की संत परम्परा वाले वे आदिपुरुष दिखते हैं।

संत नामदेव के संदेश-

संत नामदेव के जीवन के बीस वर्ष पंजाब में भगवत धर्म का प्रचार करते हुए बीते, वे करताल और एक तारा बजाते हुए मधुर स्वर में भजन गाते थे तथा ईश्वर की भक्ति करते थे। पंजाब की संत परम्परा में नामदेव प्रथम संत कहे जाते हैं। इनके शिष्यों को नामदेविया कहा जाता है। नामदेव जी का प्रभाव इतना अधिक था कि श्री गुरुग्रन्थ साहिब में उनके 61 पद, 3 श्लोक और 18 रागों को स्थान दिया गया। इनकी मृत्यु पंजाब में हुई तथा उनके नाम से घुमाणा में एक गुरुद्वारा भी है।

संत नामदेव के संदेश पूरी मानवता के लिए हैं, उनका कहना था कि- सर्वभूतों में हरि यही एक सत्य। सर्व नारायण देखते हरि अर्थात् 'सभी जीवों में ईश्वर ही सत्य है। प्रभु सभी को देख रहे हैं।' संत-नामदेव ने पंजाब में श्री गुरु नानकदेव जी से लगभग दो सौ वर्ष पहले निर्गुण उपासना का प्रतिपादन किया। उत्तर भारत में भक्ति-भाव की संत परम्परा वाले वे आदिपुरुष दिखते हैं।

संत नामदेव का मन भक्तिभाव से भजन करने में ही लगा रहता था। उनके लिए, विट्ठल, शिव, विष्णु, पाण्डुरंग सभी एक ही हैं। सभी प्राणियों के अन्दर एक ही आत्मा है। फिर जाति का भेद कितना झूठा है:उनकी दृष्टि बहुत व्यापक है और वे कहते हैं कि सभी प्राणियों के अन्दर एक ही राम हैं:

एकल माटी कुंजर चींटी भाजन हैं बहु नाना रे।
असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे।
एकल चिंता राखु अनंता अउर तजह सभ आसा रे।
प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरु को दासा रे।

अर्थात् 'हाथी और चींटी दोनों एक ही मिट्टी के वैसे ही बने हैं जैसे (एक ही मिट्टी के) बर्तन अनेक प्रकार के होते हैं। एक स्थान पर स्थित पेड़ों में, दो पैरों पर चलने वालों में तथा कीड़े-पतंगों के घट-घट में वह प्रभु ही समाया है। उस एक अनन्त प्रभु पर ही आशा लगाए रखो तथा अन्य सभी आशाओं का त्याग कर दो। नामदेव विनती करता है कि हे प्रभु! अब मैं निष्काम हो गया हूँ इसलिए अब मेरे लिए न तो कोई मालिक है और न कोई दास है अर्थात् स्वामी और दास अब एक रूप हो गए हैं।'

संत नामदेव जातिपाँति का पूर्णतया निषेध करते हैं तथा भक्तिभाव का जागरण करते हुए राम का नाम भजने को ही कहते हैं :

कहा करउ जाती कहा करउ पाति। राम को नामु जपउ दिन राति।
रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ। राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ।

अर्थात् 'मुझे अब किसी ऊँची-नीची जाति-पांति की परवाह नहीं रही क्योंकि, अब मैं दिन-रात परमात्मा का सुमिरन करता हूँ। अब मैं रंगाई और सिलाई का काम किए चला जा रहा हूँ, परन्तु प्रभु-नाम के बिना घड़ी भर भी जीवित नहीं रह सकता।'

भइया कोई तुलै रे रामाँय नाम।
जोग यज्ञ तप होम नेम व्रत। ए सब कौंने काम।।

संत नामदेव को कुछ लोग निर्गुण उपासक मानते हैं, किन्तु उनका तीर्थों में विश्वास भी कम नहीं है-त्रिवेणी पिराग करौ मन मंजन। सेवौ राजा राम निरंजन।

संत नामदेव ने मराठी में अभंग तथा हिन्दी में पदों की रचना की। संत कबीर तथा संत रैदास आदि सभी ने इनकी महिमा का गान किया है।

भक्त रैदास कहते हैं:-

नामदेव कबीरु तिलोचनु सधना सैनु तरे।
कहि रविदासु सुनहु रे संतहु हरि जीउ ते सभै सरै।

अर्थात नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, साधना, सैन आदि सभी पार उतर गए हैं। रविदास कहते है कि संतजनों ध्यान से सुन लो कि वह प्रभु सब कुछ कर सकता हैद्य संत नामदेव उस ब्रह्मा की साधना में लगे रहे जो घट-घट वासी है।

उनके समय में नाथ और महानुभाव संप्रदाय का महाराष्ट्र में प्रचार था। इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र में पंढरपुर के 'विठोबा' की उपासना भी प्रचलित थी। इसी उपासना को दृढता से चलाने के लिए संत ज्ञानेश्वर ने सभी संतो को एकत्रित कर 'वारकरी संप्रदाय' की नींव डाली। सामान्य जनता प्रति वर्ष आषाढ़ और कार्तिक एकादशी को विठ्ठल दर्शन के लिए पंढरपुर की 'वारी' (यात्रा) किया करती है। यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

महाराष्ट्र की भूमि साधु-सन्तों की भूमि रही है। इस भूमि पर सन्त ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, गोरा कुमार आदि ने जन्म लेकर इस भूमि को पावन बनाया। मराठी भाषा में श्रेष्ठ धार्मिक ग्रन्थों का प्रणयन करके उन्होंने जनसाधारण को भक्ति का मार्ग दिखाया।

निष्कर्ष-

इन सभी सन्तों में सन्त नामदेव ऐसे थे, जिन्होंने मराठी भाषा के साथ-साथ मुखबानी हिन्दी में शी अभंगों की रचना की और लोगों को सच्ची ईश्वर-भक्ति की प्रेरणा दी। निष्कर्ष रूप में संत साहित्य वह ज्ञान की धारा है जिसमें सामाजिक उत्थान के लहरे बराबर उठती रहती हैं संतों ने सामाजिक एकता एवं नैतिकता को खूब बढ़ावा दिया है।

उनका संपूर्ण जीवन मानव कल्याण के लिए समर्पित रहा। मूर्ति पूजा, कर्मकांड, जातपात के विषय में उनके स्पष्ट विचारों के कारण हिन्दी के विद्वानों ने उन्हें कबीर जी का आध्यात्मिक अग्रज माना है। संत नामदेव जी ने पंजाबी में पद्य रचना भी की। भक्त नामदेव जी की बाणी में सरलता है। वह हृदय को बांधे रखती है। उनके प्रभु भक्ति भरे भावों एवं विचारों का प्रभाव पंजाब के लोगों पर आज भी है।

भक्त नामदेव जी के महाप्रयाण से तीन सौ साल बाद श्री गुरु अरजनदेव जी ने उनकी बाणी का संकलन श्री गुरु ग्रंथ साहिब में किया। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में उनके 61 पद, 3 श्लोक, 18 रागों में संकलित है।

वास्तव में श्री गुरु साहिब में नामदेव जी की वाणी अमृत का वह निरंतर बहता हुआ झरना है, जिसमें संपूर्ण मानवता को पवित्रता प्रदान करने का सामर्थ्य है। 'मुखबानी' नामक ग्रंथ में उनकी कई रचनाएं संग्रहित हैं। उनके जीवन के एक रोचक प्रसंग के अनुसार एक बार जब वे भोजन कर रहे थे, तब एक श्वान आकर रोटी उठाकर ले भागा। तो नामदेव जी उसके पीछे घी का कटोरा लेकर भागने लगे और कहने लगे 'हे भगवान, रुखी मत खाओ साथ में घी लो।' विश्व भर में उनकी पहचान 'संत शिरोमणि' के रूप में जानी जाती है। ऐसे महान संत को विनम्र श्रद्धांजलि।

संदर्भः

1 संत नामदेव लेखकः डॉ. हेमंत विष्णु इनामदार तथा प्रकाशकः श्री. जयंत तिलक, केसरी मुद्रणालय, ५६८ नारायण पेठ, पुणे ३०

2 रामचरितमानस तुलसीदास गीता प्रेस गोरखपुर

3 मलूक दास की वाणी वेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद

4 दक्षिणी भारत की संत परंपरा डॉ राधाकृष्णमूर्ति प्रकाशक कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति 1784 मेंन रोड, चामराज पेट बैंगलोर.

5 कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड बी नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली

6 डॉ. हेमंत विष्णु इनामदार एवं श्री. जयंत तिलक. संत नामदेव, केसरी मुद्रणालय, पुणे

हिन्दी कथा साहित्य के विकास में डॉ० सूर्यबाला का योगदान

कविता कुमारी

विश्वविद्याय हिन्दी विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, कमेश्वरनगर, दरभंगा

डॉ० निवेदिता कुमारी

पर्यवेक्षिका, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जे०एम ०डी०पी०एल० महिला कॉलेज, मधुबनी

हम वर्षों से सुनते आ रहे हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। उस दर्पण को अपनी अंतरात्मा द्वारा सुसज्जित रूप में गढ़नेवाला कारीगर साहित्यकार ही होता है। वो समाज की हर एक सच्चाई को अपनी रचना के माध्यम से हम सब के बीच हू-ब-हू रखने का प्रयास करता है। समाज कि हर एक अच्छी-बुरी तस्वीर से हमें अवगत करानेवाला साहित्यकार ही होता है। और फिर उस तस्वीर में बदलाव लानेवाला भी साहित्यकार ही होता है। अपनी लेखनी कि क्षमता से वो सोयी हुई आत्मा तक में जान डाल देती है। और उसे विकास कि ओर अग्रसर कर देती है। समाज को एक नयी सोच और नई दिशा के साथ एक साकार रूप देने में हिन्दी कथा साहित्यकारों का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है।कथा साहित्य के द्वारा किसी भी बात को विस्तार पूर्वक रखने में भी सुविधा होती है। तथा हमारा हिन्दी गद्य साहित्य तो एक से बढ़कर एक होनहार साहित्यकारों को पाकर आरंभ से ही खास बना बैठा है।

हम सभी जानते हैं कि वर्षों पहले से ही हमारी पुरानी सोच के कारण जर्जरित, क्षरित बने भारतीय समाज को सही मार्ग दिखाने में हिन्दी कथा साहित्य के लेखक-लेखिकाओं ने अपनी लेखनी की पूरी ताकत लगा दी। उन्ही सब के बीच से निखरकर सामने आने वाली हैं: समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की एक सुप्रसिद्ध लेखिका- डॉ० सूर्यबाला।

आधुनिक युग की लेखिक सूर्यबाला की सभी रचनाओं मेंहमें आधुनिकता की झलक देखने को मिलती है। वो अपनी आधुनिक सोच को भारतीय समाज के सभी वर्गों में डालना चाहती हैं और उसमें वह बहुत हद तक सफल भी होती है। सूर्यबाला जी ने समाज में फैली सभी बुराइयों को अपनी रचनाओं में बारीकी से डाला है, ताकि उसे पढ़कर समाज के लोगो की सोच बदले। उनकी रचनाओ में जिन-जिन बुराइयों को दिखया गया है। उनमें प्रमुख हैं- नारी का तिरस्कार, नारी कि अस्मिता पर आँच, शिक्षक का अपमान, मन मुताबिक नौकरी न मिलपाने के कारण एक युवक का उद्वेलित मन। बड़े-बड़े सपनों कि तलाश में विदेश जाकर बसना। अपने खुद के जीवन का फैसला लेने में असमर्थ नारी का त्यागपूर्ण चित्र आदि।

सूर्यबाला जी की सभी रचनाएँ नए समाज के निर्माण में एक सीढ़ी का काम करती है। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं:- 'मेरे-संधि पत्र', 'सुबह के इंतजार तक', 'अग्निपंखी', 'यामिनीकथा', 'दीक्षांत', 'कौन देश को वासी वेणु की डायरी' (उपन्यास), 'दिशाहीन', 'थाली-भर चाँद', 'मुँडेर पर', 'गृह प्रवेश', 'गोरा गुणवंती' (कहानी)। इन सभी प्रमुख रचनाओं के साथ-साथ उनकी और भी कई रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें कई तरह की नयी सोच के साथ हमें रू-ब-रू होने का मौका मिलता है। सूर्यबाला जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'मेरे संधि पत्र' में हम देखते हैं कि किसतरह नायिका शिवा अपनीसौतेली बेटी से प्यार करती है। अपने आप को खुश रखने और हर रिश्ते को संभालने का प्रयास करती है। उनकी बेटियाँ भी उन्हें दिल से अपनी माँ मानती हैं। उनकी बेटियाँ तो उनके विधवा हो जाने पर उनकी दूसरी शादी करवाने के लिए भी तैयार रहती है। लेकिन शिवा रीति-रिवाजों के बन्दिशों को तोड़ नहीं पाती है,और रत्नेशमाथुर नामक तलाकशुदा आदमी से प्यार करते हुए भी भारतीय परम्पराओं से बंधे होने के कारण शादी नहीं कर पाती है।भारतीय नारियों कि इसी आन्तरिक परतंत्रता का विरोध करने के लिए सूर्यबाला जी ने शिवा की दूसरी सौतेली बेटी रिंकी के माध्यम से पश्चमी सभ्यता का वर्चस्व भारतीय सभ्यता से अधिक बताते हुए कहती है कि- "पश्चमी-सभ्यता से संबन्धित लोगों की जिंदगियाँ नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित और थोथी सामाजिक प्रतिष्ठा की ऊघड़ी पैबंद लगी जिंदगियों से दूर बेलाग, बोल्ड जिंदगियाँ है।"[1]

'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में लेखिका ने नायिकाशिवाके द्वारा सौतेली बेटी को अपनाने की आधुनिक सोच को दिखाया है। साथ ही पश्चमी-सभ्यता के स्वतंत्र विचार की तुलना भारतीय रूढ़िगत-परम्पराओं की जंजीर से कर सभी भारतीय नारियों के कान में परम्पराओं से मुक्ति का मंत्र फूंका है। तथा सबको खुले मन के साथ जीवन जीने के लिए उकसाया है। सभी स्त्री के अंदर एक नई सोच को उपजाना लेखिका के इस उपन्यास का अभिप्राय है।

सूर्यबाला जी का दूसरा उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' अपने आप में एक अद्भुत उपन्यास है। इस उपन्यास में आज की सच्ची तस्वीर दिखाई देती है। इस उपनास में माँ-बाप की लापरवाही के साथ-साथ छोटे भाई की समझदारी और बड़ी बहन की जिम्मेदारी निभाने के जज्जबे को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से दिखाया गया है। इस उपन्यास की नायिका मीनू तो आज के स्त्री समाज के लिए मिसाल बन कर उभरती है। जो अपनी इज्जत तार-तार हो जाने के बाद

भी टूटती नहीं है,और अपने छोटे भाई बुलू (बलिन्दर) को डॉक्टर बनाती है। भले ही इसके लिए उसे अपनी जान ही क्यों न देनी पड़ी, लेकिन वह पुरुषों द्वारा किए गए घिनौने कर्म को मुँहतोड़ जबाब दे जाती है और अपनी एक नई कहानी लिख जाती है।

मीनू के दृढ़निश्चयी गुणों को लेखिका बुलू के माध्यम से बताते हुए कहती है कि- "सचमुच कहाँ हारी थी वह! उस दाँव पर भी नहीं जिस पर लोग जिन्दगी ही हार जाना बेहतर समझते हैं, जिसे न आधुनिक मानसिकता स्वीकार पाती है, और न पारम्परिक मान्यताएँ .....दीदी को आते-जाते देखने वाला स्वयं एक अनाम अपराध बोध से ग्रस्त हो जाता है .....जैसे वह स्वंय उत्तरदायी हो .....जैसे हर व्यक्ति एक समाज हो।"[2]

'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास के माध्यम से लेखिका सूर्यबाला एक तरफ तो पुरुषों के इस दरिंदगी के लिए उसके गाल पर तमाचा कसती है तो दूसरी तरफ मीनू द्वारा इस समाज जबाब देने के तरीके को दिखाकर नारियों की आंतरिक क्षमता में बढ़ोत्तरी करने का प्रयास करती है। और अंत-अंत तक इस समाज को अपने किए पर शर्मिंदगी का एहसास भी करवाती है। तथा लेखिका इस उपन्यास के माध्यम से अपने सभी उद्येश्यों में सफल होती है।

सूर्यबाला जी का तीसरा उपन्यास है- 'अग्निपंखी'। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें समाज की सभी छवि को उद्घाटित किया गया है। इसमें एक युवक का घुटन भरा जीवन है।संयुक्त परिवार से बिखरता मन है। एक विधवा का रुदन है। आधुनिकता के पीछे भागते युवकों का मानसिक क्रंदन है। इस उपन्यास का नायक 'जयशंकर' आर्थिक तंगी को झेलता रहता है। पढ़ा-लिखा होने के बाद भी नौकरी की तलाश में दर-दर भटकता रहता है। अपने परिवार की किसी भी जरूरत को पूरा नहीं कर पाता है।अपनों के मुंह से दुत्कारऔर तिरष्कार भरे शब्दों को सुनते-सुनते वह इतना कठोर हो जाता है कि उसे अपनी माँ की तकलीफ भी दिखाई नहीं देती है। वह अपनी माँ से कभी सीधे मुँह बात भी नहीं करता है। हमेशा झुंझलाता रहता है और इन सबका एक ही कारण रहता है अच्छी नौकरी का अभाव।

जयशंकर के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने जयशंकर की माँ के माध्यम से बताया है कि- "जयशंकर बात नहीं बोलता है, जैसे तोप दागता है। लेकिन जब गाड़ी में बिठाने के बाद खिड़की के पास आकर खड़ा हुआ और कुछ मिनटों खड़ा ही रहा तो चेहरा ऐसा जाने कैसा तो हो गया .....वही धुँधुआती चाय और कारखानों की चक्की के साथ पीसते जाना कहोगी न यह सब"[3]

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका सूर्यबाला ने नौकरी की तलाश में भटकते युवा वर्ग के चित्र को दिखाया है। उसके अन्दर उपजने वाली हीन भावना को दिखाया है। उसके मन की बेचौनी, उसकी बदहाली को दिखाया है। ताकि उसकी स्थिति में सुधार लाया जा सके।

सूर्यबाला जी के चौथे उपन्यास 'यामिनी-कथा' में बेटे और पति के प्यार के बीच फंसी एक स्त्री की मानसिक एवं भावात्मक उलझनों को उजागर किया गया है। इस उपन्यास की नायिका यामिनी अपने पहले पति से प्राप्त बेटे पुतुल और अपने दूसरे पति निखिल को बहुत प्यार करती है, लेकिन इन दोनों पिता-पुत्र के बीच कोई लगाव न हो पाने के कारण यामिनी इन दोनों के बीच बंट जाती है, और घुटती रहती है। पति को खुश करने जाती है तो बेटा नाराज हो जाता है और बेटे के लिए समय निकलती है तो पति तानें देता है। यामिनी खुद को दोषी मानते हुए उन दोनों के पीछे भागते-भागते थक जाती है। उसका मन विद्रोह करना चाहता है। वह अपने मन में कहती है कि- "मेरे पास अपनी जमीन का भी तो हाथ भर का ही सही एक टुकड़ा होना चाहिए, जहां मेरी इच्छाएं अपनी थिगलियों में ही सही, दो घड़ी को सुस्ता सकें। मेरी सारी जमीन पर क्या सिर्फ उन्हीं लोगों का हक, कब्जा रहेगा आजीवन .....?"[4]

इस उपन्यास के माध्यम से सूर्यबाला ने विधवा विवाह पर बल दिया है तथा विवाह के बाद यामिनी के अंदर उठ रहे विद्रोह के माध्यम से समाज की स्त्री को लेखिका सिखाना चाहती है कि अपने लिए सोचना कोई गलत बात नहीं है, बल्कि दूसरों की खुशी के लिए अपने अस्तित्व को खो देना गलत बात है।

सूर्यबला जी के पांचवें उपन्यास 'दीक्षांत' में एक शिक्षक की हृदयस्पर्शी कहानी को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। इस उपन्यास का नायक प्रोव विद्याभूषण शर्मा पीएचवडीवहोल्डर हैं लेकिन उसे जीवनपर्यंत न तो अच्छा पद, न पैसा, और न ही अपने छात्रों से सम्मान ही मिल पता है।जिससे वह पूरी तरह टूट जाता है। वह आवाज उठाना चाहता है लेकिन अपनी आर्थिक तंगी के कारण सब सहता हुआ चुप रहता है। अपने परिवार की जरूरत को पूरा ना कर पाने के कारण हरपल घुटता रहता है। उसे वो सब मिलता है जिसका वह हकदार रहता है लेकिन उसकी मौत के बाद।

'दीक्षांत' उपन्यास के नायक विद्याभूषण सर के मार्मिक चित्रण को प्रस्तुत करते हुए सूर्यबाला जी कहती हैं कि- "कभी-कभी अंदर से विद्रोह चीख पड़ने को होता है, लेकिन जाने कहाँ की सहनशक्ति और धैर्य आकर उनकी पूरी अस्मिता को दबोच लेता है। इस धैर्य और सहनशक्ति को मलवे के नीचे एकदम नीचे वे दबते जाते हैं।"[5]

इस उपन्यास के द्वारा सूर्यबाला जी शिक्षक की दयनीय स्थिति को दिखाकर उसमें बदलाव लाने का प्रयास करती हैं।

सूर्यबला जी के छ्ठे उपन्यास 'कौन देश को वासी वेणू की डायरी' विदेश से जुड़ी एक बहुत ही प्रसिद्ध रचना है। इस उपन्यास का नायक वेणू अपने परिवार के सपने को पूरा करने के लिए विदेश जाता है और वहीं का हो के रह जाता है। जो उसे प्यार करनेवाले परिवार के लिए कष्टदायक सिद्ध होता है।

इस उपन्यास के माध्यम से सूर्यबाला जी ने दिखाया है कि- किस तरह हम ऊंची कामयाबी की तलाश में ऐशो आराम की खोज में अपनों से दूर हो जाते हैं, जो कि गलत बात है। इस उपन्यास को पढ़ने से हमें विदेश में रहनेवाले भारतीय लोगों के जीवन, वहाँ की सारी अच्छी-बुरी बातों की जानकारी मिलती है।

इस प्रकार हम कह सकतें हैं कि आज के इस नए दौर में सूर्यबाला जी एक ऐसी कथा लेखिका हैं जिन्होंने अपनी रचना के माध्यम से समाज के हर पहलू को स्पष्ट रूप से हम सबके सामने सिर्फ लाया ही नहीं है बल्कि उसमें बदलाव लाने का भी भरसक प्रयास किया है। डॉ० सूर्यबाला का कथा-साहित्य आधुनिक जीवनशैली से उत्पन्न सामाजिक उत्पीड़न, पारिवारिक दुरवस्था, यथोचित सम्मान न पाने का क्षोभ जैसी जीवन की अनेकानेक समस्याओं से जूझते पात्रों की जिजीविषा के संघर्ष को दर्शाता है। समाज में क्या हो रहा है और एक स्वस्थ समाज में क्या होना चाहिए इसके बीच की चेष्टा लेखिका के लेखन

का अभिप्रोत है। उनके उपन्यासों के पात्र मानो समाज के जीवंत चरित्र हों जो पाठकों से न्याय की अपेक्षा रखते हैं। हिन्दी कथा साहित्य के विकास में डॉ० सूर्यबाला का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद, मन्नू भंडारी, राजेंद्र यादव, जैनेन्द्र कुमार की परंपरा में अगली कड़ी के रूप में डॉ० सूर्यबाला का नाम लिए जाने में कोई अत्युक्ति न होगी।

शोध संदर्भः-

1. 'मेरे संधि पत्र', सूर्यबाला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 2019, पृवसं व-78
2. 'सुबह के इंतजार तक', सूर्यबाला, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, संस्करणः 2011, पृवसं व-156
3. 'अग्निपंखी',सूर्यबाला, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, संस्करणः 2011,पृवसं व-52
4. 'यमिनी कथा', सूर्यबाला, ज्ञानगंगा, नई दिल्ली, संस्करणः 2011, पृवसं व-100
5. 'दीक्षांत', सूर्यबाला, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करणः 2007, पृवसं व-36

चंद्रकिशोर जायसवाल का उपन्यास 'जीबछ का बेटा बुद्ध'

पवन कुमार ठाकुर

शोधार्थी हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० निवेदिता कुमारी

शोध-निर्देशिका, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जे.एम.डी.पी.एल महिला कॉलेज, मधुबनी

चंद्रकिशोर जायसवाल एक प्रसिद्ध रचनाकार हैं इनका का जन्म 1940 में बिहारीगंज, मधेपुरा में हुआ। जो बिहार के पूर्वी क्षेत्र में पड़ता है। जहाँ कोसी नदी बहती है।

'जीबछ का बेटा बुद्ध' चंद्रकिशोर जायसवाल जी का उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन 1982 में हुआ। यह उपन्यास ग्रामीण पृष्ठ भूमि पर आधारित है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र निम्नलिखित हैं- जीवछ बाबू, दीपक, तारा देवी, सिरपद, सोमनाथ झा, नमोनाथ झा, जंगीलाल, सतदेव, रुपलाल, बटेसर चौधरी, जंगीलाल, रधिया, सुशीला, फूलो देवी, सोटन, नंदन मिसर, चौधरायन, बिपत मड़ड़, रतने सर मिसर, जयदेव सिंह, हंकुरु मड़ड़, सियालाल, बुद्धन धोबी, भीमराज सिंह, जनमदेव, उदय बाबू, जब्बार, वुच्चन मड़ड़, राधारमण, रामतेजा सिंह, चौधरी भटुनन्दन, वेदप्रकाश, सुन्नर दास, रामजी यादव आदि।

इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को जायसवाल जी चित्रित करते हैं। जिसका केंद्रीय पात्र दीपक है जो बचपन से ही सत्य की राह पर चलते हैं उनके अंदर बचपन से ही बुद्ध का गुण आ गया। "एक महात्मा के सारे गुण उनकी जन्म-घूँटी में ही पड़ गए थे और, इन गुणों का जो बीज पड़ा उसमें, वह ऐसा अंकुरित-पल्लवित हुआ कि एक विशाल वृक्ष का आकार ग्रहण करने लगा। इस अंकुर को लगातार खींचते रहे शरमा गुरुजी।"[1] दीपक अंदर से इतना मजबूत हो चुका कि बचपन में ही कई महापुरुषों की जीवनी पढ़ डाली और उसे अपने जीवन में उतार दिया। उसे बाहरी दुनिया का लोभ लालच क्या बिगाड़ सकता है।

दीपक जब अपने गाँव से बाहर की चकाचौंध की दुनियां में जाता है तो वह अवाक रह जाता है। उनके पास बाल-भगवान उनसे दूर होना चाहते हैं "इस नई दुनिया में अब मैं तुमसे अलग हो जाऊँगा। मैं बच्चों का भगवान हूँ, बाल-पोथी का भगवान; यहाँ नहीं टिक सकता। यहाँ ढेर सारे दूसरे भगवान हैं। चोर-डाकुओं का अपना भगवान है यहाँ; वे मुझसे भला क्या पाएँगे! हत्यारे जिस भगवान से अपनी सफलता के लिए प्रार्थना करते हैं, वह मैं नहीं हो सकता। वकील अपने भगवान से कहकर लोगों के बीच लड़ाई-फसाद करवाते हैं यहाँ। हैजा जोर आवे, इसके लिए वैद्ध-हाकीम अपने-अपने भगवान को प्रसन्न करते हैं। पुरोहित हर रोज मनाता है अपने भगवान से कि उसका भी कोई यजमान जमीन का पैबंद हो जाये"[2] इस संसार में ज्यों-ज्यों व्यक्ति की उम्र बढ़ती है त्यों-त्यों संसार के लोभ-लालच, में फंसकर व्यक्ति अपनी कर्तव्य भूल जाते हैं लेकिन दीपक उस लोभ को अपने पर हावी नहीं होने देते, उससे दूर रहते हैं।

जीबछ बाबू एक राजनेता थे। उसके चार बच्चे थे जिसमें तीन लड़की और एक सबसे छोटा बेटा दीपक। वे दीपक के लिए धन दौलत की ढेर लगा रहे थे। जो आजकल के नेताओं में भी अक्सर देखने को मिलता है। जीबछ बाबू अपना स्वार्थ के लिए हमेशा हैरान रहते और लोगों की आँखों में धूल झोंकर दुनिया के सामने एक ईमानदार नेता के रूप में जाने जाते थे। जायसवाल जी इन नेताओं का पर्दा फास करते हैं। जो पर्दा के सामने कुछ और पर्दा के पीछे कुछ और रहता है। जायसवाल जी लिखते हैं "जनता को मसीहा चाहिये, दधीचि चाहिये, तो फिर क्या करे राजनेता-जननेता? उनके लिए जरूरी है भेस बदलकर रहना।"[3] जीबछ बाबू जनता को मूर्ख बनाकर एक प्रतिष्ठित नेता के रूप में जाने जाते थे।

जीबछ बाबू, दीपक को भी अपने रास्ते पर चलने को कहते थे। लेकिन दीपक उस लोभ लालच में नहीं फंसता। वे धन सम्पति, दुनिया-दारी के लोभ से ऊपर उठकर एक स्वच्छ और शिक्षित समाज की स्थापना करने की कल्पना करते थे। वे आजीवन अपने लिए नहीं, अपनों के लिए जीना चाहते थे। वे बुद्ध के राह पर चलना चाहते थे। लेकिन जीबछ बाबू दीपक को लोक हित में काम करने से हमेशा रोकते रहे। वे अपना उदाहरण देकर दीपक को समझाते हैं "अब मेरे इस कोठी में देख लो कि कितने बड़े-बड़े पंडित और आचार्य मेरे दरबार में हाजिरी देने आते हैं, मेरे चरणों की धूल अपने ललाट में लगाने से जरा भी नहीं हिचकते, मेरा आशीर्वाद पाने के लिए मेरे जूते का फीता खोलते हैं, चिचिआते हैं, रिरियाते हैं।"[4] आगे बोलते हैं "मुझे भी तुमसे मोह है, ममता है; मैं तुम्हें जीवन में सफल देखना चाहता हूँ। अगर तुम मेरी बतायी राह पर चलते हो, तो मैं तुम्हारा कोई भी कुकर्म बर्दाश्त कर लूंगा। तुम शराबी हो जाओ, तुम जुआड़ी हो जाओ, मैं जरा भी परवाह नहीं करूँगा; मगर यह नहीं होगा कि.."[5]

जीबछ बाबू का पुराना मकान चकबेलवा में था। दीपक का बचपन की पढ़ाई वहीं पर हुई। धीरे-धीरे जीबछ बाबू अपनी राजनीति की दुनिया में आगे बढ़ते रहे। इसी कारण वह अपने परिवार के साथ ज्यादा समय नहीं दे पा रहे थे। जब जीबछ बाबू मंत्री-पद प्राप्त कर लिए तो धीरे-धीरे चकबेलवा जाना आना कम हो गया।

जब दीपक विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर ली, तो जीबछ बाबू ने दीपक को अपने पास बुला लिया और वहीं पर एक महाविद्यालय में नामांकन करा दिया। जीबछ बाबू दीपक को अपने रास्ता पर चलने का संकेत देते हैं। दीपक का मन वहाँ नहीं लगता था। दीपक को धन दौलत से कोई लोभ नहीं था। दीपक वहाँ से पढ़ाई के बहाने छात्रावास में चला गया और जीबछ बाबू राजनीतिक दुनिया में आगे बढ़ते रहे।

दिल्ली में पढ़ाई करने के दौरान ही दीपक को अपने पिता की जीवनी 'जनबल्लभ जीबछ' मिला। इस जीवनी को उदय नारायण जी ने लिखा था। उन्होंने अपने कुकर्मों पर पर्दा डालने और अपना नाम चमकाने के लिए जीबछ बाबू की झूठी जीवनी लिखा डाला। इससे जीबछ बाबू भी बहुत चर्चित हो गये थे।

जीवनी पढ़कर दीपक बहुत खुश हुआ क्योंकि जिस रास्ते पर दीपक चलना चाह रहा था। जीवनी के अनुसार वहीं रास्ता जीबछ बाबू का भी था। जीवनी में एक महान व्यक्ति का जो कार्य होता है वह जीवनी में लिखा था। उदय नारायण जीवनी में लिखा है जीबछ बाबू "एक पगली भिखारिन को बच्चों के ढेले की मार से बचाने के लिए दिन भर भूखा-प्यासा हाथ में लाठी लिये उस बुढ़िया के साथ घूमते रहे थे"[6] लिखा था "पिता ने तो एक बच्चे की जान बचाने के लिए उफनती-हहराती काली कोशी में.. बेचौनी घर कर गई उसके अंदर." जीवनी में लिखा, ऐसे बहुत सारे कार्य का वर्णन दीपक को मिला। दीपक उससे बहुत प्रभावित हुआ।

दीपक, दिल्ली से एम. ए. की पढ़ाई करके माता- पिता के पास आया तो सिर्फ माँ मिली। पिता जी किसी काम से बाहर गए थे। दीपक वहाँ से दो रोज के बाद अपने गाँव चकबेलवा चला गया। दीपक जब किसी छुट्टी भी आते थे तो अधिकतर गाँव में ही रहते। वहाँ जाने के बाद दीपक समाज सेवा के कार्यों में रुचि रखने लगा। जीबछ बाबू के वहाँ अच्छा-खासा जमीन-जथा था। लोगों के जरूत के अनुसार दीपक उस सम्पति का उपयोग करने लगा। जहाँ पिता धन दौलत जमा करने में लगे थे, वहीं बेटा बुद्ध की राह पर चलकर गरीबों को मदद करने लग लया। यदि किसी की बेटी की शादी नहीं हो पा रही थी तो दीपक उसकी शादी करवा देते थे। सोटन को दूध की जरूरत थी उसे भैंस ही दे दिया। जब सोटन को भैंस मिला तो दूसरे परिवार को भी लालच आ गया। वे अपने पिता को मुप्त में कैसे भैंस मिल जाय दिमाग लगाने लगा। दीपक चकबेलवा के विकास करने में लग गया। वहाँ के लोगों को शिक्षित करने के लिए उस गाँव में दीपक ने अपनी जमीन में माँ की नाम पर 'तारा पुस्तकालय' खोल दिया। जब यह सब जानकारी जीबछ बाबू को मिला तो एक दिन जीबछ बाबू ने 'तारा पुस्तकालाय' में चोरी करवा दिया। अब तो यह बात सारे गाँव में फैल गया। चोर ने सिर्फ किताब चुराई पैसा तो छुआ भी नहीं।

पंडित सब अपना फायदा देखते हुये कारण बताने लगा। पुजारी नमोनाथ झा के अनुसार जिस जमीन में 'तारा पुस्तकालय' है वह जमीन शुद्ध नहीं है। ".... मगर कनेर का विष तो ग्रहण कर ही लिया है इस भूमि ने। कनेर इतना विषैला होता है कि इसे तो अश्वघन, हयमार और तुरगारि नाम तक से पुकारा जाता है।"[7] उस समय नमोनाथ झा को तम्बाकू का बहुत दिक्कत हो गया था। उन्होंने मौका का फायदा उठाते हुए बोला कि इस जमीन पर अगर बीस-पचीस बरसों तक तंबाकू की खेती की जाय तो इसका सारा विष निचुड़ जाएगा। फिर तो इस जमीन पर वास के लिए महल खड़ा कर दिया जाये, तब भी कोई हर्ज नहीं"[8]

सतदेव ओझा के अनुसार "वह भूत..ऐसा मैंने पहली बार देखा है, किताब पढ़ रहा था। अब मेरी समझ में आ रहा है कि पुस्तकालय से पुस्तकें किसने चुरायी। इस भूत के सिवा यह काम और किसी का नहीं है। यह एक पढ़ाकू भूत है"[9] यह खबर गाँव भर में फैल गया। और इस प्रेत-बाधा दूर करने का खर्च ढाई सौ रुपया सतदेव झा बताते हैं। इस समस्या से निदान पाने के लिए कई ओझा-गुणी आये लेकिन किसी से भी समाधान नहीं हुआ। अंत में तारा देवी जीबछ बाबू से गुहार लगाती है। आप मेरे साथ चलिए श्रीमालीजी महाराज के पास "हमारी जमीन तो बेकार भी रह जायेगी तब भी हमें कोई हर्ज नहीं, मगर वहाँ कोई प्रेत-बाधा से पीड़ित हो गया, तो हमारी बदनामी हो जाएगी।. मेरे ही नाम पर पुस्तकालय खोला गया है। आप एक बार चलिए मेरे साथ श्रीमालीजी महाराज के पास"[10] जीबछ बाबू बोलते हैं "श्रीमालीजी महाराज के पास जाने की जरूरत नहीं है.. किसी ओझा के पास जाने की जरूरत नहीं है। वह भूत मैंने भेजा था"[11]

इस तरह हम देखते हैं कि इस उपन्यास में लेखक चंद्रकिशोर जायसवाल ने व्यक्तित्व और कृतित्व के खोखलेपन पर प्रकाश डाला है। यहाँ व्यक्ति जितना बड़ा दिखता है मुलत: वह उतना बड़ा होता नहीं है। जीबछ बाबू का जीवन इसका उदाहरण है। झूठ के आधार पर खड़ा उनका व्यक्तित्व खोखला है। आदर्श व्यक्तित्व के लिए जिन विशेषताओं का होना जरूरी होता है उनमें ऐसे गुणों का अभाव है। अपने पुत्र के सामने वह छोटा समझने लगते हैं। जब उसके बेटे दीपक को सच्चाई का पता चलता है तब जीबछ बाबू को दीपक अपना पिता मानने से इंकार करता है और अपनी माँ से सवाल करता है सत्य-सत्य बता दे ये मेरा पिता नहीं हो सकता।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज के सामने यह स्पष्ट करना चाहा है कि व्यक्ति कितने ही बड़े कर्म कर ले पर अपने बच्चों की आँखों में उसकी सच्चाई छवि बनी रहे। यही उसके जीवन की सफलता है। प्राकारांतर से यहाँ लेखक समाज को सच्चाई की राह पर चलने की प्रेरणा देते हैं यही इस उपन्यास और उपन्याकार की सफलता का मूल मंत्र है।

इस उपन्यास में जगह-जगह पर गीतों का प्रयोग किया है

"सुभ दिन लगन बिआहन गउरी, बनि ठनि दुलहा ऐला हे।
कंठ गरल उर नर सिर माला, कंठ नाग लपटैला हे।
भाल तिलक ससिपाल लगैला, जटा में गंगा बहैला हे।

बूढ़ बरद असवार सदाशिव, डमरू डिमिमि बजेला हे।
भूत प्रेत डाकिन साकिन संग, जोगिनी नाच नचौला हे"[12]

संदर्भ

1. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-1, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.
2. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-1-2, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.
3. वही पृष्ठ संख्या- 83.
4. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-16, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.
5. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-89, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.
6. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-4, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.
7. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-65, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.
8. वही पृष्ठ संख्या - 67.
9. वही पृष्ठ संख्या - 68.
10. वही पृष्ठ संख्या - 72.
11. वही पृष्ठ संख्या - 73.
12. चंद्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध', पृष्ठ संख्या-75, प्रकाशक- कोशी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना- 800 00, प्रथम संस्करण- 1990.

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि दिनकर का योगदान

डॉ० संजू कुमारी

सहायक प्रध्यापक, एस0 पी0 एम0 कॉलेज उदन्तपुरी, बिहार शरीफ, नालन्दा, पाटलिपुत्र विश्वविधालय

रामधारी सिंह हिन्दी-साहित्याकाश में "दिनकर" के समान प्रकाशवान हैं। जिन्होने अपनी क्रांतिकारी गीतों, अमर गायिकी और प्रतिभा से हिन्दी-साहित्य गगन को आलोकित कर रखा है। साहित्य की हर विधा में उनकी लेखिनी अपना परचम लहराती है। दिनकर हिन्दी के महान विचारक, निबन्धकार, आलोचक और क्रांतिकारी कवि हैं। इनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। हिन्दी साहित्य के ऐसे दीप्तिमान् कवि, लेखक व निबन्धकार का जन्म 23 सितम्बर 1908 ई0 को बिहार के गाँव सिमरिया धाट, जिला बेगूसराय, में एक साधारण भूमिहार परिवार में हुआ था। पिता का नाम रवि सिंह, माता श्रीमती मनरूप देवी, पत्नी श्यामवती देवी तथा पुत्र का नाम केदारनाथ सिंह था। केदारनाथ सिंह स्वयं भी एक प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। अल्पायु में ही दिनकर पिता के स्नेह से वंचित हो गए। आरंभिक शिक्षा मोकामा धाट के एक स्थानीय विधालय से करने के बाद पटना विश्वविधालय से इतिहास तथा राजनीति विज्ञान में बी0ए0 किया। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। बी0ए0 करने के बाद बढ़ती पारिवारिक जिम्मेवारियों के कारण वे एक विधालय में अध्यापक हो गए। 1934 से 1947 तक बिहार सरकार में सब-रजिस्टार और प्रचार विभाग में उपनिदेशक के पद पर कार्य किया। 1950 से 1952 तक लंगट सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे, 1963 से 1965 के बीच भागलपुर विश्वविधालय के उपकुलपति का पद संभाला बाद में भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार बने। 1947 में स्वतंत्रता के बाद बिहार विश्वविधालय में हिन्दी के प्रध्यापक व विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर मुजफ्फरपुर पहुँचे। 1952 में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और दिनकर दिल्ली आ गए। 12 वर्षो तक संसद सदस्य रहे।

दिनकर स्वभाव से सौभ्य और मृदुभाषी थे। लेकिन जब बात देश के हित-अहित की आती तो वे नेहरू को तथा उनकी नीतियों का विरोध करने से नहीं चुकते। पंडित नेहरू द्वारा ही दिनकर का चुनाव राज्यसभा सदस्य के तौर पर किया गया था इसके बावजूद बेबाक टिपण्णी करने से वे नहीं चूके और

"देखने में देवता सदृश्य लगता है,
बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है,
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो
समझो उसी ने हमें मारा है।"[1]

कहकर संसद में भूचाल ला दिया। इसी प्रकार हिंदीभाषियों को अपमानित करने के प्रसंग पर राज्यसभा में पंडित नेहरू को संबोधित करते हुए कहा- 'क्या आपने हिन्दी को राजभाषा इसलिए बनाया है ताकि सोलह करोड़ हिन्दीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाए जा सकें' घटना 20 जून 1962 का है। जब दिनकर राज्यसभा में खड़े हुए और हिंदी के अपमान को लेकर सख्त स्वर में बोले- 'देश में जब भी हिन्दी को लेकर कोई बात होती है तो देश के नेतागण ही नहीं बल्कि कथित बुद्विजीवी भी हिन्दी वालों को अपशब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ते। पता नहीं इस परिपाटी का आरम्भ किसने किया है, लेकिन मेरा ख्याल है कि इस परिपाटी को प्रेरणा प्रधानमंत्री से मिली है। पता नहीं तेरह भाषाओं की क्या किस्मत है कि प्रधानमंत्री ने उनके बारे में कभी कुछ नहीं कहा, किन्तु हिन्दी के बारे में उन्होंने आज तक कोई अच्छी बात नहीं कही। मैं और मेरा देश पूछना चाहते हैं कि क्या आपने हिन्दी को राजभाषा इसलिए बनाया था ताकि सोलह करोड़ हिन्दीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाएँ क्या आपको पता भी है कि इसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा। मैं इस सभा और खासकर प्रधानमंत्री नेहरू से कहना चाहता हूँ कि हिन्दी की निन्दा करना बन्द किया जाए। हिन्दी की निन्दा से इस देश की आत्मा को गहरी चोट पहुँचती है।'[2] हिन्दी भाषा, हिन्दी भाषी तथा हिन्दी साहित्य के उत्थान के लिए क्रांतिवीर दिनकर के द्वारा भरी राज्यसभा में डंके की चोट पर कहे गए इन कथनों से ज्यादा प्रभावी कुछ नहीं हो सकता। रामधारी सिंह दिनकर हिंदी भाषा के प्रमुख रचनाकारों में से एक है। उनकी कविताओं में अंग्रेजों के खिलाफ आवाज सुनाई देती है, आजादी के बाद सत्ता के शीर्ष पर बैठे हुक्मरानों की गलत नीतियों का भी विरोध करती है। उनमें उपस्थित राष्ट्रीयता, देशप्रेम, और आम जनता की आवाज जैसे गुणों के कारण ही राष्ट्रकवि की संज्ञा से अलंकृत किया गया।

1962 में चीन से हार के बाद संसद में दिनकर द्वारा की गई कविता पाठ-जो बाद में "हिमालय" में संकलित हुई।

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहां जाने दे उनको स्वर्गधीर
फिरा दे हमें गांडीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर।[3]

जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुका दिया। यह घटना आज भी भारतीय राजनीति के इतिहास की चुनिंदा क्रांतिकारी धटनाओं में से एक है। दिनकर आधुनिक हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ वीर रस के कवि है, स्वतंत्रता पूर्व इनकी पहचान एक विद्रोही कवि तथा स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रकवि के रूप में

की गई। वे छायावादोत्तर काल के पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओं में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रांति की पुकार है तो वहीं दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति है।

हिन्दी साहित्य की हर विध्या कविता, खंडकाव्य, निबंध, समीक्षा सभी पर दिनकर ने अपनी लेखनी चलाई है।

- प्रमुख काव्य:- रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, कुरूक्षेत्र, धूप-छांह, रश्मिरथी, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, हारे को हरिनाम।
- प्रमुख गध (निबंध):- अर्द्धनारीश्वर, रेती के फूल, हमारी सांस्कृतिक एकता, संस्कृति के चार अध्याय, पंत-प्रसाद और मैथिलीशरण, शुद्ध कविता की खोज, दिनकर की डायरी।
- निबंध संग्रह-वट पीपल,

उनकी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' के लिए उन्हें 1959 में साहित्य अकादमी, और उर्वशी के लिए ज्ञानपीठ मिला। उनकी काव्य कृतियों के लिए भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने 1959 में पदम विभूषण की उपाधि से अलंकृत किया। द्वापर युग की ऐतिहासिक धटना महाभारत पर आधारित उनकी प्रबंध काव्य कुरूक्षेत्र को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ काव्यों में 75 वाँ स्थान दिया गया। 4 दिनकर जी को उनकी रचना कुरूक्षेत्र के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तर-प्रदेश सरकार और भारत सरकार से सम्मान मिला। भागलपुर विश्वविधालय के तत्कालीन कुलाधिपति और बिहार के राज्यपाल जाकिर हुसैन, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने उन्हें डॉक्ट्रेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया। विधा-वाचस्पति तथा साहित्य-चूड़ामणि से भी सम्मानित किया। 1999 में भारत सरकार ने उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया।

दिनकर जी के प्रति कई लेखकों ने अपने-अपने विचार दिए है जिनमें निम्न प्रमुख हैं:-[5]

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-' दिनकर जी अहिंदीभाषियों के बीच हिन्दी के सभी कवियों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वालों के प्रतीक थे।
- हरिवंश राय बच्चन का कहना था दिनकर जी को एक नहीं बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिए अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिए।'

प्रमुख काव्यों की अमर पंक्तियों के कुछ अंश

1 'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो, तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रखो अपनी धरती तमाम।'[6]

2 'जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है'-[7]
अन्याय को अनदेखा करने कि प्रवृति की ओर इशारा करती यह कविता

3 'नहीं पाप का भागी केवल ब्याध जो तटस्थ है'
समय लिखेगा उनका भी अपराध[8]
इन पक्तियों में समाज में अच्छाई के साथ खड़े नहीं होने पर सवाल उठाया गया है।

- 'सच है, विपत्ति जब आती है,
कायर को ही दहलाती है,
सूरमा नहीं विचलित होते है,
क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं,
काटों में राह बनाते है,'[9]
- 'तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतव दिखलाके,
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींचकर ही रहते हैं इतिहासों में लीक'[10]
मानव में बल भरने वाली है ये कविताएँ

4 'मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है',
मानवीय संवेदना को व्यक्त करती कविता'

- संबंध कोई भी हो लेकिन,
यदि दुःख में साथ न दे अपना,
फिर सुख में उन संबंधो का,
रह जाता कोई अर्थ नहीं"।[11]

- 'श्वानों को मिलता दुध-वस्त्र,
  बच्चे भुखे अकुलाते है,
  माँ कि हड्डी से ठिठुर चिपक
  जाड़े की रात बिताते है'[12]

दिनकर जी राष्ट्रीय गौरव और स्वाधीनता संग्राम की परम्परा को लेकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। वे भारत एवं भारतीय संस्कृति से प्रेम रखने वाले थे, साथ ही उनके काव्य में विश्व-प्रेम एवं विश्व-कल्याण की भावना पूर्ण रूपेण विद्यमान है। दिनकर जी का दृष्टिकोण समाजवादी है, उन्होंने अपनी कविताओं में मानवीय मूल्यों को विशेष महत्व दिया है। कवि यह भी चाहतें हैं कि कोई किसी के अधिकारों का हनन न करे। कवि मानव को अपने काव्यों के माध्यम से सावधान करते हुए भी नजर आते है:-

'सावधान मनुष्य यदि विज्ञान है तलवार।
तो इसे दे फेंक तजकर मोह,
स्मृति के पार'।

रामधारी सिंह "दिनकर" के काव्य में वीरता एवं राष्ट्रीयता के स्वर विद्यमान हैं। अपनी ओजस्वी वाणी में जनजागरण का प्रयास करके कवि अपने कर्त्तव्य का सही अर्थ में पालन करते नजर आते हैं। जन-जन में कर्मण्यता, शूरता एवं पराक्रम के भाव भरने वाली काव्य रचना कर सही अर्थो में वे राष्ट्रकवि हैं। सरकारी क्षेत्र के खिलाफ जमकर बरसने वाले कवि का 4 वर्ष में 22 बार अलग-अलग जगह तबादला किया गया।

दिनकर जी निस्संदेह भारत के महानतम कवियों में से एक विशाल बुद्धिजीवी और राष्ट्र के प्रतीक कवि है जिन्होनें अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य में वीरता, साहस, देशप्रेम, राष्ट्रीयता, अपनी भाषा तथा जन्मभूमि से जूड़ाव, सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक चेतना को जगाने का प्रयास किया है। दिनकर जी हिन्दी साहित्य जगत की आत्मा हैं। मेरा मानना है कि जो कार्य अपने समय में चाणक्य के द्वारा किया गया था वही कार्य आधुनिक काल में दिनकर जी द्वारा किया गया है। ऐसा कौन मानव होगा जो उनकी कविता से अविभूत नहीं हुआ होगा। उनके शब्द हमारे अंदर नई जोश भरकर नई राह प्रेरित और रोशन करते है। आगे आने वाली पीढ़ियों के प्रेरणा स्त्रोत उनके काव्य कालजयी हैं। हिंदी साहित्य में दिनकर जी का योगदान अमूल्य रहा है। उनकी रचनाएँ हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। निराशा से दु:खी मन में आशा का संचार और समाजिक चेतना जागृत करने वाले कवि हैं। रेणुका, हुंकार, हिमालय, कुरूक्षेत्र, सामधेनी जैसी काव्य रचनाओं में इनकी क्रांतिकारी भावना, शोषक, शोषित और वर्गहीन समाज की स्थापना का भाव दिखाई पड़ता है। इनकी कविताओं में राष्ट्र प्रेम, विश्व प्रेम, प्रगतिवाद, प्रकृति चित्रण आदि का स्वाभाविक और मनोहारी चित्रण देखने को मिलता है। दिनकर जी अपनी समर्थ लेखनी से साहित्य की दोनों विद्या गद्य और पद्य में अपनी सेवा दी है। दिनकर जी का साहित्य के प्रति उनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

संदर्भ:-

1. वो थे दिनकर, जिन्होंने संसद में नेहरू के खिलाफ पढ़ी थी कविता, ETV Bharat 23 Sep 2019
2. वो थे दिनकर, जिन्होंने संसद में नेहरू के खिलाफ पढ़ी थी कविता, ETV Bharat 23 Sep 2019
3. (हिमालय से)
4. ज्वच 100 Famous epics of the world-14 दिसम्बर 2013 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 9 दिसम्बर 2013
5. स्मरणांजलि गूगल पुस्तक लेखक-रामधारी सिंह दिनकर
6. (रश्मिरथी/तृतीय सर्ग भाग-3)
7. (रश्मिरथी/तृतीय सर्ग भाग- 3)
8. समर शेष है कविता
9. रश्मिरथी कविता
10. रश्मिरथी कविता
11. 'कोई अर्थ नहीं कविता'
12. हुंकार

उत्तराखंड के साहित्यकारों का पत्रकारिता में योगदान

डॉ० आशा बाला

असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री गुरु राम राय यूनिवर्सिटी, देहरादून

साहित्य समाज का आईना है और साहित्यकार समाज को दिशा प्रदान करते हैं साहित्य की त्रिवेणी से ही पत्रकारिता का रास्ता खुलता है उत्तराखंड में देश के नामी और प्रतिष्ठित विद्वान हुए हैं जिन्होंने साहित्य जगत की राह से पत्रकारिता का मार्ग चुना।

उत्तराखंड के प्रथम समाचार पत्र विनोद जोशी, नैनीताल के विभिन्न भागों में ब्रिटिश नौकरशाही की निंदा, दमनकारी नीतियों, कम वेतन दिए जाने, बिना वजह पीटने अविश्वास करने, शोषण आदि पर चिंता व्यक्त की गई। अल्मोड़ा अखबार, बुद्धिबल्लभ पंत के संपादक तत्व में प्रारंभ हुआ। इस अखबार ने अंग्रेज शासको का ध्यान स्थानीय समस्याओं के प्रति आकर्षित किया, यह उस समय की जनता की मुख्य अभिव्यक्ति बना, इसके मुख्य विषय कुली बेगार, जंगल बंदोबस्त, बाल शिक्षा, स्त्री अधिकार आदि थे। समाचार पत्र ने शिक्षा सामाजिक और धार्मिक सुधारो के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित किया। बद्री दत्त पांडे ने अल्मोड़ा समाचार में स्थानीय नौकरशाही की निरंकुशता स्वराज आदि विषयों पर लिखा, तरुण कुमाऊं स्वाधीन प्रजा कुमाऊं कुमुद पत्र प्रकाशित हुए।

उत्तराखंड के प्रसिद्ध साहित्यकारों में मुख्य रूप से मुंशी प्रेमचंद, मोहन उद्याल, शीला दास, नामवर सिंह, जगमोहन गड्डीयार, और बछेहरा सिंह उल्लेखनीय हैं। उनके काव्य, कहानियाँ, नाटक, और उपन्यास उत्तराखंडी साहित्य को गौरवान्वित करते हैं।

छोटे से पहाड़ी राज्य उत्तराखंड ने देश को पद्म भूषण, पद्म श्री, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कई कवि और लेखक दिए हैं. सुमित्रा नंदन पंत, हिमांशु जोशी, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी, शैलेश मटियानी जैसे अनेक उत्तराखंडी साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में अहम योगदान दिया है।

गोविन्द बल्लभ पंत, मुंशी इम्तियाज अली, पं. लीला नन्द जोशी, पं. सदानन्द सनवाल, पं. विष्णुदत्त जोशी तथा ब्रदी दत पाण्डे ने अल्मोड़ा अखबार' का प्रकाशन किया।

1893 में 'कुमाऊँ समाचार' हिन्दी मासिक बाबू देवदास शाह ने निकाला। गढ़वाल क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता का सूत्रपात करने का श्रेय पंडित गिरिजा दत्त नैथाणी को जाता है। मई 1902 में लैंसडाउन से उन्होंने 'गढ़वाल समाचार' नाम से एक मासिक पत्र शुरू किया था। उत्तराखंड के प्रमुख साहित्यकारों में हिंदी शिरोमणि सुमित्रानंदन पंत मंगलेश डबराल शेखर जोशी अंग्रेजी साहित्यकार में रस्किन बांड ने अमित छाप चौड़ी है

महान साहित्यकार सुमित्रानंदन पंत हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित की स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, वाणी, पल्लव, युगांत, उच्छ्वास, ग्रन्थि, गुंजन, ग्राम्या, कला और बूढ़ा चांद, लोकायतन, चिदंबरा, सत्यकाम प्रमुख रचनाएं रहीं हैं।

मंगलेश डबराल हिंदी साहित्य का जाना-माना नाम है. उनकी पहाड़ पर लालटेन, हम जो देखते हैं, लेखक की रोटी, एक बार आयोवा, आवाज भी एक जगह है जैसी प्रसिद्ध कविताएं हैं. डबराल को साहित्य अकादमी पुरस्कार के अलावा शमशेर सम्मान, स्मृति सम्मान, पहल सम्मान और हिंदी अकादमी दिल्ली के साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया था।

हिन्दी के अग्रणी कहानीकार, उपन्यासकार हिमांशु जोशी का सामाजिक ऊंच-नीच और जाति व्यवस्था पर प्रहार करने वाली उनकी साहित्यिक रचना कगार की आग (उपन्यास) ने जहां विश्व प्रसिद्धि दिलाई वहीं उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को पहचान दिलाने में कामयाबी हासिल की थी. उन्होंने 'कगार की आग', 'छाया मत छूना मन' जैसे उपन्यास लिखे. उनकी प्रमुख कहानी संग्रह में 'जलते हुए डैने', 'मनुष्य चिह्न' काफी प्रचिलत रहे. कल्पना और यथार्थ का चित्रण उनके लेखन में साफ देखा जा सकता हैं. उन्होने हिंदी फिल्मों के लिए भी लेखन कार्य किया. उनके चर्चित उपन्यास तुम्हारे लिए पर दूरदर्शन धारावाहिक बना।

शैलेश मटियानी एक प्रसिद्ध उपन्यासकार व कहानीकार थेद्य इनके प्रमुख उपन्यासः उगते सूरज की किरण, पुनर्जन्म के बाद, आकाश कितना अनन्त है, मुठभेड़, सावित्री, बर्फ गिर चुकने के बाद, सूर्यास्त कोसी, आदि हैं।

उत्तराखंड में पत्रकारिता और साहित्य का चोली दामन का साथ रहा है आजादी से पहले जातिगत भेदभाव अछूतों के मंदिर प्रवेश, सेना में भर्ती, पानी की समस्या, साफ सफाई डोला पालकी की समस्या, अछूत उदार, भूमिसमस्या शिक्षा दलित बस्तियों को बचाने जैसे विषयों पर बार-बार सरकार का ध्यान आकर्षित करने की पत्रकारिता के द्वारा कोशिश की गई।

वहीं साहित्य भी इन विषयों से अछूता नहीं रहा, वास्तव में उत्तराखंड में पत्रकारिता के बढ़ते निरंतर प्रभाव को देखते हुए ज्ञात होता है कि यहां की अधिकांशत पत्रकारिता साहित्यकारों के कलम के द्वारा ही चली है जिन्होंने आजादी से लेकर आज तक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है क्षेत्रीय कवियों, रचनाकारों, साहित्य वालों को पत्रकारिता में महत्वपूर्ण स्थान मिला है जिन्होंने स्थानीय साहित्य, संस्कृतियों, भाषा को प्रोत्साहित किया है।

वास्तव में कहानी लेखन, स्तंभ लेखन, रचना लेखन यह भी पत्रकारिता की एक विधा है जिसके द्वारा इन साहित्यकारों ने पत्रकारिता को एक अलग पहचान दी है।

पत्रकारिता जल्दी में लिखा गया साहित्य है, हिंदी की पत्रकारिता और उसके साहित्य का संबंध अन्यानोश्चित रहा है। पत्रकारिता के पास तोप से लड़ने का हौसला साहित्य की ही बदौलत आया है उर्दू साहित्यकार अकबर इलाहाबादी ने लिखा था खींचे ना कमांडो को ना तलवार निकाले घर तो मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।

पत्रकारिता और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं पत्रकारिता साहित्य को पाठक वर्ग तक पहुंचाने का सबल माध्यम है और साहित्य पत्रकारिता को अधिक संवेदनायुक्त बनाकर प्रभावशाली बनाने में सहायक है, यह सत्य है कि साहित्य की उत्पत्ति पत्रकारिता से हुई है किंतु हम साहित्य के विकास पर ध्यान दें तो पत्रकारिता के उद्‌भव के पश्चात ही साहित्य के प्रचार प्रसार में बहुत अधिक वृद्धि हुई है पत्रकारों की साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। साहित्य सदा से समाज का मार्गदर्शन कर उन्हें सही दिशा प्रदान करता रहा है तथा साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, दूसरी और समाचार पत्र पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण अंग है जो समाज के विभिन्न भागों से सूचना एकत्र कर पुनः समर्थक पहुंचाने का कार्य करते हैं, जिससे समाज जागरूक होता है।

पत्र संप्रेषण का सशक्त माध्यम है यह न सिर्फ नए विचारों में आंदोलन को जन्म देते हैं बल्कि विभिन्न विषयों के प्रति जागरूकता उत्पन्न कर उसे प्रभावशाली भी बनाते हैं समाचार पत्रों से पाठकों का मानसिक विकास होता है जिज्ञासा शांत होती है साहित्य समाज का दर्पण होते हैं इस प्रकार समाचार पत्रों से भी दिशा प्राप्त कर समाज अपनी छवि को निर्धारित करता और समर्थन करता है।

लेखन से तात्पर्य कवि या साहित्यकार से होता है ऐसा इसलिए है कि साहित्य समाज की घटनाओं को चित्रित करता है और इस चित्र को समाज तक पहुंचाने के लिए साहित्य को पत्रकारिता के संभल की आवश्यकता होती है समाचार पत्र व पत्रिकाएं ही साहित्य को समाज के उस वर्ग तक पहुंचा सकते हैं जहां पहुंचकर समाज साहित्य से प्रभावित हो सके तथा समाज में वांछित परिवर्तन की संभावना बन सके।

समाचार पत्र मानव मूल्यों के पुनर्स्थापना महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यदि साहित्य की सभी विधाओं का प्रकाशन समाचार पत्रों में एक निश्चित समय पर होता रहे, तो इससे साहित्य की लोकप्रियता में भी वृद्धि होगी और पाठकों को साहित्य भी समझ में आ पाएगा।

वास्तव में पत्रकारिता आधुनिक सभ्यता का एक प्रमुख व्यवसाय है जिसमें समाचारों का एकत्रीकरण लिखना जानकारी एकत्र करके पहुंचाना, संपादित करना और सम्यक प्रस्तुतीकरण सम्मिलित है।

साहित्य भी सामाजिक सरोकारों और जनता के प्रति दायित्वों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है, पत्रकारिता का उद्देश्य साहित्य के राह में प्रमुख भूमिका निभाता है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्तराखंड के पत्र पत्रिकाओं से जुड़े पत्रकारों का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है उत्तराखंड के पत्रकारों ने सत्ता-सीन रहे सरकार और उसके बाद अंग्रेजों के खिलाफ निर्भीक कलम चलकर पत्रकारिता का धर्म निभाना आरंभ किया। वहीं साहित्यकारों ने कुली बेगार, जंगल बंदोबस्त, बाल शिक्षा, मध्य निषेध, स्त्री अधिकार प्राकृतिक आपदाओं और विपणन इत्यादि से जुड़ी अनेकों समस्याओं पर उत्तराखंड के पत्रकारों द्वारा और साहित्यकारों द्वारा स्थानीय पत्र और पत्रिकाओं में प्रकाशित की गई प्रखर पत्रकारिता के परिणाम स्वरूप ऐसी खबरों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली।

चेतना जगाने व स्थानीय समस्याओं को जन जीवन के अभाव को उजागर कर राष्ट्रीय पटल पर रखने में उत्तराखंड के कुछ प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में समय विनोद, पुरुषार्थ, गढ़वाली, शक्ति, स्वाधीन प्रजा, जागृति, जनता, विशाल कीर्ति, पूर्वांचल,पूर्वांचल समाचार, दून दर्पण, दांडी-काठी, गढ़वाल समाचार, नैनीताल समाचार, युगवाणी, गढ़वाली, अल्मोड़ा समाचार, प्यारा उत्तराखंड, जागरण, उत्तराखंड, मध्य हिमालय, उत्तरांचल पत्रिका, गढ़वाल पोस्ट, हिमालय के स्वर, उत्तराखंड खबर, प्रवचन, उत्तराखंड प्रभात, अलकनंदा, कुमाऊं केसरी, अमर संदेश का नाम प्रमुखता से लिया जाता है पर्वतीय अंचल के दूरगामी क्षेत्र से लोगों के बीच से चलकर आती जन सरोकारों से जुड़ी तथ्य परख सूचना और घटनाओं को स्थानीय पत्रकारों और साहित्यकारों द्वारा प्राथमिकता के आधार पर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित कर पत्रकारिता का महत्व उजागर किया गया। उत्तराखंड के जनजीवन संस्कृति प्रकृति व पर्यावरण से जुड़ी घटनाओं पर स्थानीय पत्रकारों द्वारा की गई गहरी छानबीन, व उनके ज्ञान ने अंचल की पत्रकारिता को ऊंचा मुकाम हासिल करवाया। साहित्य में भी पत्रकारिता द्वारा उजागर किए गए इन महत्वपूर्ण पहलुओं पर बुद्धिजीवी प्रदर्शन किया गया।

आज प्रत्येक पत्र पत्रिका में साहित्य के लिए कुछ ना कुछ स्थान सुरक्षित है किंतु जब तक यह कुछ ना कुछ बहुत कुछ ना बन जाए तब तक साहित्य को अपने उद्देश्य तक पहुंचने में कठिनाई होगी समाचार पत्र भी साहित्य को सामान्य जनता तक पहुंच कर उसमें साहित्य का प्रति रुचि जागरूकता एवं चेतना पैदा कर सकते हैं जो वास्तव में पत्रकारिता के उद्देश्य भी हैं यह कहा जाता है कि साहित्य और पत्रकारिता दोनों का आदर शब्द है और यह भी माना जाता है कि पत्रकारिता शीघ्रता में लिखा गया साहित्य है पत्रकारिता तथ्य यथार्थ पर निर्भर करती है और जनशक्ति भी पत्रकारिता के तथ्यों को समझ कर उस पर विश्वास करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सांकृत्यायन, राहुल 1953, कुमाऊं गढ़वाल, इलाहाबाद
2. जोशी घनश्याम 2003 उत्तरांचल का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
3. पाठक, शेखर पहाड़
4. गढ़वाल गजट, नैनीताल गजट
5. गढ़वाल समाचार
6. धस्माना, योगेश, उत्तराखंड में जन जागरण और आंदोलन का इतिहास
7. शर्मा, भुवन चंद, औपनिवेशिक उत्तराखंड में पत्रकारिता का इतिहास
8. तोमर, डॉ मंजू, पत्रकारिता और हिंदी साहित्य

बिहार के प्रसिद्ध कथाकार मिथिलेश्वर

मधु त्रिवेदी

(शोधार्थी), हिन्दी विभाग, वि०भा०वि०, हजारीबाग, झारखण्ड

मिथिलेश्वर आधुनिक काल के साठोत्तरी साहित्यकारों के मध्य असाधारण महत्व के अधिकारी हैं। मिथिलेश्वर का जन्म 31 दिसंबर 1950 ई० को बिहार राज्य के भोजपुर जिले के बैसाडीह गाँव में हुआ था। इनके पिता वंशरोपन लाल तथा माता कमलावती देवी थी। अपने जन्म स्थान की विशेषता का जिक्र मिथिलेश्वर ने स्वयं एक स्थान पर किया है- "मैं आपको बता दूं, मेरा जन्म भोजपुर जिले के एक ऐसे इलाके में हुआ है जो चोरी- डकैती, मनमानी और लूटपाट, ज्यादती को लेकर पूरे जिले में मशहूर है। उस इलाके में कोई भी बात पहले लाठी के सहारे तय की जाती थी, अब बन्दूक की नोंक पर की जाती हैं। पता नहीं क्यों, बचपन से ही अपने इलाके के आत्याचार-अनाचार, जुल्म- सितम, शोषण- अन्याय को मैं सह नहीं पता था।"[1]

मिथिलेश्वर के चार भाई और तीन बहन हैं। भाइयों में मिथिलेश्वर का स्थान दूसरा है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव पर हुई। के.के.विद्यालय जमोढ़ी और उच्च विद्यालय कातर (भोजपुर) में माध्यमिक शिक्षा हुई। ए. एस. कॉलेज विक्रमगंज (रोहतास) से स्नातक (प्रतिष्ठा) तथा मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से हिन्दी में स्नातकोत्तर और 'भीष्म साहनी और उनका लेखन' विषय पर पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

मिथिलेश्वर अन्याय- अत्याचार का प्रतिशोध शारीरिक रूप से न कर पाने के कारण लेखन की ओर अग्रसर हुए। ये काफी भावुक, कोमल और संवेदनशील हृदय के हैं। उन्होंने अपने समाज को काफी करीब से देखा ही नहीं भोगा भी है। इन्हें अपने समाज से ही विषय की तलाश प्राप्त होती है। सामाजिक, आर्थिक और मानसिक रूप से कमजोर हुए लोगों के प्रति हुए अत्याचार ही, इनके विषय के लिए महत्वपूर्ण हैं। बेरोजगारी, भूख, गरीबी, ऋणग्रस्तता, भ्रष्टाचार, महँगाई, छुआछूत तथा ऊँच-नीच का भेद, नारी शिक्षा, भौतिक सुविधाओं का अभाव, आतंक और हत्या, अवैध संबंध, जमींदार, साहूकार, श्रमिक मजदूर, पूजा-पाठ में आस्था, मनौतियाँ, तंत्र-मंत्र, जादू- टोना, भूत-प्रेत, डायन - चुड़ैल, झाड़-फूँक, पाप- पुण्य, शकुन-अपशकुन, वेश-भूषा, खान-पान, कद-काठी, पर्व-त्योहार, विवाह-संस्कार या यातायात की असुविधा, बाढ़, सूखा या अकाल, बीमारियाँ आदि के महत्वपूर्ण छुए- अनछुए पहलुओं को इन्होंने लेखन का आधार माना है।

इन्होंने लेखन की शुरुआत कविता से न कर कहानी से की है। इनकी प्रथम प्रकाशित कहानी 'अनुभवहीन' है जो मई 1973 ई० की 'सारिका' के नवलेखन विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। समाज में हो रहे जुल्म -सितम, अन्याय-अनाचार, शोषण का प्रतिशोध न कर पाना आदि घटनाएं जो इन्हें अंदर तक झकझोर जाती हैं जो इनको अत्यंत मार्मिक एवं भावुक बना देती हैं, ऐसे में ये शरीर से लड़ नहीं पा रहे थे और मन से भी इसे हार नहीं मान रहे थे। इसी बात को इन्होने 'बंद रास्तों के बीच' कहानी में लिखा है- "शरीर से मैं लड़ नहीं पा रहा था और मन से मैं हार नहीं मान रहा था, ऐसी स्थिति मेरी। मुझे भली-भाँति याद है इन्हीं बेचैन स्थितियों के बीच एक दिन मैंने लिखना शुरु किया था। मुझे लगता है, दुनिया का हर लेखक किसी न किसी रूप में कमजोर होता है। शरीर की लड़ाई न लड़ पाने के कारण ही वह कलम का सहारा लेता है। यह उसकी खासियत होती है कि शरीर के स्तर पर लड़ी जाने वाली लड़ाई को वह अपनी कलम के माध्यम से देर तक और दूर तक बरकरार रखता है।"[2]

इनकी प्रकाशित रचनाएं हैं- कहानी-संग्रह- बाबूजी (1976), बन्द रास्तों के बीच (1978), दूसरा महाभारत (1979), मेघना का निर्णय (1980), तिरिया जनम (1982), हरिहर काका (1983), एक में अनेक (1987), एक थे प्रो. बी. लाल (1993), भोर होने से पहले (1994), चल खुसरो घर आपने (2000) तथा जमुनी (2001)

उपन्यासः झुनिया (1980), युद्धस्थल (1981), प्रेम न बाड़ी ऊपजै (1995), यह अन्त नहीं (2000), सुरंग में सुबह (2003) तथा माटी कहे कुम्हार से (2006)

आत्मकथाः पानी बीच मीन पियासी (2010), कहाँ तक कहें युगों की बात (2011), जाग चेत कुछ करौ उपाई।

लोक-साहित्यः भोजपुरी लोककथाएँ (2008, भोजपुरी की 51 लोककथाओं की पुनर्रचना)।

नवसाक्षरोपयोगी एवं बाल-साहित्यः उस रात की बात (1993), गाँव के लोग (2005), एक था पंकज (2006)।

विचार साहित्यः साहित्य की सामाजिकता।

संचयनः मेरी पहली रचना (2006, विभिन्न विधाओं में मेरी पहली रचनाओं का अनूठा संकलन), प्रतिनिधि कहानियाँ (1989), चर्चित कहानियाँ (1994), संकलित कहानियाँ (2010) 1 सम्पादनः मित्र (वर्ष 2003 से अनियतकालीन साहित्यिक पत्रिका)।

पुरस्कारः अखिल भारतीय मुक्तिबोध पुरस्कार (1976), सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार (1979), यशपाल पुरस्कार (1981-82), अमृत पुरस्कार (1983), अखिल भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार (2003-2005) तथा श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको सम्मान (2014)।

इनकी कहानियों में आधुनिक बोध से उत्पन्न आंतरिक ईर्ष्या, स्वार्थपरता, जीवन की कृत्रिमता, मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति, युगीन संक्रमण एवं तनाव आदि को निरुपित किया गया है। इनकी रचनाओं में प्रेमचंद की रचनाओं के मेल को देखा गया है। ऐसा लगता है, सुप्रसिद्ध कथाकार भीष्म साहनी ने 'दूसरा महाभारत' कहानी-संग्रह की भूमिका में तर्कसंगत कथन किया है- "मिथिलेश्वर की कहानियाँ पढ़ते हुए आज का ग्रामीण जीवन अपने पूरे यथार्थ के साथ, हमारी आँखों के सामने उभरता है। अपने सभी अन्तर्विरोधों और विसंगतियों के साथ...। और कहानियों के पीछे लेखक का संवेदन, प्रत्येक कहानी के पीछे पाये जाने वाले दर्द को गहरे में महसूस करता जान पड़ता है, और लेखक की वह दृष्टि जो लेखक को मात्र दर्शक न रखकर, उसे अपने लोगों से जोड़ती है, उनके दर्द को महसूस करती है, उनके संघर्ष को अपना संघर्ष मानती है।"[3]

प्रकाशित कहानी- संग्रह 'बाबूजी': गाँव की गरीबी, बेरोजगारी, अंधविश्वास, नारी-शोषण, विधवा विवाह आदि की समस्या को उजागर करती है। 'बंद रास्तों के बीच' संग्रह की कहानियाँ सपने देखने वाली गरीब आँखों की कारुणिक चित्र प्रस्तुत करती है।

'दूसरा महाभारत' कहानी-संग्रह की कहानियाँ रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानियों हैं जहाँ स्वार्थ और अंधविश्वास के कारण मनुष्य के प्रति मानवता की डोर कमजोर और अमानवीयता की कड़ी मजबूत होती दिखाई देती है। साहनी जी ने मिथिलेश्वर के पात्रों की एक महत्वपूर्ण विशेषता की ओर संकेत किया है- "मिथिलेश्वर की कहानियों के पात्र अक्सर हमें किसी संकट की स्थिति में मिलते हैं। उस संकट में जो केवल बाहरी संकट ही नहीं, भीतर का संकट भी है, विश्वास, मान्यताओं और नैतिक मर्यादाओं का संकट, और उनमें संघर्ष करता हुआ प्राणी मिथिलेश्वर की कहानियों का पात्र होता है।"[4] 'मेघना का निर्णय' कहानी संग्रह को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने वर्ष 1981-82 के 'यशपाल पुरस्कार' से सम्मानित किया। इसका प्रथम संस्करण सन् 1980 में प्रकाशित हुआ था। नेशनल ने उसका पुनर्मुद्रण किया है- सन् 1988 में। संस्थान की ओर से पुरस्कार की संस्तुति के समर्थन में कहा गया- "सामाजिक सड़ी-गली रूढ़ियों को तोड़कर अन्याय और शोषण के विरुद्ध एक तेजस्विता लेकर खड़े होने का संदेश "मेघना का निर्णय" नामक इस संग्रह की कहानियों में मिलता है। मिथिलेश्वर शोषण और दमन से आक्रांत बहुसंख्यक जन-समुदाय की मुक्ति का आन्दोलन उन्हीं के भीतर से छेड़ना चाहते हैं। उनकी प्राय: सभी कहानियों में निम्न वर्ग और निम्न मध्य वर्ग के जीवन की विषमताओं के साथ उस वर्ग की चारित्रिक दुर्बलता और उसके बीच क्रांति का उगता हुआ अंकुर दिखायी देता है।"[5]

'तिरिया जनम' संग्रह की कहानियाँ ग्रामीण नारी की व्यथा, दस्यु जीवन के विविध पक्षों का दिग्दर्शन, अकाल से त्रस्त गाँव तथा लोक कवि उत्थान और पतन होने की दासतां है। 'हरिहर काका' संग्रह की कहानियों में गाँव और नगर दोनों के बदलते स्वरूप एवं वहाँ के जंगलीपन, क्रूरता एवं अमानवीयता तथा विश्वविद्यालय परिसर में व्याप्त भ्रष्ट्राचार का चित्रण भी लेखक ने बारीकी से किया है। 'एक में अनेक' संग्रह की कहानियाँ ग्रामीण मनोवृत्ति पर प्रकाश डालती है। इस कहानी-संग्रह में माँ-बेटों के स्वार्थ, ग्रामीण आम-चुनाव में आतंक, नौकर के प्रति अमानवीयता, साम्प्रदायिकता, गरीबी एवं लाचारी, पुरोहितवाद के विरुद्ध आगाह, मजदूरों के शोषण और एकता तथा बाढ़ की पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियाँ हैं। 'एक थे प्रो. बी. लाल' कहानी-संग्रह लेखक अपने पिता स्वर्गीय प्रो. बी. लाल को समर्पित किया है। इस संग्रह की कहानियाँ मध्यवर्ग में इज्जत-आबरू का झूठा आडम्बर, विफल प्रेम, विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में चलने वाली नकल की समस्या, शत्रु- देश से भागे सैनिक की समस्या, मौत की कठोरता तथा बेटे द्वारा पिता की जीवनी पर आधारित कहानियाँ हैं। 'भोर होने से पहले' संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसमें शहर और गाँव के मूल्यों की तुलना कर संस्कृति के घातक प्रभाव पर गहरी चिंता व्यक्त की गई है। आदिवासियों के जीवन, शोषित नारी की समस्या तथा मृत्यु जैसे शाश्वत- संकट पर भी विचार कर लेखक ने निष्कर्ष निकाला है कि अमरता किसी काम की नहीं। डॉ० विवेकी राय ने मिथिलेश्वर के संबंध में लिखा है कि ष्उनकी ग्राम-कथाएं सीधे-सीधे चलते बहुत दूर की संश्लिष्ट स्थितियों की गाँठें खोल देती हैं। सहज माध्यमों से असहज की अभिव्यक्ति ग्राम स्तर पर इतने मार्मिक और प्रभावशाली ढंग से पहली बार लक्षित हुई है।"[6] 'जमुनी' संग्रह की कहानियाँ शाश्वत मूल्यों के महत्व और उनको संरक्षित और पोषित करने की कथाएँ हैं।

प्रकाशित 'झुनिया' लघु उपन्यास में उच्च वर्ग के शोषण का शिकार होने वाले निम्न वर्ग की कथा कही गई है। 'युद्धस्थल' उपन्यास में ग्रामीण अंधविश्वासों की छाया में सिसकती विधवा नारी की व्यथित कथा है। 'प्रेम न बाड़ी उपजै' उपन्यास में अजीबोगरीब प्रेम की भावना और संवेदना से जुड़े बहुविध यथार्थ को उकेरा गया है। 'यह अन्त नहीं' उपन्यास में कथाकार ने अंतहीन बनती समस्याओं के खिलाफ संघर्ष की विजयगाथा को बखूबी से प्रस्तुत किया है। 'सुरंग में सुबह' राजनीतिक उपन्यास है। कथाकार ने इस उपन्यास में सामाजिक अन्तर्विरोधों के चित्रण के साथ भविष्य के सुनहरे स्वप्न को रचा है। 'माटी कहे कुम्हार से' जुझारू स्त्री की जीवन का कथात्मक उपन्यास है। उपन्यासकार की पैनी नजर समाज में हो रहे विद्रुपताओं को उजागर करती है।

अत: कहने की आवश्यकता नहीं है कि मिथिलेश्वर समाज में व्याप्त ऐसी कोई भी समस्या पर उन्होंने अपनी लेखिनी न चलाई हो। उनकी पैनी दृष्टि उनकी संपूर्ण रचनाओं में दृष्टिगत होती है। उनकी रचनाओं में सामंतवादी प्रवृत्ति, विलुप्त होते संस्कार तथा विचारधाराओं जैसी अनेक उलझनों से पाठकों को परत दर परत परिचय करवाया है। जाति, धर्म, अंधविश्वास, गरीबी, मजदूर- वर्ग, शोषण, अशिक्षा, परंपराएं, मान्यताएं आदि को आश्रय देने वाले लोगों का भंडाफोड़ करने का कार्य रचनाकार ने बखूबी से किया है।

इन रचनाओं के अन्दर उन मोड़ों का सक्रिय उल्लेख मिलता है जिनके द्वारा समाज में परिवर्तन उपस्थित होता है। कह सकते हैं कि मिथिलेश्वर का हिन्दी साहित्य सीधी-सादी शैली में विशिष्ट रचनात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में सिद्धहस्त है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

(1.) मिथिलेश्वर. अपनी बात, बंद रास्तों के बीच, पृ० सं०- 10.
(2.) मिथिलेश्वर. अपनी बात, बंद रास्तों के बीच, पृ० सं०- 11.
(3.) साहनी, भीष्म. दूसरा महाभारत की भूमिका से, पृ० सं०(viii)
(4.) साहनी, भीष्म. दूसरा महाभारत 'दो शब्द' से, सन् 1992.
(5.) मिश्र, वर्षा. मिथिलेश्वर की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ, क्वालिटी बुक्स, 2004, पृ० सं०-64
(6) राय, डॉ० विवेकी. माटी की महक धरती गाँव की. फ्लैप की सामग्री से।

"अमरकांत के कथा-साहित्य में निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय संवेदना"

अमर कुमार चौधरी

हिन्दी विभाग, गोखले मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

अमरकांत जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नगरा कस्बे के पास स्थित छोटा-सा गाँव भगमलपुर में 1 जुलाई 1925 ई. में एक कायस्थ परिवार में हुआ। इनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य में निम्न एवं निम्नमध्यवर्गों के प्रति सच्ची सहानुभूति मिलती है। यही सहानुभूति लेखक को महान तथा प्रासंगिक बनाती है। आजादी के बाद देश का निम्नवर्ग एवं निम्नमध्यवर्ग जिस यथार्थ से जूझ रहे थे। उसी यथार्थ की अनुभूति को अमरकांत जी ने अपने कथा-साहित्य का विषय बनाया। साहित्य-सृजन को एक सामाजिक दायित्व मानते हुए उन्होंने अपनी लेखनी को ही अपना हथियार बनाया। कलम उनके लिए एक हथियार था, जिसके माध्यम से वे समाज के निम्न एवं निम्नमध्य वर्गों के अधिकार की लड़ाई पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ लड़ रहे थे। वे निम्नवर्ग एवं निम्नमध्य वर्गीय समाज के अंदर व्याप्त लाचारी, परेशानी, तंगी, स्वार्थ, आदर्श, मोहभंग, दीनता और मनोवैज्ञानिक स्थितियों को गंभीरता के साथ चित्रित करने में सफल हुआ है। "जितनी वास्तविक और जटिलता को लिए निम्न और निम्नमध्य वर्गीय पात्रों की करूण स्थिति का चित्रण अमरकांत की कहानियों में मिलता है, उतना समकालीन कथा-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।"[1]

अमरकांत जी ने अपने कथा-साहित्य में प्रायः छोटे शहरों, कस्बों या उनसे सटे हुए ग्रामीण परिवेश को चित्रित करते हैं। भारतीय निम्नवर्गीय एवं निम्नमध्यवर्गीय खामियों और खूबियों को उन्होंने बड़े ही विश्वसनीय तरीके से अपने रचनाओं में दर्ज किया है। इस समाज के दुख, पीड़ा, अभाव, शोषण, सपने, संघर्ष, प्रगति, पिछड़ापन, उदारता, आत्मकेंद्रित और इस समाज की रूढ़ियाँ, परम्पराएं और अंधविश्वास आदि से जुड़े हर पहलुओं पर अमरकांत जी ने अपनी पैनी निगाह भी रखी है। इस वर्ग के जीवन पद्धति को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का काम अमरकांत जी ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से किया है।अमरकांत जी की प्रथम कहानी 'इंटरव्यू' निम्नवर्गीय मानसिकता का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इस कहानी में निम्नवर्गीय बेरोजगार नवयुवकों की मनोदशा का वर्णन किया गया है। जहां राशनिंग विभाग में 60 रुपये वेतन की क्लर्क के एक रिक्त पद के लिए इंटरव्यू है, एक पद के लिए शहर के 300 से अधिक बेरोजगार नवयुवक एकत्र होते हैं। इंटरव्यू शुरू होने का समय सुबह दस बजे बताया गया था जिसके कारण सारे नवयुवक उम्मीदवार नौ बजे सुबह से ही जिलाधीश के बंगले के सामने उपस्थित हो गए थे और वहाँ के वातावरण की सुंदरता का वर्णन करते हैं- "यह जगह भी बड़ी सुंदर है। सड़क कितनी साफ-सुथरी है तबीयत करती है, यही लेट जाऊँ। बंगला भी लाजवाब है। किसी विदेशी इंजीनियर का बनाया हुआ मालूम पड़ता है। ऐसे दृश्य दिल्ली, बंबई में ही पाए जा सकते हैं।"[2] इस तरह इंटरव्यू दस बजे के बजाय एक बजे शुरू होता है। जिसके कारण नवयुवकों में उत्सुकता बढ़ती जाती है। दूसरे लोग यह पता करने में लगे रहे कि इंटरव्यू में अंदर क्या पूछा जा रहा है। अभी दूसरा व्यक्ति को बुलाया नहीं गया था, तभी नगर राशनिंग अधिकारी बाहर निकल कर सभी उम्मीदवारों को सूचित करता है कि एक योग्य व्यक्ति का चुनाव हो गया है। अब इंटरव्यू नहीं होगा और सभी को धन्यवाद देता है, साथ-ही-साथ यह भी आश्वासन देता है कि भविष्य में और जगहें खाली होने पर उन्हें अवश्य मौका दिया जाएगा। अभी कुछ क्षण पहले नवयुवकों में एक उत्साह और उमंग था की उनका इंटरव्यू होगा और उसे चुन लिए जाएगा, किन्तु राशनिंग अधिकारी की सूचना को पाते ही उनका सारा उत्साह गुल हो जाता है और अपने आपको अपमानित महसूस कर रहे थे। "सभी के मुंह शर्म और अनजान अपमान से लाल हो गए। वे एक-दूसरे की ओर तिरछी नजरों से देखने लगे और इस समय उनके काँपते होंठों पर आई अस्वाभाविक मुस्कराहट मुंह पर फूटे कोढ़ के समान लग रही थी। वे धीरे-धीरे उसी तरह वापस चले जिस तरह बड़े लोगों के किसी समारोह में काभी निम्न मध्यवर्गीय का कोई अनिमंत्रित व्यक्ति पकड़ा जाकर निकाले जाने पर चलता है।"[3] इस प्रकार इंटरव्यू कहानी के माध्यम से अमरकांत जी ने निम्नवर्गीय बेरोजगार नवयुवक पात्रों के मार्मिक पीड़ा का यथार्थ चित्रण उपस्थित करता है।

अमरकांत जी के कथा-साहित्य में निम्न एवं निम्नमध्य का जो चित्रण हुआ है, उसमें इस वर्ग के पात्रों के जीवन में आर्थिक समस्या प्रमुखता से दिखलाई पड़ती है। निम्न वर्ग में अर्थ का जीवन में महत्त्व और अर्थ के आधार पर संबंधों में आते बदलाव का यथार्थ चित्रण है। 'निर्वासित' कहानी का पात्र गंगू अर्थ की समस्या का शिकार हो जाता है। गंगू एक निम्नवर्गीय पात्र है, किन्तु अपने परिवार के साथ सुखी जीवन व्यतीत करता था, किन्तु गाँव में अकाल पड़ने से सब कुछ तबाह हो जाता है साथ गंगू बीमार भी पड़ जाता है। जिसके कारण पत्नी उससे ठीक से व्यवहार नहीं करती, पर वह कर भी क्या सकती थी। उस दौरान उसकी पत्नी बड़े लोगों के घर काम करती थी वह लोग जो देते थे उसी से वह अपने बेटे और पति का पेट भरती थी। एक दिन खाना नहीं मिला तो गंगू अपनी पत्नी पर बहुत क्रोधित होता है। इस कारण गुस्से में आकर उसकी पत्नी गंगू से कहती है- "आज साफ-साफ सुन ले, मैं तेरा गड्ढा नहीं भर सकती, खाना है, तो अपना जाँगर चला। जाँगर नहीं चलता तो भीख माँगकर खा। समझ ले, मैं तेरी दुश्मन हूँ।"[4] इस प्रकार अर्थ की समस्या के कारण गंगू बीमारी की हालत में ही घर छोड़कर मर जाना चाहता है, पर वह मरता नहीं है और किसी तरह शहर पहुँच जाता है और एक साहूकार के यहाँ काम करने लगता है। जब गंगू पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है और कुछ रुपये-पैसे कमा लेता है तो उसे अपनी पत्नी की याद आता है और वह सोचता है

कि उसकी कोई गलती नहीं है। गंगू अपनी पत्नी के पास कुछ रुपए गाँव भेजता है और एक दिन उसका छोटा भाई उसके पास आता है तथा खबर देता है कि उसकी पत्नी अब इस दुनिया में नहीं है। जबसे आप घर छोड़कर भागे थे तभी से वह गुमसुम बनी रहती, समय खराब रहने के कारण दवा-दारू भी नहीं हो सका। यह खबर सुनकर गंगू का शरीर कापने लगा था और घोर पश्चाताप और दुख से छटपटाता रहा कि वह उसे क्या समझ रहा था और वह क्या निकली। "मैं वहाँ से उठ गया। आकर अपनी कोठरी के दरवाजे पर खड़ा हो गया। मेरा सारा शरीर काँप रहा था। सामने अंधेरा मालूम हो रहा था। अपने क्रोध और अभिमान से मैं अपने को उससे बड़ा समझता रहा, पर वह सबको तुच्छ करके चली गई थी। मैं घोर पश्चाताप और दुख में छटपटाता रहा।"[5] इस प्रकार अर्थ की समस्या के कारण गंगू का पूरा परिवार बिखर कर रह जाता है। इस प्रकार की घटना निम्नवर्गीय परिवार में प्रमुखता से दिखाई पड़ती है जिसके चित्रण में अमरकांत जी ने अपने प्रगतिशील होने का परिचय देता है।

अमरकांत जी निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय समाज के अंदर व्याप्त लाचारी, परेशानी, तंगी, दीनता, चालाकी और स्वार्थ आदि मानसिक स्थितियों को गंभीरता के साथ चित्रण करते हैं। इनकी 'मूस' कहानी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कहानी का पात्र मूस का जीवन अत्यंत दयनीय है और इसकी दयनीयता का कारण उसकी स्वयं की स्त्री परबतिया है। वह सदैव मूस पर अत्याचार करती है, भरपेट भोजन नहीं देती है। उसे अपशब्द कहती है पर मूस चुपचाप अपनी पत्नी के अत्याचार को सहता है। परबतिया के समक्ष मूस की एक नहीं चलती है। "मूस ने काभी भी परबतिया को ऐसी-वैसी जबान न कही थी। वह क्या करती है और क्या बोलती है, इसके संबंध में उसने काभी सोचा भी न था। वह जैसा खाना देती वह सर झुका कर खा लेता और डाँटती-फटकारती तो चुपचाप सुन लेता।"[6] मूस अपने नाम के अनुरूप ही था। उसका जीवन मरियल बैल की तरह था, उसकी सारी इच्छा और अनिच्छा उसकी पत्नी परबतिया ही थी। परबतिया अपने स्वार्थ और लालच में आकर मूस की दूसरी शादी मुनरी नामक एक शादी-सुदा औरत से करवा देत्ती है। मुनरी से शादी के बाद उसके प्रेम और स्नेह पाकर मूस को अपने शक्ति और पुरुषतत्व का पहली बार एहसास होता है। किन्तु यह अधिक दिन तक नहीं चल सका। मुनरी मूस को छोड़कर चली जाती है। इसके बाद मूस का जीवन उसी तरह बिताने लगा। परबतिया अब रोज उससे लड़ती और देर तक उसको कोसती रहती है। इस प्रकार अमरकांत जी ने मूस कहानी के माध्यम से निम्नवर्गीय परिवेश की संवेदना का यथार्थ चित्रण किया है।

'फर्क' कहानी निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय समाज में व्याप्त उस मानसिक फर्क को स्पष्ट करती है। जहां पर सारी सामाजिक नैतिकता और विचार बदल जाते हैं। मोहल्ले के लोग एक पंद्रह वर्षीय छोटे-मोटे चोर को पकड़ मारता-पीटता है और पुलिस थाने ले जाता है। इस चोर की गलती इतनी ही थी कि वह भूख के कारण चोरी करता है। वह कोई भारी चोरी नहीं करता है। वह लोगों के घरों में घुस कर खाने-पीने का समान चोरी करता है, अगर घर में खाने-पीने का समान न मिलता तो हल्के बर्तन या अलगनी पर टंगे कपड़ों को उठा ले जाता और किसी के हाथ बेचकर कुछ पैसे पा जाता था और उस पैसे से कुछ खा-पी लेता था। किन्तु समाज के लोग उसे बहुत बड़ा और सातिर चोर समझता है। थाने का दरोगा भी उस पर अपना शक्ति प्रदर्शन करते हुए कहता है- "देख बे साफ-साफ बता, नहीं तो मारते-मारते हलुआ बाहर कर दूंगा। मुझे जानता नहीं बड़ों-बड़ों की हड्डी-पसली एक कर चुका हूँ, तेरी क्या हस्ती। मेरे हाथ से कोई बच नहीं सकता। यमराज के यहाँ पकड़ मँगवाता हूँ। सब कुछ साफ-साफ बता जा .। कौन-कौन तेरे साथी हैं।"[7] दरोगा जिस तरह का व्यवहार उस छोटे-मोटे चोर के साथ करता है, जैसे वह कोई बहुत बड़ा खूनी अपराधी हो और कहीं डकैती करने वाला हो। वही दूसरी तरफ पाँच हत्या करने वाला और बीस हजार का माल चोरी करने वाला सुखई डाकू जब थाने लाया जाता है तो दरोगा झटपट कुर्सी से उठ खड़ा होता है तथा मुहल्ले के लोग उस कुख्यात डाकू के प्रति संवेदनशील हो जाते है और उसकी प्रशंसा भी करते हैं। "इसको किस बात की कमी? यह जिसको चाहे उठा ले जाय। पर यह है कैरेक्टर का बड़ा ऊंचा। भले घरों की स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता।"[8] इस प्रकार अमरकांत जी ने 'फर्क' कहानी के माध्यम से निम्नवर्गीय सोच में व्याप्त अंतर को स्पष्ट करने में सफलता हासिल किया है। एक तरफ छोटे-मोटे चोर को माफ करना नहीं चाहते हैं, वही दूसरी तरफ कुख्यात डाकू के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं। स्थिति की बिडम्बना यह है कि एक डकैती में पाँच कत्ल करके बीस हजार की संपत्ति लूटने वाला समाज की नजरों में सराहना और साधुवाद का पात्र है। जबकि भूख की असहाय यातना से लाचार वह लड़का जो मौका लगने पर किसी घर में घुस कर खाने-पीने का समान या कपड़े-बर्तन चुराता है वह समाज के समक्ष भयंकर अपराधी और घृणित पात्र है। "फर्क अस्थिर मानसिकता वाले लोगों की कहानी है, चोरी करने वाले एक अल्पव्यस्क बालक के प्रति जिनका आक्रोश खूंखार हो उठता है और एक खूंखार डाकू को देखकर सिकुड़कर मुचमूचा जात। पल मात्र में इतना फर्क आखिर कैसे हो जाता है की जो लोग अभी तक अपराध के प्रति अपना क्रोध झाड रहे थे, वही अब दूसरे अपराधी की प्रशंसा का पुल बांध रहे हैं। वस्तुतः यह उनके अस्थिर और बौने चरित्र की पहचान है।"[9]

निम्न मध्यवर्गीय समाज में जिस आम-आदमी को संघर्षरत देखा जाता है उसे असाधारण रूप से लेखन में स्थान देने का कार्य अमरकांत जी की विशेषता रही है। यह आम-आदमी जीवन जीने की प्रक्रिया में रहता है अतः जीवन की तमाम तरह की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, कुंठा, संत्रास एवं भय उसके स्वतः स्फूर्त विशेषण बन जाते हैं। 'कुहासा' कहानी में अमरकांत जी ने इन्हीं निम्नवर्गीय पात्रों के मनोविज्ञान को बहुत बारीकी से चित्रित करते हैं। झींगुर एक निम्नवर्गीय खेतिहर मजदूर था जो अकाल के दिनों में अपने सत्तरह वर्षीय बेटे दूबर को मारपीट कर घर से निकाल देता है। दूबर घर से भाग कर शहर चला जाता है और संयोग से उसे एक शहरीबाबू अपने घर नौकरी करने के लिए ले जाता है। उनके घर में कोई अनुष्ठान पर दावत हुआ था। उसी दावत के जूठे बर्तन और घर में फैले जूठे पत्तल, मिट्टी के कुल्हड़ आदि को साफ करने का काम था। बाबू साहब दूबर से कहता है कि सब काम अच्छे से करने के उपरांत उसे पैसे के अलावा स्वादिष्ट भोजन, दही बड़े और बुँदियाँ भी खाने देंगे। "उन्होंने दूबर से सिर्फ पाँच घंटे डटकर काम लिया। जिसकी वजह से वह अधमरेपन की स्थिति पर पहुँच गया। बाबू साहब की इसलिए भी तारीफ करनी पड़ेगी कि काम खत्म होने पर उन्होंने दूबर के सामने पत्तल पर रात का बचा हुआ खाना परिसवा दिया, जिसमें लकड़ी की तरह कड़ी पुड़िया-कचौड़िया, कोंहड़े की बासी महकती सब्जी, पुलाव की भुरकनी और ढेर सारी मीठी चटनी थी, लेकिन दही-बड़े और बूदियाँ नदारद।"[10] इस खाने पर दूबर कुत्ते की तरह टूट पड़ता है, क्योंकि इसके पहले उसे ऐसा भोजन कभी नहीं मिला था, भोजन के उपरांत उसे डेढ़ रुपया मजदूरी भी मिलता है। इसके बाद दूबर राशन की मंडी में काम करता है लेकिन यहाँ काम कम मजदूर ज्यादा थे। जिसके कारण दूबर मंडी को छोड़कर रेलवे स्टेशन पर आ गया था, जहां उसे छात्रों और बाबू लोगों के साइकिलों को रेलवे पुल के इस पार से उस पार पहुँचा कर कुछ कमा लेता है। जिससे वह केवल दो जून की रोटी ही खा पाता था। इसी दौरान दूबर की मुलाकात रामचरण नामक एक व्यक्ति से होता है, जो राजनैतिक सभा और

जुलूस के लिए लोगों को एकत्र करता है और जब तक चुनाव होता है तब तक रामचरण उनलोगों के खाने-पीने की व्यवस्था करता है। चुनाव खत्म होने के बाद सब रिश्ते खत्म हो जाते हैं। इस प्रकार अमरकांत जी ने 'कुहासा' कहानी के माध्यम से निम्नवर्गीय जीवन की त्रासदी का यथार्थ निरूपण किया है साथ ही समाज के उच्चवर्गों के क्रिया-कलापों की ओर ध्यान भी आकर्षित करते हैं कि अपने स्वार्थ को पूरा करने हेतु वह निम्नवर्गों का कितना शोषण कर सकता है। इस संदर्भ में विजय मोहन सिंह जी का कथन है- "वे भारतीय निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य की भावनाओं को जितना समझते और आदर करते हैं, उतना ही उसके अंतर्विरोधों को भी तीखे व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। उनकी सहानुभूति प्रधान रूप से समाज के निचले तबके के साथ है, जिसे वे उच्च वर्गों की तुलना में हमेशा ज्यादा मानवीय, दयार्द्र, निरीह, सहासपूर्ण और सरल पाते हैं। उसकी तुलना में मध्यवर्गीय व्यक्ति कितना काइयाँ, कमीना और कायर होता है, इसे उनकी कहानियाँ आरोपित अथवा पूर्वाग्रहपूर्ण ढंग से नहीं बल्कि वास्तविकता का विश्लेषण करती हुई उद्घाटित करती है।"[11]

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1- त्रिपाठी विश्वनाथ, कुछ कहानियाँ: कुछ विचार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण-1998,पृष्ठ संख्या-16।

2- अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1(इंटरव्यू), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-14।

3- वही, पृष्ठ संख्या-19।

4- अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ-1(निर्वासित), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-359।

5- वही, पृष्ठ संख्या-366।

6- अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ-1(मूस), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-196।

7- अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ-1(फर्क), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-448।

8- वही, पृष्ठ संख्या-451।

9- बिस्मिल्लाह अब्दुल, समाज की विद्रुप स्थितियों का आथा-संस्करण, अमरकांत एक मूल्यांकन, सम्पा.-रवींद्र कालिया, सामयिक बुक्स नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-251।

10- अमरकांत, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ-2 (कुहासा), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-16।

11- सिंह विजयमोहन, मौत का नगर, अमरकांत: एक मूल्यांकन, सम्पा.- रवीन्द्र कालिया, सामयिक बुक्स नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृष्ठ संख्या-308

भाषा, पत्रकारिता एवं मध्यप्रदेश

श्रीमति वंदना जैन

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान, शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर

"मध्यप्रदेश में स्वाधीनता संग्राम का जो व्यतीत है, वहीं उस राज्य की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास भी है। मध्यप्रदेश की विविधतापूर्ण संरचना की तरह ही वैविध्य से भरा है। मध्यप्रदेश की पत्रकारिता का उद्‌भव व भाषा। मध्यप्रदेश की प्रमुख भाषा हिन्दी होने से यहां हिन्दी की समाचार पत्र-पत्रिकाओं का वर्चस्व होना स्वाभाविक ही है परन्तु उर्दू पत्रकारिता की दृष्टि से भी यह एक अग्रणी प्रान्त रहा है। मध्यप्रदेश की पत्रकारिता में छायावाद व प्रगतिवाद दोनों की छाया समाहित है।"

सामान्य समाचार एवं विचार पत्रों के साथ-साथ मध्यप्रदेश की साहित्यिक पत्रकारिता भी अत्यन्त समृद्ध रही है तथा हिन्दी का प्रथम राजनैतिक पत्र की जन्मदाता भी यही धरा रही है। मध्यप्रदेश का प्रथम समाचार पत्र "ग्वालियर अखबार" 1840 ईस्वी में ग्वालियर से प्रकाशित हुआ था जो मूलत: उर्दू भाषा का था और जिसमें इश्तहार के रूप में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाता रहा। 1887 में रीवा से "भारत भ्राता" के प्रकाशन के साथ पत्रकारिता की एक नई पहल हुई जो पूर्णत: हिन्दी आधारित थी। इस समाचार पत्र में समाचार, सामयिक विचार और साहित्यिक सामग्री का प्रकाशन किया जाता था। यह समाचार पत्र सीधे जनजीवन से जुड़ा और हिन्दी भाषा के माध्यम से राजनैतिक एवं सामाजिक मुद्दों का प्रकाशन किया गया।

बीसवीं शताब्दी की शुरूआत पत्रकारिता की नई धारा के साथ हुई। मध्यप्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता की प्राण प्रतिष्ठा करने वाले पंडित माधवराव सप्रे ने 1900 में "छत्तीसगढ़ मित्र" का प्रकाशन बिलासपुर में किया जिसमें भाषा और शैली के रूप में हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा प्रदान की गई। इस साहित्यिक पत्रिका ने राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी अर्जित की थी। इसके पश्चात सप्रे जी ने "हिन्दी केसरी" एवं "कर्मवीर" का प्रकाशन किया।

"कर्मवीर" का सप्रे जी के सानिध्य में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने सम्पादन कर राष्ट्रीय सामग्री का हिन्दी भाषा में प्रकाशन किया तथा राष्ट्र के कोने-कोने में राष्ट्रीय संदेश पहुंचाया। पंडित रघुवर प्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, नर्मदा प्रसाद मिश्र एवं पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र ने अपनी लेखनी से भाषा एवं पत्रकारिता दोनों ही क्षेत्रों में मध्यप्रदेश की अमिट छाप छोड़ी।

महाकौशल अंचल में भी इस अवधि में आगरकर जी ने खण्डवा से साप्ताहिक "स्वराज्य" निकाला जिसकी गणना हिन्दी के तब के श्रेष्ठ पत्रों में होती थी। 1930 में जबलपुर से श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव ने उत्कृष्ट मासिक पत्रिका "प्रेमा" का प्रकाशन किया जिसमें सम सामयिक, सामाजिक मुद्दों को जगह दी गई। 1930 में "लोकमत" हिन्दी दैनिक समाचार पत्र सम्पूर्ण प्रदेश का प्रथम सर्वांगपूर्ण हिन्दी दैनिक का प्रकाशन हुआ जिसमें सेठ गोविन्द दास, पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र, हुक्मचंद नारद ने अपनी लेखनी और हिन्दी के जादू से शासन व ब्रिटिश हुकुमत को हिला दिया। 1943 में "लोकसेवा" को जब कागज मिलना बंद हो गया तब केले के पत्ते और कपड़े पर उन्होंने अखबार छापा, इसी प्रकार 1942 में मास्टर बलदेव प्रसाद ने सागर से "बच्चों की दुनिया" का प्रकाशन किया।

इंदौर में भी मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति ने 1926 में "वीणा" नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी में किया जो कि एक उत्कृष्ट पत्रिका साबित हुई, श्री कलिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने लगभग 17 वर्षों तक इसका सम्पादकीय कार्य किया।

छत्तीसगढ़ अंचल में तीसरे दशक में बिलासपुर से 'विकास और उत्थान' का प्रकाशन शिक्षा तथा साहित्य से संबंधित लेखों के लिए हुआ। 'अग्रदूत' का प्रकाशन विदेशी हुकुमत के खिलाफ जन आन्दोलन हेतु किया गया। बुन्देलखंड की साहित्यिक चेतना की जागृति के लिए 'मधुकर' का प्रकाशन हुआ जिसके सम्पादक पत्रकार प्रवर पं. बनारसीदास चतुर्वेदी थी।

महाकौशल की हिन्दी पत्रकारिता असहयोग आन्दोलन से अछूती नहीं रही। महाकौशल की राजनैतिक बेचौनी की सर्वाधिक अभिव्यक्ति तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में होती है। बौद्धिकता तथा साहित्यिकता का परिवेश उन दिनों संग्राममय हो गया था जो स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी थे, वे ही हिन्दी कवि, लेखक और पत्रकार भी थे।

छात्र सहोदर केवल छात्रों के लिए प्रकाशित किया गया जिसके लेख, कविताएं तथा अन्य रचनाएं जन-जन का कण्ठहार बनी। पत्रिका युवकों में राष्ट्रीय जागरण का मंत्र फूंकने में बहुत जल्द लोकप्रिय हुई। इसी बीच माखनलाल जी चतुर्वेदी को ष्कर्मवीरष् में आपत्तिजनक लेख प्रकाशित करने पर गिरफ्तार होना पड़ा क्योंकि लेख की भाषा में ब्रिटिश हुकुमत को शुद्ध हिन्दी भाषा में ललकार और हिन्दुस्तानियों की सामाजिक ताकत को बताया था।

मध्यपदेश के अन्यान्य अंचलों से जो पत्र निकले उनमें सामाजिक सुधारवाद तथा साहित्यिक नव जागरण का स्वर प्रबल था। सरस्वती विलास, आर्यसेवक, आर्य वनिता पत्र आर्य समाज के प्रवर्तकों द्वारा प्रकाशित हुए जिनमें नारी जागरण से संबंधित लेख तथा कविताएं प्रकाशित हुआ करती थी। नरसिंहपुर से ही एक अन्य पत्र प्रकाशित हुआ षहिन्दी मास्टरष यह शिक्षा और सामाजिक सुधारों का पक्षधर था। यह वह पत्र था जिसमें संस्कृत के बोधवाक्य को मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित किया गया जिसमें शिक्षण सुधारों की उपादेयता एवं अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी की प्रतिष्ठा का भी सुझाव था।

जनवरी 1912 में रीवा से "शुभचिन्तक" प्रकाशित हुआ जिसमें अध्यात्म व धर्म का प्रकाशन हिन्दी व संस्कृत श्लोकों में किया जिसने समाज सुधार के क्षेत्र में लोकप्रियता हासिल की। 1915 में "गहोई वैश्य पत्रिका" नरसिंहपुर एवं 1918 में जैन धर्मावलम्बियों का एक पत्र "खण्डेलवाल जैन" का इन्दौर से प्रकाशन हुआ जो जातीय पत्रकारिता का द्योतक बना। 1908 में मासिक नवजीवन को प्रकाशित किया गया जिसके सम्पादक पंडित द्वारका प्रसाद थे जिसमें तत्कालीन साहित्य एवं समाज सुधार की झलक रही।

मध्यप्रदेश में छायावाद प्रणीत हिन्दी पत्रकारिता रही जिसके प्राण बिन्दु पंडित नर्मदा प्रसाद मिश्र, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, पंडित केशव प्रसाद पाठक रहे। इसी दौर में इनने अपनी लेखनी से लड़के तथा लड़कियों को समान शिक्षा दी जाए इस पर अलख जगाई।

प्रगतिवाद की उद्दाम लहर से मध्यप्रदेश भी अधूरा नहीं रहा। मध्य भारत क्षेत्र के युवा लेखक और कवि जिनमें गजानन माधव 'मुक्तिबोध', प्रभागचन्द्र शर्मा और वीरेन्द्र कुमार जैन थे जो प्रगतिवादी धारा को हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी प्रवाहित देखना चाहते थे। "आगामी कल" का प्रकाशन इसी आकांक्षा के तहत हुआ। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भवानी प्रसाद तिवारी, हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' जैसे कवि, लेखक ने अपनी लेखनी से एक सामाजिक छाप छोड़ी। पुरातनता से मुक्त, स्वच्छन्द चिंतन और उद्दाम अभिव्यक्ति इस छायावादी, रहस्यवादी प्रवृत्ति की विशेषता रही।

मध्यप्रदेश की इस पावन धारा पर पंडित रामेश्वर गुरू, पंडित राजेश्वर गुरू, पंडित बालेश्वर गुरू, श्री हरिशंकर परसाई, हुक्मचंद नारद, पंडित भगवतीधर बाजपेयी, स्व. श्री निर्मल नारद, श्री बाल पाण्डेय, स्व. श्री हीरालाल गुप्त, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' न जाने कितने अगनित पत्रकार हुए जिन्होंने लोकमानस एवं साहित्य, राजनीति तथा पत्रकारिता, कलम का ईमान, सामाजिक मुद्दे से पत्रकारिता तथा साहित्य को गौरवान्वित किया।

किसी भी समाचार पत्र का इतिहास वस्तुतः देशकाल की सम्पूर्ण कथा होती है। एक ओर जहां समाचार पत्र राष्ट्र तथा समाज के उतार चढ़ावों का सम्यक् चित्र प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी ओर वह इस सबके दौरान एक उद्देश्यपूर्ण कर्मिष्ठ भूमिका भी निभाता है। प्रत्येक युग की पत्रकारिता उस युग का दर्पण होती है- जो भाषा को समाहित कर क्रांति लाती है- मध्यप्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता द्वारा इतिहास निर्माण की यह यात्रा आज भी अप्रतिहत रूप से जारी है।

संदर्भ ग्रन्थः

1 मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास- सम्पादक- विजय दत्त श्रीधर- मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश।

2 मध्यप्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता- एक शताब्दी- डा. कैलाश नारद-वाराणसी

'तीसरी ताली' उपन्यास में समानांतर दुनिया की व्यथा

पद्मिनी मल्ल

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दी.द.उ.गो.विश्वविद्यालय, गोरखपुर

समाज में स्वीकृत व्यवस्थाओं के आधार पर दो वर्ग की गणना की जाती है- 'स्त्री और पुरुष'। स्त्री और पुरुष के मध्य जो तीसरा वर्ग है उसे किन्नर या थर्ड जेंडर कहते हैं। हाशिए पर खड़ा यह वर्ग हमारे समाज में फिट नहीं बैठ पाता। किसी व्यक्ति का किन्नर होने का आधार अनुवांशिक, शारीरिक, संरचना, हार्मोन, प्राकृतिक कुछ भी हो सकता है। किन्नर शब्द हमारे लिए नया नही है। पौराणिक कथाओं और इतिहास में भी इनके होने के व्यापक किस्से है। मुगल काल में हरम की चौकिदारी में किन्नर को ही रखा जाता था। यह आलेख इसी हाशिए के समाज के रोजमर्रा की जद्दोजहद भरी जिंदगी, उनकी चुनौतियों और जीवन-शैली को रेखांकित करेगा।

'तीसरी ताली' उपन्यास पारंपरिक समाज के समानांतर दुनिया की अनफिट लोगों के जीवन शैली को परत-दर-परत खोलता है, जिसमें LGBT का संपूर्ण समाज अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। इस उपन्यास में समलैंगिक प्रेम है, शोषण और हिंसा भी है और पात्रों द्वारा लिंग परिवर्तन के शौक भी है मजबूरी भी। पात्र रोटी के लिए लड़ते हैं और गद्दी पर हुकूमत के लिए भी। उपन्यास प्रारम्भ से अंत तक LGBT के जीवन के इर्द-गिर्द ही घूमता है। दिल्ली के सिद्धार्थ एन्क्लेव से प्रारम्भ होकर तमिलनाडु में किन्नर समुदाय के वार्षिक कुवागम मेले में समाप्त होने के बीच असंख्य घटनाएं और किस्से ऐसी हैं जो हमारे मानव होने की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है।

ABCD (आरा, बलिया, छपरा, देवरिया) कानपुर, अलीगढ़, मुंबई, भोपाल आदि के भी विचित्र और अनोखे किस्से हैं। इस समानांतर दुनिया में सर्वाधिक उपेक्षित किन्नर वर्ग है। जिसकी स्वीकृति न तो समाज में है न परिवार में। आजीविका की समस्या इनको नाचने गाने से लेकर वेश्यावृत्ति की तरफ भी विमुख करता है। लम्बे समय तक 'जेंडर आईडेंटिटी' क्लियर न होने के कारण सरकारी और निजी संस्थाओं में शिक्षा और रोजगार दोनों से वंचित रखा गया। प्राइवेट सैक्टर में भी इसके लिए कोई अवसर न रखा गया। श्अदर जेंडरश के रुप में मिली कानूनी मान्यता के बाद भी रोजगार और शिक्षा के अवसर तो मिले परंतु उससे इनकी चुनौतियां कम न हो पायी। आमजन का दृष्टिकोण इनको लेकर आज भी नकारात्मक है। इनकी निजी परम्परा और संस्कृति भी इनको मुख्य धारा में सम्मिलित होने से रोकती है। पितृसत्तात्मक मानसिकता इनपर भी हावी है, गद्दी और वर्चस्व की लड़ाई भी इनके अपने ही वर्ग से है, समाज से नही। 'तीसरी ताली' उपन्यास में विचारधारा को लेकर किन्नर समाज में भी दो अवधारणाएं कार्य करती है- 'मोडर्न हिजड़ा सोसाइटी' और 'पारम्परिक हिजड़ा सोसाइटी'। मोडर्न हिजड़ा सोसाइटी अपनी व्यवस्था में बदलाव और पेशे से मुक्ति चाहते हैं। समाज, शिक्षा और राजनीति में सम्मिलित होने को तत्पर है। गुजरात के विधानसभा की सोनिया मौसी, मध्य प्रदेश की विधानसभा की विधायक सबनम मौसी, उत्तर प्रदेश के गोरखपुर की मेयर रही आशादेवी, कटनी की मेयर कमलाजान आदि इसके सशक्त उदाहरण है। विनीता जो अपने पारम्परिक पेशे को छोड़कर समलैंगिक और ट्रान्सजेंडर लोगों के लिए मेकप आर्टिस्ट बनने का रास्ता तलाशती है और विजय फोटोग्राफर के रुप में समाज में अपने को स्थापित करते हुए कहता है, "दुनिया के दंश से अपने आप को बचाने के लिए मैने लगातार लड़ाई लड़ी और खुद को स्थापित किया। मै नाचना-गाना नही नाम कमाना चाहता था। भगवान राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था, जिसके कारण तीसरी योनी के लोग नाचने गाने के लिये अभिशप्त है और परिवार और समाज से बेदखल है।"[1] आदि पात्र इसके सशक्त और सकारात्मक संदेश देते है। इनके समक्ष परिस्थितियां चाहे जो हो यह निरंतर अपने को मुख्यधारा में स्थापित करने को संघर्षशील है। वही 'परंपरावादी हिजड़ा सोसाइटी' आज भी नाचने-गाने और आशीष देने में यकिन रखते हैं। जोधपुर की किन्नर मीना बुआ धारा 377 के रद्द होने पर कहती है, "अगर सरकार धारा 377 जैसे कानून को अवैध घोषित कर देगी तो लोग बच्चे पैदा करना बन्द कर देंगे। ऐसे में तो हमारे पेट पर लात पड़ जायेगी, हमारा पेशा ही खत्म हो जायेगा..... । हम भगवान के मारे हैं।"[2] यह उपन्यास मानवीय संबंधों की संवेदनशीलता को ही कई स्तर से अभिव्यक्त करता है। प्रतिभा सम्पन्न यह समाज अपनी तमाम संभावनाओं कैद कर अपने को वहाँ खड़ा कर देता है जहां से उसका कोई अपना दिखाई न दे। यौनिकता की भिन्नता के कारण आनन्दी आंटी को अपनी बेटी को किन्नर समुदाय को सौप देना पड़ा और गौतम साहब का बेटा घर से भागकर अपने को पुरुष तन से मुक्त करता है। अपने परिवार, माता-पिता, भाई-बहन से अलग होने का दंश समाज और व्यवस्था के प्रति इन्हे क्रूर बना देता है और कई बार इनकी क्रूरता आमजन पर भी हावी हो जाती है, अंशत: सामान्य मनुष्य का लिंग परिवर्तन कराकर हिजड़ा बनाने का किस्सा भी सामने आया।

एक दूसरा वर्ग भी अपने अस्तित्व को लेकर संघर्षरत है लेकिन अपेक्षाकृत इनके समक्ष समस्याएं कम है। सामान्यत: इसमें गे, लेस्बियन, बाईसेक्सुअल, क्वीर, इंटरसेक्स आदि आते हैं। हमारा समाज समलैंगिक जोड़े को साथ रहने और विवाह करने को स्वीकृति नही देता, IPC की धारा 377 को इसी आधार पर अप्राकृतिक घोषित किया गया था। साल 2019 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले ने इसे आर्टिकल 21 के तहत व्यक्ति के निजी अधिकार और मानवीयहितों के विरुद्ध होने के कारण अवैध घोषित कर दिया। चुनाव करने की अधिकतम स्वतंत्रता ही हमारी आजादी है। ऐसे में धारा 377 को अवैध घोषित करना मानवीय मूल्यों के अनुरुप है। उपन्यासकार इस ओर भी इंगित करता है कि समलैंगिक संबंध केवल हार्मोन्स या शारीरिक आकर्षण की वस्तु नही बल्कि हिंसक मनोवृत्तियों और शारीरिक आवश्यक्ता पुरा न होने के कारण व्यक्ति समलैंगिक संबंध स्थापित करता है। 'इस्मत चुगतई' की कहानी "लिहाफ" शारीरिक

आवश्यक्ता की अपूर्ति पर केंद्रित है[3] 'तीसरी ताली' उपन्यास में "यास्मीन शुरुआत में पुरुषों के तरफ आकर्षित होती थी। लेकिन बाद में पुरुष की परछाई से भी नफरत करने लगी। उसके इस नफरत की वजह उसका भाई और बाप था। बाप कौशर खाँ यास्मीन की मां को हर वक्त जलील करता था। गाहे-बगाहे कुटाई भी। अपने बाप को देखकर यास्मीन को लगता था कि पुरुष बुनियादी रुप से हिंसक होता है, दूसरी घटना उसका ममेरा भाई आलम द्वारा किया गया यौन उत्पीड़न से है। यास्मीन की पुरुषों की गंध से नफरत करने और जुलेखा से प्यार करने की असल वजह यही थी। उसके लिये पुरुष एक हिंसक पशु था जो औरत के जिश्म को चबाना चाहता था जबकि जुलेखा के साथ उसका शरीर किसी कोमल अहसास से जुड़ जाता है।"[4]

ABCD श्रृंखला में लड़कों के एक से एक किस्से प्रचलित है। लड़कों की इस गतिविधि को लेखक 'लौंडेबाजी' कहता है। बाबू श्यामसुन्दर सिंह ने तीन लौंडे को पाल रखा था। "ज्योति एक दलित लड़का था। पूरा मर्द। नाच-गाना उसे पसंद था। उसके अंदर स्त्री भाव जाग्रत हो गए थे। बाबू साहब के साथ रहते और सोते वह अपने-आप ने को स्त्री समझना लगा था। गरीबी उसे बाबू साहब की कोठी तक ले गई थी। अब वह नाच-गाना और दूसरों को खुश करने के अलावा कोई और काम नहीं कर सकता था। बाबू साहब की कोठी से निकाले जाने के बाद ज्योति की स्थिति बहुत ही बदहाल हो गयी। उसके अंदर कई अंतर-द्वंद चल रहा था।"[5] गरीबी-लाचारी और भूख के प्रश्न ने अंततः उसे शारीरिक रूप से हिजड़ा कर उसे वहाँ पहुचा दिया जहां समाज का सबसे उपेक्षित और परित्यक्त वर्ग रहता है। इन विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन को सहजता से जीने की उसकी तलाश पूर्ण हुई। हाशिए के सबसे दयनीय समाज ने उसे एक नया जीवन दिया। जिसे समाज ने अस्वीकार किया उसने कितनों को स्वीकार किया। आज कितने ही बेरोजगार स्त्री और पुरुष इनके हावभाव और ताली-पीटने की कला को ग्रहण कर अपनी जीविका चलाते हैं और अपना भरण-पोषण करते हैं।

यौन शोषण की शिकार महिलाओं के साथ-साथ पुरुष भी है। सुधीर जेल में रहते हुए यौन हिंसा का शिकार बना और अंततः अपराध बोध से भरा वह ट्रेन के नीचे कटकर मरने का विकल्प चुनता है। उसको लगा जीवन से हारे व्यक्ति के लिए मौत सबसे आसान रास्ता है और जीवन ऑक्सिजन के वेंटिलेटर के जीवन से कठिन।

इस आलेख का शीर्षक "तीसरी ताली' उपन्यास में समानांतर दुनिया की व्यथा" में कथाकार ने पाठक का ध्यान समाज के उस भयावह पक्ष की ओर भी संकेत किया है जो LGBT विशेष किन्नर के समक्ष वाह्य तथा आन्तरिक चुनौतियों को आत्मसात् करते हुए उनके सामाजिक और मानसिक परिवर्तनों को स्वीकार करके खुद को स्थापित करने की उनकी अदभुत क्षमताओं की ओर हमदर्दी भरा संकेत किया है। इस उपन्यास के संदर्भ में 'सुधीश पचौरी' लिखते हैं, 'इनकी दुनिया को पढ़कर ही समझा जा सकता है कि इस दुनिया को बाकी समाज, जिस निर्मम क्रूरता से 'डील' करता है वही क्रूरता इनमें हर स्तर पर 'इनवर्ट' होती रहती है।'[6]

यह वर्ग आज भी संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। इसके अंतर्गत आज भी वही हाशिए का समाज आ रहा जो वर्षों से बहिष्कृत और वर्जित जीवन जीने को विवस है। समाज में इनकी भूमिका आज भी असंदिग्ध बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. 'तीसरी ताली' (पृष्ठ-195)- प्रदीप सौरभ
2. तीसरी ताली' (पृष्ठ-135)- प्रदीप सौरभ
3. 'लिहाफ' (कहानी संग्रह)- इस्मत चुगतई
4. 'तीसरी ताली' (पृष्ठ- 122,123,124)-प्रदीप सौरभ
5. 'तीसरी ताली' (पृष्ठ- 53, 54)- प्रदीप सौरभ
6. 'सुधीश पचौरी' ('तीसरी ताली' उपन्यास के आवरण पृष्ठ से)
7. किन्नर विमर्शः साहित्य के आईने में-डॉ. इकरार अहमद
8. 'तीसरी ताली' के थाप पर प्रतिध्वनित तीसरी दुनिया के किन्नरों की व्यथा- किरण ग्रोवर

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यप्रदेश के साहित्यकारों का योगदान

श्रीमती ज्योत्स्ना झारिया

सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) स्वामी विवेकानंद शासकीय, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर म.प्र.

मध्यप्रदेश भारत का हदय स्थल है, अग्रणी राज्यों की सूची में आता है। भारत में साहित्य का विकास अत्यंत प्राचीन माना जाता है। भारतीय हिन्दी साहित्य में मध्यप्रदेश के प्रमुख साहित्यकार एवं उनकी कृतियों का संगम अद्वितीय एवं अनोखा है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में चाहे प्राचीनकाल हो, मध्यकाल हो अथवा आधुनिक काल मध्यप्रदेश के साहित्यकारों ने हर काल में एक से बढ़कर एक प्रसिद्ध रचनॉए लिखकर न केवल भारत में बल्कि विश्व पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

प्राचीन कालीन साहित्यकार प्राचनीकालीन साहित्यकारों में जिन रचनाकारों ने अपनी लेखनी से साहित्य के क्षेत्र में इतिहास रचा उनमें प्रमुख रूप से कालीदास, भवभूति, बाणभट्ट, भास्कर, भट्ट, भर्नहरि, नागार्जुन, कवि वित्हण आदि है।

इनमें कालीदास जी से तो भारत का शेक्सपियर कहा जाता है।

कालीदास कालीदास का जन्म ४थी शताब्दी ई. पू. माना जाता है उज्जैन के राजविकृका दिव्य के दरबार में उनके नौं रत्नों में से एक थे। कालीदास की प्रमुख रचना कुमारसंभव संस्कृत का महाकाव्य है। इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति अभिज्ञान शांतुनतय है। इसके अलावा मालिका अग्निमिश्रम मेघद्नम, ऋतुसंहार आदि है।

भर्तहरि इनका जन्म ५७० ई.पूर्व उज्जैन में हुआ था। वे उज्जैन के सागर विश्वविद्यालय के बड़े भाई और गोरखनाथ के शिष्य थे इनकी मृत्यु उज्जैन में ६५१ ई.पूर्व. में हुई थी। इनकी प्रमुख रचना है श्रंगार शतक, नीति शतक, बैराज्ञ शतक आदि।

भवभूति इनका जन्म ८ वीं शताब्दी ई.पूर्व. में महाराष्ट्र और म.प्र. की सीमा पर स्थित गोंदिया जिले में हुआ था। इसके गुरू दयानिधि परम हंस थे। इन्होनें यमुना नदी के किनारे स्थित कालपी में अपने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की इनकी प्रमुख रचना हैं हर्षचरित, कांदवरी, चण्डिका शतक पार्वती, परिणय आदि। भवभूति के संदर्भमें एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनकी तुलना कवि मिल्टनसे की जाती है।

मध्यकालीन साहित्यकार- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यप्रदेश के हिन्दी साहित्य को कई नामचीन और प्रसिद्ध साहित्यकार दिये जिनका योगदान हिन्दी साहित्य में युगों युगों तक याद किया जायेगा। इस काल के प्रसिद्ध साहित्यकारों में प्रमुख रूप से पद्ममाकार भूषण, केशव, दामोदरदास, कृष्णभट्ट राजा छत्रसाल कुम्भकरण आदि हैं।पदमाकार ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान देते हुए जो प्रसिद्ध रचना़ लिखिं उनमें- विरूदावली, गंगालहरी, यमुनालहरी, राम रसायन, हिम्मत बहादुर, प्रतापसिंह बहादुर आदि प्रमुख है।

मध्यकालीन साहित्यकारो में भूषण ने भी अनेक प्रसिद्ध कृतियॉ की रचनाकार हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी प्रमुख रचना हैं- शिवराज भूषण, भूषण उलास, भूषण हजारा, छत्रसाल, दशक9 शिवा बावनी इत्यादि।

मध्यकालीन साहित्यकारों में केशवदास की रचनाओं ने भी हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है इनकी प्रसिद्ध रचना़ है- रामचन्द्रिका, रसिक प्रिया, कविपप्रिया, वीर सिंहदेव, विज्ञानमीना, नख-सिख, छन्दमाला इत्यादि।

आधुनिक कालीन साहित्यकार- हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल में मध्यप्रदेश के सर्वाधिक साहित्यकारों का योगदान रहा है। इस काल के साहित्यकारों में जो सर्वाधिक प्रसिद्ध साहित्यकार रहे उनमें प्रमुख नाम हैं माखनला चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, हरिशंकर परसाई, भवानी प्रसाद मिश्र, शरद जोशी, अरका प्रसाद, डॉ शिव मंगलसिंह सुमन, बालकवि बैरागी, गजानन माधव मुक्तिबोध श्रीकांत वर्मा, श्रीकांत सरल, अटल बिहारी बाजपेयी, मुल्लारामजी इत्यादि।आधुनिकाल के साहित्यकारों का इतिहास सर्वाधिक विस्तृतहै। जिनमें प्रमुख साहित्यकारों एवं उनकी प्रसिद्ध रचनाओं का उल्लेख निम्नानुसार है।

माखनलाल चतुर्वेदी- इनका जन्म म;प्र; के होशंगाबाद जिले के बाबई गांव में हुआ था। १९५५ में इन्हे हिम तंरगिनी ने केवल रचनाकार थे बल्कि इन्होनें "प्रभा'' नामक पत्रिका एवं "कर्मवीर'' "समाचार" पत्र का प्रकाशन भी किया। इनकी प्रमुख रचना़ है- हिमतरंगिनी, हिमकिरीटनी, युगचरण, सम्पर्ण, पांच-पांच अमीर इरादे, गरीब इरादे, साहित्य देवता, माता, समय के पांव एवं कृष्ण अर्जुन नाटक इत्यादि। के लिए पहला साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया एवं इसके पश्चात् वर्ष १९६३ में इन्हें पदम भूषण से सम्मानित किया गया। इनकी मृत्यु जनवरी १९६८ में म;प्र; भोपाल में हुई।

सुभद्रा कुमारी चौहान- इनका जन्म १६ अगस्त १९०४ को प्रयागराज उ.प्र. में हुआ था। बाद में ये मध्यप्रदेश के सिवनी जिले में बस गई। इनकी प्रसिद्ध रचना "झांसी की रानी'' भारत के बच्चे- बच्चे को जुबानी याद है। इनकी अधिकांश रचना़ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरित रहीं इनकी अन्य प्रसिद्ध रचना़ हैं वीरों का हो जैसा बसंत, बिखरे मोती,मुकुल, त्रिधारा सीधे- सीधे चित्र उन्मादनी इत्यादि।१९४८ में सिवनी म.प्र. में इनकी मृत्यु हुई।

डॉ शिवमंगल सिंह सुमन- मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध साहित्यकारों में डॉ शिवमंगल सिंह सुमन का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध रचनाओं के लिये युगो तक याद किया जायेगा। इनकी प्रसिद्ध रचना् है- विंध्य हिमालय, प्रलय सृजन, जीवन के दान, मिट्टी की बारात, विश्वास बढ़ता ही गया आंखे नहीं भरी,युग का मोल, इत्यादि।

हरिशंकर परसाई- परसाई प्रसिद्ध व्यांगकार एवं हास्य लेखक थे। इनका जन्म २२ अगस्त १९२४ को होशंगाबाद म.प्र. में हुआ था। परसाई जी द्वारा हिन्दी साहित्य को अपनी प्रसिद्ध रचनाओं के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया गया। इनकी प्रमुख रचना् हैं- रानी नागफनी की कहानी, भूत के पांव पीछें,नट की खोज, शिकायत मुझे भी है, विकलांग, श्रृद्धा का दौर, हंसते हैं, रोते हैं, तब की बात और थी, ठिठुरता हुआ गणतंत्र दो नाक वाले लोग, क्रांतिकारी की कथा इत्यादि।१० अगस्त १९९५ को जबलपुर म.प्र. में इनकी मृत्यु हो गई।

बालकृष्ण शर्मा नवीन - इनका जन्म ८ दिस्मबर१८९७ को मध्यप्रदेश के शाजापुर जिलेमें हुआ था। इन्होनें हिन्दी भाषा की साहित्यिक पत्रिका ''प्रभा'' का संपादन किया। सन १९६० में इन्हें पद्मम भूषण से सम्मानित किया गया। इनके लिये एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि कानपुर निर्वाचन क्षेत्र से पहली लोकसभा के सदस्य भी रहे। इनकी प्रमुख रचना् हैं- कुमकुम, रश्मि रेखा अपलक, विनोबा स्तवन, उर्मिला, हम विषपायी जनम के, स्तवन, क्वांसी प्राणार्पण इत्यादि। इनकी मृत्यु १९६० को हुई।

गजानन माधव मुक्तिबोध- इनका जन्म मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले में १३ नवम्बर सन् १९१७ को हुआ था। इनकी प्रमुख रचना् है- चांद का मुॅह टेढ़ा है, नए निबंध, भूरी- भूरी खाक धूल,एक साहित्यिक डायरी, नई कविता का आत्म संघर्ष,नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र,भारत इतिहास व संस्कृति इत्यादी।

अटल बिहारी बाजपेयी- इनका जन्म २५ दिस्म्बर १९२१को मध्यप्रदेश के ग्वालियर में हुआ था। भारत के १०वें प्रधनमंत्री रहे। वे १९९६ में १३ दिन एवं १९९८ से २००४ तक दो बार गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री रहे। राजनितिक नेता होते हुए इनकी साहित्य एवं लेखन में भी बहुत रूचि रही और कई मशहूर कविताओं एवं पुस्तकों का सृजन किया। इनकी प्रसिद्ध कविताध है- गीत नया गाता हूॅ, आओ फिर से दिया जला्, मौत से ठन गई, उॅचाई एवं दूर कही कोई रोता है, सपना टूट गया,बुलाती तुम्हें मनाली, जीवन बीत चला इत्यादि। इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं- भारतकी विदेश नीति- नए आयाम, असम समस्या, दमन समाधार नहीं आदि।

म.प्र. के इतिहास में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक ऐसे नामी गिरामी साहित्य सृजन करने वाले विद्धान एवं विदूषियॉ आई जिन्होनें साहित्य के क्षेत्र में न केवल भारत बल्कि विश्व पटल पर भी भारत एवं म.प्र. का नाम रौशन किया है। जो साहित्यकार अब हमारे बीच नहीं है। लेकिन उनकी रचना् के लिए उन्हें युग युगांतर तक याद किया जाऐगा। एवं उन साहित्यकारों से प्रेरणा लेकर नए साहित्यकारों का अपने साहित्य सृजन में सहयोग एवं नई दिशा मिलेगी। और वर्तमानमें मिल भी रही है।

उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में योगदानः गोपालदास नीरज के गीतों में मानव-मूल्य

ऋतु चौहान

सारांश- "आत्मा के सौन्दर्य का कवि रूप है काव्य मानव होना भाग्य है कवि होना सौभाग्य।" *-गोपालदास 'नीरज'*

स्वयं के कवि होने को सौभाग्यशाली मानने वाले गोपालदास 'नीरज' को पूरा संसार जानता है। वह एक कवि ही नहीं बल्कि प्रेम, दर्द तथा मानव संवेदनाओं को अपने गीतों में पिरोने वाले श्रेष्ठ गीतकार भी रहे हैं। अपने काव्य के माध्यम से जीवन-दर्शन दिखाने वाले तथा मानव-मूल्यों को सिखलाने वाले नीरज का बचपन बहुत ही संर्घषशील व अभावग्रस्त रहा है, लेकिन जीवन में कितने ही संकट आने के बाद भी जिन्होंने आशाओं के फूल खिलाकर अपने काव्य से समाज को महकाया है, उनका जीवन परिचय भी युवाओं के लिए आदर्श है। ऐसे आधुनिक हिन्दी गीति काव्य के आकाश के नक्षत्र के गीतों में जो मानव-मूल्य के दर्शन होते हैं, हम उन्हीं के विभिन्न पहलुओं को ढूंढने का प्रयास इस आलेख में कर रहे हैं।

कवि परिचय- गोपालदास 'नीरज' हिन्दी साहित्यकार, शिक्षक, कवि, फिल्म गीतकार, कवि सम्मेलनों में काव्य वाचक आदि रूपों में विख्यात रहे। 'नीरज' पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भारत सरकार ने दो-दो बार सम्मानित किया, पहले पदम श्री से उसके बाद पद्म भूषण से। यही नहीं फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिये उन्हें लगातार तीन बार फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिला।

'नीरज' का पूरा नाम गोपालदास सक्सेना 'नीरज' था। उनका जन्म 4 जनवरी, 1925 को ब्रिटिश भारत के संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध (जिसे अब उत्तर-प्रदेश के नाम से जाना जाता है) में इटावा जिले महेवा ब्लॉक के निकट पुरावली गांव में हुआ। इनके पिता का नाम बाबू ब्रज किशोर सक्सेना था। माता का नाम सुख देवी था। जब ये मात्र 6 वर्ष के थे तथा इनके छोटे भाई 22 दिन के थे, जब इनके पिता जी की मृत्यु हो गयी। परिवार का पूरा भार इनके ऊपर आ गया। इसलिए ये बचपन से ही पढ़ाई के साथ-साथ छोटी-मोटी नौकरियां करत रहे। इन्होंने 1953 में हिन्दी साहित्य में एम०ए० प्रथम श्रेणी में पास किया।

नीरज की लिखी कई कवितायें और गीत कई हिन्दी फिल्मों में प्रयोग किए गए हैं। वह हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में पारंगत थे। 19 जुलाई, 2018 को फेफड़ों में संक्रमण के कारण इनका निधन हो गया।

मानव-मूल्य से अभिप्राय- ऐसे तत्व जो हमारे जीवन में हमें सही प्रकार से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं, मानव-मूल्य कहलाते हैं। जैसे सत्य, ईमानदारी, आत्मनिर्भरता, निरंतरता, मानवता, प्रेम, भाईचारा, दृढ़ता इत्यादि। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य दया तथा प्रेम हैं।

साहित्य में मानव-मूल्य की आवश्यकता- साहित्य की पहचान का वास्तविक आधार ही मानव-मूल्य है। क्योंकि साहित्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता तथा व्यक्ति की अभिव्यक्ति है। साहित्य समाज को व अपने पाठकों को इतिहास और विभिन्न संस्कृतियों के विषय में बताता है। उनके मस्तिष्क को प्रेम, युद्ध और न्याय जैसी अवधाराणाओं के लिए भी खोलता है।

साहित्य हमें उन स्थानों, लोगों और स्थितियों के विषय में भी बता देता है तथा जानने का मौका देता है, जिन्हें हम अन्यथा अनुभव नहीं कर सकते हैं। इसलिए तो यह उक्ति कही गयी है, 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। गोपालदास 'नीरज' के गीतों में मानव-मूल्य, मानव जीवन ईश्वरीय रचनाओं में श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि मनुष्य के अन्दर दया है, प्रेम है, संवेदना है, जो किसी पशु-पक्षी में सामान्यतः चारित्रिक रूप से विद्यमान नहीं है। इसलिए यदि मनुष्य होकर भी कोई मनुष्य किसी के काम नहीं आये तो मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ कौन कहे? इन्हीं संवेदनाओं का प्रयोग नीरज जी ने अपने गीतों में किया है-

"बस यही अपराध मैं हर बार करता हूँ, आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ।"

1971 ई0 में आई चित्रपट (फिल्म) 'पहचान' का यह गीत इंसानियत के इसी रूप को व्यक्त करता है।

"मैं बसाना चाहता हूँ स्वर्ग धरती पर, आदमी जिसमें रहे बस आदमी बनकर, उस नगर की हर गली तैयार करता हूँ, आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ।"

मानव जीवन में समय की सत्ता सर्वाधिक बलवान है, क्योंकि भविष्य में क्या होने वाला है, इसके विषय में अभी विज्ञान भी नहीं जान पाया है। नीरज जी ने गीत फिल्म 'चन्दा और बिजली' में 1970 में लिखा था-

"काल का पहिया घूमे भैय्या, लाख तरह इन्सान चले, लेके चले बारात कभी तो कभी बिना सामान चले। राम कृष्ण हरि"..

"सबसे प्यार बांटना नीरज जी की आदत में शुमार हो गया, चाहे वो पशु-पक्षी हो या कोई मनुष्य। वो जिसके भी संपर्क में आते थे, उसके ही हो जाते थे।" -मिलन प्रभात गुंजन।

नीरज ने प्रेम, प्रकृति, मानव संवेदनाओं के साथ-साथ देश प्रेम को भी अपना विषय बनाया। देश में धार्मिक एकता को जोड़ने के लिये उन्होंने लिखा-

"अब तो मजहब भी कुछ ऐसा चलाया जाये, जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाये।"

इसी गीत की एक सुन्दर पंक्ति है-

"मेरे दु:ख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा, मैं रहूँ भूखा तो तुझ से भी खाया न जाये।"

गोपाल दास नीरज के गीतों में कबीर जैसा रहस्यवाद मिलता है, उनके गीत सरल और सुबोध है, जबकि उनमें बहुत बड़ा गूढ़ दर्शन छिपा है-

"हाँ बाबू, यह सरकस है, शो तीन घंटे का, पहला घंटा बचपन है, दूसरा जवानी है, तीसरा बुढ़ापा है।
ऐ भाई, जरा देख के चलो आगे ही नहीं पीछे भी, दांये ही नहीं, बांये भी, ऊपर ही नहीं, नीचे भी।"

1970 ई0 में राजकपूर द्वारा बनी फिल्म 'मेरा नाम जोकर' का यह गीत सिर्फ गीत ही नहीं है, बल्कि जीवन-दर्शन है। जीवन-दर्शन का दूसरा उदाहरण इस गीत को देखिये-

"कफन बढ़ा तो किस लिये नजर तु डबडबागई सिगार क्यों सहम गया, बहार क्यों लजा गयी, न जन्म कुछ न मृत्यु कुछ बस इतनी सी बात है, किसी की आँख खुल गई, किसी को नींद आ गयी।,"

गोपालदास 'नीरज' की दूरदृष्टि 1970 के दशक में आधुनिक हकीकत को वयां करती हैं। फिल्म 1970 में 'पहचान' में लिखे इस गीत में वाकई बहुत सच्चाई है-

"पैसे की पहचान यहाँ, इंसान की कीमत कोई नहीं, बच के निकल जा इस बस्ती में करता मोहब्बत कोई नहीं।"

गोपालदास 'नीरज' को आशाओं और वात्सल्य से भरा यह गीत कितना मधुर है-

"जीवन की बगिया महकेगी, चहकेगी, खुशियों की कलियाँ झूमेंगी, झूलेंगी, फूलेंगी, मेरा राज दुलारा, वो जीवन प्राण हमारा, फूलेगा एक फूल, मिलेगा प्यार हमारा।" फिल्म 'तेरे मेरे सपने' (1971) में एक दम्पत्ति अपने आने वाले बच्चे का किस प्रकार इंतेजार करता है। यह गीत यही महसूस कराता है।

गोपालदास 'नीरज' के गीत प्रेरणा देने वाले और जीने के नये पथ खोलने वाले हैं। वास्तव में साहित्य ऐसा ही होना चाहिए, जो निराशा को आशा में बदल दे-

"छिप-छिप अश्रु बहाने वाले, मोती व्यर्थ बहाने वाले, कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।[10]"

गोपालदास "नीरज" अपनी इस कविता के माध्यम से भी समाज सुधार को प्रेरणा दे रहे हैं-

"हार न अपनी मानूँगा मैं, चाहे पथ में शूल बिछाओ, चाहे ज्वालामुखी बसाओ, किन्तु मुझे जब जाना ही है- तलवारों की धारों पर भी, हँस कर पैर बढ़ा लूंगा मैं।"

गोपालदास 'नीरज' का गीत-

'खिलते हैं गुल यहाँ खिल के बिखरने को, मिलते हैं दिल यहाँ, मिल के बिछड़ने को[11]"
यह गीत प्रकृति और प्रेम दोनों की सुन्दरता को दर्शाता है।

निष्कर्ष- यह मानव जीवन विभिन्न रंगों से सजा है। कभी जीवन में दु:ख है, तो कभी सुख। मनुष्य के जीवन में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं, जिससे उनकी अंतरग भावनायें परिस्थितियों के साथ बदलती रहती हैं। मानव में कुछ मूल्य तो स्वयं ही आ जाते हैं। कुछ वो ग्रहण करते हैं। मूल्य ग्रहण करने का सबसे अच्छा स्त्रोत साहित्य ही है, क्योंकि साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। प्राचीन काल से ही हम नीतिशलक (भृतहरि), हितोपदेश (नारायण पंडित) आदि को पढ़ते आ रहे हैं, ताकि हमारे अन्दर नैतिक मूल्य विकसित हो सके। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों का है, जो राजनीति एवं नेतृत्व गुण बड़े-बड़े विद्वानों से भी सीखने में असफल रहे, लेकिन जब उनको विष्णु शर्मा ने जन्तु कथाओं को सुनाकर सिखाया तो वह शीघ्र ही रुचिपूर्वक सीख गये यही कथाएं पंचतंत्र ग्रंथ के नाम से संकलित हुआ।

अत: आज का जो युग है, वह बड़ा ही विद्रोही, हिंसक दिखाई पड़ता है। कहीं धार्मिक युद्ध, कहीं हत्यायें, बलात्कार तथा मानसिक द्वन्द देखने को मिलते हैं। ऐसे में हमें साहित्य ही है, जो सही मार्ग दिखा सकता है। साहित्य ने आदिकाल से ही बहुत चमत्कार किये हैं। कभी सामन्ती शासन को ललकारने तो कभी स्वतंत्रता की अलख जगाने के लिये साहित्य ने मुख्य भूमिका निभाई है। इसलिए हमें वर्तमान युग में भी गोपालदास 'नीरज' जैसे गीतकारों तथा कवियों की जरूरत है, जो समाज में मानव-मूल्य को जिन्दा रखने और विकसित करने में अहम भूमिका निभाये।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी कहा है-

'केवल मनोरंजन ही न कवि का कर्म होना चाहिये, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

सन्दर्भ सूची-

1- 'गुंजन' मिलन प्रभात पेज 133 हिन्द पाकेट बुक्स, ISBN-9789353497286-YEAR-2022
2- 'गुंजन' मिलन प्रभात पेज 133 हिन्द पाकेट बुक्स, ISBN-9789353497286-YEAR-2022
3- 'नीरज' गोपालदास चित्रपट चंदा और बिजली 1969
4- 'गुंजन' मिलन प्रभात पेज 37 हिन्द पाकेट बुक्स ISBN9789353497286-YEAR-2022

5- 'गुंजन' मिलन प्रभात पेज 137 हिन्द पाकेट बुक्स ISBN-9789353497286-YEAR-2022
6- 'नीरज' गोपालदास चित्रपट (फिल्म) मेरा नाम जोकर 1970
7- 'शर्ग शेरजंग' हमारे लोकप्रिय गीतकार-गोपालदास 'नीरज' पेज-17, वाणी प्रकाशन ISBN 817055-9040-YEAR-2016
8- 'गुंजन' मिलन प्रभात पेज 60 हिन्द पाकेट बुक्स ISBN 9789353497286-YEAR-2022
9- 'नीरज' गोपालदास चित्रपट (फिल्म) तेरे मेरे सपने 1971
10- 'नीरज' मिलन प्रभात पेज 154 हिन्द पाकेट बुक्स
11- 'नीरज' गोपालदास आसावारी पेज-87 आत्माराम एण्ड सन, सन्-1963
12- 'नीरज' गोपालदास चित्रपट (फिल्म) शर्मिली 1971

उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान

डॉ० संज्ञा सिंह

असिस्टेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, स्व0 श्यामता प्रसाद चौधरी महिला महाविद्यालय, खरगौरा बस्ती, कटरा-श्रावस्ती।

सारांश

भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत की महनीय झाँकी उत्तर-प्रदेश में मिलती है। यहाँ की हिन्दी भाषा और साहित्य का लम्बा और गौरवमयी इतिहास रहा है। यहाँ के साहित्यकारों, लेखकों कवियों का चिरस्मरणीय योगदान रहा है। महान चिन्तको को ईशोपनिषद में मनीषी की संज्ञा से अभिहित किया गया है। मनीषी साहित्यकार अपने हृदय के भावों को जनमानस के हृदय में उतार देता है। उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों ने भारत की गरिमामयी संस्कृति एवं चेतना को न केवल भारत में ही अपितु विदेशों में भी संचार करने एवं परस्पर आदान-प्रदान करने के लिए हृदयस्थली की भाँति कार्य करता है। चूँकि राजभाषा हिन्दी भारत की भाषाओं में सम्पर्क की भाषा भी रही है अत: विदेशों में भी भारतीय साहित्यकारों और उनके साहित्य ने अपना परचम लहराया है। इन महान भारतीय विभूतियों में खड़ी बोली हिन्दी के प्रथम आदि कवि अमीर खुसरों, संत कवीर दास, रैदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, तुलसीदास, रहीम, रसखान, भारतेन्दु हरिश्चन्द, चन्द्रवदाई, आधुनिक युग की मीरा, महादेवी वर्मा, मुंशी प्रेमचन्द्र, जयशंकर प्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, हरिवंश राय बच्चन आदि ऐसे साहित्य सूरमा रहे हैं जिन्होंने अपने कृत्यों से हिन्दी को गौरवमयी ऊँचाईयों तक पहुँचा दिया है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं जिन्हें हमने भुला दिया है। जिनमें स्वामी दयानन्द और वैज्ञानिक सन्यासी मनीषी स्वामी सत्य प्रकाश प्रमुख हैं। जिन्होंने हिन्दी मे लेखनी उठाकर हिन्दी से इतर साहित्यकारो का ध्यान हिन्दी की ओर मोड़ दिया।

बीज शब्द- साहित्यिक, सांस्कृतिक, ईशोपनिषद, विरासत, हृदयस्थली प्रतिभा सम्पन्न

प्रस्तावना- उत्तर प्रदेश भाषाई दृष्टि से सम्पन्न राज्य है। यहाँ के सभी भाषाओं के साहित्यकारों ने उत्तर प्रदेश की साहित्यिक संवृद्धि में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। हिन्दी की चर्चा चले तो उत्तर प्रदेश की परिचर्चा के बिना अधूरी है। जैसा कि हम कह आए हैं हिन्दी उत्तर प्रदेश का गढ़ है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान ऐसी संस्थाएँ हैं जो हिन्दी के विकास का हरसंभव विकास कर रही हैं।

प्राय: यहाँ के सभी साहित्यकारों यथा-सूर, कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, विद्यानिवास मिश्रा, जयशंकर प्रसाद, मीरा आदि ने पद्य और गद्य की विविध विधाओं नाटक, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, डायरी, आत्मकथा, संस्मरण इत्यादि में अपनी लेखनी चलाकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। प्रदेश के कई हिन्दी साहित्यकार अपनी उत्कृष्ट लेखनी के लिए विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित भी हुए हैं।

उद्देश्य- उत्तर प्रदेश के साहित्यकारों की अनुभूतियों, अनुभवों, उनके संदेशों को अभिव्यक्त करना तथा उनके साहित्यिक अवदान जनमानस तक पहुँचाना मेरे शोध- पत्र प्रस्तुति का उद्देश्य है।

साहित्यकारों का अवदान- खड़ी बोली के आदि कवि आमिर खुसरो ही माने जाते हैं। इनका जन्म एटा जिले के पटियाली कस्बे में हुआ है। इनके जीवनकाल में दिल्ली के शासन पर ग्यारह सुल्तान बैठे अमीर खुसरो एक सहृदय, उदार और विनोदी व्यक्ति थे।

गुरु की मृत्यु पर अमीर खुसरो ने दोहा पढा
गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
जल उमरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।[1]

इनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखाने, गजल आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने कव्वाली का सृजन किया और सितार का निर्माण किया।

डॉ. ईश्वरदास के अनुसार- ''ये कवि, योद्धा और क्रियाशील मनुष्य थे।'' कबीर का जन्म काशी में हुआ। नीरू नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने उनका पालन-पोषण किया। कबीरदास एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। उनकी भक्ति भावना भक्तों की कोटि की थी और वासना के कर्दम से असंपृक्त रही।

कवीर संत काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी भक्ति निर्गुण भक्ति है। इनकी भक्ति को रतिमूला भक्ति कहते हैं। रतिमूला भक्ति में परमात्मा को पति और जीवात्मा को पत्नी के रूप में मान्यता मिलती है। कबीर भक्ति राम की भक्ति है किन्तु उनके राम दशरथ के राम नहीं हैं वरन 'रमन्तेयोगिन: यस्मि स: राम:'।[2]

बहु द्वेतवाद का खण्डन किया है। नारी के संग का विरोध किया। उन्होंने बाह्याडम्बर का विरोध किया। कवीर की भाषा 'पंच मेल खिचड़ी' या सधुक्कड़ी कही जाती है। उन्होंने जाति-पाति का विरोध किया। सबको एक खुद्दा का बन्दा कहते हैं।

''जाति पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।।[3]''

कवीर समाज की कुप्रथाओं को नष्ट करना चाहते थे। वे समाज सुधारक पहले है, कवि बाद में। वे निर्भीक भाव से कहते हैं-

कविरा खड़ा बाजार में मांगे सबकी खैर।
न काहू से दोसती न काहू से बैर।।

जायसी- 'आखिरी कलाम' में जायसी ने लिखा है-

भौ अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि वदी।

अर्थात् वे 9वीं सदी हिजरी में जन्में थे। 30 वर्ष की अवस्था में आखिरी कलाम लिखी।

इनका समय 1464-1542 माना जाता है। रायबरेली के निकट जायस नगर में इनका जन्म हुआ। माता पिता का बाल्यकाल में ही देहावसान हो गया। तबसे वे फकीरों की भांति जीवन बिताते थे। शीतला के प्रकोप से एक आंख चली गई थी। विवाह भी हुआ था, सभी पुत्र और पत्नी मकान के नीचे दबकर मर गए। वे सूफी काव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं।

उनकी तीन रचनाएं प्रसिद्ध हैं-

पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम
पद्मावत से उन्हें अधिक ख्याति मिली।

रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- ''प्रेम काव्य परम्परा जायसी के पहले से चली आ रही थी परन्तु जायसी की पद्मावत की समानता में इस धारा का कोई ग्रन्थ नहीं आया।[4]''

गंभीर आध्यात्मिक अनुभव, समृद्ध लोक ज्ञान, स्वभाव से उदार व विनयशीलता जायसी की विशेषता थी। उनकी मृत्यु शिकारी के तीर से अमेठी के आसपास के जंगलों में हुई।

सूरदास-सूरदास भक्तिकालीन कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। आचार्य वल्लभाचार्य से भेंट हुई उन्होंने वल्लभाचार्य को अपना गुरु बनाया। सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य भाव की रचना उन्होंने की। उनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध है। सूरसागर, साहित्य लहरी, सूरसारावली।

सूरदास ने पुष्टिमार्गीय भक्ति को काव्याधार बनाया है। वात्सल्य और श्रृंगार के अनूठे प्रसंगों द्वारा कवि बरबस पाठकों के हृदय को छू लेता है। भ्रमरगीत प्रसंग की उद्भावना करके सूर ने अपने वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया।

'निरगुन कौन देश को वासी।
मधुकर कहिं समुझाय सौह दे बूझत सांच न हॉसी।।[5]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- ''सूर हिन्दी काव्याकाश में सूर सदृश भास्कर हैं। उनका दीप्या लोकयुगों तक भारतीय काव्य को स्पेशल बनाता रहेगा।

तुलसीदास- इनका जन्म 1554 में बांदा जिले के राजापुर ग्राम में माना जाता है। उस दिन श्रावण शुक्ल पक्ष सप्तमी तिथि अभुक्त मूल नक्षत्र था। उनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम दूबे थे। उनके जन्म लेते ही माता का देहावसान हो गया। पिता ने त्याग दिया। कुछ समय तक उनका पालन दासी मुनिया ने किया। मुनिया के मर जाने पर वे अनाथ हो गए तव महात्मा नरहरिदास ने अपने पास रखा और दीक्षा भी दी। इन्हीं महात्मा से राम कथा सुनते उनके साथ काशी आ गए। तुलसीदास राम काव्य परम्परा के सिरमौर बने।

शुक्ल जी ने उनके ग्रन्थों की संख्या 12 बताई है। जिनमें रामचरितमानस सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह लोक प्रिय महाकाव्य है। रामचरित मानस जन जन प्रिय काव्य था तुलसीदास ने तत्कालीन समाज में व्याप्त, वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया। वे सच्चे, लोकनायक और समन्वयवादी माने जाते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण रचना में मर्यादा का मान बनाए रखा।

तुलसीदास की प्रशंसा में यह दोहा प्रसिद्ध है-

'सुरतिय, नरतिय नागतिय सब चाहति अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।।[6]
तुलसीदास जी की मृत्यु सं. 1680 मानी जाती है।

प्रेमचन्द- कथा सम्राट की संज्ञा से अभिहित मुंशी प्रेम चन्द्र उपन्यास कहानी साहित्य को ही समृद्ध किया। नूतन विकास को लेकर आनेवाले प्रेमचंदजी जो कर गए वह हिन्दी साहित्य की एक निधि है। प्रेम चन्द युग की समय सीमा 1918 ई. से 1936 ई. तक है। वह छायावादी युग था। नव जागरण का युग था। ''उस युग के साहित्यकारों ने जर्जर रुदिगत परम्परा के विरोधस्वरूप साहित्यकारों में नई चिन्तनधारा का सूत्रपात हुआ। प्रेमचन्द भी इन प्रवृत्तियों से प्रभावित हुए और गाँधीवादी विचारधारा अपनाया। वे आदर्श, संयम्, उदारता, सेवा, परोपकार आदि को जीवन दर्शक तत्व मानते थे। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण, ग्राम सुधार, स्त्रियों की उन्नति, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र भाषा और निज भाषा प्रेम किसानों मजदूरों के प्रति सहानुभूति बनाए रखने रखने की प्रेरणा दी और रचनात्मक कार्यों पर बल दिया''।[7]

मुंशी प्रेमचन्द्र का असली नाम धनपत राय था। वे हिन्दी और उर्दू के लोकप्रिय लेखक थे। इनका जन्म 31 जुलाई 1880 लमही बनारस उत्तर प्रदेश में हुआ। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ गोदान, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि सेवासन निर्मला मानसरोवर आदि है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- इनका जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्यकुल में भाद्र शुक्ल ५, संवत् १९०७ को और मृत्यु 35 वर्ष की अवस्था में माघ कृष्ण ६, संवत् १९४१ को हुई।

संवत् १९२२ में ये अपने परिवार के साथ जगन्नाथ जी गए वहां उनका परिचय बँगला साहित्य से हुआ। उन्होंने बँगला में नए ढंग के सामाजिक देश-देशान्तर सम्बन्धी ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक देखे और हिंदी में वैसी पुस्तकों के अभाव का अनुभव किया। उन्होंने कई नाटकों का अनुवाद किया। यथा-

विद्या सुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, भारतजननी मौलिक नाटक- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावलि, विषस्य- विषमौषधम् भारतदुर्दशा आदि नील देवी, सती प्रताप (अधूरा) पत्रिकाएँ- हरिश्चन्द्र मैगजीन (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका) १९३०

स्त्री शिक्षा के लिए- बाल बोधिनी पत्रिका, कवि वचन सुधा अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल पर एक ओर तो वे पद्माकर द्विजदेव की परम्परा के दिखाई देते हैं दूसरी ओर बंग देश के हेमचन्द्र और माइकल की श्रेणी में।

उन्होंने अनेक कवित्त सवैये (श्रृंगार परक) लिखे, निज भाषा उन्नति का भी ख्याल था। उनके समय के गद्यकारों की हिन्दी वास्तव में हिन्दी थी। भारतेन्दु ने नई सुधरी हुई हिन्दी का समय उदय इसी समय से माना है।

''उन्होंने कालचक्र नाम की अपनी पुस्तक में नोट किया है कि हिन्दी नई चाल में ढली १८७३ई।''[8]

सहादेवी वर्मा- महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 ई. में फरूखाबाद जिले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा घर पर और बाद की प्रयाग में हुई। प्रारम्भ में ब्रजभाषा में काव्य लेखन किया बाद में खड़ी बोली में लिखने लगीं। महादेवी की प्रमुख काव्य कृतियों में

नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीपशिखा सप्तपर्णा (अनूदित) आदि का नाम लिया जाता है। यामा पर (ज्ञान पीठ पुरस्कार प्रकृति चित्रण, रहस्यवादी भावना, देशप्रेम भाव प्रेम विरह का चित्रण आदि उनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

उनकी रचना कौशल का उदाहरण-

''आप क्यों तेरी वीणा मौन?
शिथिल शिथिल तन थकित हुए कर
स्पन्दन भी भूला जाता डर
मधुर कसक सा आज हृदय में
आन समाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन?''[9]

कवि निराला ने उन्हें हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती भी कहा है। वे कवयित्री होने के साथ-साथ कहानीकार एवं लेखिका भी है। उन्हें आधुनिक युग की 'मीरा' भी कहा जाता है। छायावाद के चार स्तम्भो में एक है।''

उन्होंने रेखाचित्र और संस्मरण भी लिखे। कहानी- गिल्लू, सोना, घीसू अतीत के चलचित्र श्रृंखला की कड़िया प्रसिद्ध रेखाचित्र हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म सन् 1897 ई. में बंगाल के मिदनापुर जिले के महिषादल नामक रियासत में हुआ इनके पिता का नाम राम सहाय त्रिपाठी था। निराला को हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी एवं बंग्ला का अच्छा ज्ञान था। जीवन के प्रारम्भिक दिनों से अंतिम समय तक जटिल समस्याओं से ग्रस्त रहने के कारण सम्पूर्ण जीवन दु:ख की कहानी बन गया।

असाधारण काव्य-प्रतिभा के कारण निराला जी का छायावादी कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी अधिकतर रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, सांस्कृति एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास है। निराला के काव्य में ओज और लालित्य की प्रधानता है। यथा-

''हिन्दुओं की लुप्त शक्ति फिर से जग जायेगी।
आयेगी महाराज भारत की गयी ज्योति,
प्राची के भाल पर स्वर्ण सूर्योदय होगा
तिमिर आवरण फट जाएगा मिहिर से।''

उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ है- अनामिका, परिमल, गीतिका. तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, नये पत्ते, आराधना, गीत गुंज, सांध्य काकली सरोज स्मृति (शोक गीत) 'मतवाला' पत्रिका का सम्पादन किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी गद्य को गगनचुम्बी बनाने में आचार्य शुक्ल जी का विशेष अवदान रहा है। वे हिन्दी के कहानीकार, निबन्धकार, इतिहासकार, आलोचक, कोशकार अनुवाद और कवि थे उन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखकर समस्त साहित्य जगत में धूम मचा दी आज भी हिन्दी इतिहास के विषय पर लेखनी चलानी हो तो शुक्ल जी के हिन्दी साहित्य का इतिहास का अवलोकन लेखक को करना पड़ेगा।

शुक्ल जी का जन्म- 4 अक्टूबर 1884 में बस्ती उत्तर प्रदेश में हुआ। उनके निबन्धों में मौलिकता, नवीनता, व्यापकता, गहनता और गम्भीर

'चिन्तामणि' और विचार वीथि उनके निबन्ध संग्रह हैं।

निबन्धों का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

''लोभियों का दमन योगियों से किसी प्रकार कम नहीं होता। लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान-अपमान में समान भाव रखते हैं।''[10]

प्रमुख रचनाए- हिन्दी साहित्य का इतिहास, सूरदास, चिन्तामणि, रस मीमांसा आदि

साहित्य का यह सितारा 2 फरवरी 1941 को माँ भारती की गोद में सदा के लिए सो गया।

रसखान- हिन्दी के मुसलमान कवियों में रसखान का महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा विख्यात है कि इन्होंने विट्ठलनाथ से वल्लभ सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी। डॉ. नगेन्द्र इनका जन्म 1533 ई. स्वीकार करते हैं। पहले वे दिल्ली में रहते थे बाद को गोवर्धन धाम आ गए। रसखान की प्रसिद्ध कृतियाँ है।

प्रेम वाटिका, दान लीला और सुजान रसखान।

'अष्टयाम' नामक उनकी रचना में कृष्ण के प्रातः जागरण से रात्रिशयन पर्यन्त की दिनचर्या और क्रीड़ा का वर्णन है। उनका प्रसिद्ध सवैया-

(1) ''मोर पखा सिर ऊपर राखि हौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।।''[11]

(2) ''सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसह जाहि निरंतर ध्यावैं

रसखान की भाषा शुद्ध साहित्यिक परिमार्जित ब्रज भाषा है जिसमे माधुर्य और प्रसाद गुण की सरसता तथा सजीवता है।

भारतेन्दु ने इनकी प्रशंसा में लिखा था-

''इन मुसलामान हरिजनन पर'' कोटिक हिन्दू वारिए।''

हरिवंश राय बच्चन- इनका जन्म प्रयागराज में 27 नवम्बर 1907 में हुआ। ''उमर खय्याम की रुवाइयों से प्रेरित होकर उन्होंने मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश की रचना की। हिन्दी में उन्होंने एक नवीनवाद का प्रचार किया। जिसे हालावाद की संज्ञा दी गई।12''

उनकी प्रमुख रचनाए- निशा निमंत्रण, एकांत संगीत.

आकुल अंतर, विकल- विश्व, दो चट्टानें, मिलन, यामिनी, आरती और अंगारे तथा बंगाल का अकाल आदि।

वे भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ भी रहे। 'दो चट्टाने' (कविता) -साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। बिडला फाउण्डेशन ने 'आत्मकथा' के लिए सरस्वती सम्मान दिया। पद्म भूषण सम्मान भी उन्हें प्राप्त था।

पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय- पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय का जन्म 6 सितम्बर 1881 को एटा जिले के नदरई नामक ग्राम में हुआ। यह ग्राम काली नदी के किनारे बसा है। आपकी माता का नाम गोविन्दी और पिता का नाम कुंजबिहारीलाल था। आपने 1908 में बी. ए. तथा 1912 में अंग्रेजी साहित्य से एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द्र (वास्तविक नाम- धनपत राय बी.ए) आपके मित्र थे। और सहाध्यायी भी थे। आपकी साहित्यिक सेवाओं के लिए दिसम्बर 1959 में राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के कर कमलों से अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित कर सम्मानित किया गया। आपको अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी का समान ज्ञान था। आपने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी में अनेक ग्रन्थ लिखे। किन्तु प्रसिद्धि दार्शनिक रूप में अधिक मिली। आपकी पुस्तक 'आस्तिकवाद' को प्रसिद्धि मिली। इस ग्रन्थ के लिए 1931 में 'मंगला प्रसाद पारितोषिक से सम्मानित किया गया।

इनकी प्रमुख रचनाएँ अद्वैतवाद, आस्तिकवाद, मीमांसा प्रदीप, जीवात्मा, हम क्या खाएँ घास या माँस

आत्मकथा-जीवन चक्र

अग्रेंजी ग्रन्थ - IAnd my God, Superstition.

बात 1907 की है जब हिन्दी व्याकरण का कोई ग्रन्थ न था तब 'नवीन हिन्दी व्याकरण' शीर्षक पुस्तक का प्रणयन किया।

इस पुस्तक पर उन्हें प्रकाशक से पारिश्रमिक और नागरी प्रचारिणी सभा से पुरस्कार प्राप्त हुई। सरकार ने भी पुरस्कृत किया।

स्वामी सत्य प्रकाश- आर्यजगत और साहित्य जगत के मूर्धन्य विद्वान स्वामी सत्यप्रकाश का जन्म 24 अगस्त 1905 ई0 में श्री कृष्ण जन्माष्टमी के शुभ दिन को हुआ था। वे प्रसिद्ध दार्शनिक पं0 गंगा प्रसाद उपाध्याय के ज्येष्ठ पुत्र थे। वैज्ञानिक होते हुए हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में श्लाघनीय कार्य किया। जब विज्ञान को हिन्दी में लिखने की बात सोचना भी कठिन था उस समय उन्होनें विज्ञान को हिन्दी में लिखकर सर्वजन सुलभ बना दिया। वे हिन्दी में विज्ञान लेखन के 'जनक' माने जाते हैं। उन्होंने भारत के बम निर्माता होने के गौरव प्राप्त किया।

स्वामी सत्य प्रकाश जर्मन, फ्रेंच तथा उर्दू में लिखे साहित्य पढ़कर आवश्यक सामग्री निकाल लेते थे।

स्वामी जी की रचनाए-

विज्ञान विषयक-

1. ऐन इन्ट्रोडक्शन टू इनार्गेनिक कमेस्ट्री फार बी0एस0सी0 स्टूडेण्ट्स आफ दि इण्डिन युनिवर्सिटीज।
2. ए टेक्स्ट बुक ऑफ एनालिटिकल केमिस्ट्री फार बी0एस0सी0 स्टूडेण्ट्स
3. एडवान्स्ड केमिकल कलकुलेशन इन इनार्गेनिक एनालिटिकल एण्ड फिजिकल केमिस्ट्री।
4. सोप एण्ड ग्लिसरीन
5. रासायनिक शिल्प की एकक संक्रियाएं।
6. प्राचीन भारत में रसायन का विज्ञान
7. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा।
8. प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधाचर।
9. भारत की सम्पदा सीएसआईआर की ओर से हिन्दी, अंग्रेजी में।

वैदिक ग्रन्थ- शतपथ ब्राम्हण, बौद्यायन शुल्बसूत्रम्, पातंजल राजयोग, अध्यात्म और आस्तिकता।

हिन्दी- अंग्रेंजी हिन्दी मानक शब्दकोश।

उस वैज्ञानिक साहित्यिक पुरोधा के विषय में बहुत कम लोग जानते है कि वह कवि मनीषी भी थे।

''उन्होने ईश और श्वेताश्वतर उपनिषद का छन्दोवद्ध अनुवाद किया। 'प्रतिबिंब' नामक उनका काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें छायावाद और रहस्यवाद की भावनाओं से ओत प्रोत रचनाएं थी। उन्होंने 'विज्ञान परिषद' प्रयाग की स्थापना की और विज्ञान पत्रिका का सम्पादन किया।"[13]

पुरस्कार- बिहार सरकार से पुरस्कार, उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कार।

तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन तथा दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन से स्वामी जी को विज्ञान सम्बन्धी सेवाओं के लिए पुरस्कार मिला। इन मूर्धन्य विद्वान की हिन्दी के लिए प्रतिबद्धता सर्वविदित है। वास्तव में हिन्दी से उन्हें बाल्यकाल से ही प्रेम था। उन्होंने वैज्ञानिक होते हुए भी हिन्दी के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। अत: उनके इस सम्बंध में परम श्लाघनीय योगदान के लिए हिन्दी जगत सदैव आभारी रहेगा।

अन्तत: उपर्युक्त लेखकों कवियों के अवलोकनोपरान्त हम कह सकते हैं। उत्तर प्रदेश सहित्य और साहित्य अवदानों में किसी भी अन्य राज्य से अग्रणी है। उत्तर प्रदेश साहित्य और साहित्कार दोनों दृष्टियों से समृद्ध है।

सदंर्भ सूची

1. डॉ0 कुसुम राय हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास (प्रथम खण्ड) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी तृतीय संस्करण 2014 ई0 पृ0 53
2. डॉ0 प्रेमव्रत तिवारी डॉ0 रामनरेश मिश्र मध्यकालीन काव्य नीलकमल प्रकाशन शाहपुर, गोरखपुर 2019-20 ई0 पृ0 9
3. डॉ0 गंगा सहाय प्रेमी डॉ0 त्रिलोकी नाथ रंचना हिन्दी साहित्य बी0ए0 तृतीय वर्ष रंजना प्रकाशन मंदिर, आगरा 2008 ई0 पृ0 55
4. डॉ0 गंगा सहाय प्रेमी डॉ0 त्रिलोकी नाथ रंचना हिन्दी साहित्य बी0ए0 तृतीय वर्ष रंजना प्रकाशन मंदिर, आगरा 2008 ई0 पृ0 61
5. डॉ0 जगदीश कुमार प्रजापति हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रवृत्तात्मक अध्ययन भवदीय प्रकाशन अयोध्या, फैजाबाद 2002 ई0 पृ0 135
6. डॉ0 कुसुम राय हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास (प्रथम खण्ड) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी तृतीय संस्करण 2014 ई0 पृ0 220
7. डॉ0 प्रेमव्रत तिवारी डॉ0 रामनरेश मिश्र मध्यकालीन काव्य नीलकमल प्रकाशन शाहपुर गोरखपुर 2019-20 ई0 पृ0 174
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, नई दिल्ली तृतीय संवत 206वीं0 पृ0 251
9. डॉ0 जगदीश कुमार प्रजापति हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रवृत्तात्मक अध्ययन भवदीय प्रकाशन अयोध्या, फैजाबाद 2002 ई0 पृ0 331
10. डॉ0 जगदीश कुमार प्रजापति हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रवृत्तात्मक अध्ययन भवदीय प्रकाशन अयोध्या, फैजाबाद 2002 ई0 पृ0 405
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, नई दिल्ली तृतीय संवत 206वीं0 पृ0 106
12. डिम्पल पुनिया कविता, संदीप शर्मा NTA VGC नेट/जेआरएफ/ सेट पेपर-2 हिन्दी आरिहन्त पब्लिकेशन (इण्डिया) लिमिटेड कालिन्दी टी.पी. नगर मेरठ (यू0पी0) जून 2022 पृ0-301
13. डॉ0 ज्वलन्त कुमार शास्त्री सम्पादक पं0 दीनानाथ शास्त्री चारो वेदों के सर्वप्रथम अग्रेजी अनुवादक वैज्ञानिक सन्यासी स्वामी सत्य प्रकाश स्वामी सत्य प्रकाश प्रतिष्ठान रायबरेली (उ0प्र0) 18.01.1996 पृ0 10

कोसी क्षेत्र के हिन्दी गद्य लेखकों का साहित्यिक अवदान

आर्या शिवानी

शोध अध्येता (PhD) जय प्रकाश नगर, पूर्णिया, बिहार

'तुम नष्ट करो, मैं निर्माण करूंगा' की अवधारणा से अनुप्राणित कोसी अंचल सदा से अपनी जीवंतता, सृजनशीलता एवं सांस्कृतिक चेतना के लिए प्रसिद्ध रहा है।। धार्मिक ग्रंथो में भी कोसी नदी व उसके तटीय जनजीवन की बहुत चर्चा मिलती है। चाहे वह वाल्मीकि रामायण, महाभारत, मारकंडेय पुराण हो अथवा वराह पुराण, पद्म पुराण या कालिदास कृत कुमार संभव हो। इस गौरवशाली धरती का इतिहास जितना समुन्नत है उतना ही सब उन्नत इसका साहित्य भी है। महाकोसी की सात धाराएं- इंद्रावती, सुनकोसी, तामाकोशी, लिक्खू कोसी, दूधकोसी, अरुण कोसी और ताम्रकोषी मध्य-पूर्व हिमालय से निकलकर वराह क्षेत्र से ऊपर त्रिवेणी नामक स्थान पर संगम बनाती है और नेपाल के भीम नगर से भारत में प्रवेश करती है। यह दो सौ किलो मीटर बहते हुए कुर्सेला (कटिहार) के पास गंगा की धारा से मिल जाती है। इस तट की संस्कृति कोसी संस्कृति कहलाती है।

दिशा परिवर्तनशीला कोसी की विनाश लीला को झेलने के बाद भी तटीय उर्वरता और सांस्कृतिक मिठास के कारण इस क्षेत्र के जन इसका गुणगान कोसी मैया के रूप में करते हैं। वे इन्हें पूजते हैं। इनका सुख-दुख, हास-रुदन, जीवन-मरण सब इन्हीं पर आश्रित है। ऐसे भी कोई भी संस्कृति किसी तट पर ही फलती-फूलती है। इस संदर्भ में कोसी संस्कृति तो पुराकाल से ही मानवीय करुणा और संपदा आपूरित धारा के अजस्र स्रोत के रूप में बहा करती है।

कोसी अंचल की प्रशासनिक इकाई बिहार के पूर्णिया, अररिया, किशनगंज, कटिहार, सहरसा, मधेपुरा और सुपौल जिला से बनती है। यूं तो "हिंदी साहित्य में ग्रामीण मिट्टी की सौंधी महक बहुत सारे कथाकारों, कवियों की रचनाओं में मिलती है। बिहार के पूर्णिया अंचल की मिट्टी की खुशबू कुछ खास है, जिसके कारण इस मिट्टी की कथा भी खास वैशिष्ट्य से लैस हो जाती है।"[1] ग्राम्य जीवन और लोक संस्कृति को दर्शाता यह क्षेत्र जितना अपने शस्य से सुरम्य रहा है, उतनी ही ख्याति इस क्षेत्र को उसके द्वारा प्रसवित साहित्यकारों के माध्यम से मिली है। 'जैसा समाज, वैसा साहित्य' की अवधारणा यहां सत्य सिद्ध होती है। ष्साहित्य और समाज का अविछिन्न संबंध है। यह परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। समाज यदि शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा। साहित्य, मानव मस्तिष्क की देन है। साहित्य और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं, अवलंबित हैं।"[2]

कोसी क्षेत्र के हिंदी गद्य लेखकों में सतीनाथ भादुड़ी, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु', अनूप लाल मंडल, फणीश्वर नाथ 'रेणु', मधुकर गंगाधर, राजकमल चौधरी, भोलानाथ प्रणयी, चंद्र किशोर जायसवाल, राधा प्रसाद, सरला राय, निरुपमा राय, वरुण कुमार तिवारी आदि कई दिग्गज नाम शुमार है, जिन्होंने कोसी अंचल ही नहीं बल्कि संपूर्ण हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। सतीनाथ भादुड़ी कोसी क्षेत्र के प्रमुख रचनाकार हैं जिन्होंने 'ढोढ़य चरित्र मानस' लिखकर रामचरितमानस की शैली का तो अनुसरण किया ही है, साथ ही श्ढोढ़ायश जैसे दलित पात्र पर उपन्यास लिखकर खास वर्ग से समाज को जोड़ने का कार्य भी किया है।

जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' (1904 से 1964 ई .) छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं। द्विज जी की कहानियां- किसलय, मलिका, मृदुदल, मधुमयी स्वच्छंदतावाद से अनुप्राणित है। इनकी रचनाओं में वैयक्तिक तथा अपने समाज की पीड़ा को अभिव्यक्ति तो मिली ही है, साथ ही मानवीय संबंधों की अतल गहराई से अनुभूति के मोती चुन लाने में भी वे समर्थ रहे हैं। उनके विषय में वरुण कुमार तिवारी लिखते हैं कि "20 वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में देश की राष्ट्रीय चेतना से जुड़कर जिन लोगों ने अपने ओजस्वी वक्तृत्व कला और तेजस्वी कलम से हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनमें जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' जी का नाम आदर से लिया जाता है।....'द्विज' जी कीर्तिलब्ध कवि, कथाकार, समालोचक, संपादक और रेखाचित्रकार थे। वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रथम छात्र थे, जिनकी वक्तृत्व कला से अभिभूत होकर प्राचार्य ध्रुव ने अपनी सोने की घड़ी उनकी कलाई में बांध दी थी।"[3]

अगला नाम डॉक्टर लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' का लिया जा सकता है, जिन्होंने 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' विषय पर आलोचना की पुस्तक लिखी है जो संभवत भारतीय भाषाओं की इस विषय पर प्रथम पुस्तक है। इसके अतिरिक्त उनकी द्वितीय आलोचनात्मक पुस्तक 'जीवन के तत्व' और 'काव्य के सिद्धांत' उन्हें रामचंद्र शुक्ल की अगली पीढ़ी सिद्ध करते हैं।

हिंदी साहित्य को आंचलिकता से परिचित कराने वाले, मैला आंचल से हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाले फणीश्वर नाथ रेणु ने अपनी रचनाओं में इस अंचल की जिस प्रकार से व्याख्या की है, वह विरले ही मिलता है। शास्त्रीयता के संदर्भ में भी कहा जाए तो रेणु जी ने आंचलिकता के सिद्धांत से संपूर्ण हिंदी साहित्य को परिचित कराया है। उनके संबंध में रामनरेश भक्त ने लिखा है- "रेणु बहुआयामी व्यक्तित्व वाले रचनाकार हैं। वे समाज एवं राजनीति की

बाधा भरी सड़कों से गुजरते हुए साहित्य सेवा के राजमार्ग पर पहुंचते हैं। उनका यह राजमार्ग कदाचित नवीन और अलग किस्म का है। जाने-अनजाने वह हिंदी की एक विशेष कथा धारा 'आंचलिकता' के प्रवर्तक बन जाते हैं।"[4] रेणु की कहानियां भी ग्रामीण जीवन का यथार्थ और सूक्ष्म रूप उपस्थित करता है, जिसमें मानवीय करुणा का अजस्र स्रोत बहता है। उन कथाओं में रेणु का भोग, देखा, अनुभूत किया सत्य है। उनकी कहानी- ठुमरी, ठेस, लाल पान की बेगम, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक आदि उल्लेखनीय है। उनकी कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर राज कपूर अभिनीत फिल्म 'तीसरी कसम' भी बन चुकी है।

इस क्षेत्र के प्रगतिशील चेतना संपन्न नई कहानी धारा के प्रमुख हस्ताक्षर 'मधुकर गंगाधर' का नाम विशेष स्मरणीय है। उनके उपन्यास- मोतियों वाले हाथ, यही सच है, जयगाथा, उत्तर कथा, ध्रुवांतर आदि तथा कहानी- ढिबड़ी, शेरछाप कुर्सी, हिरना की आंखें, सौ का नोट, बरगद आदि कोसी अंचल से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के संघर्ष और पीड़ाओं का मार्मिक अंकन प्रस्तुत करता है।

कोसी अंचल के इस कथाकार की कहानियों में "कोसी की घाटों में बसे मजदूरों, किसानों, मछुआरों, घटवारों की आशाओं, आकांक्षाओं, संघर्षों और पीड़ाओं का मार्मिक अंकन है। पुराने मूल्यों की जगह नए मूल्यों की स्थापना का संघर्ष, अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध हस्तक्षेप, सांप्रदायिकता, अफसरशाही के खिलाफ निर्भीक इजहार, आर्थिक विसंगति के विषय में प्रभाव से नौजवानों के हृदय में उत्पन्न विद्रोह का सशक्त रेखांकन तथा नारी उत्पीड़न का मार्मिक चित्रण हुआ है।"[5]

चंद्र किशोर जायसवाल इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण लेखकों में से एक हैं, जिनकी रचनाएं पूर्णिया अंचल की मिट्टी की खुशबू से सुवासित है। हिंगवा घाट में पानी रे, तर्पण, आखिरी ईंट, नकबेसर कागा ले भाग आदि कहानियों ने इन्हें प्रेमचंद और रेणु की पंक्ति में लाख खड़ा किया है। उनके उपन्यास पर फिल्म (रुई का बोझ) भी बनी है। "स्वतंत्रता काल में बढ़ते औद्योगीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में हमारे देश के सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों में जो परिवर्तन हुए हैं, जायसवाल जी के उपन्यासों में उनका यथार्थपरक और सूक्ष्म चित्रण किया गया है।"[6]

कोसी क्षेत्र के गद्य लेखकों की फेहरिस्त यहीं समाप्त नहीं होती बल्कि ललितेश्वर मल्लिक (सप्तकोसी), शालिग्राम (पाही आदमी), नवरंग जायसवाल (तुम अपना बयान जारी रखो), राधा प्रसाद (उपन्यास- बदलती कीमत, अगला कदम, तीन बांके), विश्वनाथ दास 'देहाती' (पत्थर के टुकड़े), विजयकांत (ब्रह्मफांस, बीच का समय, लीलावती और मायावती), प्रोफेसर कमला प्रसाद 'बेखबर' (विद्या ठकुराइन), कृत नारायण प्यारा (किंशुक कथा, अंधेरे का कोना, वनप्रिया, मिट्टी भर धूप), डॉक्टर अमरेंद्र मिश्र (गलत नंबर, प्रेतछाय, कुछ दूर तक साथ), बसंत कुमार राय (बालि का बकरा), डॉक्टर बेचन (इंसान की लाश), सत्यकेतु (अकथ), देवनारायण पासवान 'देव' (आखिरी नमाज), दीर्घ नारायण (क्रांति की मौत), कल्लोल चक्रवर्ती, राकेश कुमार, सरल राय, निरुपमा राय, वरुण कुमार तिवारी, लव कुमार, राम नरेश भक्त आदि न जाने कितने लेखक हैं जिन्होंने कोसी अंचल को अपनी कृतियों से आप्यायित किया है। कोसी अंचल इनका तथा ये कोसी अंचल के सदा ऋणी रहेंगे। कोसी अंचल के साथ-साथ संपूर्ण हिंदी साहित्य इन कथाकारों का नाम सदा आदर से लेगा।

संदर्भ-

1. आजकल पत्रिका, जुलाई 2022, पृष्ठ- 11
2. राजहंस हिंदी निबंध, राजहंस प्रकाशन, मेरठ, प्रकाशन वर्ष- 2007, पृष्ठ- 1-2
3. नया हिंदी पत्रिका, मुकुल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- जनवरी-मार्च 2020, पृष्ठ- 9
4. लोक संस्कृति के उदगाता रेणु, लोकमित्र प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2022, पृष्ठ- 6
5. कोसी अंचल का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, कहानी खंड, आयुष पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2019, पृष्ठ-32
6. आजकल पत्रिका, जुलाई 2022, पृष्ठ- 10

शिक्षा और हिंदी साहित्य

राशिदी रुकैया

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग (बी. एड.) बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, बालूगंज, आगरा

सार

साहित्य का शाब्दिक अर्थ सहभाव है। सहभाव शब्द और अर्थ के मध्य विद्यमान होता है। साहित्य की परिभाषा इतनी व्यापकता लिए हुए है कि इसमें संपूर्ण मानव जीवन समाहित किया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम साहित्य है।' दोनों विद्वानों की परिभाषाओं को ध्यान में रखकर सामान्य बात जो सामने आती है वह यह है कि सर्वप्रथम तो साहित्य प्रगतिशील होता है और इसके अंतर्गत हमारे समाज से संबंधित महत्वपूर्ण, सूक्ष्म तथा गहन ज्ञान समाहित होता है।शिक्षा की बात की जाए तो वर्तमान संदर्भ में इसे बेहद संकुचित अर्थों में देखा जाने लगा है। शिक्षा का अर्थ स्कूली ज्ञान तक सीमित मान लिया जाता है, जब कि ज्ञानवान मनुष्यों का मानना है कि व्यक्ति की शिक्षा जीवन के नैरंतर्य के साथ-साथ चलती रहती है। शिक्षा में साहित्य की प्रासंगिकता को कदापि नकारा नहीं जा सकता। शिक्षा और साहित्य दोनों ही मानवीय अभिवृद्धि के अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष हैं। शिक्षा के अंतर्गत जो ज्ञान सिद्धांतों द्वारा प्रदान किया जाता है, वही ज्ञान साहित्य के द्वारा रोचकता के साथ दिया जाता है। रामधारी सिंह दिनकर अपने काव्य संग्रह चक्रवात की भूमिका में लिखते हैं कि "बुद्धि पर जमी हुई पपड़ियाँ विज्ञान के शोधों से टूटती हैं, किंतु मनुष्य के हृदय पर की पपड़ियों को तोड़ने का काम नाटक, उपन्यास, चित्र, संगीत और कविताएँ ही करती हैं।" साहित्य इन्हीं पपड़ियों को तोड़कर एक संवेदनशील मनुष्य को गढ़ता है, जिसकी आवश्यकता दिन-प्रति-दिन अमानवीय होते जा रहे समाज को है। हमारी शिक्षा व्यवस्था पर एक वृहत जनसमूह को शिक्षा करने का उत्तरदायित्व है। अगरकुछ चुनौतियों की बात करेंतो "सबके लिए शिक्षा" की सुविधा उपलब्ध करवाना है तो प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति से यह अपेक्षा की जानी चाहिए की वह इस लक्ष्य प्राप्ति मे।सहयोग प्रदान करें। "Each one teach one" का नारा इस दिशा में सफलता दिला सकता है। पढ़ाई, परीक्षा अंकों की दौड़ में चाहे अनचाहे व्यक्तित्व विकास की बहुत सी समस्याएं अनु सुलझी रह जाती हैं जो की भविष्य में निराशा, हताशा और कुंठा के रूप में अपराधी वृत्तियां को जन्म देती हैं। वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप जब तक पाठ्यक्रम में मूलभूत बुनियादी बदलाव और परिवर्तन नहीं किया जाएंगे तब तक तो यह तस्वीर बदलने वाली नहीं है।

प्रस्तावना

साहित्य के द्वारा भिन्न परंपराओं, समाजों, भाषाओं और संस्कृतियों से अवगत होने का अवसर प्राप्त होता है जिससे कि संवेदनशीलता और सामाजिक जागरूकता का स्वत:: ही विकास होता है। शिक्षा प्रमुख रूप से विद्यार्थियों को कौशल, रचनात्मकता, विचारशीलता, नवीन सिद्धांतों का ज्ञान प्रदान करती है। साहित्य इसी ज्ञान को कहानियों, नाटक, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से विश्लेषित करता आया है। साहित्य और शिक्षा को यदि एक-दूसरे का पूरक कहा जाए तो यह सही ही होगा। विष्णुशर्मा की पंचतंत्र की कहानियों का उदाहरण लेकर यह बात समझिए कि किस प्रकार बड़ी-बड़ी सीख रोचक घटनाओं के माध्यम से छात्रों को प्रदान की जाती है, जो कि सीधे-सपाट तरीके से बतलाने पर संभवत: समझानी कठिन प्रतीत होती है। प्रेमचंद लिखते हैं कि "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत हो- जो हमें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करें, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकार नहीं।"

दरअसल साहित्य मनुष्य की अनुभूतियों को जागृत करने का कार्य करता है। यह सामाजिक समस्याओं, संबंधों, मनोवैज्ञानिक प्रवृतियों और व्यक्तिगत अनुभवों को समझने में मददगार साबित होता है। शिक्षा में साहित्य का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि इसके माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करना हम सीख पाते हैं। यह भाषा का कुशल प्रयोग करना सिखलाता है। साहित्य के अत्यधिक अध्ययन से संवादात्मक क्षमता का और भी विकास होता है। साहित्य न केवल यह दर्शाता है कि जीवन की वास्तविकता क्या है, अपितु यह भी बतलाता है कि जीवन कैसा होना चाहिए। जॉन मिल्टन लिखते हैं 'साहित्य एक जीवनशैली का निर्माण करता है।' शिक्षा और साहित्य दोनों ही मनुष्य के लिए सही दिशा और सही जीवनशैली का निर्माण करने का प्रयास करते हैं। शिक्षा में साहित्य की प्रासंगिकता इस बात से और अधिक बढ़ जाती है कि वे छात्रों की मानसिक परिधि और दृष्टिकोण को विस्तार प्रदान करता है। छात्रों को सच्चाई, ईमानदारी, न्यायप्रियता और समता के भावों की ओर अग्रसारित करता है। प्रेमचंद का कथन है कि "साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है।

शिक्षा में साहित्य का महत्त्व

प्रेमचंद के इस कथन से यह बात सामने आती है कि शिक्षा में सिद्धांतों और फॉर्मूलाबाजी की सहायता से जो बात विद्यार्थी ठीक से नहीं समझ पाते, वहीं यह कार्य साहित्य आसानी से कर देता है। मनुष्य उपदेशों और नसीहतों से नहीं समझता, वह समझता है जब उसके भाव क्षेत्र को छुआ जाता है और उसके कोमल मनोभावों को संपादित किया जाता है। साहित्य मनुष्य के भीतर की सहज मानवीय करुणा को जागृत करने का कार्य करता है।शिक्षा में साहित्य की आवश्यकता इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि इससे विचार शक्ति का विकास होता है। भिन्न-भिन्न विषयवस्तुओं का अध्ययन करने से न केवल भिन्न विचारों और दृष्टिकोणों से परिचित हुआ जाता है, अपितु विचार-विमर्श की क्षमता, समस्या समाधान और अभिव्यक्तियों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।किसी भी भाषा का साहित्य अपने अंतर्गत अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को भी समाहित किए हुए होता है। साहित्य को केवल मनोरंजन समझना संकीर्ण मनोवृत्ति के मनुष्यों का कार्य है। साहित्य किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। प्राचीन भाषाओं का ज्ञान साहित्य से प्राप्त होता है। पुरातन परम्पराओं के संबंध में साहित्य जानकारी प्रदान करता आ रहा है। कहा जा सकता है कि साहित्यिक ज्ञान हमारी सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ाने का कार्य करता है।

साहित्य की शिक्षा छात्र-छात्राओं में स्वतंत्र सोच का बीजारोपण करने का कार्य करती है। स्वतंत्र विचार बहुत से सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि विषयों के संबंध में तर्कसंगत ढंग से सोचने का अवसर देते हैं। साहित्य किसी भी मनुष्य के भीतर की सद्वृतियों को उजागर करने का कार्य करता है। प्रेमचंद के अनुसार "साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है। सत्य को रसों द्वारा हम जितनी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञान और विवेक द्वारा नहीं कर सकते, उसी भाँति जैसे दुलार चुमकारकर बच्चों को जितनी सफलता से वश में किया जा सकता है, डांट-फटकार से संभव नहीं।"

साहित्य सामाजिक सद्भाव को प्रश्रय देकर असामान्यताओं को मिटाने का प्रयास करता है। सहृदय व्यक्तियों के मध्य एकात्म स्थापित करने का कार्य साहित्य प्राचीन समय से ही करता आ रहा है। साहित्य द्वारा ऐसे बहुत से आदर्शात्मक चरित्रों की सृष्टि की जाती है जो कि कालजयी और अनुकरणीय बन जाते हैं। साहित्यिक शिक्षा द्वारा जब विद्यार्थी इन आदर्शात्मक चरित्रों के संबंधमें जानकारी पाते हैं, तो वे इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते। उदाहरणस्वरूप समझिए कि सत्यहरिश्चंद्र की कथा वर्तमान समाज में आज भी अपनी प्रासंगिकता कैसे बनाए हुए है? हरिश्चंद्र का पात्र सत्य का वह प्रतिमान बन चुका है, जिसे आज भी आदर्श माना जाता है और यह कथा कहीं न कहीं मनुष्य को झूठ बोलने से पहले एक बार सोचने पर विवश तो अवश्य ही करती है।

जो भी मनुष्य इस कथा से अवगत होगा वह यह भलीभांति प्रकार जानता और समझता है कि सत्य का मार्ग कठिन सही, परंतु अंत भला ही होता है। जबकि यह बात अत्यंत साधारण तरीके से समझाने पर कि 'सदैव सत्य बोलना चाहिए' बेहद कठिन प्रतीत होती है।

शिक्षा के अंतर्गत आने वाले अनेक विषयों के ज्ञान से मनुष्य उच्च पद, बड़ी नौकरी, शानो-शौकत आदि तो प्राप्त कर सकता है परंतु साहित्य जो मानवीय करुणा, संवेदनशीलता, सद्भाव, एकात्म, भाषायी ज्ञान, सांस्कृतिक ज्ञान, संयम, सौहार्द प्रदान करता है, वह कोई भी वैज्ञानिक विषय प्रदान नहीं कर सकता। प्रेमचंद ने अपने निबंध 'जीवन में साहित्य का स्थान' में साहित्य के महत्त्व को रेखांकित करते हुए नादिरशाह का उदाहरण दिया है।

"नादिरशाह से ज्यादा निर्दयी मनुष्य और कौन हो सकता है- हमारा आशय दिल्ली में हत्याएँ कराने वाले नादिरशाह से है। अगर दिल्ली का कत्लेआम सत्य घटना है, तो नादिरशाह के निर्दयी होने में कोई संदेह नहीं रहता। उस समय आपको मालूम है, किस बात से प्रभावित होकर उसने कत्लेआम बंद करवाने का हुक्म दिया था? दिल्ली के बादशाह का वजीर एक रसिक मनुष्य था। जब उसने देखा कि नादिरशाह का क्रोध किसी तरह नहीं शांत होता और दिल्ली वालों के खून की नदी बहती चली जाती है, यहाँ तक कि खुद नादिरशाह के मुंहलगे अफसर भी उसके सामने आने का साहस नहीं करते, तो वह हथेलियों पर जान रखकर नादिरशाह के पास पहुंचा और यह शेर पढ़ा-

'कसे न मांद कि दीगर ब तेगे नाज कुशी
मगर कि जिंदा कुनी खल्करा ब बाज कुशी।'

इसका अर्थ यह हुआ कि तेरे प्रेम की तलवार ने अब किसी को जिंदा न छोड़ा। अब तो इसके सिवा कोई उपाय नहीं है कि तुम मुर्दों को फिर जिला दे और फिर उन्हें मारना शुरू करें। यह फारसी के एक प्रसिद्ध कवि का श्रृंगार विषयक शेर है; पर इसे सुनकर कातिल के दिल में मनुष्य जाग उठा। इस शेर ने उसके हृदय की कोमल भाग को स्पर्श कर दिया और कत्लेआम तुरंत बंद कर दिया गया। "इस उदाहरण द्वारा साहित्य की शक्ति और क्षमता को हम समझ सकते हैं। शिक्षा में जब साहित्य प्रवेश करता है तो वह उच्च चिंतन के लिए मनुष्य को प्रेरित करता है। जीवन की वास्तविकता को लेकर संवेदनशील प्राणियों में गति और बेचैनी पैदा करता है। अंतत:: साहित्य की शिक्षा में प्रासंगिकता सदैव महत्वपूर्ण रही है और यह निरंतर महत्वपूर्ण बनी रहेगा।

शिक्षा और हिंदी शिक्षण

हिंदी शिक्षण का विस्तृत अध्ययन करने से पहले यह समझना जरूरी है कि भाषा की सामान्यता मानव जीवन में क्या भूमिका है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक गतिविधियों के लिए मनुष्यों को एक दूसरे से बातचीत करनी होती है। भाषा जो की अभिव्यक्ति का साधन है। मनुष्य भाषा के द्वारा सहजता व सरलता से एक दूसरे के क्रियाकलापों व आचार विचारों को समझ सकता है। यदि हम अपने आस पास संसार के दूसरे जीवों पर ध्यान संकेतों के द्वारा वे एक दूसरे के विचारों को समझते हैं। दुनिया में मनुष्य के द्वारा भाषा निर्माण एक देन है। मनुष्य के द्वारा जो भी ज्ञान संजोया गया है वह सभी भाषा के द्वारा ही संभव हो पाया है। इस तरह भाषा को एक संकल्पना की तरह समझाकर आप हिंदी शिक्षण को अच्छी तरह समझ सकत`हैं।

मानव के सभी क्रियाकलापों का`भाषा ही संचारित करती है भाषा के द्वारा ही अभिव्यक्ति का सार्थक प्रकाशन संभव है। अत:भाषा शिक्षण अत्यंत उपयोगी एवम् प्रयोजन बद्ध है। भाषा शिक्षण में भाषा सीखने संबंधी सिद्धांतों एव उन के प्रयोगों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

भाषा शिक्षण की ओर भाषा विदों का ध्यान बहुत समय पहले चला गया था किंतु आज इसकी आवश्यकता और भी अधिक प्रतीत होती जार ही है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार का प्रचलन बढ़ जाने के कारण बहुभाषिक होना अनिवार्य सा हो जाता है। भाषा शिक्षण की भूमिका समाज एव म्राष्ट्र की आवश्यकताएं के अनुरूप बदलती रहती है। भाषा शिक्षणा द्वारा विद्यार्थियों में भाषा की चारों कौशलों सुनना, बोलना, पढ़ना, एव म्लिखना का विकास हो जाता है। इसके लिए शिक्षक व विद्यार्थियों के मध्यसंपर्क होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संचार व्यवस्था का भी भाषा शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है। कोई भी घटना, कोई भी समाचार, विश्व में चाहे कहीं भी हो रही हो उसे पूर्ण रूप से सुन एवम् देख सकते हैं। यह सब भाषा ज्ञान के द्वारा ही संभव है।

बालक बचपन से ही अपने परिवार तथा सामाजिक परिवेश से भाषा को सीखना आरंभ कर देते हैं। किंतु यह भाषा साहित्यिक भाषा से पूर्णत: भिन्न होती है। यह संप्रेषण प्रधान भाषा विभिन्न विषयों तथा उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है। इसमें दर्शन, साहित्य, विज्ञान, अर्थशास्त्र, इत्यादि विषयों का ज्ञान पाने के लिए विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली आवश्यक होती है। इसलिए भाषा शिक्षण की आवश्यकता आज के प्रगतिशील युग म ेंआवश्यक हो गई है। योग्य, प्रभावशाली व प्रबुद्धमानव के निर्माण के लिए भाषा शिक्षण अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. बधेका गिजू भाई: मोंटेशरीर पद्धति, संस्कृत साहित्य, दिल्ली, २०००
2. मिश्र अमरेश: आधुनिक शिक्षा का स्वरूप, मिश्रा बुकडिपो, इलाहाबाद, २०१२
3. वेदालंकार, सत्यकाम: शिक्षा सिद्धांत और समस्याएं, राष्ट्र वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २००२
4. शारदा, जितेंद्र: शिक्षा की समस्याएं, श्री गणेश प्रकाशन, दिल्ली, २००८
5. पचौरी, महावीर: भारत म ेंआधुनिक शिक्षा रजत प्रकाशन, दिल्ली, २०११
6. प्रसाद, राजेंद्र: भारतीय शिक्षा प्रभात प्रकाशन, नईदिल्ली, २०११
7. पांडेय, बृजेशकुमार: उच्चशिक्षा का परिदृश्य, भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्री ब्यूटर्स फैजाबाद, २०१३
8. वैश्यएल.पी.: उच्चशिक्षा: दशावदिशा, विश्व भारती पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, २००५
9. लिविंगस्टन, रिचर्ड: शिक्षा की समस्याए।अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रा. लि. नई दिल्ली२०१२
10. पाठक, आर. पी.: प्राचीन भारत में उच्चशिक्षा, कनिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली,२०१४

छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान

धर्मेन्द्र कुमार पाटनवार

शोधकर्ता, सहायक प्रध्यापक हिन्दी, शा.इन्द्रावती महाविद्यालय भोपालपटनम, जिला-बीजापुर(छ.ग.)

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना 1 नवम्बर सन 2000ई. को हुआ। इसके पहले यह मध्यप्रदेश का हिस्सा था। हिन्दी साहित्य में आजादी के काल का बड़ा महत्व है। अधिकांश साहित्यकारों ने आजादी के काल में कालजयी रचना प्रस्तुत की। इस समय छत्तीसगढ़ अस्तित्व में नही था। इसलिए मध्यप्रदेश साहित्यिक काल दृष्टि से महत्वपूर्ण जगह था। स्वाधीनता चेतना जागृत करने वाले अनेक कालजयी रचनाकारइस पवित्र भूमि में पैदा हुए, जिन्होंने अपनी रचना के माध्यम से सामाजिक चेतना जगाकर स्वाधीनता आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आजादी के बाद स्वतंत्र भारत में समाजिक तानाबाना को सुदृढ़ करने एवं विभिन्न समाजिक कुरूतियों को उजागर करने के लिए भी विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचना के माध्यम से न केवल जनजागृति लाई, अपितु अपनी रचना के माध्यम से समाज को दिशा भी प्रदान किया।

मध्यप्रदेश के समय में वर्तमान छत्तीसगढ़ के भूभाग से जन्म लेने वाले प्रमुख साहित्यकार में छायावाद के प्रेरक पं. मुकुटधरपाण्डेय, आजादी के बाद के साहित्यकारों में हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तम्भ रहे- गजानन माधव मुक्तिबोध एवं वर्तमान समय के प्रमुख गद्यकार विनोद कुमार शुक्ल अग्रणी है।

पंडित मुकुटधर पाण्डेय का जन्म 30 सितम्बर सन् 1895ई. को वर्तमान जांजगीर चांपा जिले के बालपुर ग्राम में हुआ था। महानदी के तट पर बसा यह गांव रायगढ़-सारंगढ़ मार्ग पर चन्द्रपुर जमींदारों की पूर्व दिशा में स्थित अपने प्रकृतिक सुषमा से सम्पन्न है। सन् 1909 में 14वर्ष की उम्र में इनकी पहली कविता आगरा से प्रकाशित पत्रिका ''स्वदेश बांधव'' में प्रकाशित हुई। सन् 1919 में उनका पहला कविता संग्रह ''पूजा के फूल'' प्रकाशित हुआ। देश के सभी प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार लिखते हुए मुकुटधर पाण्डेय ने हिन्दी पद्य के साथ-साथ हिन्दी गद्य के विकास में भी अपना अहम योयदान दिया। बीसवीं शताब्दी के महान विभूतियों में से एक पद्मश्री साहित्य वाचस्पति पंडित मुकुटधर पाण्डेय जी संक्रमण काल के सर्वाधिक प्रगतिशील कवियों में अपना स्थान रखते है। द्विवेदी युग और छायावाद युग के बीच के कड़ी को समझने के लिए मुकुटधर पाण्डेय के काव्य संसाार को समझे बिना खड़ी बोली हिन्दी के विकास यात्रा को पूरी तरह से नहीं समझ सकते है। डॉ. बलदेव जी कहते है ''पाण्डेय जी ने द्विवेदी युग के शुष्क उद्यान में नूतन सूरभरा तथा नवबसंत की अगुवानी कर युग प्रवर्तन का ऐतिहासिक कार्य किया। उनकी ''कुररी के प्रति'' रचना को ''पदुमलाल पुन्नालाल बख्सी जी'' ने प्रथम छायावादी कविता के रूप में स्वीकार किया। छायावाद का नामकरण पण्डित मुकुटधर पाण्डेय जी ने किया है। ''डॉ. विनय मोहन शर्मा'' ने एक पत्र में लिखा है-''छायावाद नाम सर्वथा मेरा गढ़ा हुआ है, और मैंने परोक्ष सत्ता के प्रति अस्पष्ट रूप से व्यक्त भावों की रचना के लिए इसे प्रयुक्त किया था।'' ''कुररी के प्रति'' रचना के बारे में उनका कहना है- ''रात्रि में कुररी के करूण स्वर सुनकर बिस्तर पर पड़े-पड़े मैंने मन में ही ''कुररी के प्रति'' की रचना कर डाली। तब मुझे आश्चर्य हुआ, कि छायावाद लिखा नहीं जाता, अनुभूति के द्वारा अपने आपही लिखा जाता है। पण्डित मुकुटधर पाण्डेय और छायावादी काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है, कि उसने खड़ी बोली हिन्दी को आधुनिक भावबोध से युक्त रचनात्मक और समृद्धशाली काव्यभाषा बनाने की पहल की। हिन्दी में छायावाद निबंध के प्रथम निबंध ''कवि स्वतंत्र्या'' में पाण्डेय जी ने रीति ग्रंथों की परतंत्रता से मुक्त होकर काव्य में व्यक्तित्व तथा भाव, छंद, भाषा के प्रकाशन रीति में मौलिकता की आवश्यकता पर जोर दिया है। पंडित मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद की स्थापना की थी, उस समय उन्होने आनंदानंदतावादी हिन्दी कविता में भी एक विशिष्ट शैली का उन्मेष देखा था,जो अंग्रेजी और बंग्ला की मजिस्टीक डेमोक्रेसी की तरह शामील है- अज्ञातता, भावों का समापन, रहस्यात्मकता, अज्ञातसत्ता की प्रति जिज्ञासा, संकेत और आकुलता अवलोकन। पाण्डेय जी के काव्य में द्विवेदी एवं छायावादी विशेषताएं दृष्टव्य होती है, इस प्रकार हम देखत है कि उनके काव्य लेखन में स्वच्छंदतावाद और आदर्शवाद जैसे दो विरोधी प्रकृतियां देखने को मिलती है। मुकुटधर पाण्डेय ने सर्वप्रथम अपना लेखन कार्य काव्य की ओर उन्मुख हुए, बाद में वे विचारक, अनुवादक, साहित्यिक समीक्षक और गद्य साहित्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुये।

आधुनिक हिन्दी कविता एवं समीक्षा के सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 15 नवम्बर सन् 1917 को श्योरपुर, ग्वलियर, मध्यप्रदेश में हुआ था। अध्ययन कार्य समाप्त कर विभिन्न जगहों पर मास्टरी की नौकरी की। अंतत: दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में प्राध्यापक नियुक्त होकर अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का उपहार हिन्दी जगत को दिया। अध्ययन-अध्यापन, लेखन व पत्रकारिता के साथ-साथ आकाशवाणी व राजनीति की व्यस्तता के बीच सतत संघर्ष व जुझाऊ व्यक्तित्व का परिचय देते हुए मुक्तिबोध ने आधुनिक हिन्दी कविता व समीक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी युग का सुत्रपात किया। मुक्तिबोध घुमक्कड़ प्रकृति के थे। उनकी कविताओं में बावड़ी, पुराने कुएं, वीरान खण्डहर, पठार, जंगल आदि अनेक शब्द बार-बार आते है। ये अपनी लम्बी कविताओं के लिए प्रसिद्ध है। उन्होने निबंध, कहानियां तथा समीक्षाएं भी लिखी। श्रीकांत वर्मा ने ''चांद का मुंह टेढ़ा है'' काव्य संग्रह के प्रथम संस्करण में लिखा है- "किसी और कवि की कविताएं उनका इतिहास न हो, मुक्तिबोध की कविताएं अवश्य उनका इतिहास है", जो इन कविताओं को समझने, उन्हें मुक्तिबोध को किसी और रूप में समझने की जरूरत नही पड़ेगी। शमशेर बहादुर सिंह का कहना था।, किसी ने मुक्तिबोध की एक बरगद से तुलना की है, जो अवश्य ही उनकी एक प्रिय इमेज है!मगर यह बरगद नही चट्टान है! शिलाओं पर शिलाएं! झरने कही बिरले ही, केवल गहरी बावड़िया सूखे, कुंए, झाड़झंखड़, उंची-नीची अनंत पगडंडिया। गजानन माधव मुंक्तिबोध के बारे में कहा जा सकता है, कि हिंन्दी साहित्य जगत में जिसने अपने समकालीन रचनाकारों से भिन्न काव्य दृष्टिकोण अपनाते हुए सबको गहरे स्तर तक प्रभावित किया है। उनकी काव्य दृष्टि केवल कवि की अनुमिति ही नहीं, अपितु व्यापक सामाजिक सरोकार से अंतर्गुम्फित है। उनकी लगभग सभी रचनाएं उनके संघर्ष व कवि बनाम समाज के अंतर्द्वंद्व को परिलक्षित

करती है। उनकी लम्बी चर्चित व विवादास्पद- कविता "अंधरे में'' सन् 1964 में "आशंका के द्वीप अंधेरे में " ,शीर्षक से छपि थी। 'अंधेरे में' कविता की मूल संवेदना पर विचार करने से पहले आलोचकों द्वारा दिए गए मंतब्य जहां डॉ. नामवर सिंह- इनका मूल अस्मिता की खोज बताते हैं, वही रामशेर बहादुर सिंह- इसे इस्पाती दस्तावेज मानते है। इसके अलावा 'श्रीकांत वर्मा'-कविता का हिंदुस्तान, 'निर्मला जैन'- अंतस्तल का पूरा विपल्व और 'विश्वनाथ त्रिपाठी'- संघर्ष पुरूष की स्वपन कथा मानते है। 'अंधेरे में' एक ऐसी कविता है जो अपने अंदर विविधता को समेटे हुए है, और इसका जटिल कथ्य और शिल्पगत सौंन्दर्य ऐसा है, जो आसानी से समझ में नही आता।

विनोद कुमार शुक्ल का जन्म। जनवरी सन् 1937 को राजनदंगांव छत्तीसगढ़ में हुआ। इंदिरागांधी कृषि विश्व-विद्यालय रायपुर से कृषि विस्तार के सह प्रधान पद से सेवा निवृत होकर स्वतंत्र लेखन कार्य में संलग्न रहें। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता आदि विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। लेकिन उनकी पहचान मूलत; उपन्यासकार के रूप में रही। विनोद कुमार शुक्ल ने उपन्यास के बने बनाए ढांचे को तोड़ने की कोशिश की। शुक्ल जी ने अपने उपन्यास एक प्रतिसंसार रचते है। और यह प्रतिसंसार फिल्म की तरह है, जिसके केमरे के पीछे एक कवि दृष्टि है। शुक्ल जी का सामाजिक दर्शन एक इकाई के रूप में व्यक्ति और परिवार से शुरू होता है। सामान्य लोगों की छोटी-छोटी बातों को भी पर्याप्त महत्व देते है, और इस बहाने उनके चरित्र के भीतरी परतों को बोलते है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में कुछ भी विराट और महान के भाव से ग्रस्त नही है, न जीवन, न उनके पात्र,उनकी रचना का घटनाएं इनमें संघर्ष फैशनेबल नही है।सादगी से जूझता अस्तित्व है, शुक्ल जी ने अपने उपन्यास ''नौकर की कमीज'' में नौकर के पीढीघ पर फोकस करते है, मालिक के शोषणतंत्र पर नहीं।राजा पर सीधे प्रहार करने के बजाय प्रजा का दर्द अभिव्यक्त करना उनकी विशेषता है। वे प्रजा के साथ है। भारतीय समाज में स्थित निम्न मध्यम वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक जीवन का यथार्थ उनके साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। वर्तमान मानव जीवन के अंतर्गत और बहिर्गत जीवन का मार्मिक पक्ष उन्होंने खींचा हैं। मुख्यत; उनके साहित्य में कस्बाई परिवेश, युवा वर्ग की मानसिकता, आम आदमी की समस्याएं पारिवारिक जीवन और कश्मकश नव-दम्पत्तियों का जीवन उजागर हुआ है। इनकी रचनाएं साधारण जीवन का सौन्दर्य है, जो सभी को आकर्षित करता है। जीवन के प्रति अपार जिजीविषा का चित्रण इनकी रचनाओं में शामिल है। भारतीय निम्न मध्य वर्ग एंव ग्रामीण जीवन की सपाट मंथन और एकरस ध्वनियों को अपने उपन्यास में वर्णि्त किया है। शुक्ल जी के उपन्यास में नई सृजन परंपरा, नवीन कथ्य एंव शिल्प के साथ-साथ नए भावबोध, अनुभूतियों के प्रमाणिकता और जीवन को यर्थाथ के धरातलीय पक्षों को सफल स्तर प्रदान करने में समर्थ रहें है। इनके उपन्यास की कविता को पढ़ने में ऐसा लगता है, जैसे एक लम्बी स्वप्नमयी काव्यात्मक संसार से गुजर रहे है। शुक्ल जी ने उपन्यास के माध्यम से मानव जीवन के वैविध्यपूर्ण और जटिल आयाम को चित्रित करने का प्रयास किया है। इसलिए इनके उपन्यास में जीवन का व्यापक सच्चा और जीवन्त चित्रण मिलता है। शुक्ल जी के उपन्यास में बारीकिया दिखाई देती है, उनके सभी उपन्यासों की अंतर्वस्तु एक दूसरे के पूरक है। शिल्प वैशिष्ट्य अन्तर्वस्तु को नवीनता प्रदान करता है।

पदुमलाल पुन्ना लाल बख्सी का जन्म वर्तमान छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव जिले के खैरागढ़ में 27 मई सन् 1894 को हुआ था। अपको साहित्य व काव्य से अनुराग, आपकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुकुल ही था, चूंकि आपके पितामह उमराव बख्सी अपने समय के सुप्रसिद्ध कवि थे। आपके पिता पुन्नालाल बख्सी भी कविता करते थे। बी.ए. करने के पश्चात आप साहित्य सेवा में लग गए। आपकी रचनाएं सर्वप्रथम ''हितकारिणी'' के माध्यम से प्रकाश में आई। सन् 1916 में आपकी कहानी ''झलमला'' ''सरस्वती'' पत्रिका में प्रकाशित हुई। सरस्वती के संपादक पंडित महावीर र्प्रसाद द्विवेदी भी आपकी मौलिकता और मननशीलता से प्रभावित हुए थे। इसलिए द्विवेदी जी ने अवकाश लेने के बाद बख्सी जी को बुलाकर सरस्वती पत्रिका के संपादक का कार्यभार सौंपा था। कुछ वर्षों तक संपादन करने के बाद आप पुन: खैरागढ़ आ गए और बाद में दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगांव में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत रहे।

हबीब तनवीर का जन्म 1 सितम्बर सन् 1923 को वर्तमान छत्तीसगढ़ के रायपुर शहर में हुआ था। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1945 में वे मुंबई आ गए, यहां आल इंडिया रेडियों से जुड़कर आपने अपनी प्रतिभा को प्रखर किए। यहीं इन्होंने हिन्दुस्तानी थिएटर में रंगकर्म किया और बच्चों के लिए नाटक किए। जब आप इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन और प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े तो वे अपने समाज और वंचितों के प्रति सजग हुए। इन दोनों संस्थाओं से जुड़ने से उनकी सोच और कला दोनों में सामाजिक स्तर पर एक नई चिंगारी ने जन्म लिया। 'चरणदास चोर' नाटक की अपार लोकप्रियता ने हबीब की साहित्य जगत में एक खास जगह बनाई। ''जहरीली हवा'' नाटक उन्होंने भोपाल गैसत्रासदी पर लिखा था। उनका प्रसिध्द शेर था-

''हम हस्ताक्षर नही किया करते'।'

बडी कारीगरी से खुद को दिलो पर टांक दिया करते है।।

8 जून सन् 2009 को यह सच्चा इंसान हमेंशा के लिए खामोस हो गया। लेकिन नाटकों में उनके विचारों और तेवरों की खुसबू कला जगत को सराबोर करती रहेगी।

इस तरह छत्तीसगढ़ में भी साहित्यकारों की एक लम्बी श्रृंखला है, जिन्होने अपनी रचना कौशल से न केवल हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया, अपितु अपनी बेबाक कथन के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों एवं उनकी आकांक्षाओं को छुने का प्रयास किया। समाज के यर्थाथ स्वरूप को अपनी रचनाओं के माध्यम से श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत कर अपनी लेखन कार्य का भी निर्वहन किया।

संदर्भ ग्रंथ:-

(1) ''छायावाद और मुकुटधर पाण्डेय''- डॉ. बलदेव,वैभव प्रकाशन रायपुर 2005।

(2) ''गजानन माधव युक्तिबोध'' प्रतिनिधी कविताएं- अशोक बाजपेयी, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली-2010।

(3) '' विनोद कुमार शुक्ल''- नौकर की कमीज-वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-20049।

(4) 'अंधेरे में' का महत्व-डा. राजेन्द्र कुमार, सुमित प्रकाशन पंयागराज, संस्करण 2008।

(5) 'मुकुटधर पाण्डेय-ब्यक्ति एंव रचर्ना, संपादक-महावीर अग्रवाल, आलेख- 'डा.विनय कुमार पाठक'।

(6) 'विनोद कुमार शुक्ल'-दुर्लभ अभिब्यक्ति; विरल ब्यक्तित्व, संपादक-महावीर अग्रवाल।

झारखंड के उपन्यासकारों का हिंदी साहित्य में योगदान

डॉ० राहुल कुमार

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, रामगढ़ कॉलेज, रामगढ़ कैंट, झारखंड

प्रकृति के सुरमय हृदय स्थल में बसा नई-नवेली राज्य झारखंड, एक मस्तमौला प्रदेश है। झारखंड के कथाकारो ने मस्तमौले झारखंडियों की भेद-भाव भूल लोक संस्कृति की मधुर ताल में थिरकने को बेचौन रहने वाले निम्न, मध्य एवं उच्च सभी वर्गों की आपसी समरसता एवं चिलचिलाती तेज धूप में मजदूरों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की चाहत रखने वाली स्त्रियों आदि का वर्णन बड़े ही खुले विचारों के साथ अपने साहित्य के माध्यम से किया है। झारखंड के हिंदी कथाकारों ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक चिंतन के परिणाम स्वरूप वह शीर्ष स्थान व सिहासन ले लिया जिनके वे हकदार थे। इन कथाकारों ने अपनी उम्दा प्रदर्शन एवं सारगर्भित दूरदृष्टा विचारों से परिपूर्ण लेखनी के द्वारा समाज के हर एक कोने को विलक्षणता के साथ उकेरा है। इन्होंने न केवल अपनी लेखनी जोश, होश और आघोष के साथ शिक्षा, संस्कृति एवं समाज आदि के सुधार में लगाई है अपितु सामाजिक संरचनाओं एवं संस्कृति के बिगाड़ने वाले कारकों यथा युवाओं में बढ़ रही बेरोजगारी, हडिया-दारु एवं मुर्गा संस्कृति के कारण हत्या, लूट, चोरी, डकैती, छिनतई, बलात्कार जैसी लगातार बढ़ रही घटनाओं पर भी अपनी लेखनी को धार दी है। पिछली सदी के प्रारंभिक तीन दशक तक झारखंड प्रदेश में कथाकारों का सूखापन सा दिखता है परंतु कुछ ऐसे कथा कथाकार भी हुए जिन्होंने अपनी उपस्थिति से झारखंड प्रदेश के आदिवासी समाज के जीवन पर रचित उपन्यासों के माध्यम से उनके दुख-दर्द एवं तकलीफों को उकेरने का प्रयास किया हैं। बऐसे में रामचीजसिंह वल्लभ का उपन्यास 'वन विहंगिनी' सन1909 में प्रकाशित हुआ था। कथाकार रामानंद शर्मा ने 1930 ई. के आसपासआदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास 'कोरा कुमारी' लिखा तत्पश्चात 'पुनर्मिलन' एवं 'पिया चाहे प्रेम रस'(1968 ई.) जैसे सामाजिक मूल्यों परकेंद्रित उपन्यास लिख कर अपनी सक्रियता का परिचय दिया हैं- "गिरोह पर गिरोह निकल पड़ा था। चरण सबके जहां-तहां पड़ रहे थे, परंतु कंठ का स्व ंएक था और आंखों का लक्ष्य भी एक था- 'उठा चरण-उड़ा गगन! यों चरण उठ रहे थे, गगन उड़ रहा था- कहीं जेल की दीवार टूट रही थी, कहीं थाना जल रहा था, कहीं रेल की पटरी उखड़ रही थी तो कहीं तार कट रहे थे। गिरोह के गिरोह घूम रहे थे- जिन में चोर डाकू भी थे, लुच्चे-लफंगे भी थे, गिरहकट- गुंडे भी थे और भले-भोले भी थे।"[1]

चौथे दशक के दौरान कई ऐसे कथाकार आए जिन्होंने अपनी लेखन कौशल के माध्यम से साहित्य के क्षेत्र में अपना लोहा मनवाया। वैसे कथाकारों में राधाकृष्ण, योगेंद्रनाथ सिंहा, ज्योति प्रकाश, द्वारका प्रसाद, सत्यनारायण शर्मा आदि हैं। राधाकृष्ण उससमय के ऐसे यशस्वी उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, व्यंग्यकार एवं कवि हैं जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से सरल एवं सीधी भाषा में सामाजिक एवं राजनीतिक कुरीतियों पर सीधे प्रहार की हैं। इनके उपन्यासों में फुटपाथ, रूपांतर, बोगस, सनसनाते सपने, सपने बिकाऊ है आदि है। रामलीला, गेंद और गोल कहानी आज भी कई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में शामिल है। प्रेमचंद जैसे कथा सम्राट ने कथाकार राधाकृष्ण के संबंध में कहा था- "हिंदी के उत्कृष्ट कथा-शिल्पियों की संख्या काट-छांटकर पांच भी कर दी जाए तो उनमें एक नाम राधाकृष्ण का होगा।" प्रेमचंद के निधन केउपरांत इन्होंने हंस पत्रिका का कार्यालयी देखभाल भी किया। योगेंद्र नाथ सिन्हा का लेखन मुख्यत: हो जनजाति की जीवनशैली पर रहाहै। योगेंद्र नाथ सिन्हा ने 56 कहानियां आदिवासी समुदाय की पृष्ठभूमि पर लिखी। इनका एक प्रमुख उपन्यास है 'वन के मन में' जिसे इन्होंने 'हो' जनजाति की प्रेम कथा को आधार बनाकर के उनके लोकगीत, नृत्य, संगीत, एकीकृत समाज व्यवस्था, सांस्कृतिक मूल्य और आर्थिक जीवन को आधार बनाकर लिखा हैं। "आठवें दशक में इस अंचल की आदिवासी कलम का पहला हिंदी उपन्यास आया सुबह की शाम और उसके कथा लेखक थे वॉलटरभेंगरा तरुण। इस दशक में उनके तीन नए उपन्यास सत्य भारती प्रकाशन, रांची से आए हैं- तलाश, गैंग लीडर और कच्ची कली। लेकिन जिस उपन्यास की चर्चा पिछले दिनों अधिक हुई है वह है- जंगल के गीत इस उपन्यास की मार्फत बिरसा के उलगुलान के संदेश की सामाजिक संदर्भ में तुबा टोली गांव के युवक करमा और उसकी प्रियाकरमी की कहानी के जरिए अग्रसारित करने की कोशिश की गई है।"[2]

सत्य भारती प्रकाशन से 2005 ई. में प्रकाशित इनका एक अन्य उपन्यास है- लौटते हुऐ जो आदिवासी समाज की चुनौतियों से रूबरू कराता है। इनकी प्रसिद्धि उपन्यासकार से ज्यादा कहानीकार के रूप में है। इनकी चार कथा संग्रह उपलब्ध हैं- लौटती रेखाएं, देने का सुख, जंगल की ललकार तथा अपना अपना युद्ध। उपरोक्त कहानी संग्रह किसी एक ढरे पर न लिखकर कई विषय वस्तुओं यथा- युवा जीवन की रूमानियत, स्त्री पुरुष संबंध, शिक्षा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, प्रेम, त्याग, बलिदान, आदिवासी जीवन शैली, विचार, संस्कृति, दर्शन,कॉरपोरेट संस्कृति की जमीन की भूख, पलायन, विस्थापन, विस्थापन के उपरांत उपजे संकट आदि को आधार बनाकर अपनी लेखन शैली को स्वाभाविक रूप से व्यक्त की है।

पिछले 3 दशकों से हिंदी कथा में और विशेष तौर पर झारखंड-छत्तीसगढ़ केपठारी अंचल में जनजातीय समाज और संस्कृति के प्रति एक नए रुझान विकसित होता दिखलाई पड़ा है।"बेशक इस जनपद से रुझान और बदलावका स्वागत होना चाहिए। किंतु इसके समानांतर जारी छदम लेखन और अपलेखन के खतरों के प्रति सतर्कता बरतने की भी उतनी ही जरूरत है। ऐसे भी कथाकार हैं जिनके पास आदिवासी समाज की समझ व छवि कोलाज शैली की है- कहीं धुंधली, कहीं रूमानी। वे आदिवासी समाज की कथा लिख रहे होते हैं, मगर यह जानने-समझने की जरूरत नहीं उठाते कि उराँव और मुंडा समाज,

बिरहोर या खड़िया समाज या फिर हो या संथाल समाज की जीवन शैली, परिवार, संस्था, रीति रिवाज या आस्था विश्वास में कोई फर्क भी है। सच तो यही है कि जनजातीय समाज और उनका सामुदायिक जीवन भीतर से चाहे जितना उन्मुक्त और खुला हुआ हो बाहरी लोगों के लिए एक बंद समाज ही है। ऐसे समुदायों के बारे में कथा लेखन की चुनौती यही है कि वह उनकी सामाजिक मान्यताओं, सांस्कृतिक परंपराओं, राजनीतिक-आर्थिक दबावों और बुनियादी संरचनाओं के अंतरंग से गहन साक्षात्कार के बिना संभव नहीं।"[3] कहा जाता है कि आदिवासियों के मन की बात बाहरी नहीं लिख सकते परंतु कई ऐसे कथाकार हुए जिन्होंने झारखंड के लोगों के अंतर्मन की बातों को गहराई से जांच पड़ताल कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा से समाज और संस्कृति में प्रखर ज्वाला, ओज एवं मधुरता का प्याला घोलकर समकालीनता के परिवेश में पनपने वालें सभी जीवंत घटनाओं को और भी अधिक ज्वलंत कर वैश्विक स्तर पर लोगों को सोचने के लिए विवश कर दिया है। ऐसे कथाकारों में रमणिका गुप्ता का नाम निसंकोच ली जा सकती हैं।पंजाब के जन्मस्थलीसुनाम से झारखंड के कर्मस्थली के बीच की दूरी को उन्होंने-'भीड़ सतर में चलने लगी है', 'तुम कौन', 'तिल-तिल नूतन', 'मैं आजाद हुई हूं', 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम', 'भला मैं कैसे मरती', 'आदम से आदमी तक', 'विज्ञापन बनते कवि', 'कैसे करोगे बँटवारा इतिहास का', 'दलित हस्तक्षेप', 'निज घरे परदेसी', 'सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे', 'कलम और कुदाल के बहाने', 'दलित हस्तक्षेप', 'दलित चेतना- साहित्यिक और सामाजिक सरोकार', 'दक्षिण- वाम के कठघरे' और 'दलित साहित्य', 'विघटन के बीज' आदिसाहित्यिक रचनाओं के माध्यम से पाटने का प्रयास किया हैं। उन्होंने झारखंड के आदिवासी समाज, साहित्य और संस्कृति को नए स्वरूप में गढ़ने की कोशिश की है। समाज के सामाजिक मुद्दों और सांस्कृतिक तकरारों जैसी भिन्न- भिन्न परिस्थितियों पर अपनी कलम का जादू दिखलाई हैं।साथ-साथ उनकी सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति, खान-पान, दर्शन और समृद्ध कला को साहित्यिक रूप देकर आदिवासी समाज का समकालीन परिदृश्य चित्रित करने का प्रयास किया हैं-

रमणिका गुप्ता द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध उपन्यास है- सीतामौसी। जिसमें उन्होंने आदिवासी महिला जीवन के संघर्ष, उत्पीड़न, शोषण, घुटन, रोजगार दिलाने के नाम पर दैहिक शोषण कोना केवल चित्रित किया है बल्कि साहस और अनुभव के बल पर स्त्रियों को सशक्त होते हुए भी दिखलाया हैं- "चल तोर बात ही ठीक! ला, दे गमछा! हम हुँईटा ढोयब। कल से हम लकड़ी काटब, तू बेचा। हम खेत में हल नादबे, तू रोपा। हम आज से मुंडा बन गेंल।"[4]

इन्हीं की परंपरा के एक प्रमुख उपन्यासकार हैं- संजीव। इन्होंने किशनगढ़ के अहेरी, सर्कस,फाँस, सावधान! नीचे आँग है, धार, पांव तले की दूब, जंगल जहां शुरू होता है, सूत्रधार, प्रत्यंचा, मुझे पहचानो, आकाश चंपा जैसे कई महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति की रचना की हैं। मुझे पहचानो हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है, जिसके लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत भी किया गया। इस उपन्यास के कथानक सती प्रथा पर आधारित है। समाज के धार्मिक, सांसारिक और बौद्धिक पाखंड कीपरत-दर-परत उधेड़ कर अमानवीय धार्मिक मान्यताओं को खंडित करने, पुरुष की वर्चस्ववादी मानसिकता को उजागर करने एवं पाखंड में लिपटे झूठे सांस्कृतिक गौरव से पर्दा हटाने का प्रयास है 'मुझे पहचानो'- "सोचिए. क्योंकि आप मनुष्य हैं, सोच सकते हैं, पशु नहीं सोच सकते। यह यौनशुचिता, गर्भ शुचिता या रक्त शुचिता से भी जुड़ती है, मगर उसके लिए स्त्रियां ही क्यों दोषी मान ली जाए? यह बातें सिर्फ हिंदू नहीं, मुस्लिम, सिख, इसाई सब पर लागू होती हैं। ईश्वर या प्रकृति के सिरजी सृष्टि में कोई किसी का गुलाम नहीं है,फिरयह डायन, यह माँब लिंचिंग, यह ऑनर किलिंग जैसे बर्बर हुड़दंग क्यों, जिसका शिकार औरत ही तो होती है, आप उस पर ही सती का मूल्य कैसे लाद सकते हैं जो आप खुद नहीं कर सकते। आग.! मैं हाथ जोड़कर अरज करता हूँ, आग से मत खेलिए, आग में औरतों को मत झोंकिए।"[5]

'सावधान! नीचे आग है' की कथावस्तु कोयला खदानों में काम करने वाले उन दीन-हीन मजदूरों का चित्रण है जो हमेशा अपने जिंदगी को खतरे में डालकर धनबाद-झरिया के जलते हुए कोयला खदानों में काम करने को विवश है तो वही 'धार' उपन्यास की कथावस्तु आदिवासियों के जीवन संघर्ष एवं शोषण को दिखलाता है। 'पांव तले की धूप' उपन्यास आदिवासियों के विकास में रोड़ा बने उनके अंधश्रद्धा, कुप्रथा एवं उनके पुरातन रीति रिवाजों का चित्रण करता है। कहने का तात्पर्य है कि उन्होंने समाज के हर एक विषय वस्तु को अपनी कथानक के माध्यम से पिरोकर पाठक के सामने प्रस्तुत किया हैं।

विनोद कुमार ने 'समर शेष है', 'रेड जोन', और 'मिशन झारखंड' जैसे उपन्यास लिखकर साहित्य के क्षेत्र में धमाकेदार प्रवेश की हैं। विनोद कुमार के इन तीनों उपन्यासों में यथार्थ बिना किसी औपचारिक लाग-लपेट और बगैर किसी पूर्वाग्रह के यहां के मूल निवासियों के संघर्ष गाथा को औपन्यासिक शैली में पिरोने की कोशिश की है। रनेंद्र और महुआ माजी के बिना झारखंड साहित्य की कल्पना करना बेमानी होगी। इन्होंने ग्लोबल गांव के देवता, गायब होता देश, गूंगी रुलाई का कोरसआदि उपन्यासों के माध्यम से झारखंड समाज से विलुप्त व दूषित हो रही संस्कृति, विडंबनाओं, यथार्थ, खोती हुई अस्मिता एवं अस्तित्व कान केवल चित्रण मात्र किया है बल्कि व्यावहारिक समाधान भी बतलाया है। इनके अलावे भीझारखंड के और भीकई कथाकार हुए यथाश्याम बिहारी श्यामल, प्रहलाद चंद् दास, प्रियदर्शन, विद्याभूषण, सारिका भूषण, जयनंदन, अश्विनी कुमार पंकज, पंकज मित्र, अशोक सिंह, राकेश कुमार सिंह, रश्मि वर्मा, अनामिका प्रिया आदि ने अपनी लेखनी रूपी सांचो के माध्यम से झारखंड के समाज एवं संस्कृति को गढ़ने का सार्थक प्रयास किया है।भारतीय समाज में कई विचारधारा के लोग रहते हैं जिनकी सोच भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न सोच होने के कारण आपसी टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है परंतु झारखंड जैसे छोटे प्रदेश में वैचारिकी का यह स्तर थोड़ा भिन्न है। यहां की सामाजिक प्रथाएं एवं सांस्कृतिक मान्यताएं वैचारिक भिन्नता को जोड़कर रखने का कार्य करती है। यदा-कदा विचारों का आपस में टकराव से उत्पन्न संघर्ष के परिणामों का समाज पर क्या दुष्प्रभाव पड़ता है, इसका भी वर्णन कथाकारों ने की हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि झारखंड के कथाकारों ने अपनी कथाओं के माध्यम से झारखंड के स्थानीय रंग, सांस्कृतिक रुझान और आंचलिक पहचान की हूबहू रचना की है।संपन्न प्रदेश होने के बावजूद सियासी अस्थिरता, राजनीतिक प्रयोगों और अदूरदर्शिता के भंवर में फंसा झारखंड का समाज गरीबी, पिछड़ापन, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद, पलायन व विस्थापन जैसी मूलभूत समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे में झारखंड के कथाकारों द्वारा कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से अंतर्मन में सुलगते आग के लिए क्रांति की राह भी खोजी जा रही है।

संदर्भ ग्रंथः-

1. शर्मा रामानंद, पिया चाहे प्रेम रस, दुमका, संथाल परगना, बिहार, कन्याकुमारी प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 1968, पृष्ठ- 211
2. भूषण विद्या, झारखंडः समाज, संस्कृति और साहित्य, रांची, झारखंड झरोखा प्रकाशन, पृष्ठ- 145
3. वही-
4. गुप्ता रमणिका,सीता मौसी, नई दिल्ली, शिल्पायन प्रकाशन, संस्करण- 2014
5. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन, नोएडा,संस्करण- 2020

जंसिताकेरकेट्टा के लेखन में राष्ट्रवादी चेतना के स्वर

प्रो० शैलेन्द्र सिंह

विभागध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, जे0एस0विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद

शोध संक्षेप:

जंसिताकेरकेट्टा मानवतावादी, राष्ट्रवादी एवं आदिवासी संवेदनाओं को यथार्थ के धरातल पर अपनी सरल भाषा लेखन कर आम जनमानस की कवियित्री बन गई है। उनका जन्म झारखण्ड के पश्चिमी सिंह भूमि जिले के खुदपोश गाँव में हुआ। जंसिताकेरकेट्टा की लेखनी में जो संवेदनाएं देखने को मिलती है। निश्चित तौर पर कवियित्री उन सभी समस्याओं से दो चार हुई है। अपनी कविताओं में इतना यथार्थ पर चित्रण वही कर सकता है जो उस वेदना को सहा हो। उनकी काव्य संवेदनागहरी, अचेतन, अनकही भावनाओं को शब्दो।मे पिरोन`की कला जंसिता जी के पास अद्‌भुत है उन्हे पड़कर दृश्य से बनते नजर आते हैं। वेजल, जंगल, जमीन तक ही सीमित नहीं रही उन्होंने मानवतावादी उपागम को अपनाते हुए राष्ट्रवादी चेतना के शिखर को छूने का प्रयास किया है।

बीज शब्द:

1. राष्ट्रवाद
2. मानवतावाद
3. जल, जंगल, जमीन के लिए संघर्षरत्।
4. अन्य संवदेनात्मक मुद्दे
5. अजेय योद्धा वालीसोच

प्रस्तावना

जंसिताकेरकेट्टा की रचनाओं मे।जड़ो की जमीन विशेष रूप मे।उल्लेखनीय है। जंसिताजी की कुछ कविताएं अति महत्त्वपूर्ण हैं यथा-परवाह, मातृभाषा की मौत, सभ्यताओं को मरने की वाणी, नदी पहाड़ औरबाजार, उससेमे रासम्बन्ध क्या था, साहेब कैसे करोगे खारिज, मेरे हाथों के हथियार, राष्ट्रगान बज रहा है, सड़क पर किसान, प्रार्थना का समय, ओ शहर, जड़ो की जमीन, सपाट सड़क पर, जनहित में, किसी ने नहीं देखा मुझे, नहीं आये वे, शहर की नाक, सारण्डा के फूल, अंगारे, शहर और गाय, हूल की हत्या, राष्ट्रवाद आदि कविताएं अत्याधिक शिक्षा परक है। "पेड़ो ने तुमसे क्या कहा"? कविता में लिखती है-

'पेड़ो ने तुमसे
पेड़ लगाने को नहीं कहा
बस अपने हिस्से की जमीन छोड़ने को कहा'
जहाँ अपने तरीके से वे उग सकें
पर तुम उनके हिस्से की जमीन पर जमे रहे
और 'पेड़ लगाओ, धरतीबचाओ' का नारा लगाते रहे।
'जिन्दा रहने के लिए
सांस लेकर भी अभी
तुम बड़ी मुश्किल से
सांस छोड़ने का अभ्यास कर रहे हो
पेड़ो के हिस्से की धरती छोड़ देना
क्या तुम्हारे बस की बात है।'

प्रस्तुत कविता में जंसिताजी सीधे समाज से प्रश्न करती नजर आती है और जंगल काटने पर सीधा प्रहार करती नजर आ रही है। एक बड़े ही मार्मिक दृष्टिकोण मे वे कहती है कि-

"मां के मुंह मे ही
मातृ भाषा को कैद कर दिया गया
ओर बच्चे
उस की रिहाई की मांग करते-करते
बड़ हो गये।"

जंसिताकेरकट्टा एक अत्यन्त निर्भीक लेखिका हैं जो आदिवासी समाज पर होने वाले अत्याचारों व शोषण पर मुख रहो कर लिखती है।वे कहती हैं-

"हम जीवन भर लड़ेंगे,
तुम्हारी सारी संस्कृति के खिलाफ
बस इतना बता दो,
इस धरती को उजाड़ ने का
हिसाब कौना देगा साब?"

जंसिताजी अपने लेखन से ऐसी लकीर खीचती है कि सत्ता के गरियारों के साथ ही साथ बुद्धि जीवी वर्गों के ह्रदय के सरल भावो को पूरी तरह उनकी लेखनी झकझोर कर रख देती है उनकी लेखनी में निश्छलता है और समाज के सतत्विकास की अभिलाषा की-

यथा-

"एक दिन जब सारी नदियां
मर जायेंगी आक्सीजन की कमी से
तब मरी हुई नदियों मे तैरती मिलेंगी
सभ्यताओं की लाशेभी।"

समाजपन पर ही जाति-धर्म की वैमस्यता पर भी अपना दृष्टिकोण करती हुई लिखती हैं-

"जब भी किसी के प्रेम मे।होता हूँ
जाति धर्म नश्ल भूल जाता हूँ
वस इसी बात पर मै
हर बार मारा जाता हूँ।"

उक्त पंक्तियों मे।कवियित्री कहना चाहती है कि समाज मे।अनेको प्रकार के भेदभाव जिसके चलते समाज में असमानता व जातिवाद देखने को मिलते है।जिसके चलते लोग चाहकर भी एक नही हो पाते हैं और भी वे जाति-पाति से ऊपर उठकर प्रेम करना चाहते है समाज उन्हे मारने पर तत्पर हो उठता है। जबकि सत्यता यही है कि समाज का निर्माण ही परस्पर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है और परस्पर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आपसी भाई-चारा व प्रेम जरूरी है।

सारांश

निष्कर्षतः हम कह सकते है।कि जंसिताकेरकेट्टा की कविताओं में स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि इन कविताओं के पीछे गहरे अनुभव और बहुतहद तक खुद झेली हुई पीड़ा का संसार है यही चीज उनकी कविताओं से बेवा की के साथ प्रतिरोध का स्वर उभारती हैं।

जंसिताकेरकेट्टाजी की कविताएं पाठको।का`सोचने पर मजबूर करती हैं, उनकी रचना अति व्यापक हैं। वे पर्यावरण क्षरण, विकास का दुरूपयोग, शोषण प्रतिरोध, खेमेबन्दी, राष्ट्रवाद बाजार, जनमानस की पीड़ा स्पष्ट शब्दों में देखी जा सकती है। राज कमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'ईश्वर और बाजार' प्रकाशित हुआ जिसमे।आदिवासी समाज के सामने मौजूद संकट, उनकी सांस्कृतिक बोध को खत्म करने की कोशिश में लगे बाहरी तत्व समाज में महिलाओं की स्थिति, राष्ट्रवाद, माबलिंचिग जैसे तमाम राजनीतिक विषयों से जुड़े समसामयिक मुद्दों पर उनकी टिप्पटियां इस कविता संग्रह को पठनीय बनाती है।

जंसिताजी अपनी कविताओ।म`ईश्वर की अवधारणा पर सवाल उठाती है और इसके जरिये लगातार फैलते उस शोषण को उकेरती है।जिसे ईश्वर के नामपर धर्म को पोषित करने के लिए किया जा रहा है। वह लिखती है-

"मजदूर जब अपने अधिकार के लिए उठे
तो ईश्वर भक्तो ने उनसे
हाथ जोड़कर प्रार्थना करने को कहा"

जंसिताकेरकेट्टा ने समाज की विडम्बना कों दिखाने के लिए कविता को माध्यम बनाया है उनकी कविताओं में सिर्फ आदिवासी लोगो।का`संकट का चित्रण हीन हीं है बल्कि समूचे देश में जो आसन्न खतरे हैं उस पर भी वे अपनी पैनी नजर रखती हैं। इन खतरो।में राष्ट्रवाद प्रमुख है राष्ट्रवाद को सच्चे अथो`मे।बड़ी गहराई के भाव लिए लिखती है-

"जब मेरा पड़ोसी
मेरे खून का प्यासा हो गया
मै समक्ष गया
राष्ट्रवाद आ गया।"

जंसिताजी मानव को मानव बने रहने को कहती है और इंसान के उस कुरूप व विद्रप चेहरे को भी उजागर करती है जिसेक भी राष्ट्रवाद ता`कभी मॉबलिचिंग के सहारे पोषित किया जाता है और मानव सभ्यता को खतरे में डाला जाता है।

संदर्भसूची

1. जसिंताकेरकेट्टा, ईश्वर और बाजार (2023), राजकमल प्रकाशन, नइ ंदिल्ली।
2. वैध नरेश कुमार, जनजातीय विकासमिथक एवं यथार्थ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. हसनैननदीम, जनजातीय भारत, जबाहर पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
4. कुमार एम, आदिवासी, संस्कृति एवं राजनीति, विश्वविद्यालय पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. शर्माविजय शंकर, भारत की जनजातीय संस्कृति मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, म०प्र०

मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का हिन्दी साहित्य में योगदान

डॉ० ज्योति गौतम

असि0 प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ।

सारांश

मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य के विस्तृत फलक पर विशेष योगदान रहा है। चाहे वह स्त्री अस्मिता के प्रश्न हो या फिर बुंदेली संस्कृति के प्रति प्रेम होदोनों ही स्थिति में मैत्रेयी जी ने हिंदी साहित्य में विशेष योगदान दिया है। हिंदी साहित्य लेखन के क्रम में कई उपन्यास-स्मृति दंस, बेतवा बहती रही, आत्मा कबूतरी, कहीं ईसुरीफाग, त्रिया हठ, इदन्नमम, चाक, झूलानट, अगन पाखी, विजन, फरिश्ते निकले आदि उपन्यासों के साथ कई कहानी संग्रह जैसे-चिन्हार, ललमनियाँ, गोमा हँसती है, आदि भी अमूल्य धरोहर साहित्य को दी हैं। साथ ही स्त्री विमर्श से जुड़ी खुली खिड़कियां एवं आत्मकथा के रूप में कस्तूरी कुंडल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया आदि महत्वपूर्ण रचनाओं के द्वारा बुंदेलखंड की संस्कृति और समाज के साहित्य को परिचित कराया है जहां ऐतिहासिक उपन्यासकार वृदावनलाल वर्मा के विषय में यह कहा जाता है कि उन्होंने इंच-इंच नाप कर बुंदेलखंड के कोने-कोने का इतिहास अपने उपन्यासों, कहानी, शिकार साहित्य आदि के माध्यम से लिख दिया है। उसी तरह मैत्रेयी पुष्पा ने बुंदेलखंड का सामाजिक, सांस्कृतिक व स्त्री विमर्श से जुड़े हर मुद्दे को साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया।

बीज शब्द

1. धरोहर 2. फलक 3. पित्सत्तात्मक 4. त्रासदियाँ 5. विचारधारा 6.बीहड़ 7. मुखर 8. आंचलिक 9. अन्तर्जातीय 10. संरचना 11. रूढ़ियां 12.विश्लेषण 13. पुनविश्लेषित 14. आत्मनिर्भरता 15. चिंतन

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों पर विचार करते हुए हमारा ध्यान उनकी कुछ सामान्य विशेषताओं की ओर बरबस चला जाता है। उनके उपन्यास अंचल विशेष के रंग में रंगे होने पर भी आंचलित नहीं है। उसमें गांव का मनुष्य अकेला नहीं है उसके साथ प्रकृति हैं, पारंपरिक संस्कार है, लोक-देवता है,जातीय स्मृतियां हैं, और पूरी लोक संस्कृति है। उनके नारे पात्र अधिक सक्रिय सृजन और प्रभावी है उनकी नारी चेतनामूक विद्रोह से चलकर मुखर सामूहिक संघर्ष की दिशा में अग्रसर हुई है और सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें सच कहने का साहस है और उनके क्रांति चेतन किसी विचारधारा के दायरे में कैद ना होकर अनुभव की आंच और अनुभूति के ताप से प्रेरित है निश्चित ही समकालीन हिंदी उपन्यासकारों में वह प्रथम पंक्ति के ही हकदार है।

फरिश्ते निकले उपन्यास एक स्त्री के संघर्षों के साथ-साथ, हाशिये पर स्थित उन लोगों का भी लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है जो समाज में उपेक्षित है। एक रचनाकार अपने अनुभवों के आधार पर ही अपने रचना का सृजन करता है। मैत्रेयी जी का बचपन, युवावस्था तथा शिक्षा-दीक्षा सभी कुछ बुंदेलखंड में हुआ। इसलिए उनके अधिकांश कृतियां में बुंदेलखंड का ही जनजीवन होता है जो एक विशेष लगाव को दर्शाता है।

वहां के लोक कथाएं, संस्कृति, राजनीति, राजनीतिक गतिविधियां आदि कीसूक्ष्म पड़ताल तथा चित्र उनके उपन्यासों में दृष्टिगत होता है बुंदेलखंड की समस्याओं तथा वहां के जनजीवन आदि को उनके उपन्यासों में बड़े ही यथार्थ के साथ संजोया जाता है यह उपन्यास ऐसा उपन्यास है जहां लेखिका पुरुषों द्वारा नियंत्रित पितृसत्तात्मक समाज में शोषण का शिकार होती बेला, उजाला के संघर्षों की कथा कहती है जहां बेला गरीबी और पितृविहीन होने के कारण बाल और बेमेल विवाह की भेंट चढ़ जाती है पति कीहिंसात्मक प्रवृत्ति उसे भरत सिंह की ओर आकर्षित करती है, लेकिन भरत सिंह जैसे सफेद पोश अत्याचारियों से भी वह छली जाती है बेला बहू और उजाला के माध्यम से लेखिका ने स्त्री जीवन के विविध समस्याओं और समाज में स्त्री जाति पर होने वाले अत्याचारों तथा समाज की संवेदनहीनता को व्यक्त किया है बाल विवाह, वेमेल विवाह, घरेलू हिसा, अंतर्जातियों प्रेम की परिणति, बलात्कार, खाना बदोश जिंदगी, बीहडो के बागी आदि समाज की त्रासदिया का उल्लेख किया है बेला और उजाला जैसे औरतें समाज में मिसाल कायम करती हैं।

'कहीं ईसुरीफाग' के माध्यम सेमैत्रेयी पुष्पा बुंदेलखंड में गायी जाने वाली फागों का चित्रण प्रस्तुत करती है यह उपन्यास मूलत: ईसुरी और रजऊ के प्यार की रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करता है जहां ईसुरी और रजऊ दोनों के रास्ते विपरीत है लेकिन ईसुरी और रजऊ की फागें बुंदेलखंड के सांस्कृतिक पक्ष को मजबूती से प्रस्तुत करती है

मोए तुम सिवाय न दूजौ
तुम न और के हूजौ
तुम सिवाय दुनिया में औरे, इन ऑखन ना सूजौ

जो प्रन होवे पतिविरता कौ, प्रान त्याग तन भूँजौ
मन मरदन पै कौन चलावे, नई बालापन बूजौ
रज्जू अपने जनम भरे में, एक देवता पूजौ

तो वही आमतौर पर देखा गया है कि भारतीय समाज में स्त्री को एक ऐसा जीव माना गया जो हमेशा पुरुष नामक जीव पर आश्रित रहती है पुरुषवादी परंपरागत डर और यातनाओं को याद करके मैत्रेयी जी कहती है कि पति क्या गलत करते हैं मामा भी तो .... मगर स्त्री की छाती में थालिया झनझनाती है।

स्त्रीयां अपना मन घर गृहस्थी में लगाए रखने के लिए बच्चों के लालन पोषण में ज्यादा व्यस्त रहती हैं मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया ''में कई स्थानों पर विद्रोह का स्वर इस व्यवस्था के प्रति उठाया है जैसे वह कहती है- आदमी है हम, पशु तो नहीं'' वह इस प्रश्न को भी कई स्थानों पर उठाती है कि जो कार्य पुरुष के लिए सही है वह स्त्री के लिए ऐसा गुनाह जो पूरी उम्र उसका पीछा ना छोड़ पाए। व्रत, त्यौहार, परंपरा, रीति-रिवाज जैसे तमाम पाबंदियां स्त्री पर मड़ दी जाती है पुरुषवादी सत्ता का विरोध करते हुए मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं- "बस ये लोग नहीं समझना चाहते हैं कि बंधन मुझे रास नहीं आते। बंधन में मैं झटपटाने लगती हूं ये जो शब्द है 'छटकराना' मतलब हम स्त्रीयां अब आजादी चाहती हैं। परंपरागत रूप से चले आते तमाम बंधनों को तोड़ना चाहती है तभी तो छटपटा रही है। बंधन को तोड़ने का प्रयास कर रही है। इसका यह मतलब नहीं है कि स्त्रियां परिवार को नहीं चाहती है। लेकिन वह सम्मान जरूर चाहती हैं। जो पुरुष को मिलता है।

इसी प्रकार एक उपन्यास है 'झूला नट' इसके माध्यम से वह ग्रामीण परिवार की कथा कहती है- 'झूलानट' अपेक्षाकृत छोटा उपन्यास है इसमें बुंदेलखंड के एक ग्रामीण परिवार की कथा है परिवार में विधवा मां, दो बेटे, सुमेर और बालकिशन, और सुमेर की बहू शीलो यही चार प्राणी है। सुमेर पुलिस में है। बालकिशन गांव में खेती देखता है। सुमेर को शीलू पसंद नहीं है। शहर में दूसरी औरत रख लेता है।शीलो अपनी सास की इच्छा से बालकिशुन के साथ बैठ जाती है लेकिन बछिया की रस्म नहीं होने देती है उसके बाद सुमेर का आना जाना बढ़ जाता है। वह शीलों के प्रति मेहरबान होने लगता है वह शीलो को पटाकर अपने हिस्से के जमीन बेचना चाहता है।शीलो उसकी मंशा भाप जाती है। वह सुमेर से साफ कह देती है बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसा तुम्हारे लिए 'दूसरी औरत' सुमेर लौट जाता है। पूरी जमीन बालकिशन के कब्जे में बनी रहती है।शीलों और उनके सास में नहीं पटती। दोनों के बीच बालकिशनपिसता रहता है। वह घर छोड़कर भाग जाता है। पूरे उपन्यास में बालकिशुन के स्थिति तनी हुई रस्सी पर झूले हुए नट की है। वह मां और शीलो, घर और खेत तथा राग और विराग के बीच तनी हुई रस्सी पर झूलता रहता है उपन्यास का सबसे सशक्त पात्र है शीलो। शीलो के रूप में लेखिका ने मणिधारिणी नागिन को प्रस्तुत किया है शीलो का चरित्र नारी चेतना को एक नया आयाम देता है।

आज स्त्री लेखन आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, भावनात्मक सभी क्षेत्रों में अपने ऊपर हुए शोषण को अंकित करता है। वह उसका विरोध करता है और विद्रोह भी। कुछ समय पहले तक के स्त्री लेखन में हमें आत्मदया का बोध होता था तथा आत्म बलिदान को महिमामंडित किया जाता था पर अब यह भाव धीरे-धीरे लगभग समाप्त हो चुके हैं व नएस्त्री लेखन को समझने के लिए पुरुष को भी नारी के संदर्भ में अपने चिंतन तथा विचारों को बदलना होगा। समय बदल रहा है स्त्री के विचार बदल रहे हैं। उनके चिंतन शक्ति में परिवर्तन हो रहा है स्त्री विमर्श ने संपूर्ण पितृसत्तात्मक संरचना को कटघरे में खड़ा करके उसका विश्लेषण किया। पुरानी परंपराओं, रूढ़ियों और साहित्य का खंडन ही नहीं अपितु उसे पुनः पाठ के बाद पुनः विश्लेषित भी किया है।

स्पष्टतः

मैत्रेयी पुष्पा ने हिंदी साहित्य को बुंदेलखंड कीहर छोटी-बड़ी घटना से परिचित कराया। पलायनवादी तत्व और उसमें पुनर्वासकी व्यवस्था को पूर्ण रूप से देखते हुए सामाजिक तत्वों पर विचार किया। बुंदेलखंड के जनजातीय जीवन में छिपी तमाम समस्याओं को उपन्यासों, कहानियों के माध्यम से साहित्य में प्रस्तुत किया। मैत्रेयी पुष्पा का हिंदी साहित्य में यह योगदान एक बड़े जन समूह की भिन्न समस्याओं को उजागर करने में समर्थ सिद्ध हुआ है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी का गद्य साहित्य -डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ सं. 280, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणस- 221001
2. कही ईसुरी फाग (उपन्यास)- मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ सं. 157, राजकमल पेपर वैक्स दिल्ली- 110032
3. गुड़िया भीतर गुड़िया (आत्म कथा)- मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ सं. 12, राजकमल प्रकाशन दिल्ली- 110032
4. हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ सं.- 278-279
5. नारी का मुक्ति संघर्ष - डॉ0 अमर नाथ, रेमाधव पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली- 110032
6. बुन्देलखण्ड का इतिहास - डॉ0 महेन्द्र वर्मा, सुशील प्रकाशन, मेरठ

हिन्दी गद्य साहित्य में बच्चन का योगदान

कांता देवी

हिन्दी प्रवक्ता, एस.डी.महिला महाविद्यालय, नरवाना

हिन्दी गद्य का विकास भारतेंदु में हुआ। भारतेन्दु युग से पूर्व भी गद्य का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है और इतिहास-ग्रंथों में भी इसके प्रभाव मिलते है 19वीं शती के अंत में सांस्कृतिक जागरण अपने पूरे उन्मेष पर था। सामजिक ढ़ाँचा टूट रहा था और अंग्रेजी शिक्षा का व्यापक प्रभाव शिक्षित समाज पर पड़ रहा था। इस दौर में एक संवेदनशील मध्यवर्ग का उदय हो रहा था। यह वर्ग सामाजिक और राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि मानता था और यह भी जानता था कि देश अवस्था अच्छी नहीं है। देश में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। भारतेन्दु इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि थे। इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से जागरण का संदेश दिया। इसके इलावा भी गद्य के विकास में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' नवीनचन्द्र राय, श्रद्धाराम फुल्लौरी, राजा लक्ष्मण सिंह ने भी हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके के इलावा भी आधुनिक युग के ऐसे बहुत से लेखक है जिन्होंने ने गद्य को विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जैसे प्रेमचन्द, हरिवंश राय बच्चन, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, रघुवीर सहाय, नेमिचन्द जैन, रामविलास शर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, इलाचन्द्र जोशी आदि ने हिन्दी गद्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

लेकिन हम यहाँ पर हरिवंशराय बच्चन के हिन्दी गद्य के विकास में उनके योगदान की बात कर रहे है।

विश्रुत कवि बच्चन ने अपना आरम्भिक सृजन गद्य से शुरू किया था, शायद इसे ज्यादा लोग नहीं जानते। फिर इसी गद्य को उन्होंने भावभरे सहज-लोकप्रिय पद्य का रूप दे दिया और अंत में, इसी भावभरे पद्य को उन्होंने अपनी प्रौढ़ प्रतिभा के बल पर गद्य में रूपांतरित कर दिया। हरिवंश राय बच्चन जी का जन्म 27 नवम्बर 1907 में इलाबाद के एक कायस्थ परिवार में हुआ। वे हिन्दी के उत्तर छायावादी काल के प्रमुख लेखक थे। उन्होंने ने अपने जीवन काल में अथक परिश्रम से साहित्य के क्षेत्र में एक मकाम हासिल किया था। 18 जनवरी 1903 में सांस की बीमारी से मुम्बई में इनका निधन हो गया। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी का अध्ययन किया। बाद में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ रहे। अनन्तर राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रहे।

बच्चन जी का गद्य साहित्य में योगदानः-

शायद कुछ ही लोगों ने बच्चन लिखित प्रारम्भिक रचनाएँ: भाग तीन'' पुस्तक में संकलित बच्चन जी की बारह कहानियाँ पढ़ी हो। जिनका प्रकाशन 1929 से लेकर 1933 तक हुआ था। क्योंकि उस समय बच्चन कवि रूप में लोकप्रिय हो गए थे। कहानीकार बच्चन तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ प्रकाशित होने लगी बच्चन गद्य में प्रोत्साहन आर्जित करने के लिए, आगे आया था और उसका कवि मन चुपचाप यह देख रहा था। बच्चन जी की प्रथम कहानी 'माता और मातृभूमि' थी। इस कहानी में मातृभूमि के प्रति प्रेम-बलिदान का मार्मिक संदेश देती है। अजमतुम नाम की एक बूढ़ी माँ अपने बेटे उमर को मिडिल पास कराके इसलिए खुद-खुशी करती है ताकि उसका बेटा अफगानिस्तान और उसके रहनुमा अमानुअल्लाह की रक्षा के लिए दुश्मनों से लोहा लेने के काम आ सके। आत्म-हत्या नहीं, आत्म-बलिदान से पहले एक कागज पर लिखे उस माँ के शब्दों के प्रति यह कहना कम होगा कि वे वीरता के भावों से भरे है। जिस देश की माँ अपने बेटे से यह कह कर प्राण त्याग सकती है वह कोई भी देश क्यों न हो धन्य है ''मेरे मरने से कुछ नुकसान न होगा। तुम मेरे मरने का अफसोस न करना। तुम्हें मैं एक बड़ी माँ की गोद में सौंप रही हूँ। तुम अब उस माँ की खिदमत करना। खुदाबंद करीम तुम्हारे बाजुओं में ताकत देघ्.....।'' यह कहानी भले ही अफगानिस्तान की क्रांति पर लिखी गई हो पर उसका सन्दर्भ उस समय अपने देश में फैलती स्वतन्त्रता क्रांति से भी जुड़ता है। जब भी कोई कौम सामाजिक-धार्मिक एवं साम्प्रदायिक विषमता के पाटों में पिसती होती है। तब ऐसी ही कहानी अपनी अर्थवता को बनाए रखती है।

2. संकोच-त्यागः-

यह कहानी एक मध्यवर्गीय परिवार की है। इस कहानी में बसन्त नाम का एक युवा बी.ए. पास युवक बड़ा महत्वाकांक्षी है। वह लाला अम्बाशंकर की लड़की 'प्रभा' के साथ विवाह के प्रस्ताव को पहले वह बसन्त को भी सारी बात बता देती है। अब से लग युग 35 वर्ष पहले किसी लड़की का यह क्रांतिकारी विचार धारा का सूचक है ''जहाँ शर्म न करनी चाहिए वहाँ शर्म करने से ही तो हमारा जीवन नष्ट होता है।''[2]

यह कहानी प्रेम-विवाह के पक्ष को जिस तरह पुष्ट करती है, उसमें कही कुछ गहराई नहीं है।

'अंचल का बंदी' की कहानी भी 'संकोच त्याग' की तरह, प्रेम-विवाह विषयक कहानी ही है। अगली कहानी 'चिड़ियों की जान जाए लड़कों का खिलौना' इस कहानी में ईसाई परिवार के असफल प्रेम की कहानी है। यह प्रेम कहानी बच्चन जी के प्रेम से सम्बन्धित भी है इस कहानी कहीं न कहीं बच्चन जी के ईसाई लड़की के प्रति प्रेम को दर्शाया गया है जो कि असफल रहा। 'हदय की आँखे', 'धर्म परीक्षा', 'खिलौने वाला', 'दुखनी', 'ठाकुर जी', 'उऋण', 'स्वार्थ', चुन्नी-मुन्नी आदि बच्चन जी की कहानियां हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है।इसलिए ठुकरा देता है कि वह एम. ए. करके प्रोफेसर बनने की कल्पना करता है। उसके विचार में विवाह करते ही उच्च श्रेणी के लड़के नीचे गिर जाते है, खर्च बढ़ जाता है। उसकी माँ उसका विवाह करना

चाहती है। एक दिन बरसात में बसन्त ने देखा, छाता लगाए एक सुन्दर लड़की गुजर रही है। जीवन में पहली बार उसमें किसी ऐसी लड़की को इतने गौर से देखा था और उसकी हालात दीपक की लौ पर मँडराते पंतगे जैसी हो गई। वह उस लड़की को अपने बरामदे में बुला लाया-बारिश से बचने के लिए। बाहर सामान्य बातें भीतर-ही-भीतर आकर्षण के लड्डू फूट रहे थे। फिर दर्शन-झांकियां, फिर प्रेम-पत्र.....। बसंत के लिए लड़की का प्रेमाकर्षण एक रोग सा बन गया। इस बीच प्रभा के पिता ने जबलपुर के एक व्यक्ति से लड़की का रिश्ता तय कर दिया। अब प्रभा बसन्त में प्रेम को अमर बनाने के लिए सारा संकोच त्याग कर, साफ-साफ कह देती है कि वह पढ़ाई के लिए चार वर्ष तक विवाह नहीं करेगी। इस कथन में नई नारी चेतना का उन्मेष है। इसके अलावा बच्चन जी ने बहुत से निबन्ध भी लिखे है। उन्होंने तीन निबन्ध-संग्रहों को हिन्दी जगत को समर्पित किया है। इसके अलावा बच्चन जी की आत्मकथा के चार भाग है जो उनकी ख्याति का सबब भी बनी हैं।

1. 'क्या भूलूं क्या याद करूँ'
2. नीड़ का निर्माण फिर
3. बसेरे से दूर
4. दशद्वार से सोपान तक

क्या भूलू क्या याद करूँ- यह बच्चन जी की पहली आत्मकथा का पहला खण्ड, जब 1969 में प्रकाशित हुआ तब हिन्दी साहित्य में मानों हलचल-सी मच गई थी। यह हलच ल 1935 में जब मधुशाला प्रकाशित हुई थी उस से कम नहीं थी। समकालीन अनेक लेखकों ने इसे हिन्दी के इतिहास की ऐसी पहली घटना बताया जब अपने बारे में इतनी बेबाकी से सब कुछ कह देने के विकास और समूचे काल तथा क्षेत्र को भी उनहोंने अत्यन्त जीवन्त रूप में उभरकर प्रस्तुत किया। इस आत्मकथा के माध्यम से कवि ने गद्य-लेखक में भी नये मानदंड स्थापित किये। बच्चन की यह कृति आत्मकथा साहित्य की चरम परिणति है और इसकी गणना कालजयी रचनाओं में की जाती है।

डॉ0 धर्मवीर भारती ने इसे हिन्दी के हजार वर्षो के इतिहास में ऐसी पहला धटना बताया जब अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस, और सद्भावना से कह दिया गया है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इसमें केवल बच्चन जी का परिवार और व्यक्तित्व ही नहीं उभरा है, बल्कि उनके साथ समूचे काल और क्षेत्र भी अधिक गहरे रंगो में उभरा है।

क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

अगणित उन्मादों के क्षण हैं, अगणित अवसादों के क्षण हैं, रजनी की सूनी घड़ियों को किन-किन से आबाद करूँ मैं!

अपनी पत्नी श्यामा की मृत्यु के पश्चात पाँच साल बाद उनकी मुलाकात तेजी सूरी से 1941 में पुनर्विवाह किया, जो रंगमंच तथा गायन से जुड़ी हुई थी। इसके बाद ही उन्होंने 'नीड़ का निर्माण फिर' भी 1970 में प्रकाशित हुई। इस में बच्चन जी ने अपनी तेजी बच्चन से अपनी पहली मुलाकात के बारे में लिखा है। 'आज प्रेमा ने अपनी सहेली का परिचय मुझसे कराया है, और बारह वर्ष पहले लिखी अपनी एक तुकबन्दी मेरे कानों में बार-बार गूँजती रही- इसलिये सौन्दर्य देखकर शंका यह उठती तत्काल, कहीं फँसाने को मेरे नहीं बिछाया जाता जाल पर अदृश्य देख रहा था कि जाल बिछ चुका था और करूणा अवसाद के जाल में फंस चुकी थी या अवसाद ने करूणा को।

'बसेरे से दूर' यह आत्मकथा का तीसरा भाग है। इसमें उन्होंने अपने जीवन की उस अवधि की कहानी सुनाई है, जब उन्होंने अपने देश नगर, घर-परिवार से दूर कैम्ब्रिज में रहकर विलियम बटलर ईट्स के साहित्य पर शोध कार्य किया।

'दशद्वार से सोयान तक' बच्चन की आत्मकथा का चौथा भाग है। यह अन्य भागों की अपेक्षा विस्तृत है। इसमें उन्होंने 1956 से 1983 तक की घटनाओं का वर्णन किया है। 'दशद्वार' जिसके दस दरवाजे हो सोपान का अर्थ है सीढ़ी। यहाँ पर बच्चन जी ने दस वर्ष तक विदेश मन्त्रालय में हिन्दी विशेषाधिकारी के पद पर छः वर्षों तक राज्यसभा के मनेनीत सदस्य के रूप में रहने का जिक्र किया है।

बच्चन जी ने अपने दोनों पुत्रों एंव बहुओं के साथ रहने की स्मृतियों को संजोते हुए उन्होंने अपने नवनिर्मित आवास 'सोयान' में प्रवेश करने तक की जीवन-यात्रा को लिखा है।

इन आत्मकथाओं ने भी हिन्दी गद्य साहित्य में बच्चन जी को उच्च स्थान दिलाया है। ऐसे बहुत से पत्र जो बच्चन जी ने अपने मित्रों को लिखे थे।

हिन्दी गद्य साहित्य में बच्चन जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके योगदान को कभी भूलाया नहीं जा सकता। बच्चन जी का साहित्य को पढ़कर व्यक्ति ऐसा महसूस करता है जैसे वे उसकी अपनी बात हो।

अतः भारतीय गया साहित्य में बच्चन जी का योगदान अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. डॉ जीवन प्रकाश जोशी, गद्यकार बच्चन, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली पृ025
2. डॉ जीवन प्रकाश जोशी, गद्यकार बच्चन, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली पृ026
3. डॉ0 मधु कौशिक हिन्दी हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास, संजय प्रकाशन दिल्ली।
4. बॉकेबिहारी भटनागर, बच्चनः व्यक्ति और कवि नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।

पंजाब के गद्य साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में अवदान

डॉ० रिचा नांगला

सहायक प्रोफेसर, डी.ए.वी. कॉलेज, जांलधर

भारत देश में हिन्दी भाषा साहित्यिक भाषाओं में प्रमुख भाषा रही है। अपनी प्रसिद्धि, जनप्रियता और संतो, भक्तों, सिद्धों, नाथों की वाणी होने के कारण इस भाषा का प्रभाव अहिन्दी प्रदेशों पर भी रहा है। इसी दृष्टि से यदि पंजाब प्रदेश की बात की जाए तो डॉ० मनमोहन सहगल पंजाब (सप्तसिंधु) को आधुनिक हिन्दी का उद्‌गम स्थल मानते है। उनके अनुसार "पंजाब आधुनिक हिन्दी का उद्‌गम स्थल है। नाथों-सिद्धों की भाषा को धीरे-धीरे इसी क्षेत्र में पश्चिमी हिन्दी तथा उपरान्त खड़ी बोली का रूप प्राप्त हुआ है इस प्रदेश में अनेक बोलियाँ पनपी लोकगाथाओं का माध्यम बनी और अपनी सबलता का शंखनाद करती रहीं। किन्तु भारतीय संस्कृति के उत्स-क्षेत्र में संस्कारों के कारण साहित्यिक आसन पर सदैव विराजमान रही, जो भाषाकीय गुणों एवं मधुरता के कारण देश भर में साहित्य रचना के लिए सहज स्वीकार्य हुई- वैदिक संस्कृति से लेकर खड़ी बोली हिन्दी की रचना तक का विकास-क्रम इस तथ्य की गवाही देगा।"[1]

पंजाब के मध्यकालीन साहित्यिक रचनाओं को विचित्र परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, पंजाब की मध्यकालीन रचनाओं में रचनाकारों ने ब्रजभाषा को अपने लेखन का माध्यम बनाया, किन्तु धरती के मोह और गुरु परंपरा से प्रभावित होकर 'गुरुमुखी' लिपि में लेखन कार्य किया। उस समय पंजाब में ब्रजभाषा और गुरुमुखी में लिखा जा रहा था। पंजाब में जन-जागरण सांस्कृतिक चेतना के अनेक ग्रंथ लिखे जा रहें, जो हिन्दी साहित्य को नयी दिशा प्रदान कर रहा था। किन्तु यह सारा साहित्य इस लिए प्रकाश में नहीं आ सका, क्योंकि यह साहित्य गुरुमुखी भाषा में लिखा गया था। गुरुमुखी लिपि में लिखा होने के कारण ऐसी बहुत सी रचनाओं को पंजाबी की रचनाएँ घोषित कर दिया गया। डॉ० जयभगवान गोयल कहते है कि "गुरुमुखी लिपि का पंजाबी भाषा में कुछ ऐसा संबंध स्वीकार किया जाता रहा है कि जो भी साहित्य गुरुमुखी लिपि में लिखा दिखाई देता है उसे पंजाबी का साहित्य घोषित कर दिया जाता है। पंजाबी के बड़े-बड़े विद्वान भी इस भूल से नहीं बच पाये हैं। .... पंजाब के ऐसे सारे ब्रज-भाषा साहित्य को जिसकी लिपि गुरुमुखी है, पंजाबी का साहित्य मान बैठे है।"[2]

इसी समय बहुत से कवि निरन्तर देवनागरी लिपि में ही अपनी रचनाएं लिख रहे थे। पंजाब में दसवीं शती से ही निरन्तर हिन्दी साहित्य सृजन की क्रमबद्ध धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है, डॉ. जगभगवान गोयल के अनुसार "संदेश रासक ....जिसकी रचना अछहमान (अब्दुलर्रहमान) ने 11वीं शती में की थी। अछहमान सिंधुपूर्ववर्ती प्रदेश के रहने वाले थे, जिससे सिद्ध होता है कि हिन्दी के इस प्रारम्भिक युग में भी पंजाब ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में योगदान दिया।"[3] इसी युग में सिद्धों नाथों का विचरण भी पंजाब की धरती पर बना रहा। पंजाब मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की शुरूआत सिद्धों-नाथों के साहित्य से माना जाती है, जिसमें गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, चरपटनाथ, बालानाथ, मसतनाथ, जयदेव आदि कई सिद्ध-नाथ है।

हालाकि इनके समय अवधि को लेकर विद्वानों में मतभेद है। गोरखनाथ का समय राहुलजी 845 ई., आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तेरहवी शती, डॉ. रामकुमार शर्मा की इनसे सहमत है। डॉ. पीतामबर दत्त बड़थ्वाल ग्यारहवीं शती डॉ. मोहन सिंह दीवाना बारहवीं शती का मानते है। इसके पश्चात् चंदबरदाई का पृथ्वीराज रासो' 12वीं शती में फरिदुद्‌दीन शंकरगंज की रचनाएं प्राप्त होती है। मनमोहन सहगल के अनुसार "लाहौर में रहते हुए खुसरों की रचना हिन्दी साहित्योतिहास में विशेष स्थान रखती है। पहेलियाँ, मुकरियां, समस्यापूर्ति एवं फारसी हिन्दी मिश्रित कविता खुसरो की विशेष देन है।"[4]

उत्तर मध्यकालीन में पंजाब मुगल शक्ति के विरूद्ध सिक्ख-गुरुओं ने भारतीय आध्यात्मिक सरल-सरस वाणी को आम जन मानस तक पहुंचाया। इसी युग में पंजाब में, हिन्दू, सिक्ख, मुसलमानों, सूफी, संतो, राज्याश्रित कवि, ने पंजाब में हिन्दी साहित्य की मूल्यवान रचना का सृजन किया। डॉ. जयभगवान गोयल के अनुसार "रहीम, कृपाराम, हृदयराम, मिहरबान, हरिया जी, हरि जी, गुरुदास, साईदास, संतरेण, गुरदास वाणी, सहजराम, राजाराम इत्यादि अनेक नाम है।"[5]

गुरु गोविन्द सिंह जी स्वयं उच्चकोटि के कवि थे, उनका दशम ग्रंथ श्रेष्ठतम ग्रन्थों में से एक है। उनके दरबार में अनेक हिन्दी कवि रहे। पंजाब की अनेक रियासतों में भी हिन्दी साहित्यकारों द्वारा साहित्य लेखन किया गया, जिनमें पटियाला, नाभा, संगरूर, जींद आदि की थी। केवल काव्य में ही नहीं बल्कि गद्य में भी पंजाब की धरती ने हिन्दी साहित्य में अपनी श्रेष्ठ रचनाएं दी है। डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी के अनुसार, "गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य रचनाएँ सोलहवीं शताब्दी में अन्तिम दशकों में ही उपलब्ध होनी शुरू हो जाती हैं, ये रचनाएँ अधिकतर टीकाओं, व्याख्याओं, भाष्य एवं अनुवाद के रूप में उपलब्ध होती है।"[6]

इसके अतिरिक्त जन्मसाखी साहित्य (जीवनी) के रूप में भी गद्य साहित्य की प्राप्ति होती है। पत्र पत्रिकाएं, उपन्यास, कहानी, जीवनी आत्मकथाएँ, निबंध, एकांकी, आदि फुटकर रचनाएँ भी प्राप्त होती है।

"सोढ़ी मिहरबान कृत सचषंडु पोथी' (जन्मसाखी) इनका समय सन् 1581 ई. से 1639 ई. तक का है यह गुरु रामदास के बड़े पुत्र पिरथीचन्द के सुपुत्र थे। इनकी रचना सचषंडु ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है इसकी भाषा सधुक्कड़ी कही जा सकती है। जिसमें पंजाबी, ब्रज, लहंदी फारकी आदि भाषाओं के शब्दों की अधिकता है। सोढ़ी मिहरबारन के पुत्र हरिजी की रचना (गोसट गुरु मिहिरबान जी' इनके जीवन पर आधारित है 'गोसट' ललित गद्य में है।"[7]

कबीर जी के जीवन से संबंधित "जनमसाष कबीर भगति जी को' है। कबीर की जीवनी संबंधित इतनी विपल गद्य सामग्री-कथा मूलवाणी और परमारथु रूप में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।''[8] किन्तु इस रचना के रचनाकार को लेकर आज तक मतभेद बने हुए है।

"17वीं शतीं की गुरुवाणी टीका परम्परा में हरि जी की टीका 'सुषमनी सहंसरनाम' महत्त्वपूर्ण दार्शनिक रचना है। 'अष्टावक्र भाषा (दयालअनेमी) अनेमी हिन्दी में दार्शनिक साहित्य की सर्जना करने वाले मूर्धन्य साहित्यकार है। "अष्टवक्र भाषा' की दो प्रतियाँ सिक्ख रैफ्रैंस लायब्रेरी अमृतसर में क्रमांक 602 तथा 2374 पर संकिलत है।

आनन्दघन हिन्दी गद्य के सफल लेखक है। 'उत्थानिका' उनके अपने शब्दों में शास्त्रीय शैली है। उनकी टीकाओं में जपुजी टीका (1795 ई.) आरती टीका (1796 ई.) ओअंकार टीका (1797 ई.), सिध गोसट टीका (1800 ई.) अनन्द टीका (1802 ई.), इन टीकाओं का वर्व्य विषय गुरुवाणी ही है। 'योगवासिष्ठ भाषा' रामप्रसाद निरंजनी' द्वारा रचित है। इसमें वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपराम, निर्वाण ये छः प्रकरण है। गीता भाषा दयाल-अनेमी (शंकर भाष्य का अनुवाद) गीत भाषा का ऐतिहासिक महत्त्व है।''[9]

इसके साथ ही बहुत सी हिन्दी में अनुवादित रचनाएँ भी उपलब्ध होती है। जिनमें "पारस भाग-भाई अड्डणशह द्वारा रचित है पंजाब की उत्कृष्ट गद्य कृति है। वेदान्त, सूफीमत, भक्ति और सेवा भावना का अपूर्व समन्वय इस महनीय रचना में हो गया है। यह रचना गजाली की विश्व विश्रुत फारसी रचना 'कीमिया-ए-सआदत' का अनुवाद है। 'पंचासत उपनिषद् भाषा जनप्रलादि द्वारा अनुदित है। औरंगजेब के बड़े भाई द्वारा शिकोह ने उपनिषदों के एक फारसी अनुवाद को जनप्रनादि ने (1719 ई.) हिन्दी रूपान्तरति किया और 1840 ई. में गुरदित्त सिंह ने गुरुमुखी में प्रतिलिपि बनाई। 'विष्णु पुराण भाषा' की रचना अनुमानत 18वीं शती मानी गयी है। इसके समयकाल को लेकर मतभेद है। 'भोगलु पुराण' गोविन्द नाथ राजगुरु के अनुसार अमृतसर 1 में क्रमांक 2375 पर संकलित सम्भवतः पंजाब की सबसे प्राचीन प्रति है..... आधुनिक भूगोल की तथ्यात्मकता इस रचना में-न्यून से न्यूनतम है। "भाष्य, गीता भाषा की रचना किसनदास तथा कइस ओरद आस नामक दो व्यक्तियों ने (1799 ई.) में की।'' गीता महात्तम भाषा' 'गोष्ठी साहित्य 'मिहरिवानु में प्रमुख भक्तों की जीवनियां गोष्ठी शैली में लिखी। 'गोसटि गुरु बाबे जी की' इसमें गुरु बाबा नानक और बाबा लाल दास का गंद्यमय संवाद बहुत रोचक है। इसके अतिरिक्त सिंहासन बतीसी जिसमें 32 कहानियां है विक्रमादित्य के सिंहासन के 32 पुतलियों के चित्र थे। 'विहंगम वाणी''[10] रचनाकार और समय को लेकर मतभेद है। इसमें गुरु नानक की आत्मा और पारब्रह्म का परस्पर संवाद दिया गया है। इस प्रकार रीतिकाल में हिन्दी साहित्य के समान ही गुरुमुखी लिपि में पद्य एवं गद्य दोनो साहित्य उपलब्ध होते है।

हिन्दी गद्य की पंजाब में एक महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट परम्परा रही है। जिसमें कि समाचार पत्रों-पत्रिकाओं की सम्पृष्ठ परम्परा देखने को मिलती है जिसमें "परचे (1829-32) 'जामे जहाँनुमा' वैयक्तिक संग्रह पंजाबी पत्रों का प्रथम इतिहास, अषवार श्री दरबार श्री अमृतसर जी (1867) सुकवि सम्बोधिनी (1875), अषवार काव्य चन्द्रोदय (1876) (विदाआरक (विद्या की) पंजाब (मासिक), सुधारक सतधगा प्रचारक, भारत सुधार, भाई संतोष सिंह की रचनाएं 'नामकोश', गरबगंजनी टीका, नरोत्तम का कोश साहित्य और टीकाएं, दरबारी साहित्य में 'अरजीदास प्रताप सिंघ की अरजी''[11] इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं, टीकाओं आदि के रूप में मिलता है, तो दूसरी ओर गद्य साहित्य की अन्य विधाओं, उपन्यास, नाटक, कहानी, एकांकी, रचना, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, निबंध इत्यादि विधाओं में गद्य साहित्य का विशाल भण्डार है।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी पद्य एवं गद्य दोनों में ही ख्याति प्राप्त रचनाकार रहे है। 'भाग्यवती' (1877 ई.) उपन्यास को पहला मौलिक उपन्यास माना जाता है। पशपाल (1903 ई. फिरोजपुर) हिन्दी साहित्य लेखन में बड़ा नाम है। इनके व्यापक साहित्य सृजन ने हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान दिया। 'दादा कामरेड (1941), देशद्रोही (1943), 'दिव्या (1945), मनुष्य रूप (1949), झूठा सच भाग-एक वन और देश, झूठा सच भाग-दो देश का भविष्य, मेरी तेरी उसकी बात इत्यादि (उपन्यास) पिंजरे की उड़ान (1939), 'वो दुनिया, ज्ञानदान इत्यादि (कहानी संग्रह) (निबन्ध) 'न्याय का संघर्ष (1940), मार्क्सवाद (1940), 'गांधीवाद की शव परीक्षा, जीवनी-सिंहावलोकन, तीन भागों में, यात्रा में लोहे की दीवार के दोनों ओर है।

अज्ञेय करतारपुर (जांलधर) से संबंध रखते है। विविध विधाओं में अज्ञेय का भरपूर साहित्य लेखन है जिनमें 'शेखर एक जीवन दो भाग, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजबनी (उपन्यास), 'अछूत फूल और अन्य कहानियां इत्यादि (कहानी संग्रह), (निबन्ध) 'आत्मनेपद, 'अन्तराल' त्रिशंकु इत्यादि है। 'एक बूँद सहसा उछली', 'अरे यायावर रहेगा याद' 'नवे (एकांकी) इत्यादि है। उपेन्द्रनाथ अश्क का जन्म स्थान जांलधर पंजाब है इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्ति व समाज के विकास के लिए समृद्ध साहित्य की रचना की जिसमें इनके प्रसिद्ध (उपन्यास), सितारों के खेल (1940), गिरती दिवारें 'गर्म राख', (कहानियों में), 'आकाशवाणी, 'गुण्डे' इत्यादि नाटक- अलग-अलग रास्ते, कैद और उड़ान, आलोचना में 'हिन्दी कहानी', 'एक अन्तरंग परिचय' इत्यादि है। (बाल-साहित्य) में 'डाली', 'मोती' (जीवनी) (संस्मरण में) 'आसमां ओर भी है 'उर्दू को बेहतरीन संस्मरण इत्यादि है। बाबामुकुन्द गुप्त और माधव प्रससाद हिन्दी साहित्य में निबन्ध विधा को रूपायत करने वाला है।

गुरुदत्त ने उपन्यासों में 'स्वाधीनता के पत्थर (1942) स्वरा बात (1940) आदि कहानी में 'बिखरे चित्र' आलोचना में 'गाँधी और स्वराज्य', 'भाग्य चक्र', 'भारत में राष्ट्र इत्यादि अमूल्य रचनाएं दी है। बेहद चर्चित साहित्यकार मोहन राकेश' का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल', अन्तराल' (उपन्यास) 'इन्सान के खण्डहर (1950) फौलाद का आकाश, जानवर और जानवर' इत्यादि कहानी संग्रह, '(आषाढ़ का एक दिन' लहरों के राजहंस आधे-अधूरे (नाटक) है। निर्मल वर्मा परिंदे, जाड़े की रात (कहानी) वे दिन, लाल दीन हुए (उपन्यास) आदि सूरजमुखी अन्धेरे में (उपन्यास)। बादलों के घेरे, मित्रों मरजानी (कहानी), महीप सिंह सुबह के फूल, उजाले के उल्ले (कहानी) 'यह भी नहीं' (कहानी), सुरेश सेठ धन्धा (कहानी संग्रह), सांनजूही बीमार है (नाटक संग्रह) इन्दुबाली 'टूटती जुड़ती, 'मेरी तीन मौते' (कहानी संग्रह) है। राजी सेठ 'तत्सम् (1956 उपन्यास), 'अन्धे मोड़' 'तीसरी हथेली (कहानी संग्रह), कंचनलता सब्बरवाल 'मूक प्रश्न, भोली भूल, (उपन्यास) 'कड़ियाँ टूट गई है, भूख, प्यासी धरती सूखे ताल (कहानी), लक्ष्मीबाई भीगी पलके नाटक इत्यादि साहित्य है। राकेश वत्स 'जीवत जट्टाने, सागर और कल्पना, मर्यादा (उपन्यास), जैसे पहर की खोज, अंतिम प्रजापति' (कहानी), सत्य प्रकाश संगर 'कली मुस्कुराई, घर की आन (उपन्यास), लम्बे दिन जलती रात, नया मार्ग (कहानी), विष्णु प्रभाकर 'आदि और अन्त, रहमान का बेला (कहानी), दर्पण का व्यक्ति इत्यादि उपन्यास' सुदर्शन 'तीर्थ यात्रा, पुष्पला (कहानी संग्रह), परिवर्तन, प्रेम पुजारिन (उपन्यास), पृथ्वीनाथ शर्मा 'पंखुड़िया, उदय अस्त (कहानी संग्रह), युग-सन्देह, पूर्ण बिराम (उपन्यास) वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता 'शिमले की आइसक्रीम, 'मिट्टी पर नंगे पांव (कहानी संग्रह),

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, 'वापसी', चन्द्रकला (कहानी संग्रह), 'न्याय की रात' (नाटक, सत्यकाम विद्यालंकार, जयनाथ, 'नलिन', डॉ. संसार चन्द्र, 'हंसराज रहबर', चिरजीत त्रिलोकीनाथ 'रंजन', ओमप्रकाश आनन्द, दुर्गादत्त मेन, कुलदीप बग्गा वशिष्ट साहित्यकार रहे है।

भीष्म साहनी 'भाग्य रेखा', पहला पाठ (कहानी संग्रह), तमस, बसन्ती (उपन्यास), हानूश, कबिरा खड़ा बाजार में (नाटक) इत्यादि। दीप्ति खण्डेवाल 'धूप के अहसास', वह तीसरा, (कहानी संग्रह), जयनाथ नालिन 'जवानी का नश, झुरमुट (कहानी संग्रह) इत्यादि, कुलभूषण 'पगडण्डी' (कहानी संग्रह), 'मोहन चोपड़ा' नीड़ से आगे (लघु उपन्यास) घूमते नक्षत्र (उपन्यास) इत्यादि। रजनी पनिकर 'ठोकर (उपन्यास) इत्यादि, देवेन्द्र सत्यार्थी 'रथ के पहिरा, कठपुतली (उपन्यास), तेरी कसम सतलुज (आत्मकथा), कृष्ण बलदेव वैद 'उसका बच्चन' नर-नारी (लघु उपन्यास) आदि, किशोरी लाल गोस्वामी 'वासिनो, राजकुमारी इत्यादि।

'नानक सिंह' पंजाबी के साथ-साथ हिन्दी में मझधार, कलाकार (उपन्यास) आदि, का लेखन किया। 'अमृता प्रीतम' ने भी पंजाबी के साथ-साथ हिन्दी में 'दीवारों के साए में' (कहानी), 'पिंजर (उपन्यास) रसीदी टिकट' (आत्मकथा) का लेखन किया। 'मनमोहन सहगल' 'जिन्दगी और जिन्दगी, अन्ना पासवान, 'हददर्शन दास सहराई' 'लोहगढ़' (उपन्यास) सोहन सिंह शीतल ने हिन्दी रचनाओं का अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त पंजाब सौरभ में भी कई रचनाएं प्राप्त हुई। "अपराधबोध 'नीना कुमार', भाग्यचक्र (दिनेश पाठक), लेड़ी किलर (किशन लाल शर्मा), खुशबू (अनुपम सक्सेना), चवन्नी (जसविन्द्र शर्मा), सिक्के का दूसरा पहलू (डॉ. शीतांशु), बुर्जुआ (राम प्रकाश मेहंदीरत्ता), दो साल पहले (डॉ. उमाशंकर दीक्षित), नियित तथा अन्य कहानियां (डॉ. मधु संधु), सेतु (शकुन्तला बृजमोहन इत्यादि।" इसके साथ ही संतोष, यश, योगेन्द्र मोहन, शकुन्तला श्रीवास्तव, राकेश चौहान, शिवदत्त सूद, महेन्द्र, रजनीश कुमार, तारानाथ आदि साहित्यकार रहे।

'मणिका मोहिनी' 'खत्म होने के बाद, 'अभी तलाश जारी है', (स्वप्न देश) इत्यादि। कमलादत्त (सलीब पर टंगी मछली) इत्यादि। 'रविन्द्र कालिया', नौ साल छोटी पत्नी, गरीबी हटाओ (कहानी संग्रह), भगवान सुरक्षित है (उपन्यास), स्मृतियों का ज्ञापन (संस्मरण), इत्यादि।, 'ममता कालिया', 'सील न. 6', 'एक अद्द औरत', इत्यादि। इसके साथ ही डॉ० हरमहेन्द्र सिंह बेदी, हेमराज निर्मम, ज्ञानसिंह, बलराज साहनी, सूद नरेन्द्रनाथ, गुलशन नन्दा, गोविन्द सिंह, गुरुबचन सिंह, कुलभूषण रामलाल, सत्यकाम विद्यालंकार, जयनाथ, डॉ. संसार नन्द, हंसराज रहबर, चिरंजीव, त्रिलोकीनाथ, ओमप्रकाश आनन्द, दुर्गदत्त मेनन, यश, रजनीश कुमार, तारानाथ, महेन्द्र भल्ला, देवेन्द्र इस्सर, मोहन चोपड़ा, श्रीमती विजय चौहान, सिम्मी हर्षिता, कुलदीप बग्गा, पाल भसीन, राकेशवत्स, स्वदेश दीपक, डॉ. नरेश, अनिता राकेश, राजेन्द्र शर्मा, कृष्ण भावका, सतीस जमाली, रमेश बत्तरा, सरोज सागर, पृथ्वीराज, अन्नपूर्णा, विनोद शाही, फूलचंद मानव, विकेश निझावना, उपा चौधरी, कमलेश बख्शी, इन्दिरा मित्तल हैं।

कहानी में नवीन दृष्टि से जनक कृष्ण तथा बलदेव वैद, साठोत्तरी पंजाब के कहानीकार है। पंजाब के निबंधकार 'बालमुकुन्द गुप्त' और माधवप्रसाद ऐसे रचनाकार है जिन्होंने निबंध विधा को रूपायित करने का काम किया। शोध, आलोचना, समीक्षा, पांडुलिपिओ को अनुवाद कर देवनागरी लिपि में संपादित करना, रचनाओं की समीक्षा, इत्यादि में भी पंजाब के साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आलोचना के क्षेत्र में 'बाबू श्यामसुंदर दास' 'अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' इत्यादि समीक्षकों में मुख्य रूप से डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. संसारचन्द्र, डॉ. लक्ष्मीचंद्र खुराना, सरनदास मनौत, डॉ. जयनाथ 'नलिन', अज्ञेय', डॉ. सूर्यकांत, हंसराज रहवर आदि है।

समालोचना शोध, समीक्षा में डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, डॉ. रकेश कुंतल मेघ, डॉ. मनमोहन सहगल, डॉ. रत्नसिंह जग्गी, डॉ. जयभगवान गोयल, डॉ. धर्मपाल मैनी, डॉ. महीप सिंह, डॉ. चरणदास शास्त्री, डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री. डॉ. जान चन्द्र शर्मा, डॉ. सुदर्शन सिंह मजीठिया, गुरुचरण सिंह 'पद्म' डॉ. प्रेमसागर शास्त्री, डॉ. हेमराज निर्मम, डॉ. धर्मपाल सरीन, डॉ. नरेन्द्र मोहन, डॉ. पृष्पपाल सिंह, डॉ. आतुलबीर अरोड़ा, प्रो. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु', 'डॉ. लालचंद गुप्त, डॉ. मनमोहन सहगल, डॉ. योगन्द्र बख्शी, डॉ. महीपसिंह, डॉ. सूतदेव हंस, डॉ. बलवीर सिंह (माधवानल कामकंदला), डॉ. सरनदास भनोत, श्याम स्नेही डॉ. गोविन्दनाथ (गोसटि गुरु मिहरबान), डॉ. रत्न सिंह जग्गी (पुरातन जन्म साखी), डॉ. जयभगवान गोयल (संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज) व अन्य साहित्य डॉ. मनमोहन सहगल (गुरु विलास पा. तथा सुदामा चरित्र) पाण्डुलिपिकारों में, साहब सिंह, मृगेन्द्र, साहबदास जातिराम, अमरीदास, सुक्खा सिंह, संतोष सिंह, निर्मला रजंत, पटियाला-नामा फरीदकोट आदि के दरबारी कवि के संबंध में है।

अंत कहा जा सकता है हिन्दी साहित्य में पंजाब के गद्य साहित्यकार का विशेष योगदान रहा है। विभिन्न विधाओं से जुड़े यह साहित्यकार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी निरन्तर प्रकाशित होते रहे है। हिन्दी साहित्य की नवीतम विधाओं पर पंजाब के हिन्दी साहित्यकार आज भी भरपूर लेखन कर रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंजाब का हिन्दी साहित्य, मनमोहन सहगल, (पटियाला लीना पब्लिशर्ज, 1934), पृष्ठ-1
2. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, जयभगवान गोयल, (पटना: हिन्दी साहित्य संसार, 1970), पृष्ठ-2
3. वही, पृष्ठ-3
4. पंजाब का हिन्दी साहित्य, मनमोहन सहगल, (पटियाला: लीना पब्लिशर्ज, 1934), पृष्ठ-6
5. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, जयभगवान गोयल, (पटना: हिन्दी साहित्य संसार, 1970), पृष्ठ-4
6. पंजाब का हिन्दी साहित्य, हरमहेन्द्र सिंह बेदी, (दिल्ली: निर्मल पब्लिकेशन्स, 2003), पृ-160
7. वही, पृष्ठ-161
8. वही, पृष्ठ-162
9. वही, पृष्ठ-165-166
10. वही, पृष्ठ-168
11. वही, पृष्ठ-170

महादेवीवर्मा के गद्य लेखन में स्त्री प्रश्नः श्रृंखला की कड़ियाँ के सन्दर्भ में

सुश्रीजगवती

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री टीका राम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़

स्त्री और पुरुष समाज की संरचना के महत्वपूर्ण अंग हैं। दोनों की निर्मिति प्रकृति ने, एक मनुष्य के रूप में समान तरह से की, लेकिन हम समाज के परिप्रेक्ष्य में उनकी भिन्न स्थिति पाते हैं। चाहे भारत होया अन्य देश हर जगह यही स्थिति हैप एक लम्बे समय के बाद यही मानव निर्मित व्यवस्था, परम्परा के नाम पर एक रूढ़ी बतौर पीढ़ी दर पीढ़ी स्थापित होने लगती है।

प्रत्येक समाज में यौनिकता के आधार पर स्त्री- पुरुष के कार्य क्षेत्र निर्धारित किए गए हैं जिसमें स्त्री का कार्यक्षेत्र सर्वप्रथम घर की चारदीवारी के अन्दर सीमित होता है और पुरुष का उससे बाहर। इसी को स्त्रीत्व और पुरुषत्व के नाम से परिभाषित भी कर दिया जाता है। इस व्यवस्था में परिवार नामक संस्था उभरती है, जिसमें पुरुष का वर्चस्व स्थापित होता है। जब यह व्यवस्था पूरे समाज में अपनी जड़ें जमा लेती है तो, स्त्री-पुरुष की सामाजिक स्थिति भी तय कर दी जाती है। इसे एक सामाजिक नियम का जामा पहना दिया जाता है और स्त्री अधिकारों को बेहद संकुचित कर दिया जाता है। यह अलग-अलग भू-क्षेत्रों में कुछ भिन्न तरह से भी होती है। 'प्रमुख नारीवादी मानवशास्त्री मार्गरेट मीड ने अपने अध्ययन से यह साबित किया है कि पुरुषत्व और स्त्रीत्व की धारणा हर संस्कृति में अलग है। एक दूसरे से अलग संस्कृतियों में न कुछ विशेष लक्षणों के समुच्चय को स्त्रीत्व का और दूसरे समुच्चय को पुरुषत्व का पर्याय माना जाता है बल्कि हर संस्कृति में ये लक्षण भी अलग-अलग तरह के पाए जाते हैं।'[1] जब इस व्यवस्था पर नारीवादी विचारक आपत्ति जताते हैं तब स्त्री प्रश्न को केंद्र में रखकर एक नई सामाजिक व्यवस्था को निर्मित करने के उद्देश्य से वे एक नई विचारधारा को जन्म देते हैं। पश्चिमी देशों में यह बहुत पहले शुरू हो गया था लेकिन भारत में ये मुखर रूप से कुछ बाद में आया।

यह सत्य है कि साहित्य समाज की छवि प्रस्तुत करता है, कुछ वैसा जैसा कि वह दिख रहा होता है और बहुत कुछ नया; संशोधित रूप भी दिखाने का काम किसी भी भाषा का साहित्य करता है। हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा का नाम सर्वमान्य और प्रसिद्ध है। उनकी चिंतन रश्मियाँ हिंदी गद्य और पद्य दोनों को ही प्रकाशित करती हैं। पद्य में जितनी भावप्रवणता और आत्मानुभूति है, उतनी ही वैचारिक सघनता और तार्किकता उनके गद्य साहित्य में दृष्टिगत होती है।आज स्त्री विमर्श एक बहुत चर्चित एवं स्थापित साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित हो चुका है। सिमोन द बवुहाका नाम स्त्री विमर्श में अग्रणी है जिसने स्त्री जीवन पर 'द सेकेण्ड सेक्स'नामक कृति लिखी, जो सन 1949 ईस्वी में प्रकाशित हुई, किंतु हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा इस रचना के पहले ही सन 1931 में ही 'श्रृंखला की कड़ियां' नामक गद्य रचना में, स्त्री-जीवन, उसके संघर्ष को; भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करती हैं।यूं तो महादेवी वर्मा आधुनिक काल की छायावादी युग की प्रमुखकवयित्री हैं। उनकी भाव सरणियाँ सभी को भिगोने में सक्षम है; लेकिन गद्य लेखन में उनके चिंतन का पैनापन सबको आश्चर्य चकित करता है। भाव एवं तर्क की सुंदर मिसालमहादेवी वर्मा जैसा व्यक्तित्व मिलना दुर्लभ है। 'श्रृंखला की कड़ियां' नामक रचना में महादेवी वर्मा स्वयं कहती हैं कि 'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।'[2] एक साहित्यकार जब समाज के विभिन्न समस्याओं से जूझता है, टकराता है; उसका विश्लेषण करता है तो उसे बेबाकी से प्रस्तुत करना भी आवश्यक हो जाता है। यह बेबाकीपन महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग है। संवेदनशील व्यक्ति जब निर्भीक होकर अभिव्यक्ति करता है, तो उसकी लेखनी स्वत: विशिष्ट हो जाती है। उनके इस विद्रोही और बेबाकीपन को कृष्णदत्त इस तरह लिखते हैं 'महादेवी की विद्रोही चिंतन प्रवृत्ति ने स्त्री विमर्श से संबंधित प्रश्नों-चिंताओं को परिधि से केंद्र में ला दिया। उन्होंने नारी प्रश्नों से जुड़े उन तमाम प्रश्नों पर गहराई से संकेत किया, जिन्होंने वर्तमान समय की एक पूरी पीढ़ी को सोचने के लिए विवश किया।'[3]

एक साहित्यकार समाज की उस छवि को भी अपने साहित्य में दिखाता है जो शायद सबकी नजरों से अछूती रह गई हो, जिसे देखना उतना जरुरी नहीं समझा गया हो; जितना कि अन्य विषयों को।महादेवी जी की साहित्य साधना अज्ञात की खोज और उसे पहचान दिलाने का साहसिक प्रयास है। 'श्रृंखला की कड़ियां' में उन्होंने स्त्री, विशेषकर भारतीय स्त्री-जीवन के विभिन्न प्रश्नों को उठाया है। स्त्री अधिकार, स्त्री-पुरुष का समाज में विभिन्न स्तर, स्त्री के घर और बाहर की स्थिति, स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न, मातृत्व एवं पत्नीत्व का संघर्ष आदि विभिन्न मुद्दों को मुखरित किया है। भारतीय सामाजिक सरंचना में स्त्री-पुरुष अधिकारों में बहुत अंतर है, जिसका कारण है पितृसत्तात्मक व्यवस्था। 'पितृसत्ता जन्म से ही लड़कों को कुछ विशेषाधिकार देती हैजो उन्हें स्त्रियों से श्रेष्ठ सुपीरियर सेक्स बनाते हैं और इस तरह समाज में एक लैंगिक गैर-बराबरी कायम होती है।'[4] यह गैर-बराबरी स्त्री जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करती है। 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियाँ अवांछित नहीं होतीं बल्कि अपनी यौनिकता, कोख और श्रम से पितृसत्ता के कारोबार को आगे बढाने में सहायक होती है इसलिये पितृसत्ता उन्हें नियंत्रित, अनुकूलित और प्रशिक्षित करती है, रूढ़ भूमिकाएं देती है, पुरस्कृत और दण्डित करती है।'[5] स्त्री के प्रति इस मानसिकता का परिणाम होता है समाज में असमानता प्समाज में मनुष्य जन्म लेता है और समाज के नियमों का निर्धारण भी यह मनुष्य ही करता है।

महादेवी वर्मा लिखती हैं कि 'समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की उन्नति के लिए तथा उसके सर्वतोंन्मुखी विकास के लिए आविष्कृत किए गए हैं। जब वे ही मनुष्य के विकास में बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती।'[6] इन पंक्तियों में लेखिका समस्या के साथ-साथ उसके निराकरण की आधुनिक सोच को भी दिखाती हैं। उनकी निगाह में नियम जब मनुष्यता का हनन करने लगे तो उनको बदलना उचित है। इस विचार को स्त्री विमर्श पुरजोर समर्थन करता है जिससे बरसों से खोखले और अमानवीय नियमों की जंजीरों से स्त्री मुक्त हो सके।

भारतीय समाज व्यवस्था अनेक स्तरों पर विभाजित है। किसी भी प्रकार की व्यवस्था हो उसमें सबसे अधिक उपेक्षित स्त्री समाज ही रहा है। दोगले नियमों की अनेक श्रृंखलाएं स्त्री के व्यक्तित्व को उन्नयन में बाधक हैं, उसे बंदनी ही बनाए रखने के लिए बाध्य करती हैं, जिन्हें तोड़ने का प्रथम प्रयास स्त्री को ही करना पड़ेगा। अपार शक्ति और अनंत संभावनाओं का नाम है, स्त्री और इसे सिद्ध करने के लिए उसे अपनी शक्ति का आह्वान करना ही होगा। 'जो देश के भावी नागरिकों की विधाता है, उनकी प्रथम और परम गुरु है, जो जन्म भर अपन ेआप को मिटाकर, दूसरों को बनाती रहती हैं, वे केवल तभी तक आदरहीन मातृत्व तथा अधिकार शून्य पत्नीत्व स्वीकार करती रह सकेंगी, जब तक उन्हें अपनी शक्ति का बोध नहीं होता।'[7]

महादेवी जी के चिंतन के पड़ाव समाज, राजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था, संस्कृति आदि बहुत से हैं। यह भले ही भिन्न दिखाई देते हैं, परंतु इन सब का एक दूसरे से क्षैतिज प्रभाव संबंध है अर्थात किसी व्यक्ति के जीवन में इनमें से कोई भी व्यवस्था परिवर्तित होती है तो अन्य भी स्वत: परिवर्तित होते चले जाते हैं। प्राचीन समय से चली आ रही पितृसत्तात्मक मानसिकता के कारण इन परिवर्तनों को सबसे अधिक,समाज का अर्धांग कहे जाने वाले स्त्री समाज पर देखा जा सकता है। स्त्री को पुरुष के वैभव और मनोरंजन के साधन मात्र होने से स्त्री एक माता और पत्नी की भूमिका में ही आदर्श मानी जाने लगी। एक स्वतंत्र विचार रखने वाले व्यक्ति और नागरिक के रूप में वह कहीं नहीं दिखाई पड़ती। इस पुरानी भारतीय व्यवस्था को बदलने के लिए स्त्री का प्रयास और पुरुष की उदारता दोनों वांछनीय है क्योंकि घर से जब स्त्री बाहर के वातावरण में पदार्पण करती है, तो उसे पुरुषों की तरह ही अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार अन्य लोगों से मिलना जुलना पड़ेगा ही और ऐसा होने पर पुरुष को अपनी सोच की पुरानी पारम्परिक पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ें उखाड़नी पड़ेंगी जिससे एक नई सरंचना एक नया समाज जन्म ले।

समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका उपयोग ही उसके अधिकार निश्चित करता रहता है और इस प्रकार हमारे अधिकार हमारी शक्ति और विवेक के सापेक्ष रहेंगे प्उनका मानना है किपीढ़ियों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक नियमों को आदर्श मानकर पालन करने वाली स्त्री व्यक्तिगत हानि तो करती ही है, साथ ही समाज के विकास में भी बाधक होती है। इसलिये उनको अपने अधिकारों के प्रति सोचना ही पड़ेगा।

महादेवी वर्मा का मानना है, कि जो स्त्रियाँ कुछ क्षेत्रों में परंपरा के विरुद्ध संघर्ष करके अन्य से अलग स्थिति में हैं, उन्हें भी संवेदनशील होने की आवश्यकता हैप् वे लिखती हैं 'इतनी शिक्षा, इतनी बुद्धि, इतने साधन, इतना अवकाश और स्वावलंबन पाकर भी यदि वे अन्य बहिनों के प्रति निधि न बन सकी, यदि वे उनके त्यागमय जीवन को अवज्ञा से देखती रहीं तो सारे समाज का अनिष्ट होने की सम्भावना सत्य हुए बिना न रहेगी।'[8] महादेवी जी जिस उदारता को पुरुषो के लिए आवश्यक मानती हैं वही उदारता स्त्रियों (आज की आधुनिक नारी) के लिए भी जरूरी समझती हैं। लेखिका सुजाता, महादेवी वर्मा की इसी बात को वर्तमान समय में 'वैश्विक बहनापा' (यूनिवर्सल सिस्टरहुड) की संज्ञा देती हैं।

अत: जिस स्त्री विमर्श को आज हम इतने उन्नत रूप में पाते हैं, उसकी नींव कहीं न कहीं महादेवी वर्मा के 'श्रृंखला की कड़ियाँ' निबंध में हम पाते हैं। उनके इस निबंध में वे स्पष्ट करती हैं कि 'हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय; न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान; वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृतऔर साधन संपन्न बहिनें इस दिशा में विशेष महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी, इसमें संदेह नहीं।'[9]

संदर्भ

1 निवेदिता मेनन, नारीवादी निगाह से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2024, पृष्ठ संख्या 63-64
2 महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, छठा संस्करण 2023, पृष्ठ संख्या 10
3 कृष्णदत्त पालीवाल, नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचना कर्म, स्त्री विमर्श के स्वर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठसंख्या 08
4 सुजाता, दुनिया में औरत, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पहला संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 15
5 वही, पृष्ठ संख्या 15
6 महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ संख्या 21-22
7 वही, पृष्ठ संख्या 22
8 महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ संख्या 25
9 वही, पृष्ठ संख्या 23-24

शिक्षक शिक्षा के संदर्भ में हिंदी साहित्य का महत्व

डॉ० मो० वकार रजा

असिस्टेंट प्रोफेसर (बी.एड.) स्वतंत्रता संग्राम सेनानी विश्राम सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर

शोध सार

शिक्षा की व्यवस्था हो चाहे व्यवस्था की शिक्षा दोनों की स्थिति में भाषा का महत्व सर्वविदित है। व्यावहारिक जीवन शैली हो चाहे अध्ययनशीलता का ककहरा सीखना हो, भाषा के बिना सब व्यर्थ है। बिना भाषा के सीखें, समझें और जानने के कुछ भी सीखना असंभव है। बात जब ककहरे की हो तो मातृकुल परिवेश की भाषा यानी मातृभाषा का महत्व स्वीकारा गया हैं।

भारत एक भाषाई बिन्दुमाला है, जहां देश भर में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। हिंदी, सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक के रूप में, विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को जोड़ने का कार्य करती है। हिंदी माध्यम शिक्षा भाषाई विविधता को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, विविध भाषाई समूहों के बीच संचार के लिए सामान्य धरोहर प्रदान करके। इसके साथ ही, हिंदी केवल एक भाषा नहीं है; यह हमारी सांस्कृतिक पहचान का एक अभिन्न हिस्सा है। हिंदी को शिक्षा में अपनाने से छात्र अपनी जड़ों से जुड़ सकते हैं, पारंपरिक साहित्य, लोककथाएँ और इतिहास को समझ सकते हैं, जो हिंदी में लिखे गए हैं, और अपने धरोहर के प्रति गहरी सराहना कर सकते हैं। इसे अपनी जड़ों से जुड़ने से एक आत्मा का आभास और राष्ट्रीय गर्व पैदा होता है।

शिक्षक शिक्षा की बात की जाए तो वर्तमान संदर्भ में इसे बेहद संकुचित अर्थों में देखा जाने लगा है। शिक्षा का अर्थ स्कूली ज्ञान तक सीमित मान लिया जाता है, जब कि ज्ञानवान मनुष्यों का मानना है कि व्यक्ति की शिक्षा जीवन के नैरंतर्य के साथ-साथ चलती रहती है। शिक्षक शिक्षा में साहित्य की प्रासंगिकता को कदापि नकारा नहीं जा सकता। शिक्षा और साहित्य दोनों ही मानवीय अभिवृद्धि के अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष हैं। शिक्षक शिक्षा के अंतर्गत जो ज्ञान सिद्धांतों द्वारा प्रदान किया जाता है, वही ज्ञान साहित्य के द्वारा रोचकता के साथ दिया जाता है। रामधारी सिंह दिनकर अपने काव्य संग्रह चक्रवाल की भूमिका में लिखते हैं कि "बुद्धि पर जमी हुई पपड़ियाँ विज्ञान के शोधों से टूटती हैं, किंतु मनुष्य के हृदय पर की पपड़ियों को तोड़ने का काम नाटक, उपन्यास, चित्र, संगीत और कविताएँ ही करती हैं।" साहित्य इन्हीं पपड़ियों को तोड़कर एक संवेदनशील मनुष्य को गढ़ता है, जिसकी आवश्यकता दिन-प्रति-दिन अमानवीय होते जा रहे समाज को है।

प्रस्तावना

साहित्य का शाब्दिक अर्थ सहभाव है। सहभाव शब्द और अर्थ के मध्य विद्यमान होता है। साहित्य की परिभाषा इतनी व्यापकता लिए हुए है कि इसमें संपूर्ण मानव जीवन समाहित किया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम साहित्य है।' दोनों विद्वानों की परिभाषाओं को ध्यान में रखकर सामान्य बात जो सामने आती है वह यह है कि सर्वप्रथम तो साहित्य प्रगतिशील होता है और इसके अंतर्गत हमारे समाज से संबंधित महत्वपूर्ण, सूक्ष्म तथा गहन ज्ञान समाहित होता है।

शिक्षा की बात की जाए तो वर्तमान संदर्भ में इसे बेहद संकुचित अर्थों में देखा जाने लगा है। शिक्षा का अर्थ स्कूली ज्ञान तक सीमित मान लिया जाता है, जब कि ज्ञानवान मनुष्यों का मानना है कि व्यक्ति की शिक्षा जीवन के नैरंतर्य के साथ-साथ चलती रहती है। शिक्षा में साहित्य की प्रासंगिकता को कदापि नकारा नहीं जा सकता। शिक्षा और साहित्य दोनों ही मानवीय अभिवृद्धि के अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष हैं। शिक्षा के अंतर्गत जो ज्ञान सिद्धांतों द्वारा प्रदान किया जाता है, वही ज्ञान साहित्य के द्वारा रोचकता के साथ दिया जाता है। रामधारी सिंह दिनकर अपने काव्य संग्रह चक्रवाल की भूमिका में लिखते हैं कि "बुद्धि पर जमी हुई पपड़ियाँ विज्ञान के शोधों से टूटती हैं, किंतु मनुष्य के हृदय पर की पपड़ियों को तोड़ने का काम नाटक, उपन्यास, चित्र, संगीत और कविताएँ ही करती हैं।" साहित्य इन्हीं पपड़ियों को तोड़कर एक संवेदनशील मनुष्य को गढ़ता है, जिसकी आवश्यकता दिन-प्रति-दिन अमानवीय होते जा रहे समाज को है।

यह कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। इसी मायने में, शिक्षा साहित्य शिक्षा जगत का दर्पण है। शिक्षक और बच्चे हर रोज अपने घर से निकलते हैं, स्कूल जाने के लिए तैयार होते हैं, और घर छोड़ने से पहले दर्पण के सामने जाकर अपने चेहरे को संवारते हैं। लेकिन बिना शिक्षा साहित्य को पढ़े, हम मान सकते हैं कि शिक्षक बिना दर्पण देखे स्कूल जा रहे हैं।

1930 के दशक में गिजुभाई द्वारा लिखी गई किताब "दिवास्वप्न" में दर्पण का एक जिक्र है जहां वह बताते हैं कि बच्चे कैसे अपने बाल सजाकर, दांत साफ कर और साफ कपड़े पहनकर स्कूल आते हैं। उन्होंने इसके लिए स्कूल में दर्पण की व्यवस्था करवाई थी। एक रूपक के रूप में, दर्पण बहुत महत्वपूर्ण है। बिना शिक्षा साहित्य से रूबरू होए, शिक्षा में लगे लोग बिना दर्पण देखे अपने कार्य कर रहे हैं, जिससे सुधार या बदलाव की संभावना कम हो जाती है।

शिक्षा साहित्य

मोटे तौर पर, वे सभी लेख, किताबें, शोध पत्र, कविताएं, इत्यादि हैं जो स्कूल की दुनिया के आसपास लिखी गई हैं, जिनमें बच्चों, शिक्षकों, किताबों का जिक्र है। मैं कई शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में साथियों से पूछता हूं कि क्या वे कुछ पत्रिकाओं का नाम साझा कर सकते हैं जो नियमित रूप से इन मुद्दों पर प्रकाशित होती है। अक्सर, निराशा ही हाथ लगती है। शिक्षा विमर्श, संदर्भ, पाठशाला भीतर और बाहर, लर्निंग कर्व, इत्यादि जैसे कुछ पत्रिकाओं का नाम मैं उनसे साझा करता हूं! और इसके बाद, मैं उनसे पूछता हूं कि कितनों ने इन पत्रिकाओं को कभी पढ़ा है? अधिकतर शिक्षक मानते हैं कि उन्होंने ऐसी पत्रिकाएं कभी पढ़ी नहीं हैं। यहाँ तक कि कई शिक्षक तो इन पत्रिकाओं के मौजूदगी से भी अनभिज्ञ होते हैं।

यह चर्चा हमें इस बात पर विचार करने पर मजबूर करती है कि हमारे शिक्षा प्रणाली में शिक्षा साहित्य की आवश्यकता को कितना महत्व दिया जाता है। क्या हम अध्यापकों को यह समझाने के लिए प्रयासशील हैं कि उनका पेशेवर विकास शिक्षा साहित्य के माध्यम से भी हो सकता है? अगर हम शिक्षा के विकास और उसकी प्रगति की दिशा में चरण रखना चाहते हैं, तो शिक्षा साहित्य को अध्यापकों, विद्यार्थियों और शिक्षा जगत के अन्य प्रतिभागियों तक पहुँचाने की जरूरत है। इससे उन्हें न केवल नई जानकारी मिलेगी बल्कि वे अपने विचार और सोच में भी विस्तार पा सकेंगे।

हमें यह समझना होगा कि शिक्षा साहित्य केवल एक विषय या अध्ययन क्षेत्र नहीं है, बल्कि यह शिक्षा के प्रत्येक पहलु में उत्तराधिकार और संवाद का माध्यम है। स्कूल की दुनिया में होने वाले दैनिक कार्य को हम एक दिनचर्या का हिस्सा मान सकते हैं, लेकिन इसी दिनचर्या के माध्यम से समाज, राजनीति, और अर्थव्यवस्था अपने तंत्र को न सिर्फ लोगों तक पहुंचाती है बल्कि लोगों को उसे मानने और उसे आगे बढ़ाने के लिए तैयार करती है। इसके तरफ हमारा ध्यान उस दिन जाता है जब हम किसी व्यक्ति को अपने आसपास ऐसा आचरण या ऐसा विचार अभिव्यक्त करते हुए देखते हैं, जहां अनायास ही हमारे मुंह से निकलता है "इतने पढ़े-लिखे होने के बावजूद भी यह ऐसा सोचता है या यह ऐसा व्यवहार कर रहा है।" यह याद दिलाता है कि जिस शिक्षा व्यवस्था से वह व्यक्ति निकल कर आया है, वहां शिक्षा देने और ग्रहण करने की प्रक्रिया मशीनी थी।

शिक्षा-साहित्य को आधार बनाकर जब हम स्कूल की दुनिया की गतिविधि का आकलन करते हैं तो पाते हैं कि किताबों में लिखा हर शब्द, शिक्षकों द्वारा कही जाने वाली हर बात, स्कूल की दीवारों पर लगे हर पोस्टर, स्कूल के नियम और कानून, एक बड़ी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का परिचालक है। बिना शिक्षा-साहित्य के हम उसे डिकोड नहीं कर पाते हैं। यह सवाल पूछा जा सकता है कि ठीक है, इसमें क्या परेशानी है? इसमें परेशानी यह है कि हम अनवरत रूप से गैर बराबरी, धार्मिक, जातीय-भेदभाव, लैंगिक असमानता, जैसे महत्वपूर्ण विषयों को अनजाने में ही बढ़ावा देते रहते हैं। समाजशास्त्री इसे सामाजिक पुनरुत्पादनका सिद्धांत कहते हैं। कृष्ण कुमार के द्वारा लिखी हुई किताब "चूड़ी बाजार में लड़की" को पढ़ते हुए आपको एहसास होगा की लैंगिक समानता के मसले पर हम बहुत कुछ हासिल नहीं कर पाए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि, उर्मिला पवार, कांचा इलाया के लेखों और किताबों को पढ़ते हुए आपको एहसास होगा की जाति आधारित भेदभाव को कम करने में हमें कोई ज्यादा सफलता नहीं हासिल हुई है। और धार्मिक भेदभाव को समझने के लिए तो किसी साहित्य को पढ़ने की जरूरत भी नहीं है।

साहित्य और संस्कृति

साहित्य किसी संस्कृति का ज्ञात कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए भक्तिकाल के सहित्य से हमें हिन्दुओ के धार्मिक परंपराओं की जानकारी मिलती है। किसी भी काल का अध्ययन से हम तत्कालीन मानव जीवन के रहन-सहन व अन्य गतिविधियों को आसानी से जान सकते हैं। साहित्य से हम अपने विरासत के बारें में सीख सकते हैं। इस तरह भारतीय सभ्यता और मूल्य, साहित्य में सुरक्षित है और वर्तमान पीढ़ी इनको पालन कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य द्वारा कबीर, तुलसी दास, प्रेम्चंद और यश पाल जैसे कवी एवं लेखक के प्रतिभा दुनिया को दिखाया गया है। जब हमारा देश अंग्रेजी सत्ता का गुलाम था तब साहित्यकारों की लेखनी की ओजस्विता राष्ट्र के पूर्व गौरव और वर्तमान दुर्दशा पर केंद्रित थी। इस दृष्टी से साहित्य का महत्व वर्तमान में भी बना हुआ है। आज के साहित्यकार वर्तमान भारत की समस्याओं में पर्याप्त स्थान दे रहे हैं।

हर देश की भाषा उनके संस्कृति और सभ्यता को पेहचान देती है। साहित्य समाज और संस्कृती का दर्पण है। कुछ हिन्दी उपन्यास और कहानी अंग्रेजी मे अनुवाद किया गया है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द का 'गोदान' जय रतन और पि० लाल ने अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया। हिन्दी साहित्य का अनुवाद भारत को एक उँचा स्तान पर पहुँचाया है।

साहित्य के माध्यम से लोग अपने विचार प्रकट कर सकते है और इन विचारों से देश और समाज की प्रगती होती है।

सन्दर्भ सूची-

डॉ हरेंद्र सिंह अनुसंधान एक शिक्षक शिक्षा के मुद्दे आर लाल प्रकाशन मेरठ

डॉ एसपी भारतीय इतिहास विकास एवं समस्याएं शारदा प्रकाशन इलाहाबाद

डॉ सुरेंद्र अध्यापक शिक्षा शारदा प्रकाशन इलाहाबाद

राष्ट्रीय शिक्षा का ड्राफ्ट 2019

https://www.google.com/url?sa=t&source=web&rct=j&opi=89978449&url=https://ijcrt.org/papers/IJCRT2009211. pdf&ved=2ah UKEwizp5q EjeWEAx U2TGwGHQdj CVA4ChAWegQIBRAB&usg =AOvVaw1-2DqKHKLCTFXwHkJbf5l7

https://www.drishtiias.com/hindi/blog/relevance-of-literature-in-education#:~:text=%E0%A4%B6%E0%A4%BF%E0%A4% 95% E0%A5% 8D% E0%A4% B7% E0%A4% BE% 20% E0%A4%AE% E0%A5% 87% E0%A4% 82% 20% E0%A4% B8% E0%A4% BE% E0%A4% B9% E0%A4% BF% E0%A4%A4% E0%A5% 8D% E0%A4%AF% 20% E0%A4% 95% E0%A5% 80% 20% E0%A4% 86% E0%A4% B5% E0%A4% B6% E0%A5% 8D% E0%A4%AF% E0%A4% 95% E0%A4%A4% E0%A4% BE,% E0%A4%AA% E0%A4% B0% E0%A4% BF% E0%A4% B5% E0%A4% B0% E0%A5% 8D%E0%A4%A4% E0%A4%A8% 20% E0%A4%A6% E0%A5% 87% E0%A4% 96% E0%A4%A8% E0%A5% 87% 20% E0%A4% 95% E0%A5% 8B% 20% E0%A4%A E% E0%A 4% BF% E0%A4% B2% E0%A4%A4% E0%A4% BE% 20% E0%A 4% B9% E0%A 5% 88% E0%A5%A 4

सारा आकाश उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण

मो० जहाँगीर

शोधार्थी, हिंदी-विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)

शोध-सार: साहित्य में उपन्यास एक ऐसी विधा के रूप में स्थापित हुआ, जिसमें मानव के जीवन की जटिलता और अंतर्विरोध को समग्रता से चित्रित किया जा सकता है। इस प्रकार की समग्रता का किसी अन्य विधा में विद्यमान होना जटिल ही नहीं बल्कि असंभव-सा प्रतीत होता है। इसलिए इस विधा में सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी खुले अर्थात स्पष्ट शब्दों में मुखरित हुआ है। राजेंद्र यादव का उपन्यास सारा आकाश बाह्य तौर पर भले ही युवा पीढ़ी के वर्तमान की त्रासदी और उसके अस्तित्व एवं अस्मिता के संघर्ष के द्वंद्व को समेटे हुये दिखाई देता हो, किंतु जब इसे नितांत गहनता से अध्ययन करते हैं तब इसमें अन्य बहुत-सी समस्याएं जैसे अनैच्छिक एवं बाल-विवाह, दहेजप्रथा, स्त्री-शोषण, विवाहेतर-संबंध, शैक्षिक असमानता के कारण विवाह-विच्छेद, रोजगार का अभाव, संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट, पारिवारिक-विघटन, प्राचीन संस्कृति की जड़ता और रूढ़िवादी परम्पराएँ आदि तथा अन्य समस्याएँ भी उभरकर सामने आती हैं, जो हमारे समाज में आज भी मकड़ी के जाले के समान मौजूद हैं। यह ऐसा जाला है, जिसमें मनुष्य मक्खी या कीड़े-मकोड़ों के जैसा उलझ कर रह जाता है और ये समस्याएं निर्बाध उसका खून चूसती चली जाती हैं।

बीज-शब्द: समाज, संयुक्त परिवार, आर्थिक विपन्नता, अस्तित्व, अस्मिता, विवाहेतर-संबंध, दहेजप्रथा, पारिवारिक-विघटन, संस्कृति।

प्रस्तावना: राजेंद्र यादव को स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय समाज में स्वतंत्रता के पश्चात हुये यकायक परिवर्तन को उनकी लेखनी में स्पष्टत: देखा जा सकता है। सारा आकाश उपन्यास इसी समाज की जड़ता और उससे न निकल पाने की छटपटाहट या द्वंद्व को अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र के सामने 'सारा आकाश' के समान फैली विस्तृत एवं खुली महत्वाकांक्षायें हैं, लेकिन वह चुनाव कर पाने और निर्णय लेने में असमर्थ है। सारा आकाश का प्रकाशन सन् 1959 ई० में राजकमल प्रकाशन से हुआ। उपन्यास के नामकरण शीर्षक में राजेंद्र यादव लिखते हैं, "मेरे लिए यह तीसरा उपन्यास भी है और पहला भी। इसकी मूल कहानी को जब मैंने 'रफ' रूप में लिखा था तो नाम दिया था, 'प्रेत बोलते हैं।'[1] दरअसल सारा आकाश उपन्यास पहले ही सन् 1951 ई० में प्रेत बोलते हैं नाम से प्रकाशित हो चुका था। इसका पुनर्प्रकाशन भविष्य में कभी उक्त नाम से नहीं हुआ और उसी का परिष्कृत एवं परिवर्धित संस्करण 'सारा आकाश' है। यह उपन्यास दो भागों में विभाजित करके लिखा गया है। इसका पहला भाग पूर्वार्द्ध : साँझ (बिना उत्तर वाली दस दिशाएँ) और दूसरा भाग उत्तरार्द्ध: सुबह (प्रश्न-पीड़ित दस दिशाएँ) है। राजेंद्र यादव के सारा आकाश की कहानी को केंद्र में रखकर बासु चटर्जी के निर्देशन में सन् 1969 ई० में सारा आकाश नाम से ही एक फिल्म भी बनाई जा चुकी है, जिसने काफी लोकप्रियता बटोरी। सारा आकाश सार्थक कला फिल्मों की प्रारंभ-कर्ता फिल्म के रूप में जानी जाती है।

मुख्य-विषय: सारा आकाश उपन्यास राजेंद्र यादव का अति प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा के केंद्र में समर और उसकी पत्नी प्रभा है। इस उपन्यास का आरंभ प्रभा और समर के विवाह तथा उसकी पहली रात्रि (सुहागरात) से होता है। यद्यपि समर का विवाह उसकी इच्छा के विरूद्ध पारिवारिक दबाव में जबरदस्ती करवाया गया है। समर एक महत्वाकांक्षी नवयुवक है, जो इंटर में है और एम.ए. करने के पश्चात प्रोफेसर बनना चाहता है। वह अपने परिवारजन के सम्मुख शादी न करने की बात को दृढ़ता से नहीं रख पाता है। समर उपन्यास के आरंभ में स्त्री को अपने जीवन की प्रगति में बाधा के रूप में देखता है। "... चाहता हूँ खूब मन लगाकर, जी-जान से अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी कर डालूँ। अभी चार साल और हैं। एम.ए. करूँगा। तब तक वह क्या करेगी, कहाँ रहेगी, मुझे नहीं मालूम। होगा भी क्या मालूम करके? जिस राह जाना ही नहीं उसके मील गिनने से फायदा? बाधाएँ कभी-कभी बड़ा सुंदर रूप धरकर सामने आती हैं, उनमें न भरमाना ही बुद्धिमानी है। पत्नी की जो इच्छा हो करे, हम क्यों एक दूसरे के लिए बाधा बनें।"[2] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि समर विवाह के प्रति निर्णय लेने में कमजोर रहा और किशोरावस्था में ही संयुक्त परिवार के दबाव में अनैच्छिक विवाह होने से धर्मपत्नी को प्रगति में बाधा समझने लगता है तथा उसी मानसिक उलझन में जकड़ जाता है। जिसका प्रभाव उसके दांपत्य जीवन पर शुरू से ही दिखाई देने लगता है। सुहागरात-कक्ष में समर को उसकी भाभी धकेलकर पहुँचाती है। जहाँ समर की नवविवाहित पत्नी, प्रभा खिड़की के पास खड़े-खड़े अनवरत बाहर देखती रहती है। नारी को मोह-माया तथा पुरुष की कमजोरी मानने वाला समर पत्नी से पांव छूकर प्रणाम करने की अपेक्षा रखता है। ऐसा न करने पर वह स्वयं को अपमानित महसूस कर और प्रभा को अशिष्ट जानकर क्रोध में उस कक्ष से बाहर निकल जाता है। इस तरह से सुहागरात के अवसर पर भी उनके न बोलने की खबर सुबह होते ही घर और मोहल्ला-पड़ोस में फैल जाती है। दूध का गिलास लेकर प्रभा जब जाती है, तब भी दोनों मौन ही रहते हैं। प्रभा गिलास लिए खड़ी रह जाती है और समर बाहर निकल आता है प्रभा की झिझकती-सी आवाज सुनी- "सुनिए!" पर मैंने कुछ नहीं सुना और धड़धड़ाता हुआ बाहर निकल आया।[3]

दहेजप्रथा समाज की एक ऐसी कुप्रथा है, जिसके कारण प्रतिदिन न जाने कितनी महिलाओं और लड़कियों की प्रताड़ना और शोषण की खबरें समाचार-पत्रों और चलचित्र सूचनाओं के माध्यम से सुनने और देखने में आती रहती हैं। दहेज, वह धन और संपत्ति है, जो विवाह के अवसर पर (विवाह के पहले और

बाद में) वधू पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया जाता है। आरंभ में संभवत: इस भेंट की शुरुआत का कारण माता-पिता का अपनी संतान के प्रति स्नेह एवं मोह रहा होगा। कालांतर में यह प्रथा एक कठोर रूढ़ि बन गई।[4] वर पक्ष के लोग वधू पक्ष से नकदी, जमीन, घर, निजी वाहन और अन्य जरूरी सामान की मांग करने लगे। मांग की पूर्ति न होने पर इस रूढ़ि ने सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों में कलह को जन्म दिया। जिसके समानांतर प्रभाव से दांपत्य जीवन में भी कटुता और क्लेश पनपने लगे। राजेंद्र यादव सारा आकाश उपन्यास में दहेज की समस्या को जोरदार ढंग से अनेक स्थानों पर उठाते हुये दिखाई देते हैं। अम्मा की बड़बड़ाहट सुनी, "...! लो, अब इन्हें यह भी सिखाओ। हमें तो इस शादी में कुछ भी नहीं मिला। न लड़की ही मिली न ...।"[5] उपन्यास में एक अन्य स्थान पर उसकी अम्मा के वचन समर के द्वारा मुखरित हुये हैं। समर पढ़ना चाहता था और वह शादी के पक्ष में नहीं था। जबरन शादी कराए जाने के कारण पहले से कोई सौदा न किया जा सका और जितनी उम्मीद थी उतना मिला नहीं, इसलिए अम्मा अकसर ही कहती हैं, "कहें क्या चन्दन, शादी के तो सारे हौसले ही मर गये ... पढ़ी-लिखी लड़की के सिवा तूने कुछ और भी देखा बस?"[6]

आर्थिक संकट और विपन्नता के कारण जब संयुक्त परिवार की व्यवस्था चरमराती है, तो उसका वातावरण चिंता, विषाद, तनाव और कुंठा से भर जाता है। इसका प्रभाव पारिवारिक सम्बन्धों पर स्पष्टत: नजर आने लगता है। इस उपन्यास का कथानक संयुक्त परिवार रूपी ढांचे से निर्मित हुआ है। घर की आर्थिक स्थिति डांवांडोल है। परिवार में समर के अतिरिक्त उसकी पत्नी, माता-पिता, बड़ा भाई धीरज और उसकी पत्नी (भाभी) तथा दोनों की नवजात लड़की, अमर और कुंवर हैं। इसके अलावा समर की विवाहिता बहिन जो पति की प्रताड़ना से दुखी होकर मायके में ही आकर रहने लगी है। परिवार का खर्च पिता की पेंशन और बड़े भाई धीरज को मिलने वाले वेतन से चलता है। मासिक ख़र्च को पूरा करने में यह धनराशि पर्याप्त नहीं है, जबकि मुन्नी के विवाह का कर्ज भी चुकाना है। इसलिए परिवारजन को यह आशा थी की दहेज में प्राप्त धनराशि से क़र्ज चुकता कर दिया जायेगा। अत: परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने और आय की स्थिरता से चिंता, तनाव और कुंठा आ जाती है। समर अपने पिता के पास विद्यालय के बोर्ड की फीस जमा करने हेतु पैसे मांगने जाता है, तब उसके पिता की चिंता और कुंठा स्पष्ट देखने को मिलती है। "ये मेरी पेंशन के पच्चीस रुपये आये हैं, सो इन्हें तुम ले लो। हमारा क्या है, हमें तो हड्डे पेलने हैं जिंदगी-भर, सो तुम्हारे लिए करेंगे। करम में लिखा के लाये थे कि लड़के धींगरे-ऊँट हो जायें तब तक खिलाना, सो खिलाएंगे। कल-परसों अमर रो रहा था कि उसकी फीस भी जानी है ...। फिर एकदम बदले हुये स्वर में बोले, "कितनी परेशानियां हैं समर। तुम्हीं सोचो। हमारा ही दिल जानता है। बताओ, मैं करूँ क्या? कहीं दुबारा नौकरी करने को हाथ-पैरों में दम नहीं है ...।"[7] अत: आर्थिक समस्या के कारण मधुर-सम्बन्धों में कटुता और चिड़चिड़ापन साफ झलकने लगा है।

सारा आकाश उपन्यास स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और उनकी समस्याओं का चित्रण भी करता है। जेठानी और देवरानी के बीच द्वेष और ईर्ष्या की भावना दिखाई देती है। प्रभा (समर की पत्नी) मैट्रिक पास है और उसकी जेठानी (भाभी) अनपढ़ है। प्रभा सुंदर, सुशील, सुशिक्षित है और स्वादिष्ट भोजन बनाना जानती है। भाभी इन्हीं कारणों से उससे ईर्ष्या करने लगती है और विवाहोपरांत रीति-रिवाज के अनुसार ससुराल में प्रभा पहली बार खाना बनाती है, तो भाभी गुपचुप खाने में अतिरिक्त नमक मिला देती है। "...मुन्नी बीबी बता रही थीं, उन्होंने देखा भी था। वह कहती थीं कि आपको बतायेंगी। जैसे-ही मैं साग चढ़ाकर जरा हटी कि भाभी ने मुट्ठी भरकर नमक डाल दिया।"[8] इस घटना से प्रभा की परिवार में नकारात्मक छवि बना दी जाती है। सास भी अवसर पाते ही प्रभा को कोसने और खरी-खोटी सुनाने से नहीं चूकती। पर्दा-प्रथा जैसी समस्या को भी इस उपन्यास में दिखाया गया है। प्रभा पर्दा नहीं करती है, जिसके कारण बाबूजी और अम्मा दोनों उसे डांटते रहते हैं। बाबूजी की दृष्टि में पर्दा ही वधू और बेटी की पहचान है। पर्दा न करने से दोनों में क्या अंतर रह जायेगा? अम्मा कहती हैं, "बहू तुम्हारे यहाँ परदे का कायदा नहीं है तो न सही, लेकिन इस घर की रीत तो रखो। अरे तुम हमसे न करो तो मत करो, लेकिन बड़ों से कुछ तो शर्म-हया होनी चाहिए।..."[9] शैक्षिक असमानता के कारण शिरीष की बहिन को उसका पति साथ नहीं रखता है। इसके तनाव और चिंता के कारण वह हिस्टीरिया की मरीज हो जाती है। पढ़ाई को बीच में ही छुड़ाकर समर की बहिन मुन्नी का विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया जाता है। पति और सास द्वारा दिए गये दहेज के दंश का प्रतिरोध उसे भी झेलना पड़ता है। उसका पति निर्दयता से मारता-पीटता है। उसकी हथेली पर चारपाई के पाए को रखकर लेटता है, उसके जिस्म को जलाता है। उसे इतना मारता है कि उसका शरीर नीले निशानों से भर जाता है। इसके पीछे का कारण यह है कि उसके पति के एक पंडिताइन से विवाहेतर संबंध होते हैं। इस यातना से तंग आकर वह मायके चली आती है। कुछ समय बाद पति अपनी गलती स्वीकारकर; क्षमा याचना मांग; उसे बुलाकर ले जाता है। अंतत: इसकी परिणति यह होती है कि मुन्नी की हत्या कर दी जाती है।[10]

निष्कर्ष: उपन्यास का आरंभ आत्महत्या से होता है और अंत हत्या से। उपन्यास के प्रारंभ में ही परिवार और समाज में व्याप्त समस्याओं का उदय होना शुरू होता है, जो उपन्यास के अंत तक अनवरत चलता रहता है। उपन्यास सारा आकाश दो अपरिचित व्यक्तियों (समर और प्रभा) को एक स्थिति में झोंककर भाग्य को सराहने या कोसने की ट्रेजडी होते हुये भी विभिन्न सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं को समेटे हुये है। आज भी हमारे समाज और परिवार में दहेज रूपी दानव मौजूद है, जिसकी भेंट अनेक स्त्रियाँ चढ़ती चली जाती हैं। लड़कियों की शिक्षा को बीच में ही छुड़वाकर उन्हें वैवाहिक बंधन में बाँध दिया जाता है। आर्थिक विपन्नता के कारण परिवार में कलह और तनाव अधिकांश घरों की कहानी है। प्राचीन परम्परा, प्रथा, संस्कृति आदि की जड़ता वैज्ञानिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण में बाधक है, जिसके कारण नई और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष और टकराहट की स्थिति बनी रहती है और पारिवारिक विघटन जैसी प्रस्थिति उत्पन्न होती है। संयुक्त परिवार में जब तक इन समस्याओं का हल नहीं खोजा जाता है तब तक लड़कियां 'सारा आकाश' देखती रहेंगी और लड़के 'एकांत आसमान' को गवाह बनाकर अपने आपसे लड़ते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. यादव, राजेन्द्र, सारा आकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, नौवाँ संस्करण: 2022, पृष्ठ 5.
2. वही, पृष्ठ 22.
3. वही, पृष्ठ 31.

4. रावत, हरिकृष्ण, समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित : 2020, पृष्ठ 98.
5. यादव, राजेन्द्र, सारा आकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, नौवाँ संस्करण : 2022, पृष्ठ 33.
6. वही, पृष्ठ 34.
7. वही, पृष्ठ 43.
8. वही, पृष्ठ 102.
9. वही, पृष्ठ 60.
10. वही, पृष्ठ 191.
11. शर्मा, डॉ० कल्पना, राजेंद्र यादव के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंध, साद पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2021.
12. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण: 2018.